

श्रीभागवत पत्रिकाकी २० वें वर्षकी

विषय-सूची

| विषय | संख्या-पृष्ठ | विषय | संख्या-पृष्ठ |
|--|--------------|---------------------------------------|--|
| अपनी दो—एक बातें | ५-१०० | दोलनोत्सव | ७-१६८ |
| अभक्ति—मार्ग | १-६ | धर्म और विज्ञान | ६-१२६, ८-१८२ |
| अमोघकी कहानी | ९-२१६ | नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् | ५-१०४ |
| अरे भाई! भक्तिसे भोग और त्यागको दूर रखो? | ९-२१८ | पागलखाना | ३-६९ |
| All donations in favour of... | ९-२२३ | पाठकोंसे निवेदन | १-१३, २-४७ |
| आकाशवाणीपर प्रचार | ७-१६४ | पारसमणि—चिन्तामणि | १-५ |
| आचार्य केशरी श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी | ९-२२० | पुरुषोत्तम-ब्रत | ४-८८ |
| उत्तमा-भक्ति | १-२० | पूतना | ११-२६२ |
| कलियुग और नाम-सङ्कीर्तन | २-४४ | पूतना-वध | ३-६८ |
| कस्त्वं खस्त्वं | २-४६ | प्रचार प्रसङ्ग | ३-७२, ५-१२०, ६-१४२, ८-१९८, १२-२९० |
| कृपा | ४-८३ | प्रतिबन्धक | ६-१२३ |
| क्या करूँ? | ३-६० | प्रतिष्ठाकी आशा | ५-१०२ |
| क्या श्रीतुलसीदासजी मायावादी | | प्रभुपादके उपदेश | ११-२६५ |
| संत थे? | ७-१५७; ८-१९१ | प्रभुपाद-दशकम् | ५-९७ |
| गुरु-सेवा | ६-१२९ | प्रवृत्ति और निवृत्ति | ११-२५४, १२-२०८ १२-२७८ |
| गुर्वाष्टक | ३-४९ | प्रेम | ११-५७ |
| चातुर्मास्य | ६-१३९ | प्रेम-प्रदीप | १-१४, २-४१, ३-६३, ४-८५, ५-११७, ६-१३५, ८-१८९, ९-२१३, १०-२४२, ११-२६३, १२-२८६ |
| चित्रकेतुका मोह | १०-२३७ | बिनु हरि भजन न भव तरहि | ८-१८६ |
| जीवके नित्य कल्याण प्राप्तिका | | भक्त कालीदास | २-३८ |
| उपाय क्या है? | ५-१०६ | मंगलाचरण (बन्देहं श्रीगुरोः...) | १-१ |
| जीव तत्त्व एवं रसाभास | ७-१४९ | मधु और मूर्ख मधुमक्खी | ८-१८८ |
| ज्ञान | ९-२०७ | मनुष्य-समाज और वैष्णव-धर्म | १-१० |
| ज्यामिति शिक्षा | ३-६४ | मायावादकी जीवनी | १-१६, २-२७, ३-५१, ४-७९, ५-१०७, ६-१३३, ८-१८४, ९-२११, १०-२३४, ११-२५८, १२-२८४ |
| तेलीका बैल | ११-२६० | | |
| दरिद्रनारायणकी सेवा | ३-७०, ४-९४ | | |
| दिल्लीसे श्रद्धा सुमन | ७-१७१ | | |
| दो नशाखोर | ९-२२४ | | |

| विषय | संख्या-पृष्ठ | विषय | संख्या-पृष्ठ |
|--|----------------|--|--------------|
| मेढ़ककी अठन्नी | ६-१४२ | सम्बन्धमें | २-४८ |
| याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद | ६-१३८ | श्रील नरोत्तम ठाकुर | ११-२७० |
| रात्रिमें सूर्य दर्शन | १०-२४५ | श्रील रूप गोस्वामीजीकी तिरोभाव | |
| लकड़हारेकी बुद्धि | १२-२८२ | तिथि | ८-१९७ |
| विकासवादोऽथ विनाशवादः | ६-१४४ | श्रील सभापति एवं आचार्यदेवकी | |
| विदेश प्रचार प्रसङ्ग | ६-१४२, ७-१४७ | आविर्भाव-तिथि-पूजा | १२-२८८ |
| विदेश यात्रासे पूर्व अभिनन्दन ४-७५, १२-२९२ | | श्रीलश्रीधर गोस्वामी | ११-२६८ |
| विशुद्ध साम्प्रदायिकता ही आर्य-धर्मका | | श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा | ११-२६६ |
| गौरव है | २-३६ | श्रीशचीतनयाष्टकम् | ११-२४९ |
| पूज्यपाद वामन गोस्वामी महाराजजी द्वारा | | श्रीश्रीकेशवाचार्यष्टकम् | ४-७३ |
| विदेशोंमें प्रचारके लिए शुभकामनाएँ | ५-९९ | श्रीश्रीजगन्नाथाष्टकम् | २-२५ |
| व्याकरणका पण्डित | ५-११३ | श्रीगुरुचरण पद्म | १-१९ |
| वैष्णव-दर्शन ९-२०३, १०-२२७, ११-२५१, | | श्रीश्रीमद्गौरकिशोरनमस्कारदशकम् | ६-१२१ |
| | १२-२७५ | श्रीश्रीमद्भक्तिप्रशान केशव गोस्वामी | |
| वैष्णव-वंश | ८-१७९ | महाराजजीकाका विरहोत्सव | १०-२४६ |
| वैष्णव व्रत तालिका | ११-२६९, १२-२९४ | श्रीश्रीमद्भक्तिविनोददशकम् | ७-१४५ |
| श्रीकृष्णनामाष्टकम् | १२-२७३ | श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीको पत्र ७-१७५ | |
| श्रीगौड़ीय-कण्ठहार | ४-८१ | श्रीश्रीलजगन्नाथष्टकम् | ८-१७७ |
| श्रीचरणामृत | ५-१११ | श्रीश्रीषड्गोस्वाम्यष्टकम् | ९-२०१ |
| श्रीनित्यानन्दाष्टकम् | १०-२२५ | सच हरि भजन बिनु जगत | |
| श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य | ४-९१ | सब सपना | १०-२३९ |
| श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायकी | | सत्यकी खोज | ४-९६ |
| भागवत परम्परा | १-१८ | सत्संगकी विधि | १०-२३१ |
| श्रीब्रह्म-माध्व गौड़ीय सम्प्रदायस्य | | समय नहीं है !! | ३-६६ |
| प्रसिद्ध सन्त प्रवराणां | ७-१७२ | समसामयिक विवरण | २-४८ |
| श्रीभक्ति मार्ग | २-३२, ३-५४ | साधु-संग | ३-५७, ४-७८ |
| श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य | १-३ | सोचें, समझें और करें | ५-११५ |
| श्रीभागवत-पत्रिका मासिक-पत्रके | | स्वदेश आगमन पर अभिनन्दन | ७-१७०, १७४ |



**संस्थापक—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
परमहंस १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी**

वर्तमान सभापति, आचार्य एवं नियामक
त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज
सम्पादक—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज
प्रचार सम्पादक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज
प्रचार सह—सम्पादक—श्रीमान् सुबलसखा ब्रह्मचारी ‘भक्तिचकोर’

सहकारी सम्पादक संघ—

- (१) विद्यावाचस्पति श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, नव्य व्याकरण, पुराण-इतिहास-धर्मशास्त्र-सांख्याचार्य, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न, एम. ए., पी-एच. डी. (सङ्घपति)
 - (२) पण्डित श्रीयुत केदारदत्त तत्राडी, साहित्यरत्न, साहित्यालङ्कार, एम. ए. पी-एच. डी
 - (३) पण्डित श्रीयुत ओमप्रकाश ब्रजवासी, एम.ए., एल-एल.बी., साहित्यरत्न
 - (४) श्रीयुत सत्यपाल गोयल, एम. ए., पी-एच. डी.
 - (५) पण्डित श्रीयुत शुभानन्द ब्रह्मचारी ‘भागवतभूषण’
 - (६) श्रीमती मधु खण्डेलवाल, एम. ए., पी-एच. डी.
 - (७) श्रीमान् परमेश्वरी ब्रह्मचारी ‘सेवानिकेतन’
 - (८) श्रीमान् पुरन्दर ब्रह्मचारी ‘सेवाविग्रह’
 - (९) श्रीमान् पुण्डरीक ब्रह्मचारी
कार्याध्यक्ष—श्रीमान् प्रेमानन्द ब्रह्मचारी ‘सेवारत्न’
- सह—कार्याध्यक्ष—श्रीमान् हरिप्रिय ब्रह्मचारी ‘विद्याभूषण’**
- प्रकाशक—श्रीमान् नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी ‘विद्यालङ्कार’**

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ

जवाहर हाट, मथुरा-२८१००१

दूरभाष : ४०९४५३

मुद्रक—एम्बेस्डर ट्रेडर्स, सूर्यकिरण भवन, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली.

दूरभाष : ३३१९२२७

श्रीभागवत-पत्रिका

एश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशस्य श्रियः ।
ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुतमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं रम्या कचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेन या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैत्यन्यं महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दूर्द्वारा द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष १ } श्रीगौराब्द ५१०
विक्रम संवत् २०५२-५३ चैत्र मास, सन् १९९५-९६, **{ संख्या १
पार्च-अप्रैल }**

मंगलाचरण

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपद-कमलं श्रीगुरुन् वैष्णवांशच
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण-रघुनाथान्वितं तं सजीवम् ।
साद्वैतं सावधूतं परिजन-सहितं कृष्ण-चैतन्य-देवम्
श्रीराधा-कृष्ण-पादान् सहगण-ललिता-श्रीविशाखान्वितांश्च ॥

मैं श्रीगुरुदेव अर्थात् श्रीदीक्षा-गुरु और भजन-शिक्षा-गुरुदेवके चरणकमलों एवं परम-परात्पर प्रभृति गुरुवर्ग अर्थात् श्रीआनन्दतीर्थ-माधवेन्द्र पुरी प्रमुख गुरुवर्ग, चतुर्युगोद्भूत वैष्णवों, ज्येष्ठ-भ्राता श्रीसनातन गोस्वामी, निजभक्तगण, श्रीरघुनाथदास गोस्वामीसहित श्रीरूप गोस्वामी, श्रीअद्वैत प्रभु, श्रीनित्यानन्द प्रभु, परिजनसहित श्रीकृष्णचैतन्यदेव तथा सखी-मञ्जरीगण सहित श्रीललिता-विशाखा-युक्त श्रीराधाकृष्णकी वन्दना करता हूँ।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-वन्दना

१. श्रील-केशव गोस्वामी-वन्दना

नमः ॐ विष्णुपादाय आचार्य-सिंह-रूपिणे ।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव इति नामिने ।
अतिमत्यं-चरित्राय स्वाश्रितानन्दं पालिने ।
जीव-दुःखे सदार्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने ॥

२. श्रील-प्रभुपाद-वन्दना

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्ण प्रेष्ठाय-भूतले ।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त-सरस्वतीति-नामिने ॥
श्रीवार्षभानवी-देवी-दयिताय कृपाब्धये ।
कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञान-दायिने प्रभवे नमः ॥
माधुर्योज्ज्वल-प्रेमाढ्य-श्रीरूपानुग-भक्तिद ।
श्रीगौर-करुणा-शक्ति-विग्रहाय नमोऽस्तुते ॥

३. श्रील-गौरकिशोर-वन्दना

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्य मूर्तये ।
विप्रलभ्य-रसाम्बोधे पादाम्बुजाय ते नमः ॥

४. श्रील-भक्तिविनोद-वन्दना

नमो भक्ति-विनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने ।
गौर-शक्ति-स्वरूपाय रूपानुग-वराय ते ॥

५. श्रील-जगन्नाथ-वन्दना

गौराविर्भाव-भूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जन-प्रियः ।
वैष्णव-सार्वभौम-श्रीजगन्नाथाय ते नमः ॥

६. श्रीवैष्णव-वन्दना

वाञ्छा-कल्पतरुभ्यश्च कृपा-सिंधुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

७. श्रीमन्महाप्रभु-वन्दना

नमो महावदान्याय कृष्ण-प्रेम-प्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्ण-चैतन्य-नामे गौरत्वं नमः ॥

१. श्रील-केशव गोस्वामीकी वन्दना

अतिमत्यं चरित्र सम्पन्न, अत्यन्त वात्सल्य भावसे
अपने आश्रितोंका पालन करनेवाले, कृष्ण-विमुख
जीवोंके दुःखसे सदा द्रवित चित्तवाले तथा श्रीनाम-प्रेम
वितरण करनेवाले आचार्यकेसरी जगद्गुरु ॐ
विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामीको
मैं प्रणाम करता हूँ।

२. श्रील-प्रभुपादकी वन्दना

कृष्ण-सम्बन्ध-विज्ञानके दाता, कृष्ण-प्रिया
श्रीवार्षभानवी देवीके प्रियतम, इस भूतलपर अवतीर्ण
ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्ति-सिद्धान्त-सरस्वती गोस्वामी
नामक कृपा-वारिधि प्रभुकी वन्दना करता हूँ, जो माधु
जुर्यके द्वारा उज्ज्वलीकृत, प्रेमपूर्ण श्रीरूपानुगभक्तिके
प्रदाता तथा श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुकी करुणाशक्तिके
विग्रहस्वरूप हैं, उन्हें पुनः पुनः नमस्कार है।

३. श्रील-गौरकिशोरदास बाबाजीकी वन्दना

जो साक्षात् वैराग्यकी मूर्ति हैं और विप्रलभ्य-रसके
समुद्रस्वरूप हैं, उन श्रीगौरकिशोरके चरणकमलोंमें
नमस्कार है।

४. श्रील-भक्तिविनोदकी वन्दना

जो रूपानुग भक्तोंमें श्रेष्ठ हैं तथा श्रीचैतन्य
महाप्रभुके शक्ति-स्वरूप है, उन सच्चिदानन्द
उपाधियुक्त श्रीभक्तिविनोदको नमस्कार है।

५. श्रील-जगन्नाथदास बाबाजीकी वन्दना

जो सज्जनोंके प्रिय और गौरसुन्दरकी आविर्भाव-
भूमिके निर्देशक हैं, उन वैष्णवसार्वभौम श्रीजगन्नाथको
नमस्कार है।

६. श्रीवैष्णव-वन्दना

जो वाञ्छा-कल्पतरु, कृपाके समुद्र और
पतितपावन हैं, उन वैष्णवोंको पुनः पुनः नमस्कार
है।

७. श्रीमन्महाप्रभुकी वन्दना

जो परम करुणामय, देव-दुर्लभ कृष्ण-प्रेम-प्रदाता
श्रीकृष्णचैतन्य नामधारी और गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण
हैं, उन (श्रीराधा-द्युति-सुवलित) गौर कान्तिमय गौराङ्ग-
महाप्रभुको नमस्कार है।

श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्बन्धमें वक्तव्य

—श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

इतिहास

परमहंस कुल मुकुट-मणि जगद्गुरु ३३ विष्णुपाद १००८ श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी यतिराजने हिन्दी-भाषामें धर्मजगत्के सर्वोच्च विचार-धाराको प्रवाहित करनेके लिए 'भागवत' नामक एक पाक्षिक-पत्रिकाका प्रकाशन नैमिषारण्य, श्रीपरमहंस मठसे कार्त्तिक-कृष्ण-अमावस्या, गौराब्द ४४५, विक्रम संवत् १९८८, ९ नवम्बर सन् १९३१ ई. में आरम्भ किया था। यह पाक्षिक-पत्रिकाके रूपमें प्रति अमावस्या और पूर्णिमाको प्रकाशित होती थी। कुछ वर्षों तक सुष्ठुभावसे प्रचारित होनेके बाद इसने आत्मगोपन कर लिया। श्रीगौड़ीय-वेदान्त-समिति उक्त जगद्गुरु श्रील-प्रभुपादका पादाङ्कानुसरणकर मथुरा, केशवजी गौड़ीय मठसे पुनः उक्त पत्रिकाके सेवा-सङ्कल्पसे "श्रीभागवत-पत्रिका" नामक मासिक पत्रिकाका प्रकाशन गौराब्द ४६९, विक्रम संवत् २०१२, सन् १९५५ ई. जून माससे आरम्भ किया, जो गौराब्द ४८८, विक्रम संवत् २०३१, सन् १९७४ ई. मई मास तक होता रहा। भगवत्-इच्छासे पुनः इसने आत्मगोपन कर लिया। किन्तु, कलियुगापावनावतारी महावदान्य श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके आचरित एवं प्रचारित धर्मकी धाराको पुनः प्रवाहित करनेके लिए इसने आत्मप्रकाश किया है। सुधी पाठकजनसे यह अनुरोध और विनती है कि इस प्रेमगङ्गामें अवगाहनकर अपने जीवनको कृतार्थ करें।

इस पत्रिकाके उद्देश्यके विषयमें श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीने जो विचार प्रस्तुत किए थे, वे निम्नलिखित हैं—

नित्यता

'भागवत' नित्य वस्तु हैं। इन्हें पाक्षिक, मासिक अथवा वार्षिक जो कुछ भी क्यों न कहा जाय, यहाँ तक कि दैनिक, दाष्ठिक वा अनुपलिक कहे जाने पर भी इनकी नित्यताका व्याघात नहीं होता। इसमें एकमात्र अनन्तके आंशिक कालका ही लक्ष्य किया गया है। जिन्हें अनन्तकी धारणा अथवा पूर्णताका ध्यान नहीं, उनके पक्षमें अंश ही उन्हें पूर्णताकी ओर

अग्रसर करा देता है। फिर भी अंश चिरकाल ही अंश है और पूर्ण नित्यकाल पूर्ण होता है। अंश कभी पूर्ण नहीं होता अथवा पूर्णताकी समता प्राप्त भी नहीं कर सकता। जो नित्य वस्तुकी धारणा करनेमें असमर्थ हैं, उनके निकट इसका आविर्भाव-तिरोभाव अथवा जन्म-मृत्यु एक मिथ्या कल्पना-मात्र है। यथा—वृन्दावन, मथुराधाम नित्य होनेपर भी इनका आविर्भाव और तिरोभाव है। श्रीमन्महाप्रभुके अनुगत गौड़ीयजन ही नित्यधामके आविर्भाव और तिरोभावके सम्पादनमें सक्षम हैं। अन्य साम्प्रदायिक या असाम्प्रदायिक वैष्णवगण इसका मर्म उपलब्ध नहीं कर सकते। श्रीमद्भागवत ही इसके एकमात्र प्रमाण हैं। नित्य भागवतका पाक्षिक या मासिक आविर्भाव अशेष नित्य सौन्दर्यका विकाशक है। इसलिए जगद्गुरु गौड़ीय-कुल-शिरोमणि उक्त यतिराज-सम्प्राटने "भागवत" पत्रिका गौर-पक्ष और कृष्ण-पक्षमें प्रकाशित की थी। पूर्णिमा-पक्ष ही गौर पक्ष तथा अमावस्या पक्ष ही कृष्ण-पक्ष है। इसलिए श्रीमद्भागवत शास्त्र गौर तथा कृष्ण उभय पक्षोंमें ही व्याख्यात, विचारित, आचरित, आदृत और अनुमोदित होते हैं। सर्वोत्तम विष्णु-तत्त्व अर्थात् गौर-भगवत्-तत्त्वमें श्रद्धा या विश्वासहीन सम्प्रदायोंको श्रीमद्भागवतका तात्पर्य अवगत कराना विशेष आवश्यक है।

श्री और पत्रिका

'भागवत' शब्दके पूर्व 'श्री' शब्द सत्रिवेशित होनेसे भागवतके नित्यत्वका बोध होता है। अतः नित्यता ही भागवतकी 'श्री' है। इसके बाद 'पत्रिका' शब्द सत्रिवेशित होनेसे ऐसा समझना चाहिए कि यह पत्रिका भागवतके आचार-विचार तथा सिद्धान्तमूलक वार्ताको वहन करनेवाली है। 'पत्रिका' शब्दसे संवादवाही या वार्तावाहीका बोध होता है। नित्य भागवतके नित्य वार्तावहनकारी स्वरूपसे "श्रीभागवत-पत्रिका" पाठकोंके समक्ष उपस्थित हो रही है। अनित्य, असनातन, परिवर्तनशील और मिथ्या विचार अथवा लेख-माला प्रभृति इनमें प्रकाशित न होंगे। ग्राम्यवार्ता,

आहार-निद्रा-भय-मैथुनादि अनर्थ प्रसवकारी कोई विषय 'श्री-पत्रिका'में स्थान न पायेंगे। जो सभी काव्य, दर्शन, कविता, लेख आदि भोगमय इन्द्रियतर्पणताको प्रश्रय देते हैं, उन्हें 'श्रीपत्रिका'की नहीं दी जा सकती। अतः विश्री (श्रीहीन) विचार आदरणीय नहीं अर्थात् 'श्री' ही एकमात्र पारमार्थिक सत्य है। हम वर्तमान जगत्‌के श्रीहीन विचारधाराका प्रतिरोधकर अप्राकृत वैकुण्ठ-जगत्‌की श्रीसम्पन्नवाणीका परिवेषण करनेंगे। अतः इस पत्रिकाने उक्त वाणीका परिवेषण करनेके लिए यान-वाहनके रूपमें राष्ट्र-भाषा हिन्दीका अवलम्बन किया है।

राष्ट्र-भाषा

भाषा भावोंकी अभिव्यक्ति है। भाव हृदगत वृत्ति-विशेष है। यह वृत्ति अथवा भाव जिस श्रेणीके यान-वाहनका अवलम्बनकर आत्मप्रकाश करता है, उसकी भाषा भी तदनुरूप होती है। यान-वाहनकी दुर्बलताके कारण भावोंकी अभिव्यक्ति भी पूर्णता लाभ नहीं करती। भाषा जितनी ही शुद्ध, उन्नत और अग्रसर रहेगी, हृदगत विचार-धारा भी तदनुरूप परिमाणमें जनसमाजको प्रत्यक्षीभूत होगी। वर्तमान राष्ट्र-भाषा उन्नति लाभकर समग्र जीवोंके भावोंकी पूर्ण अभिव्यक्ति करे—इसी आकांक्षाको लेकर हम राष्ट्रभाषामें वैकुण्ठ-भावों व्यक्त करनेके लिए प्रस्तुत हुए हैं।

हिन्दी-भाषा

प्रायः प्राचीन भारतीय भाषा ही संस्कृत भाषासे उद्भूत हुई है। वैदिक संस्कृत भाषा ही हमारी आदि भाषा है। इसी भाषाके अपध्रंश-क्रमसे देश, काल और पात्रके अनुसार आज भिन्न भिन्न भाषाएँ परिलक्षित होती हैं। उनमें हिन्दुस्तानके अधिवासी जिस भाषामें अपने हृदयके भावोंका आदान-प्रदान करते हैं, उसी भाषाका नाम 'हिन्दी' है। 'हिन्दू' या 'हिन्दी'— ये दोनों शब्द हमारे वैदिक या मौलिक शब्द नहीं हैं। संस्कृत भाषामें इनका व्युत्पत्तिगत अर्थ नहीं पाया जाता। फारसी सिन्धु नदीके तटवर्ती अधिवासियोंको सिन्धु न कहकर हिन्दु कहा करते थे। 'वैदिक अथवा शास्त्रीय प्राचीनतम 'संस्कृत' हमारी मूल भाषा है'—यह सर्ववादी सम्मत होनेपर भी हमने वर्तमान कालोपयोगी हिन्दी-भाषाको ही राष्ट्र-भाषाके रूपमें अङ्गीकार किया है।

भाषाका शासन

भावोंकी अभिव्यक्तिको ही भाषा मान लेनेपर भी जिस देशके जो भाव हैं, उस देश की भाषा भी तदूप होती है। एक दिन जिस देशमें वैदिक भाषाके अतिरिक्त अन्य किसी भी भाषाका प्रचलन नहीं था, जिस देशमें जीवमात्रके उपास्य एकमात्र विष्णु-तत्त्व-समूहका आविर्भाव हुआ था एवं जिस देशके मध्ययुगमें संस्कृत भाषाकी माध्यमिकतामें परस्पर भावोंका आदान-प्रदान होता था, आज उसी देशमें हिन्दी भाषाकी माध्यमिकतामें शासन चलानेकी व्यवस्था हुई है। कालकी प्रगतिमें अथवा परिवर्तनशीलताके बीचमें जब जिस तरहकी अवस्थाका उद्भव होता है या होगा, हम उसे ही भगवत्-सेवाके अनुकूलरूपमें स्वीकृत करेंगे। "लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने। हरिसेवानुकूलैव सा कार्या भक्तिमिछ्ता॥" के अनुसार वैदिक क्रिया हो अथवा कोई लौकिक क्रिया ही क्यों न हो, भक्तिको ही लक्ष्यकर उसे करना आवश्यक है। इस प्रकार कालके लौकिक परिवर्तनका परिचय वैदिक विचारमें ही विशुद्धरूपमें पाया जाता है। अतः वेदातीत या शास्त्रातीत कोई भी अवस्था वर्तमान जगत्‌के भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालमें असम्भव है। अतः हम समस्त अवस्थाओंको वैदिक अवस्थाकी परिणति मानकर तदनुकूल भावसे हिन्दी भाषामें ही पारमार्थिक नित्य, सत्य, वैकुण्ठ-तत्त्वकी आलोचना करनेके लिये प्रस्तुत हुए हैं।

राष्ट्र-भाषाका शासन

राष्ट्र हिन्दी भाषाका अवलम्बनकर जगतके जिस विभागपर शासन करेगा, श्रीभागवत-पत्रिका समग्र विश्वके उस विभागको मुक्त होनेकी वाणी प्रकाश करेगी। राष्ट्र विश्वके किस अंशपर शासन करता है? देह और मनके कियदंश पर। किन्तु, श्रीभागवत-पत्रिका देह और मनके शासन-संरक्षण और परिचालन आदि विषयोंमें दृष्टिनिष्क्रेप भी न करेगी। राष्ट्र अपने जगत्को लेकर ही कालातिपात करेगा। श्रीभागवत-पत्रिका ध्वंसशील अथवा परिवर्तनशील देह और मनकी क्रियाओंको अतिक्रमणकर वैकुण्ठ-जगत्‌के शासन अथवा नियम-तन्त्रको वर्तमान राष्ट्र-भाषा हिन्दीमें प्रकाशित करेगी। इसलिए श्रीभागवत-पत्रिका एकमात्र पारमार्थिक वैकुण्ठ वार्तावहके नामसे घोषित है।

प्रार्थना

अतएव हम अपने समग्र पाठकवर्गके श्रीचरणोंमें निवेदन करते हैं कि विशेष आग्रहके साथ इस पत्रिकाके विषयोंका सम्यक्‌रूपसे आलोचना करनेसे वे विशेष लाभान्वित होंगे। यद्यपि जागतिक विचार- धारा प्रसूत साधारण भाषासे वैकुण्ठ-जगतकी भाषा अथवा विचारका प्रचुर पार्थक्य और गुरुत्व है और इसलिए प्रथमतः यह पत्रिका कुछ अंशोंमें सहजगम्य नहीं लगेगी, तथापि पुनः पुनः पाठ करनेपर कमल रोगोपतप्त रसनाके लिए मिश्रीकी भाँति

मधुरातिमधुर प्रतीत होगी। हमारी सच्चेष्टा एवं सदनुष्ठानके प्रति आप लोगोंकी सहानुभूति और सहायता होनेसे हम अपनेको कृत-कृतार्थ समझेंगे। हम इसी महदुदेश्यके साधनके लिए पूर्व-पूर्व महाजनों तथा वर्तमान मुक्त महापुरुषोंकी लेख-माला इस पत्रिकामें प्रकाशित करेंगे। आधुनिक बद्धजीवोंके लेखोंमें तरह-तरहके भ्रम-प्रमादादि दोष-परिलक्षित होते हैं। हम इस श्रेणीके लेख-प्रणालीके हाथोंसे सदा सावधान रहेंगे। यही श्रीभागवत-पत्रिकाका वैशिष्ट्य और गौरव होगा। अलम् अति विस्तरेण।

★ ★ ★ ★

पारसमणि-चिन्तामणि

आजसे साढ़े चार सौ वर्ष पूर्वकी बात है, काशी नगरीमें एक अत्यन्त गरीब ब्रह्मण रहता था। उसके एक कन्या थी, जिसकी शादीके लिए वह बहुत चिन्तित रहता था। शादीके लिए धनकी कामनासे उसने श्रीकाशी-विश्वनाथसे प्रार्थना की— ‘हे प्रभो! आप मेरी इस कामनाको पूर्ण कर दें, तत्पश्चात् मैं अपना सम्पूर्ण जीवन भगवत्-सेवामें ही व्यतीत करूँगा।’ उस सच्चरित्र ब्राह्मणकी दैन्योक्तिसे प्रसन्न होकर श्रीआशुतोष उसके मङ्गलकी चिन्ता करने लगे। रात्रिकालमें श्रीकाशी-विश्वनाथने स्वप्नमें उस ब्राह्मणको आदेश दिया—‘हे ब्राह्मण! तुम आज ही यहाँसे वृन्दावनको प्रस्थान करो। वहाँ यमुनाके तटपर कालिय-हृदके समीप ही एक टीला है, जिसके निकट सनातन गोस्वामी नामक एक बाबा भजन करते हैं। वे ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करेंगे।’ इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये। ब्राह्मण शिवजीका आदेश पालन करनेके लिए वृन्दावनमें उस निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचा। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसे हरिनाममें निमग्न वे बाबाजी मिल गए। बाबाजीको साष्टाङ्ग प्रणामकर उसने श्रीकाशी-विश्वनाथका आदेश सुनाया। सब कुछ सुननेके बाद श्रीसनातन गोस्वामीने कहा—‘भैया! मेरे पास तो कुछ भी नहीं है, मैं तो भिक्षा माँगकर अपना जीवन निर्वाह करता हूँ।’ किन्तु, वे सोचने लगे कि जब यह आदेश शिवजीका है, तो अवश्य ही कुछ-न-कुछ रहस्यकी बात होगी। कुछ देर चिन्ता करनेके बाद उन्हें कुछ स्मरण हो आया और उन्होंने कहा—‘देखो, एकबार वृन्दावनकी परिक्रमा करते समय मुझे एक पारसमणि प्राप्त हुई थी। बेकार समझकर मैंने उसे उस तरफ कूड़ेमें फेंक दिया था। तुम उसे ढूँढ़ लो।’ पारसमणिका नाम श्रवण करते ही ब्राह्मणकी हृदय-वल्लरी झूमने लगी। निर्दिष्ट स्थानसे उस मणिको पाकर गद्गद चित्तसे उसने बाबाजीको प्रणाम किया और घर बापस जाने लगा। थोड़ी दूर जानेके बाद उसकी अन्तरात्माने प्रश्न किया—‘रे मूर्ख! तुम तो ठगे गए, जरा सोचो कि जिस वस्तुको पाकर तुम निहाल हो रहे हो और फूले नहीं समा रहे हो, उसे तो बाबाजीने कूड़ेके ढेरमें फेंक दिया था। यह तो उनके लिए तुच्छ वस्तु थी। अवश्य ही उनके पास इससे भी अत्यन्त कीमती कोई वस्तु है, जिसकी तुलनामें यह पारसमणि भी तुच्छ है।’ अपने अन्तरात्माकी इस आवाजको सुनकर वह वहीं ठिठक गया और कुछ विचार करनेके बाद पुनः बाबाजीके पास लौट आया। उसने अपने अन्तरात्माकी सारी बातें उनको बताई। बाबाजी उन बातोंको श्रवणकर मन्द-मन्द मुस्कानसहित कहने लगे—‘देखो, श्रीकाशी-विश्वनाथने ही तुम्हरे हृदयमें ऐसी प्रेरणा दी है। यदि तुम इससे भी श्रेष्ठ धन प्राप्त करना चाहते हो, तो यह मणि यमुनाजीको भेंट कर दो और स्नानकर मेरे पास आओ।’ ब्राह्मणने यथावत् उनके आदेशोंका पालन किया। सनातन गोस्वामीने कहा—‘सम्पूर्ण ब्रह्मण्डमें कृष्ण-प्रेमसे बढ़कर और कोई धन नहीं है तथा वे कृष्ण स्वयं हरिनामके रूपमें अवतरित हुए हैं। जिसे हरिनामरूपी धन प्राप्त हो जाता है, उसके लिए इस जगतकी अत्यन्त अनमोल वस्तुएँ भी तुच्छ हो जाती हैं। यह हरिनाम चिन्तामणि है। शिवजीकी कृपासे तुम्हारा हृदय निर्मल हो गया है, अब तुम यह हरिनाम ग्रहण करो।’ इतना कहकर श्रीसनातन गोस्वामीने उसे हरिनाम-महामन्त्र सुनाया तथा अपना आलिङ्गन प्रदान किया। उस आलिङ्गनको प्राप्तकर ब्राह्मणकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उसने गद्गद चित्तसे अवरुद्ध आवाजमें कहा—‘हे प्रभो! शिवजीने कृपाकर अवश्य ही मुझे यहाँ भेज दिया, किन्तु यथार्थतः आपके दर्शनसे ही मेरा चित्त निर्मल हुआ है।’ इतना कहकर वह उनके चरणोंमें लोट-पोट होने लगा। वह उनके ही समीप रहकर निरन्तर उस महामन्त्रका जप करते हुए अप्राकृत आनन्दमें निमग्न रहने लगा।

ते कृष्ण हे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हे हे सम हे सम सम हे हे

अभक्ति-मार्ग

—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपाद

अभक्तिका परिचय

जिस मार्गमें कृष्ण-सेवाकी चर्चा नहीं उसे अभक्ति-मार्ग कहते हैं। श्रीकृष्णकी उत्तम सेवामें कृष्णके अतिरिक्त अन्यवस्तुकी अभिलाषा, कर्म, ज्ञान तथा शिथिलताका आवरण नहीं। उसमें कृष्णका अनुकूल अनुशीलन होता है। अनेक लोग भक्त होनेकी अभिलाषा करते हुए भी अभक्तिके मार्गका आश्रय ग्रहण किया करते हैं। जो कृष्णभक्तिके स्वरूपकी उपलब्धि करते हैं और एकमात्र उसे ही जीवोंकी वृत्ति समझते हैं, वे ही भक्तिपथके पथिक हैं। जिन्होंने अपनी प्रतिभा या अनभिज्ञताके ऊपर निर्भर रहकर भक्तिकी संज्ञा स्वयं ही निर्धारित की है, उनकी इस हठकारितासे बहुधा भक्तिके स्वरूपका विपर्यय हो जाता है। कतिपय व्यक्तियोंने अपनेको भक्त समझकर भक्तिके नामपर निज कल्पित वृत्तिका ही प्रचार किया है, किन्तु गौरसुन्दरने कलिहत दुर्बल जीवोंके कल्याणार्थ भक्तिकी जो संज्ञा निर्धारित की है, वही यथार्थ भक्ति है और श्रीरूप गोस्वामीने उसीका श्रवण और कीर्तन किया है।

निरन्तर कृष्णका अनुशीलन ही भक्ति है

सामाजिकगण ! सचेत, अपनेको भक्तकी संज्ञासे भूषित करनेके लिए सर्वप्रथम भक्तिके प्रकृत स्वरूपका अनुसन्धान करना होगा। श्रीमन्महाप्रभुने भक्त प्रवर श्रीरूप गोस्वामीसे कहा था कि कृष्णका अनुशीलन करना ही भक्ति है। अनुशीलन शब्दसे निरन्तर या अनुक्षण सेवाका बोध होता है। ‘अनु’ शब्दका तात्पर्य पीछे-पीछे अर्थात् ‘अन्तररहित’से है। ‘शील’ धातुका अर्थ है— ऐकान्तिकभावसे प्रवृत्त होना। अनुशीलनके दो प्रकार हैं—(१) चेष्टारूपी (२) भावनारूपी। (१) कृष्णके लिए कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टासमूह ‘चेष्टारूपी’ अनुशीलन है। इसके दो भेद हैं— सेवाके अनुकूल कायिक, वाचिक

और मानसिक अनुशीलनरूपी प्रवृत्त्यात्मक (विधि- मूलक) और प्रतिकूल वर्जनरूपी निवृत्त्यात्मक (निषेध-मूलक)। (२) प्रीति विषयक मानसिक अनुशीलन ही भावनारूपी (रागानुगा) अनुशीलन है। श्रीगौर-कृष्ण, नित्यानन्द-राम और जीव तत्त्व

कृष्ण कहनेसे परमेश्वर, सच्चिदानन्द विग्रह, अनादि, सर्वादि तथा सर्वकारणोंके कारणका निर्देश होता है। इनसे ही सविशेष तत्त्व बलदेव और नारायण का प्रकाश होता है। गोलोकमें माधुर्यके परम आश्रय ब्रजेन्द्रनन्दन ही माधुर्यदाता, औदार्यके परम आश्रय श्रीगौरहरि हैं। ये वैकुण्ठमें अपनी प्रकाश-मूर्ति नित्यानन्द-रामके द्वारा सविशेष ऐश्वर्य-विग्रहको प्रकाशितकर श्रीवासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध नामक चतुर्व्यूह नित्यकाल प्रकट करते हैं। ये सभी अद्वय-तत्त्व हैं। इसी अद्वय-तत्त्ववस्तुसे भगवान्‌के पुरुषावतार, नैमित्तिकावतार, गुणावतार प्रभृति विष्णुतत्त्व जीवको भगवान् और तदितर वस्तुके पार्थक्यकी उपलब्धि कराते हैं। मायाधीश विष्णु जीवको विशुद्ध भावसे अपना अनुशीलन कराकर विष्णु-व्यतिरिक्त अन्य प्रतीतिरूपी मायाके कवलसे उद्धार करते हैं। जीव जिस कृपा-रज्जुका अवलम्बनकर कृष्ण-प्रेम लाभ करता है, उसे भक्ति कहते हैं। भक्त भक्तिके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजनकर सर्वश्रेष्ठ पुरुषार्थ लाभ करते हैं।

अभक्ति-वृत्तिका लक्ष्य

भक्ति-वृत्तिके सुप्त हो जानेपर जीव अभक्तिकी किसी एक वृत्तिका अवलम्बन करता है। उस समय उसकी वृत्ति भजनशून्य होकर लक्ष्य-तत्त्व-वस्तुको कभी परमात्मा और कभी निर्विशेष ब्रह्मकी संज्ञा देती है, अतः योगियोंके परमात्मा तथा ज्ञानियोंके ब्रह्म, कृष्णके आंशिक तथा भेदाभेद प्रकाश-विशेष हैं। कृष्ण चिन्तनके सिवाय अन्य किसी चिन्ताके प्रबल होनेपर

जीव भक्ति-वृत्तिसे च्युत होकर भगवत्-दर्शनसे वज्ज्यत हो जाता है। तब वह तत्त्व वस्तुको कभी सहस्रार परमात्मा, कभी अज्ञानका प्रकाशक पञ्चदेवता और कभी अज्ञान-समष्टिकी उत्कृष्ट उपाधिको ही विशुद्ध सत्त्व समझकर भक्ति विरोधी विचारोंका आश्रय ग्रहण करता है। कृष्णकी भगवत्ता भूलकर भोगतात्पर्यमय होकर कृष्णको जड़ कर्मफलदाता, यज्ञोंका ईश्वर तथा गो-ब्राह्मणोंका हितकारी आदि उनके ईश्वरत्वको ही अन्तिम मान लेता है। फिर अपने विभुत्व और प्रभुत्वमें व्यस्त रहकर यथेच्छाचार और भोगमय जीवनको ही हरित्व समझता है। भक्तोंके अतिरिक्त अन्यान्य लोगोंके द्वारा कथित कृष्णसे यहाँ तात्पर्य नहीं है। किन्तु शुद्ध भक्तों द्वारा लक्षित 'कृष्ण' शब्द ही प्रकृत कृष्णका परिचायक है। बिना भक्ति-शास्त्रकी आलोचना किये ही जो लोग 'कृष्ण' शब्दकी कल्पनामूलक व्याख्याकर उनपर ही आस्था रखते हैं, वे चैतन्यचन्द्रके लक्षित कृष्णको अपनी कोरी कल्पनाओंसे केवल कलङ्कित ही करते हैं। वस्तुतः वे न तो स्वयं कुछ समझते हैं और न दूसरोंको ही समझा सकते हैं। इन वज्यक और वज्ज्यतोंके प्रति हमारा कुछ भी वक्तव्य नहीं है।

अनुकूल-प्रतिकूलरूपी द्विविध कृष्णानुशीलन

अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकारसे कृष्णका अनुशीलन हो सकता है। जरासन्ध, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल, पूतना, अघ बक प्रभृति असुरगण और निर्विशेषवादी ज्ञानी प्रतिकूल भावसे कृष्णका अनुशीलन करते हैं। प्रतिकूलभावके अवलम्बनसे सेवामें विपर्यय घटता है। अतएव वह भक्ति नहीं। अनुकूल कहनेसे कृष्णके उद्देश्यसे रोचमाना (अनुरागपूर्ण) प्रवृत्तिका बोध होता है। तैलधारावत्, अन्तर-रहित, सर्वतोभावेन् अनुकूल भावसे प्रवृत्त होनेसे भजन सिद्ध होता है।

अनुकूल-अनुशीलनका स्वरूप

अनुकूल अनुशीलनमें सर्वप्रथम कृष्ण-सेवाके अतिरिक्त अन्य अभिलाषाओंका अभाव होना आवश्यक है। भक्त कृष्णकी निजी-सेवा करता है। उसकी कृष्ण-सेवाका फल भी कृष्णके लिए ही होता है, उसमें कोई अन्य उद्देश्य नहीं रहता। अगर उस

सेवामें अपने लिए लेशमात्र भी भोगवाञ्छाका सम्मिश्रण रहे, तो वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— इस चतुर्वर्गके अन्तर्गत एक हेतुकी वृत्ति हो जाती है तथा कृष्ण प्रीतिके उद्देश्यसे पृथक् होनेसे उस वृत्तिको अन्याभिलाष कहते हैं। यथेच्छाचारी कुकर्मी अथवा अज्ञान-सेवी कुशानीगण कृष्ण-सुखके अतिरिक्त मन ही मन अपनी काल्पनिक प्रार्थनाओंका पोषण करते हुए यदि कृष्णका अनुकूल अनुशीलन करें, तो भी जिन्हें हृदयमें प्रतिष्ठाकी आशा है, जिन्हें इन्द्रिय-सुखकी लालसा है, जो पार्थिव या मोक्ष सम्बन्धी परोपकार अथवा निज उपकारके लिए व्यग्र हैं, जो अपनी पाणिडत्य प्रतिभाके विस्तारके इच्छुक हैं, जो रोग-शान्तिके लिए उत्कण्ठित हैं, जो उत्तम आचार्य वंश या वर्णगत सम्मान पानेमें तत्पर हैं, जो लाभ-पूजा-प्रतिष्ठा, निषिद्ध आचार, कुसंस्कार, जीव-हिंसा प्रभृति ऐहिक अथवा स्वर्ग-सुख भोगनेमें रत हैं, जो वेश या आश्रमके माहात्म्यके लोलुप हैं और जो मोक्ष-सिद्धि कामी हैं, वे अपने-अपने आवान्तर उद्देश्योंसे युक्त रहकर कृष्णका अनुकूल अनुशीलन करें, भी उनके सभी कृष्णानुष्ठान कपटतापूर्ण हैं। अतः इस भक्तिके मार्गमें कृष्ण-सेवाके उद्देश्यसे भ्रष्ट होकर अन्य अभिलाषाओंसे युक्त होकर भी भगवनदनुशीलन देखा जाता है।

अमल ज्ञानका विचार और पठन पाठन ही भक्ति है

ज्ञानके आवरणमें भक्तिका होना सम्भव नहीं अर्थात्, ज्ञानका आश्रय ग्रहण करनेसे भक्ति नहीं हो सकती। यहाँ 'ज्ञान' शब्दसे निर्भेद ब्रह्मानुसन्धानको लक्ष्य किया गया है। कृष्ण ही एकमात्र उपास्य वस्तु हैं। कृष्ण विषयक परेशानुभूति अर्थात् भजनीय वस्तुके स्वरूपका ज्ञान भक्तिके साथ-ही-साथ आवश्यक है। श्रीमद्भागवतके अन्तिम श्लोकोंमें स्पष्ट किया गया है कि भक्त-वैष्णवोंके प्रिय निर्मल पुराण शास्त्र श्रीमद्भागवतमें एकमात्र परमहंस अमलज्ञान ही विशिष्टरूपमें कीर्तित हुआ है और इस शास्त्रमें ज्ञान, वैराग्य तथा भक्ति एकत्र आविर्भूत होकर जीवोंके कर्म-फलभोगको निरस्त करते हैं। अतः श्रीमद्भागवतके

श्रवण, उत्तमरूप पठन तथा नानाप्रकारके मतवादोंकी अकर्मण्यता उपलब्धि करनेके लिए विचारपूर्वक भक्तिके सिद्धान्तोंपर उपनीत होनेसे जीव भक्तिका अवलम्बनकर अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान तथा शिथिलतासे अपनेको मुक्त करनेमें समर्थ होता है। श्रीचैतन्य चरितामृतके आदि लीला द्वितीय परिच्छेद संख्या १७ में इस विषयका और भी स्पष्टीकरण किया गया है—

सिद्धान्त बलिया चित्ते ना कर आलस।

इहा हैते कृष्णे लागे सुदृढ़ मानस॥

[अर्थात् भगवत्-तत्त्वज्ञानादि सिद्धान्त-विषयोंको जानने-कहनेमें आलस्य करना उचित नहीं, क्योंकि इसके द्वारा ही श्रीकृष्णके पाद-पदोंमें भक्ति सुदृढ़ होती है।]

भक्तिके साथ शुद्ध ज्ञान और वैराग्यका उदय

भक्तिके प्रारम्भमें श्रद्धा आवश्यक है। श्रद्धाके बिना भक्तिका उदय नहीं हो सकता। पहले साधुओंके सङ्गमें शास्त्रोंके श्रवणसे श्रद्धा उदित होती है। शास्त्रीय वचनोंमें विश्वास होनेको श्रद्धा कहते हैं। सम्बन्ध-ज्ञान उदित होनेके पूर्व ही अभिधेय भक्ति अग्रसर हुई है—ऐसा कदापि नहीं हो सकता— “भक्ति परेशानुभवो विरक्तिरन्यत्र चैषः त्रिक एक कालः।” भक्तिके साथ-ही-साथ कृष्णेतर विषयोंसे वैराग्य और भगवत्-विषयक ज्ञानका उदय होता है। भक्तिके बिना उनके अस्तित्वकी सम्भावना नहीं। जो लोग मायिक ज्ञानकी सहायतासे ज्ञानी बननेके लिए निष्फल मिथ्या प्रयास करते हैं, उनका वह प्रयास भक्तिका अङ्ग नहीं है। ब्रह्मका अविद्याग्रस्त खण्ड-विशेष ही बद्ध जीव है— ऐसे मायिक विचारवाले ज्ञानियोंकी चेष्टामें सम्पूर्णरूपसे मुक्तिरूपी कपटधर्म अन्तर्निहित होता है। हेतुक ज्ञान कभी भी शुद्ध भक्तिका अङ्ग नहीं है। अगर भक्तोंके हृदयमें मुक्तिरूपी पिशाची वर्तमान रहे, तो वह साधक भक्तको कृष्णभक्तिसे अवश्य ही विपथगामी बना देती है।

अद्वय और अद्वैत ज्ञान

शुद्ध भक्ति वणिक-वृत्ति (लेन देनका व्यापार)

से पृथक् है। शुद्ध भक्तिके बदलेमें कृष्णद्वारा अपनी किसी कामनाकी पूर्ति एक लेन देनका कारोबार हो जाता है। यह वृत्ति भक्तिके कृष्णके अनुकूल अनुशीलनसे विच्युत अन्याभिलाषी अथवा अहंग्रहोपासक (अपनेको ब्रह्म या भगवान् समझकर उपासना करनेवाला) बना देती है। इन शुष्क तर्कोंसे तत्त्व-वस्तु और श्रीकृष्ण पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। भक्तिविरोधी ज्ञानी आत्मवच्यक हैं। वे केवला, अहेतुकी, प्रेमलक्षणा भक्तिको अज्ञान-मिश्र प्राकृत समझकर केवल अपनी मूढ़ता प्रकाश करते हैं। इन शुष्क ज्ञानियोंके निर्भेद ज्ञान-रूपी (जीव ब्रह्मैक्यवाद) अज्ञानान्धकारके पठलसे भक्तोंकी भक्ति (उपास्य और उपासक तत्त्व) आच्छादित नहीं हो सकती। कृष्ण ही अद्वय-ज्ञान-तत्त्व हैं। कृष्णके व्यतिरिक्त ज्ञानमें माया शक्तिकी सुन्त और जाग्रत क्रियाएँ परिलक्षित होती हैं। अतः मायिक ज्ञानके आवरणमें जो भक्ति-सी दिखलायी पड़ती है, उसे अभक्ति कहते हैं। शुद्धा भक्तिके उदित होनेपर प्रकृत ज्ञान सहायक और दासरूपसे उसके साथ सदा वर्तमान रहता है। जिस ज्ञानका कर्तृत्व कृष्णभक्तिके ऊपर देखा जाता है, वह कृष्णके व्यतिरिक्त द्वैत-ज्ञान है। ज्ञानियोंके अज्ञान विजृम्भित मायिक निर्भेद ब्रह्मके अनुसन्धानके द्वारा कृष्णके अनुकूल अनुशीलनकी सम्भावना नहीं, प्रत्युत् भक्ति उनके ज्ञानके आवरणसे आच्छादित हो जाती है।

मायाके आश्रित कर्म अभक्ति और श्रीहरिके उद्देश्यकी क्रिया ही भक्ति है

कर्मके आवरणमें भक्ति होनेकी सम्भावना नहीं। स्मृतिमें जिन नैमित्तिक फल-प्रसूत कर्मोंका वर्णन है, वे जीवोंकी भक्तिके आवरण हैं। कर्म कृष्णकी जीव-आवरणात्मिका माया-शक्तिका एक परिणाम है। कर्म-फलवादी कर्मविपाकमें पड़कर सोचते हैं कि भक्ति सत्-कर्मके प्रभावसे उत्पन्न हो सकती है, किन्तु यह भ्रममूलक विचार है। सेव्य वस्तुकी परिचर्यादि कर्मावरण नहीं बल्कि अनुकूल अनुशीलन है। जिस अनुष्ठानमें जीवोंका अपना फल-भोग संश्लिष्ट रहता

है, उसे कर्म कहते हैं और जिस अनुष्ठानका फल जीवके भोग्य न होकर स्वयं भगवान्‌के लिए होता है, उसे भक्ति कहते हैं। भक्तके हृदयमें भुक्ति-पिशाची थोड़ा भी स्थान पानेसे उसे कृष्ण-भक्तिके मार्गसे विच्छुत कर देती है। पञ्चरात्रका कथन है—‘हे देवर्षे ! श्रीहरिके उद्देश्यसे किए हुए शास्त्र सम्मत अनुष्ठानको वैधी-भक्ति कहते हैं। वैधी-भक्तिके द्वारा ही प्रेम-भक्ति साधित होती है। श्रीचैतन्य चरितामृत मध्यलीला २२ परिच्छेद १४१ संख्यामें लिखा है—

ज्ञान, वैराग्य भक्तिर कभु नहे अङ्ग ।
अहिंसा, यम, नियमादि बुले कृष्णभक्त सङ्ग ॥

ठाकुर बिल्वमङ्गलने भी कहा है—

भक्तिस्त्वयि स्थिरतरा भगवन् यदि स्यात्
दैवेन नः फलति दिव्य किशोर मूर्तिः ।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताऽजलि सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थं काम गतयः समय-प्रतीक्षाः ॥

ज्ञान और वैराग्य भक्तिके अङ्ग नहीं

शिथिलताके आवरणमें भी भक्ति उदित होनेकी सम्भावना नहीं। धन या शिष्यके द्वारा उत्तमा-भक्ति उत्पन्न नहीं की जा सकती। विवेक द्वारा भी भक्ति नहीं होती, परन्तु भक्तोंमें विवेक लक्षित होता है। कृष्ण-रहित ज्ञान और वैराग्य चित्तको कठोर बना देते हैं। अतः वे सुकोमला भक्तिके लिए उपयोगी नहीं। अविरोधी ज्ञान और वैराग्यकी कुछ-कुछ उपयोगिता देखे जानेपर भी ये भक्तिके अङ्गरूपसे गृहीत नहीं होते।

कर्म, ज्ञान, तपस्यादि अभक्तिमार्ग

कर्म और ज्ञानके अनुष्ठानरूपी तपस्याकी आवश्यकता नहीं, यदि भक्ति है। कर्म, ज्ञान और तपस्याकी उस समय भी आवश्यकता नहीं यदि भक्ति न हो। कर्म, ज्ञान और तपस्याकी आवश्यकता नहीं यदि हृदय और अनुष्ठानमें भक्ति हो और कर्म, ज्ञान एवं तपस्या की उस समय भी आवश्यकता नहीं यदि हृदय और अनुष्ठानमें भक्ति नहीं हो। जीवकी परम आवश्यकीय भक्ति वर्तमान रहनेसे गौण-मार्ग-द्वय

(कर्म-ज्ञान) यदि न भी रहें तो कोई हानि नहीं, किन्तु मूल वृत्ति भक्तिके अभावमें कर्म और ज्ञानके अनुष्ठानसे भक्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। भक्ति स्वतन्त्र वृत्ति है—पञ्चरात्रका यही सुस्पष्ट मत है। अतः अन्याभिलाष, कर्म, ज्ञान तथा शैथिल्य भक्तिके प्रतिबन्धक हैं और इन्हें ही अभक्ति मार्ग कहते हैं। **अभक्त और अभक्तिसे निरपेक्ष होना कर्तव्य है**

सज्जन पाठकगण ! अभक्ति जीवोंके लिए श्रेय नहीं। अतः इससे उदासीन रहें। यदि आप अभक्ति-मार्गसे तटस्थ हो जायें, यदि अभक्ति मार्गके प्रति आपका आदर नहीं है, तो उसके लिए कोई आपकी निन्दा नहीं करेगा एवं न तो भक्तोंको अभक्तोंके प्रति श्रद्धा न करनेसे भक्ति नहीं होगी, ऐसा कह सकते हैं। अभक्तोंकी अवज्ञा करना उचित नहीं, किन्तु उन्हें प्रेमी-कहना भी ठीक नहीं। उनके मायावाद अथवा योगमार्गीय सिद्धान्त-विरुद्ध पद्धतिको भक्तिके अन्तर्गत न समझें। अभक्ति कभी भी भक्तिके समजातीय नहीं है।

★ ★ ★ ★ ★ ★ ★

(१) जीवोंकी विपरीत रुचिको परिवर्तित कृप्ता द्वी पार्वतेष्ठ दमलुकाका परिचय दै। [महामायाके दुर्गके बीचसे यदि एक भी जीवकी रक्षा कर सको, तो अनन्त काटि अस्पतालोंके निर्माणकी अपेक्षा उससे अनन्त गुणा पर्योपकारका कार्य होगा।]

(२) हम इस जगतमें अधिक दिन नहीं रहेंगे, हरि-कीर्तन कर्त्ता-कर्त्ता हमारा देहपात होनेसे ही इस देव धारणकी सार्थकता होगी।

—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ‘प्रभुपाद’

मनुष्य-समाज और वैष्णव-धर्म

**मुक्त जीवोंका शुद्ध वैष्णवधर्म बद्ध जीवोंमें
विकृत हो जाता है**

अनेक बार हम यह कह चुके हैं कि जिसे पवित्र जैव-धर्म कहा जाता है, उसीका नाम वैष्णव-धर्म है। जीवोंके नित्य-स्वाभाविक धर्मका नाम ही जैव धर्म है। जीव जब उपाधिसे रहित हो जाता है, उस समय उसका शुद्ध चिन्मय स्वरूप होता है। उस समय उसका नित्यधर्म क्या होता है?—निरुपाधिक विशुद्ध प्रेम। जिस समय जीव जड़ग्रन्थिरूपी उपाधिसे युक्त होता है, उस समय उसका धर्म होता है विकृत प्रेम या जड़-उपाधिमिश्रित प्रेम। शुद्ध जीवोंका वैष्णव-धर्म बद्ध जीवोंमें अनेक विकृत भावोंके रूपमें प्रकट हुआ करता है।

**स्व-स्वरूपकी प्राप्ति करनेके लिये भी
जड़-विधि अनिवार्य है**

बद्ध जीव जड़देहमें आबद्ध होकर जड़-विधिके अधीन रहते हैं। शारीरिक, मानसिक और सामाजिक जितनी भी विधियाँ हैं, वे सब जड़मय हैं। जड़ताके इन सम्बन्धोंका त्याग हो जानेके बाद भी स्वस्वरूप प्राप्तिके लिए जड़ विधियोंका सम्पूर्णरूपेण परित्याग नहीं किया जा सकता। अतः इस जड़शरीरमें रहते हुए ही जड़ताके संस्कारोंसे मुक्त होनेके लिए उचित उपाय करने चाहिए। जड़ सम्बन्धोंको अनुपयोगी मानकर केवल जड़देहका त्याग करनेसे कुछ लाभ नहीं हो सकता। इसमें तो आत्मघातका पाप होनेके कारण और अधिक बन्धनकी ही सम्भावना है। इसलिए निजस्वरूपकी प्राप्तिके अभिलाषी जीवोंके लिए शरीर-पोषण, योगक्षेम और उसके नाना प्रकारके अभावोंकी निवृत्तिका यत्न करना भी आवश्यक है।

**निष्पाप देह-यात्राके श्रैलिए युक्तिमय भजित्विनोद
समाजकी आवश्यकता**

उत्तमरूपसे शरीरयात्रा निर्वाह करनेके लिए द्रव्य उपार्जनका कोई उपाय करना भी आवश्यक है। शरीरयात्रा निष्पापरूपसे चलती रहे, इसके लिए एक आश्रम और संसारको भी ग्रहण करना आवश्यक है। विवाहित होकर घरमें रहना हो या नैष्ठिक ब्रह्मचर्य अथवा सन्यास ग्रहण करना हो, प्रत्येक दशामें कोई न कोई आश्रम स्वीकार करना ही होगा और उस आश्रमके उपयोगी एक समाजकी रचना भी करनी होगी। अतः विषयी, मुमुक्षु और मुक्त सभीका अपना कोई न कोई एक समाज है।

**विषयी, मुमुक्षु और मुक्त भेदोंसे समाज
तीन प्रकारके हैं**

कुछ लोगोंका विचार है कि सामाजिक नागरिकजन वैष्णव नहीं कहे जा सकते। किन्तु यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। वस्तुतः समाजके तीन भेद हैं— विषयी समाज, मुमुक्षु समाज तथा मुक्त समाज। मनुष्य किसी भी समय समाजसे रहित नहीं होता है। जीवका स्वभाव सामाजिक होता है। जड़से मुक्त होनेपर जीवका शुद्ध भक्त-समाजके अन्तर्गत रहना अनिवार्य है। इसलिए मनुष्य घरमें रहे, वनमें रहे या वैकुण्ठवासी हो जाय वह सामाजिक ही बना रहता है। वैष्णव या अवैष्णवोंमें इतना ही भेद है कि वैष्णवजनोंका वैष्णवसमाज है और दूसरोंका दूसरा समाज। तात्पर्य यह है कि सिद्धान्तः वैष्णव धर्म और वैष्णव समाजमें कोई भेद नहीं है।

वैष्णव-समाज और इतर-समाजमें अन्तर

वैष्णव-समाज और इतर-समाजमें यही भेद है कि वैष्णवोंका एकमात्र मुख्य उद्देश्य है—भगवत्प्रेम जबकि साधारण समाजका उद्देश्य है—केवल स्वार्थपर काम। जो लोग साधारण समाजके अन्तर्गत हैं, वे शरीर-पोषण, इन्द्रियसुख, नीति तथा जड़-विज्ञानकी आराधनाको ही अपना कर्तव्य समझते हैं और इससे

इन्द्रियतृप्तिप्रद विषयाविष्कार तथा जड़क्लेशोंकी यत्किञ्चित् निवृत्तिको ही मानव जीवन एवं समाजका ध्येय समझते हैं। इनमें कुछ लोग मरणान्तर सुखको, कुछ लोग स्वर्गीय भोगको एवं कुछ व्यक्ति जीवके अस्तित्व-नाशरूप निर्वाणको ही महत्व दिया करते हैं। किन्तु, वैष्णव-समाजके व्यक्ति देहपोषण, इन्द्रियतृप्ति, नीति, विज्ञान और जड़-सुख निवृत्तिके द्वारा भगवत्प्रीतिके अनुशीलनमें आनुकूल्य लाभ करते हैं। दोनों समाजोंकी आकृति तो समान है, किन्तु दोनोंकी प्रकृतिमें मूलभूत अन्तर है।

वर्णाश्रम-व्यवस्था ही बद्ध जीवोंकी सामाजिक व्यवस्था है

जिन लोगोंने समाजविज्ञानके सम्बन्धमें पर्याप्त विचार किया है, उनका एक ही वाक्यमें यह सिद्धान्त है कि वर्णाश्रम-व्यवस्था ही सर्वोत्तम सामाजिक व्यवस्था है। वर्णाश्रम धर्ममें स्थित होनेसे जीवोंकी प्रकृतिका लोप नहीं होता, अपितु इसके सहारे ऐसी सुविधाएँ मिल सकती हैं, जिससे भगवत्प्रेम प्राप्तिका मार्ग सुगम हो जाता है। वर्णाश्रम-धर्म ही वैष्णवोंकी बद्धदशामें एक समाज है। वर्णाश्रम धर्म किस प्रकारका है, यह विषय “श्रीचैतन्य शिक्षामृत” के प्रथम और द्वितीय प्रकरणमें भली भाँति आलोचित हुआ है। इसलिए इस स्थलमें उक्त धर्मसम्बन्धी रहस्यपर विचार नहीं किया गया। सिर्फ इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि मनुष्यको अपने स्वभावानुसार कोई एक वर्ण तथा अवस्थानुसार कोई आश्रम ग्रहणकर उनमें जीवन निर्वाह करते हुए ईश्वरको प्रसन्न करना चाहिए। अनेक परिस्थितियों और कर्मोंसे स्वभावकी रचना होती है, उनमें जन्म भी एक परिस्थिति-विशेष है।

जन्म वा वंश-क्रमसे वर्ण निश्चय करनेपर वर्णाश्रम बेकार होगा

केवल जन्मसे ही वर्णका निर्णय माने जानेसे वर्णाश्रम व्यवस्था प्रभावहीन हो गई है। उसका परिणाम यह हुआ कि उस धर्मके अनुयायी व्यक्तियोंका किसी भी काममें कोई सफलता नहीं होती। वर्णाश्रम धर्मके ऐसा व्यतिक्रम देखकर कितने ही सहदय लोग भारतके

भावी अभ्युदयके विषयमें निराश हो गये हैं, इसलिए कितने ही आधुनिक मनीषि वर्णाश्रम व्यवस्थाको समाप्त करनेके यत्न करने लगे हैं। किन्तु, हम देख चुके हैं कि वर्णधर्मका विनाश होनेसे संसारकी उत्त्रति नहीं हो सकती। वर्णाश्रम-व्यवस्था न रहे तो मनुष्यका एक वैज्ञानिक समाज ही नष्ट हो जाएगा एवं मानव पुनः गर्हित दशाको प्राप्तकर स्वच्छन्द, म्लेच्छाचारी और निन्दित जीवन बिताने लगेगा। वर्णाश्रम-व्यवस्थाका विनाश किसी भी देश और जातिप्रेमीको इष्ट नहीं है। वर्णाश्रम व्यवस्थामें जो दोष आ गए हैं, केवल उन्हें ही हटाना उत्तम होगा।

वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी पुनः संस्थापनाके दस उपाय

वर्णाश्रम व्यवस्थाको पुनः व्यापक और सुप्रतिष्ठित करनेके लिए नीचे लिखे कुछ नियमोंको प्रचलित करना होगा; जैसे—

१—केवल जन्मसे ही किसीका वर्ण नहीं माना जाय।

२—बाल्यकालके सङ्ग और ज्ञान-संग्रहसे उत्पन्न जो स्वभाव प्रबल देखा जाय, उसी स्वभावके अनुसार प्रत्येक व्यक्तिका वर्ण निश्चित होना चाहिए।

३—वर्णनिर्णयके समय स्वभाव और प्रवृत्तियोंके साथ माता-पिताके वर्ण-सम्बन्धका भी ध्यान रहे।

४—पुरुषकी उपयुक्त अवस्था अर्थात् १५ वर्षकी आयु होनेपर कुल-पुरोहित, मुखिया, माता-पिता तथा पड़ोसके कुछ निःस्वार्थ विद्वान् लोग मिलकर वर्ण निर्णय कर लिया करें।

५—वयस्क व्यक्तिका कौनसा वर्ण हो, ऐसे विसम्बादकी शङ्का ही नहीं होगी। विचार्य यही होगा कि उक्त व्यक्ति पितृवर्ण प्राप्तिके योग्य हुआ या नहीं?

६—जब यह देख लिया जाय कि पितृवर्णकी योग्यता हो गई है, तब उसके अनुसार संस्कार कर दिया जाय। यदि उच्चवर्ण प्राप्तिकी योग्यता दिखाई दे, तो उसका उच्चवर्णमें संस्कार किया जाय। यदि

यह मालूम पड़े कि पितृवर्णसे हीन वर्णकी योग्यता है, तब ऐसे बालककी उत्तिके लिये दो वर्षतक प्रतीक्षा की जाय।

७—दो वर्षके बाद फिर विचारकर उक्त बालकका वर्ण निरूपित कर दिया जाय।

८—प्रत्येक ग्राम-नगरमें भूस्वामी एवं पण्डितजनोंकी एक समाज-व्यवस्था-समिति होनी चाहिए।

९—ये सब व्यवस्थाएँ यथाविधि चलती रहें इसके लिए सरकारी शासकोंकी सहायता ली जाय। राज्य ही वास्तवमें वर्णाश्रम-धर्मका रक्षक है।

१०—जिसका जो वर्ण होगा, उसके अनुसार ही उसका विवाह आदि संस्कार तथा अधिकार होगा। उसका उल्लंघन करनेवालेके लिए राज्य-दण्ड-विधान होना चाहिए।

विशुद्ध वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी स्थापनामें

वर्तमान बाधाएँ

अब यह देखना है कि इस प्रकारका समाज सुधार वर्तमान समयमें सम्भव है या नहीं। हमारे विचारमें तो ऐसे कार्यकी सुविधा नहीं है। प्रथमतः शासनतन्त्रसे कोई सहायता मिलनेकी आशा नहीं, द्वितीयतः यदि ऐसी सहायता सम्भव भी हो, तो सहसा उसे ग्रहण करना उचित नहीं। क्योंकि जब तक शासकगण वर्णाश्रमको स्वीकार किये हुए न हों, तब तक उनकी निष्पक्ष सहायता नहीं प्राप्त हो सकती। निष्पक्ष और सरल सहायताके बिना ऐसे महत्त्वके संस्कार किसी तरह निष्पत्र न होंगे। इस विषयमें भारतवासियोंकी उचित सहायता मिलनेकी भी आशा नहीं है। स्वार्थपरवश बहुतसे लोग इस आवश्यक परिवर्तनसे सहमत न होंगे। उल्टे ऐसे संस्कारोंके समय अनेक विघ्न बाधाएँ उपस्थित करेंगे। निम्नवर्णके लोग मूर्खता और अज्ञानताके कारण वर्तमान कुसंस्कारोंको एकदम छोड़नेमें समर्थ नहीं हो सकते। इसलिए कुछ सहदय सज्जनोंके मिलनेसे भी यह बृहत् कार्य शीघ्र पूरा नहीं हो सकता।

वर्णाश्रम-व्यवस्था प्रतिष्ठार्थ श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी उत्कट अभिलाषा होते हुए भी उनकी विघ्न, शङ्काएँ और निराशाका प्रकाशन

देखिए, इस समय विपत्ति दोनों ओर है। एकतरफ कुसंस्कार का घुन हमारे समाजको निस्सार कर रहा है। चुप बैठे रहनेसे अमङ्गलके बदले मङ्गलकी सम्भावना नहीं है। हमारे सामाजिक बल, वीर्य और सौभाग्य सभी क्रमशः लुप्त होते जा रहे हैं। जिस आर्यवंशके गौरवसे सुदीर्घ कालतक वसुन्धरा भरपूर थी, वे ही आर्यसन्तान आजकल म्लेच्छोंसे भी अधिकतर हीन हो गयी हैं और क्रमशः अधिकतर हीन होती चली जा रही हैं। जिनके पास हृदय है, वे इन विषयोंकी आलोचना करके रोते-कलपते हैं। जो हृदयहीन हैं, वे निश्चन्त होकर अधःपतनके गर्तमें जा रहे हैं।

दूसरी तरफ दृष्टि डाली जाय, तो उधर भी बहुत-सी विपत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। यदि वर्णाश्रम-व्यवस्थाको त्यागकर नये सिरेसे समाजका गठन किया जाय तो हम लोगोंमें से आर्यत्व विदा हो जायेगा। फलतः वैज्ञानिक समाज व्यवस्था लुप्त हो जाएगी। उदाहरणके लिए बौद्ध-समाज, जैन-समाज, ब्राह्म-समाज तथा स्थानीय ईसाई-समाज आदि वर्णाश्रम-रहित व्यवस्था समूह भारत-भूमिमें कहीं भी प्रतिष्ठित प्राप्त न कर सके। बौद्ध और जैन समाज पर्वत-गुहाओंमें घुस गए। देशी ईसाई-समाज तो केवल म्लेच्छानुयायी होकर ही रह गया। ब्राह्म-समाज भी कुटियों तक ही सीमित रह गया। इनमें किसीका भी स्वतन्त्र सामाजिक जीवन न रहा। क्या बौद्ध तान्त्रिकता और क्या नव-विधान, कोई किसी कामके न रहे। वे कभी इस विज्ञान-पीठ भारतके उपयोगी सिद्ध न हुए और न कभी होंगे। ऐसी अवस्थामें यदि अपनी वर्णाश्रम-व्यवस्थाका सुधार न किया गया तो यह वैज्ञानिक विचारपूर्ण व्यवस्था भी भारतके लिए निरुपयोगी हो जाएगी और यदि हम इसका सहसा संस्कार आरम्भ करते हैं, तो भारी हलचल मचती है। सब तरफ अँधेरा-ही-अँधेरा है।

**अनेक विपत्ति और बाधाएँ होनेपर भी
दैव-वर्णाश्रम-व्यवस्थाके स्थापनार्थ
भगवत्प्रार्थना**

अब इसका क्या उपाय है? समाजका मङ्गल होना ही चाहिए। वह किस प्रकार सुगमतासे प्राप्त होगा? वर्णाश्रम धर्म जबतक संस्कृत होकर अपने उज्ज्वल स्वरूपमें न आ जाय, तबतक सामाजिक, आध्यात्मिक और पारमार्थिक अमङ्गल समूह हम लोगोंको क्षीण करते ही रहेंगे। सभी मङ्गलोंके निवास भगवान् ही उसका मङ्गल विधान करेंगे, इसमें सन्देह नहीं है।

**शीघ्रसे शीघ्र वर्णाश्रम-व्यवस्था-स्थापनकी
शास्त्रीय आपत्तिका खण्डन**

पुराणोंके अवलम्बनपर कतिपय लोगोंका विचार है कि कलियुगकी समाप्तिपर भगवान् कलिक अवतार लेंगे। उनके द्वारा मरु तथा देवापि राजाओंकी सहायतासे पुनः वर्णाश्रम धर्मकी प्रतिष्ठासे अनायास सत्ययुगका उदय होगा। इस पर हमारा कथन है कि यह कलियुग साधारण कलियुग नहीं है, पिछले महात्माओंने इसको 'धन्यकलि' नामसे सम्बोधित किया है। साधारण कलियुगमें ही केवल कलिकालकी समाप्तिपर कलिक द्वारा धर्मकी स्थापना होती है।

'धन्य कलियुग' में कलिक-अवतारकी आवश्यकता नहीं होती है। जिस कलियुगमें परिपूर्ण शक्ति, परम-कारुणिक प्रेम-मूर्ति श्रीचैतन्यदेव अवतीर्ण हुए हैं, उस कलियुगका तो कहना ही क्या है? इन्हीं कारुणिक महाप्रभुकी कृपासे सब सामाजिक अमङ्गल दूर हो जायेंगे, यह निश्चित है। सच्चे हृदयसे उन महाप्रभुकी शरण लेनेपर फिर अन्य किसी भी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहेगी।

**वर्णाश्रम-व्यवस्थाकी स्थापना ही प्रधान
धर्म-संस्कार है**

वर्णाश्रम व्यवस्थाके सम्बन्धमें इस अङ्गमें हमने इतना ही विचार किया। सामाजिक अभ्युदय की प्राप्ति एवं वर्णाश्रमरूपी मुख्य धर्म-संस्कारके विषयमें जो श्रेष्ठ उपाय हैं, उनके विषयमें आगामी अङ्गमें विचार किया जाएगा। आशा करते हैं कि सहृदय पाठक इस निबन्धको पढ़कर आगामी प्रकाशित होनेवाले निबन्धको भी पढ़नेके लिए प्रस्तुत रहेंगे। जिस विषयको हमने यहाँ अपने हाथोंमें लिया है वह बहुत गम्भीर है। शान्त चित्तसे इसपर विचार करना आवश्यक है। अनेक निगूढ़ विषय क्रमशः प्रकाशित होंगे। संक्षेपमें हम यही कहना चाहते हैं कि भारतीय समाजके हितमें इससे बढ़कर अन्य दूसरा कोई प्रश्न नहीं है।

पाठकोंसे निवेदन—

(१) श्रीभगवानने गीतामें कहा है—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्व भिधायति। भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यसंशय।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्म्ये प्रियकृतमः। भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

अर्थात्, जो मेरे भक्तोंको इस परम गुह्य गीतोपदेशका वर्णन करेंगे, वे मेरे निर्णय भक्तिको प्राप्तकर मुझे ही प्राप्त होंगे। उनकी अपेक्षा इस जगतमें मेरा प्रिय कार्य करनेवाला तथा प्रिय और कोई नहीं है।

अतः आप पाठकोंसे नम्र निवेदन है कि नियमितरूपसे मनोनिवेशपूर्वक इस पत्रिकाका अध्ययन करें तथा अन्य लोगोंको भी नियमितरूपसे अध्ययन करनेके लिए प्रोत्साहित करें एवं इसका वितरण करें।

(२) अपने संशयोंका समाधान करनेके लिए अवश्य ही पत्र लिखें, जिसका उत्तर पत्रिकामें ही दिया जाएगा।

(३) आपको अपनी भक्ति सुदृढ़ करनेके लिए इसके प्रत्येक अङ्गका गहन पठन-पाठन अत्यावश्यक है। आपको यह अङ्ग प्राप्त हुआ, इसकी सूचना अविलम्ब देनेका कष्ट करेंगे तथा पत्रिकाके संचालनके लिए उपयुक्त भिक्षा भी अवश्य भेजनेका कष्ट करेंगे।

श्रीश्रीगोद्गमचन्द्राय नमः

प्रेम-प्रदीप

—श्रीभक्तिविनोद ठाकुर

प्रथम प्रभा

एकबार मधुमासके प्रारम्भमें प्रचण्ड किरणमाली अदितिनन्दनके अस्त होनेपर संध्या-वन्दनादि समाप्तकर कृष्णभक्त शिरोमणि श्रीहरिदास बाबाजी अपने कुञ्जसे बाहर होकर तपनतनया यमुनाके तीर बने पथपर चलने लगे। चलते-चलते प्रेमानन्दमें बाबाजीको कितने अनिर्वचनीय भाव उठने लगे—उनका वर्णन करना दुःसाध्य है। कहीं बाबाजी हरिलीला-स्मारक रजःपुञ्जका दर्शनकर वहाँ लोट-पोट खाते हुए ‘हा ब्रजेन्द्रनन्दन ! हे गोपीजनवल्लभ !’ इत्यादि उच्चस्वरसे पुकारने लगे। उस समय बाबाजीके दोनों नेत्रोंसे अविरल आनन्दाश्रु प्रवाहित होनेसे उनके वक्षस्थलपर अङ्गित हरिनाम धुलने लगा। बाबाजीके समस्त अङ्ग पुलकपूर्ण होकर कदम्ब पुष्पके समान सुशोभित होने लगे। हाथ इस प्रकार अवश हो गया कि वे जपमालाको भी नहीं सँभाल पा रहे हैं। क्रमशः बाह्यज्ञान शून्य होकर बाबाजी उन्मत्तकी भाँति नृत्य करने लगे। स्वरभङ्ग, कम्प, स्वेद, वैवर्ण प्रभृति सात्त्विक भावसमूह उदित होकर बाबाजीको एकबारगी प्रकृतिके अतीत राज्यमें ले गए। उस समय बाबाजी बार-बार निश्वास छोड़ते हुए ‘हा कृष्ण ! हा प्राणनाथ !’ बोलकर क्रन्दन करने लगे। जिस समय हरिदास बाबाजी इस प्रकार वैकुण्ठानन्दमें निमग्न थे, उस समय केशीघाटको पारकर सुप्रसिद्ध प्रेमदास बाबाजी वहाँ उपस्थित हुए। अकस्मात् वैष्णव दर्शनसे वैष्णवमें जिस अप्रा कृत सख्यभावका उदय होता है, उस समय परस्पर दर्शनसे दोनोंके श्रीमुखपर वही भाव नृत्य करने लगा। परस्पर किसी प्रकारके वाक्य-सम्बोधन होनेसे पूर्व ही नैसर्गिक

प्रेम द्वारा आकृष्ट होकर दोनोंके पवित्र शरीर आलिङ्गनबद्ध हुए। दोनोंके नयनाश्रुसे दोनों ही स्नात हुए। कुछ समयके बाद एक-दूसरेको देखकर आपसमें आनन्दमय वचन आदान-प्रदान करने लगे।

प्रेमदासने कहा—“बाबाजी ! कई दिनोंसे आपका दर्शन न पाकर मेरा चित्त विकल हो रहा था। इसलिए आज आपका दर्शनकर पवित्र होनेकी इच्छासे आपके कुञ्जमें जा रहा था। कई दिन हुए मैं जावट, नन्दग्राम इत्यादि गाँवोंमें भ्रमण कर रहा था।”

हरिदास बाबाजीने प्रत्युत्तर दिया—“बाबाजी ! आपका दर्शन पाना क्या स्वल्प सौभाग्यकी बात है। श्रीपण्डित बाबाजीके साथ साक्षात्कार करनेके लिए मैं कई दिनोंतक गोवद्धनमें था। आज प्रातः ही आया हूँ। आपके श्रीचरणोंका दर्शनकर मैंने तीर्थयात्राका फल प्राप्त किया।”

पण्डित बाबाजीका नाम श्रवण करनेमात्रसे प्रेमदास बाबाजीका उ धर्षपुण्ड्रसे शोभित मुखमण्डल प्रेमसे परिपूर्ण हो गया। जिस समय बाबाजी भेक-धारणकर पण्डित बाबाजीके निकट श्रीहरिभक्तिरसामृतसिन्धु और श्रीश्रीउज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थद्वयका पाठ करते थे, उस प्रथम कालका स्मरणकर एक अपूर्व भाव द्वारा उन्होंने पण्डित बाबाजीके प्रति अकृत्रिम भक्तिका परिचय दिया। कुछ समय तक तूष्णीभूत (मौन) होकर प्रेमदास बाबाजीने कहा—“बाबाजी ! आजकल पण्डित बाबाजीकी विद्वत्-सभामें किन-किन विषयोंकी आलोचना हो रही है, मेरी नितान्त अभिलाषा है कि आपके साथ एकबार उनके निकट जाऊँ।”

इस कथाको सुननेमात्रसे हरिदास बाबाजी प्रेमदास

बाबाजीको प्रेमालिङ्गन प्रदान करते हुए कहने लगे—“बाबाजी! पण्डित बाबाजीके समस्त कार्य ही अलौकिक हैं। मैं एक दिनके लिए निकट जाकर सप्ताहभर उनके चरणोंका त्याग न कर पाया। उनके पवित्र गुफामें आजकल अनेक महानुभव व्यक्ति उपस्थित हैं। ऐसा सोचता हूँ कि वे आगामी कुम्भ मेला तक वहाँ अवस्थान करेंगे। प्रतिदिन वहाँ नूतन-नूतन विषयोंकी आलोचना हो रही है। ज्ञान-सम्बन्धी, कर्म-सम्बन्धी और शुद्धभक्ति-सम्बन्धी नानाप्रकारके विषयोंके प्रश्नोत्तर होते हैं।”

इतना कहनेके बाद प्रेमदास बाबाजीने सहसा कहा—“बाबाजी हम लोगोंने सुना है कि परम भागवतगण केवल हरि-रसास्वादनमें ही प्रमत्त रहते हैं। कर्म-ज्ञान-सम्बन्धी प्रश्नोत्तरमें प्रवृत्त नहीं होते हैं। तथापि हमारे परमाराध्य पण्डित बाबाजी महोदय इस प्रकारके प्रश्नोत्तरमें अपना समय क्यों व्यतीत करते हैं?”

हरिदास बाबाजीने कहा—“बाबाजी! मेरे भी पाषण्ड मनमें इस प्रकारका संशय हुआ था। किन्तु जब पण्डित बाबाजीकी पवित्र सभामें इन समस्त प्रश्नोत्तरोंको श्रवण किया, उस समय यह जान पाया कि कृष्ण भक्तोंके द्वारा आलोचित कर्म-ज्ञान-सम्बन्धी समस्त कथा भी हरिकथा-विशेष हैं। बहिर्मुख लोगोंकी बहिर्मुख कथाके समान ये कथाएँ चित्त-विक्षेपक नहीं हैं, बल्कि वैष्णव सभामें इन सभी कथाओंका अनवरत श्रवण करनेसे जीवके कर्मबन्धन तथा ज्ञानबन्धन दूर होते हैं।”

इसे श्रवण करनेमात्रसे प्रेमदास बाबाजी विलाप करते हुए कहने लगे—“बाबाजी महाशय आपका सिद्धान्त क्या ही अमृतस्वरूप है, होगा भी क्यों नहीं? आप नवद्वीप धामवासी सिद्ध गोवर्द्धन दास बाबाजीके अतिप्रिय शिष्यके रूपमें तीनों मण्डलोंमें (ब्रजमण्डल, गौड़मण्डल और क्षेत्रमण्डल) परिचित हैं। आपकी

कृपा होनेपर क्या किसीका संशय रह सकता है? जब आपके चरण-प्रसादसे सुप्रसिद्ध न्यायशास्त्रके अध्यापक ‘श्रीलोकनाथ न्यायभूषण’ नामके भट्टाचार्य महाशयने न्यायशास्त्रके अन्धकूपसे उद्धार पाकर ‘श्रीगोविन्ददास क्षेत्रवासी’ नाम ग्रहणकर सर्वक्लेशघन वैष्णव धर्मका आश्रय ग्रहण किया, तब संशय-निवृत्तिके कार्यमें आपके लिए क्या कुछ असाध्य है? चलें, आज ही हमलोग हरिगुण-गान करते-करते गिरि-गोवर्द्धनके उपत्यका प्रदेशमें प्रवेश करें।

इस कथोपकथनके समाप्त होते-होते ही दोनोंने हरिगुण-गानमें मत्त होकर नृत्य करते-करते गोवर्द्धन प्रदेशकी यात्रा की। जिस समय दोनों बाबाजी गाते-गाते जा रहे थे, उस समय मानो प्रकृति देवी इस गीतको श्रवणकर प्रफुल्लित होते हुए सहास्य वदनसे जगत्‌की शोभाका विस्तार करने लगीं। वसन्तके अवसानकालकी मलयावायु अत्यन्त कोमल भावसे बहने लगी। द्विजराज कुमुदपति अतिस्वच्छ किरणोंसे दोनों बाबाजीके वैष्णव-कलेवरके ऊपर सुधावर्षण करने लगे। कलिन्दननिंदनी कालिन्दी हरिगुण-गानसे मोहित होकर कलकल स्वरसे दोनों बाबाजीके गानमें ताल देने लगीं। देवदारु आदि उच्च वृक्षसमूह सन्-सन् शब्दसे उड़ीयमान होकर हरिकीर्तनकी पताकाके समान शोभाका विस्तार करने लगे। दोनों बाबाजी उद्घट नृत्य करते-करते चलने लगे। वे हरिगुण-गानमें इतने मत्त हो गये कि सुखमयी रजनी किस समय, किस प्रकार प्रभात हो गई, इसे भी नहीं जान सके। जब उनका नृत्य-गीत भङ्ग हुआ, तब उन्होंने देखा कि अंशुमाली पूर्व दिशाको प्रफुल्लितकर गोवर्द्धनके एक प्रान्तमें उदित हो गए हैं।

गोवर्द्धन पर्वतसे कुछ दूर समस्त प्रातः क्रियाओंको समाप्तकर दिनके चार दण्डकाल समाप्त होते-न-होते वे पण्डित बाबाजीके गुफामें प्रवेश किए।

(क्रमशः)

मायावादकी जीवनी

(वैष्णव विजय)

—श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

जीवनी आलोचनाकी धारा

“मायामात्रन्तु कात्स्नैनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात्”

(ब्रह्मसूत्र ३/२/३)

जन्म और मृत्युको लेकर ही जीवन है। जन्मसे लेकर मृत्युकालपर्यन्त स्थिति-कालके क्रियाकलापको जीवनी कहते हैं। किन्तु, वर्तमान विचार-जगतके चिन्तास्रोतकी ओर लक्ष्य करनेसे जीवनीके साथ-साथ और भी अन्यान्य विषयोंकी आलोचना करनेके आवश्यकता होती है, जिनमें ‘जीवनारम्भका पूर्व-इतिवृत्त’ और ‘जीवनके अन्तमें सर्वसाधारणके प्रति उसकी प्रतिक्रिया’ ये दो प्रधान विषय हैं। अतः किसी भी व्यक्ति अथवा तत्त्वकी जीवनीकी आलोचना उक्त भाव एवं धारासे सामञ्जस्य रखकर ही करनी चाहिए। मायावादकी जीवनी लिखते समय यदि उक्त भावधाराके साथ सामञ्जस्य न रखा जाय तो जीवनीके पाठक सज्जनगण आशानुरूप सन्तुष्ट नहीं हो सकते। मायावाद एक तत्त्व है। इस तत्त्वकी जीवनी लिखते समय तत्त्वादियोंकी आलोचना करना ही सुसङ्गत होगा, क्योंकि मायावाद-तत्त्व एक गुण जातीय द्रव्य है। यह किसी वस्तु-विशेषका आश्रयकर अपनी सत्ता प्रकाश करता है। अतः गुणके साथ-साथ गुणीकी आलोचना करना भी युक्तिसङ्गत है। ऐसे प्रसङ्गोंपर उनकी तुलनात्मक आलोचना नहीं होनेसे उस विषयका किसी प्रकार भी स्पष्टीकरण नहीं होता।

जीवनी और इतिहास

जिस उद्देश्यको लेकर जीवनीकी आलोचना की जाती है, वह उद्देश्य किस हद तक सफल होगा, मेरे लिए यह कहना कठिन है। फिर ऐतिहासिक

तत्त्व-मूलक जीवनी और साधारण जीवनी एक नहीं। ऐतिहासिक तत्त्वमूलक जीवनीसे सर्वप्रकारके उद्देश्य साधित हुआ करते हैं अर्थात् जो प्रकृत सत्य है, उसे जाननेका हम भरपूर सुयोग पाते हैं। क्योंकि, साधारण जीवनी-लेखक उसके निज अनुमोदित अंशमात्रको ही प्रकाशकर तृप्ति-बोध करता है। दूसरी ओर इतिहासके आलोचक समस्त प्रकृत घटनाको प्रकाशकर पाठकोंको यथावत् तथ्यका सन्धान देते हैं। इसलिए मैं निरपेक्ष भावसे ऐतिहासिक सत्यता-मूलक “मायावादकी जीवनी” लिखनेके लिए प्रवृत्त हुआ। मायावादकी जीवनीकी आलोचना करते हुए मैंने तदाश्रित मायावादियोंकी जीवनीका ही प्रधानरूपसे अवलम्बन किया है। मायावादियोंकी जीवनीकी सुचारुरूपसे आलोचना किए जानेमें प्रसङ्गवशतः अन्य मतवादियों एवं वैष्णवोंकी जीवनी भी आलोचित हो जाती है, क्योंकि तुलनामूलक विचार ही विचार है, अन्यथा उसके यथार्थ तथ्यका उद्घाटन नहीं हो सकता। मायावादाश्रित मनीषियोंमें जगद्वरेण्य पूज्यपाद आचार्य श्रीश्रीमद्शंकर ही सर्वप्रधान एवं आदर्श हैं। इसलिए इनकी जीवनी और क्रिया-कलापोंके ऊपर ही मायावादकी जीवनी अत्यधिक परिणाममें निर्भर करती है।

अनुकूल अनुशीलन

वेदान्तके “तत् तु समन्वयात्” (१/१/४) सूत्रसे स्पष्ट है कि तद्वस्तु सम्यकरूप अन्वय अर्थात् अनुकूल पथके अवलम्बनसे प्राप्त होती है। व्यतिरेक पथ वक्र और विषम होता है। गौडीय वैष्णवाचार्य

मुकुटमणि श्रीलरूप गोस्वामीपादने अपने “भक्तिरसामृत-सिन्धु”के प्रारम्भमें ही लिखा है—“आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्” अर्थात् कृष्णका अनुशीलन एकमात्र अनुकूल भावोंको अङ्गीकार करनेसे होता है। अतः किसी भी जीवन-तत्त्वके अनुशीलनके लिए अनुकूल-भाव ग्रहण करना ही प्रशस्त होता है। अनुकूल पथके अवलम्बनसे प्रतिकूल-वर्जन जिस प्रकार आनुसङ्गिक है, उसी प्रकार अवश्यम्भावी भी है। “हरिभक्ति-विलास”का कथन है—“आनुकूल्यस्य सङ्कल्पः प्रातिकूल्यस्य विवर्जनम्” (११/४२७)। भक्तिका प्रतिकूल वर्जन अनुकूल अनुशीलनका ही विशेष अङ्ग है। मैं मायावाद या अद्वैतवादकी जीवनीकी तुलनात्मक आलोचना भक्तिपथके अनुकूल समझता हूँ। सहदय पाठकवर्ग इसे धीरभावसे मनन करें तभी उनके हृदयमें भक्ति दृढ़तर होगी।

वैदिक युग और मायावाद

भारतीय सनातन धर्मावलम्बियोंमें ‘मायावाद’ शब्दका प्रचलन देखा जाता है। किन्तु, वेद-उपनिषदादि ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नहीं मिलता। वैदिक-युगमें ‘मायावाद’ शब्दका उल्लेख न रहनेके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि मायावाद चिन्तास्रोतके लिए तबतक कोई भी कारण उपस्थित न हुआ था। युगसृष्टिके पूर्व तक वेदोंके अधिष्ठानके सम्बन्धमें आर्य सनातन-धर्मावलम्बियोंमें परस्पर कोई मतभेद दृष्टिगोचर नहीं होता। वेद अपौरुषेय हैं। अतः सत्-सम्प्रदायोंके लिए वह निजस्व अथवा स्वरूपकी सम्पत्ति है। काल-सृष्टि होनेके पहले अथवा प्राग्-युगमें मायावादके विचार-धाराकी गन्थ भी न थी। इधर वैदिक युगमें भी इसकी सत्ता वर्तमान न रहनेके कारण इससे वैदिक धर्मका ही पालन होता था। शास्त्रोंमें मायावादको अवैदिक कहनेका यह भी एक प्रधान कारण है, ऐसा प्रतीत होता है।

‘एकमेवाद्वितीयम्’ ही मायावादियोंका मूलमन्त्र है। अद्वैतवाद या अद्वैतवाद मायावादका दूसरा नाम है। किसी-किसीका मत है, ‘सोऽहं’, ‘अहं ब्रह्मास्मि’ प्रभृति वेदोंके कतिपय मन्त्र साधारण विचारसे मायावादका

कथजित पोषण करते हैं। युगचतुष्टयोंके पूर्व ‘मैं ही भगवान् हूँ’, ‘मैं ही वह ब्रह्म हूँ’, ‘तुम भी वही ब्रह्म हो’—ऐसी उक्तियाँ जीवस्वरूपके पक्षमें सम्भव न थीं। क्योंकि वेद वज्रगम्भीर शब्दोंसे पुकार रहे हैं,—“३० तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।” इस वाक्यमें बहुवचनान्त ‘सूरयः’ का तात्पर्य है सूरिगण अर्थात् सूरिगण तद्वस्तु विष्णुको ही एकमात्र परतत्त्व जानकर उनका परमपद सदा अर्थात् नित्यकाल दर्शन करते हैं। यहाँ दृश्य वस्तु एक और अद्वितीय तथा दर्शकोंका बहुत्त्व और पृथकत्व लक्षित होता है। अतः सनातन सूरिगणके पक्षमें विष्णुके परमपदके प्रति ‘सोऽहं’ प्रभृति वाक्यसमूहका मायावादानुरूप अभिव्यक्ति लक्ष्य नहीं किया जाता है।

मायावादके जन्मका कारण

जीवोंका जो नित्य-स्वभाव या नित्य-स्वरूप है, उससे पतित होनेसे उसे द्वितीय वस्तुमें अभिनिविष्ट होना पड़ता है। इसीसे उसके सामने तरह-तरहकी विपत्तियोंकी आशङ्का भी उपस्थित होती है। वेदोंके सङ्कलनकर्ता वेदव्यासका कथन है—

“भयं द्वितीयाभिनिवेशः स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।” (श्रीमद्भा. ११/२/३७)

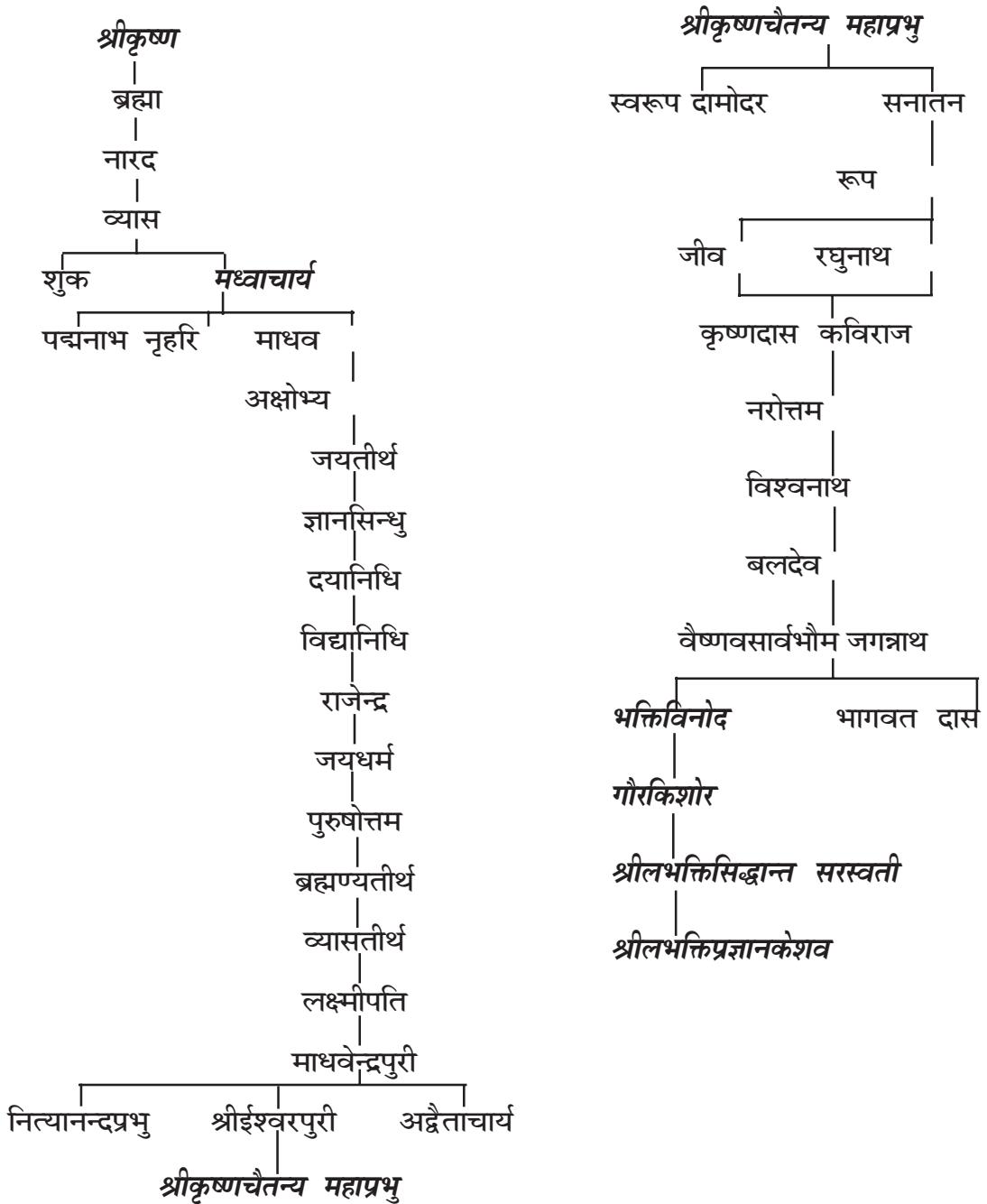
सूरिगणकी तरह विष्णु अथवा कृष्णके नित्य दर्शन (अर्थात् उनकी नित्यसेवा) से विच्युतिको ही द्वितीयाभिनिवेश कहते हैं एवं उसीसे मायाग्रस्तरूप भयकी उत्पत्ति होती है। उस समय “कृष्ण भूलि से इ जीव अनादि-बहिर्मुख” अर्थात् कृष्णको भूलकर अनादि बहिर्मुखताके क्रमसे ही जीव मायाके अधीन होता है। यही मायावश्यता भोग-वाञ्छा है। पण्डित जगदानन्दने कहा है—

‘कृष्ण बहिर्मुख हजा भोगवाञ्छा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे।।’

(प्रेम विवर्त)

अर्थात् जो जीव भगवान् कृष्णसे बहिर्मुख होकर भोगवाञ्छा करता है, उसी समय समीपस्थ मायादेवी उसे दबोच लेती है। (क्रमशः)

श्रीब्रह्म-माधव-गौड़ीय सम्प्रदायकी भागवत परम्परा



श्रीश्रीप्रेमभक्ति-चन्द्रिका

—नरोत्तम ठाकुर

अज्ञान तिमिरास्थस्य ज्ञानाभ्यन् शलाकया।
 चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥१॥
 श्रीचैतन्य मनोभीष्टं स्थापितं येन भूतले।
 स्वयं रूपः कदा मह्यं ददाति स्वपदान्तिकम् ॥२॥
 श्रीगुरुचरण पद्म, केवल भक्ति सद्म,
 वन्दो मुइ सावधान मते।
 जाँहार प्रसादे भाई, ए भव तरिया जाई,
 कृष्ण प्राप्ति हय जाँहा हइते ॥३॥
 गुरुमुख पद्मवाक्य, चित्तेते करिया ऐक्य,
 आर ना करिह मने आशा।
 श्रीगुरुचरणे रति, एइ से उत्तम गति,
 जे प्रसादे पूरे सर्व आशा ॥४॥
 चक्षुदान दिला जई, जन्मे जन्मे प्रभु सई,
 दिव्य ज्ञान हृदे प्रकाशित।
 प्रेमभक्ति जाँहा हइते, अविद्या विनाश जाते,
 वेदे गाय जाँहार चरित ॥५॥
 श्रीगुरु करुणा-सिन्धु, अधम जनार बन्धु,
 लोकनाथ लोकर जीवन।
 हा हा प्रभु कर दया, देह मोर पद छाया,
 तुया पदे लइनु शरण ॥६॥

अनुवाद—

जिन्होंने वाणीरूपी शलाकाके द्वारा ज्ञानाभ्यन लगाकर अज्ञानरूपी अन्धकारसे अन्धे हुए मेरे नेत्रोंको उन्मीलित किया है, मैं उन श्रीगुरुदेवको प्रणाम करता हूँ ॥१॥

श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोभीष्ट श्रीभगवत्-भक्ति-रसशास्त्रको इस जगत्‌में प्रकाशित करनेवाले श्रीरूप गोस्वामी कब कृपाकर मुझे अपने श्रीचरणोंमें स्थान देंगे ॥२॥

श्रीगुरुदेवके पादपद्मद्वय ही भक्तिके एकमात्र निलय हैं अथवा केवला-भक्तिके निकेतन हैं। हे मेरे मन !

तुम अत्यन्त सावधानीपूर्वक उन्हीं श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण करो। क्योंकि, उनकी कृपासे ही इस भवसागरसे उत्तीर्ण हुआ जाता है तथा राधाकृष्णकी प्रेममयी सेवामें नियुक्त हुआ जाता है ॥३॥

हे मेरे प्यारे मन ! तुम एकमात्र गुरुदेवके श्रीमुखकमलसे निःसृत वाणीको ही अपने हृदयमें धारण करो, और कोई आशा मत करो। श्रीगुरुदेवके चरणोंमें रति प्राप्त होनेसे तुम श्रीराधावल्लभके पाद-संवाहनादिरूपी उत्तम प्रेममयी सेवाको प्राप्त करोगे तथा उन्हींकी कृपासे तुम्हारी श्रीश्रीराधाकृष्णको चाँवर-व्यजन, पाद-संवाहनादिरूपी आशाएँ पूर्ण होंगी ॥४॥

जिन्होंने कृपाकर संसार-सागरसे पारकर, चर्मचक्षुओंका मोचनकर, परतत्त्वके अवलोकनके योग्य दिव्य चक्षु प्रदान किया तथा कृष्ण-दीक्षा-शिक्षादिके द्वारा दिव्य ज्ञानको मेरे हृदयमें प्रकाशित किया, जिन्होंने अविद्याका विनाशकर प्रेमाभक्तिका प्रदान किया, वे ही जन्म-जन्मान्तर मेरे प्रभु हैं। वेद-भागवतादि ‘आचार्य मां विजानियात्’, ‘आचार्य मां पुरुषो वेदेति’ इत्यादि श्लोकोंसे उन्हींके चरित्रका गुण-गान करते हैं ॥५॥

मेरे गुरु श्रीलोकनाथ गोस्वामी मेरे जीवनस्वरूप हैं। वे करुणासिन्धु तथा पतितोंके बन्धु अर्थात् पतितपावन हैं। हे प्रभो ! हे गुरुदेव ! आप दया करें और अपने परम पूत पदप्राप्तमें मुझे आश्रय दें, मैंने सर्वतोभावेन् आपके श्रीचरणोंका आश्रय ग्रहण किया ॥६॥

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

हेर्षम् हेर्षम् हेर्षम् हेर्षम्
 कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

उत्तमा-भक्ति

कलियुग पावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोभीष्ट उत्तमा-भक्ति अर्थात् प्रेमा-भक्तिको इस जगतीतलमें प्रतिष्ठित करनेवाले उनके परम प्रिय श्रीमद्भूप गोस्वामीने श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें उत्तमा भक्तिके लक्षण इस प्रकार निर्दिष्ट किए हैं—

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।

आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥

श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत्त, एकमात्र श्री कृष्णकी प्रीतिके लिए ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णका अनुशीलन अर्थात् श्रीकृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमा भक्ति कहते हैं।

श्रीरूपानुग वैष्णवोंके आनुगत्यमें ही इस श्लोकका अनुशीलन करनेसे साधकोंको भक्तिके सम्बन्धमें सुस्पष्ट ज्ञान और विज्ञान अर्थात् अनुभूति सम्भव है, अन्यथा भक्तिरहित जड़-विद्यामें पारङ्गत विद्वानोंके आनुगत्यमें इसका अनुशीलन करनेसे विपरीत अर्थ ही बोध होगा। यहाँ यह भली-भाँति समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार श्रीमद्भागवतमें ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयं’ वाक्यको कृष्णके सम्बन्ध-तत्त्वकी परिभाषाके रूपमें ग्रहण किया गया है, उसी प्रकार श्रीरूपगोस्वामीका यह श्लोक अभिधेय-तत्त्वकी परिभाषाके रूपमें निरूपित हुआ है। परिभाषा किसे कहते हैं? नाना प्रकारके विधि-वाक्योंके मध्य अन्यान्य सभी वाक्योंका उपमर्दनकर जो वाक्य सर्वप्रधान होता है, उसे परिभाषा कहते हैं— ‘सा चा नियमे नियमकारिणी।’ भक्तिके सम्बन्धमें कर्मी, ज्ञानी, योगी, कर्मार्थकारी विषयी, विभिन्न मतावलम्बी तथा विभिन्न सम्प्रदायोंके अनुगामी—सभी प्रकारकी धारणा, ज्ञान और

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज अनुभूतिका उपमर्दनकर अर्थात् उनकी अनुभूतियोंको खण्डित, दोषयुक्त एवं भ्रान्त प्रमाणितकर भक्तिके सर्वोत्कृष्टरूपमें यह श्लोक निरूपित हुआ है।

अनन्तर उत्तमाभक्तिका लक्षण बताया जा रहा है। जिस प्रकार शब्दके द्वारा धातुके समस्त प्रकारके अर्थोंका बोध होता है, उसी प्रकार यहाँ अनुशीलन शब्दके द्वारा भी इस धातुके समस्त प्रकारके अर्थोंका बोध हो रहा है। धातुके अर्थ दो प्रकारके होते हैं—चेष्टारूपी और भावरूपी। चेष्टारूपी अर्थ भी दो प्रकारके होते हैं—प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक। प्रवृत्त्यात्मक धातुका अर्थ कायिक, मानसिक और वाचिक चेष्टारूपी होता है। निवृत्त्यात्मक धातुका अर्थ प्रवृत्तिमूलक धातुके अर्थसे भिन्न होता है अर्थात् ऐसी कोई चेष्टा न हो, जिससे सेवापराध, नामापराध और धामापराध उत्पन्न हों। भावरूपी जो अर्थ बतलाया गया है, उसका तात्पर्य रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग, अनुराग, महाभाव आदिसे समझना चाहिए। ये भावसमूह प्राकृत भावनासे सम्पूर्णरूपसे अतीत एवं विशुद्ध अप्राकृत हैं। भावरूपी अर्थ शुद्ध मानसिक अनुभावात्मक होते हैं। इनका वर्णन बादमें किया जायेगा।

इस प्रकार अनुशीलन शब्दका जो प्रवृत्त्यात्मक-निवृत्त्यात्मक चेष्टारूपी और भावरूपी अर्थ कहा गया है, वह यदि कृष्णसे सम्बन्धित अथवा कृष्णके लिए हो, तो उसे भक्ति कहते हैं।

श्रीकृष्णसे सम्बन्धित सभी प्रकारके अनुशीलन अथवा श्रीकृष्णके लिए सब प्रकारके अनुशीलन—इन दोनों प्रकारकी चेष्टाओंको कृष्णानुशीलन पदके द्वारा प्रकाश करनेके लिए गुरुपदाश्रय, दीक्षा-शिक्षा, विश्रम्भरूपसे गुरुसेवा आदि भक्त्य झोंमें अव्याप्ति दोषकी सम्भावना नहीं है। इसी प्रकार रति, प्रेमादि भावरूपी अर्थको भी कृष्णानुशीलन पदके अन्तर्भुक्त कर लिए जानेके कारण रति इत्यादि स्थायी और

व्यभिचारी भाव समूहमें भी अव्याप्ति दोषकी सम्भावना नहीं है। इस प्रकार कृष्णके लिए चेष्टारूपी और भावरूपी अनुशीलन एकमात्र श्रीकृष्णके और उनके भक्तोंकी कृपासे ही सम्भव है। श्रीगुरुदेव परम भगवद्भक्त हैं, अतः श्रीगुरुपदाश्रयादि अङ्ग भी कृष्णानुशीलनके अन्तर्गत हैं। कृष्णानुशीलन या भक्ति श्रीकृष्णकी स्वरूपशक्तिकी एक वृत्ति विशेष है। बद्धजीवोंके शरीर, इन्द्रियाँ, मन आदि सभी अचेतन हैं। स्वरूपशक्तिकी वृत्ति बद्धजीवोंके अचेतन अथवा जड़-काय, मन और वाक्यमें आविर्भूत नहीं हो सकती, किन्तु करुणावरुणालय श्रीकृष्ण अथवा परम भगवद्भक्तोंकी अहैतुकी कृपासे श्रीगुरुपदश्रित भक्तोंके काय, मन और वाक्यमें (जड़ीय होनेपर भी) स्वरूप-शक्तिकी वृत्तियाँ तादात्म्य प्राप्त होकर आविर्भूत होती हैं। इस विषयमें आगे और भी स्पष्ट रूपसे वर्णन किया जाएगा। यहाँ तादात्म्यका तात्पर्य है—जिस प्रकार अग्नि लोहमें प्रवेशकर दूसरी वस्तुओंको जलाती है, लोहा नहीं जलाता। यहाँ लोहमें आगका तादात्म्य है। इसी प्रकार भगवत्-कृपासे स्वरूपशक्तिकी भक्तिवृत्ति भक्तोंके काय, मन और वाक्यमें तादात्म होकर क्रिया करती है।

यहाँ श्रीकृष्ण शब्दका प्रयोग स्वयं-भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन एवं श्रीकृष्णके अन्यान्य सभी अवतारोंके लिए हुआ है, किन्तु स्वयं अवतारी कृष्ण एवं अन्यान्य अवतारोंके भक्ति अनुशीलनमें कुछ-कुछ तारतम्य है। भक्ति-अनुशीलनके इस तारतम्यका वर्णन पीछे किया जायेगा।

ऊपर जो कृष्णानुशीलन कहा गया है, उसके दो लक्षण हैं—स्वरूप लक्षण और तटस्थ लक्षण। यहाँ पहले स्वरूप लक्षणको बताया जा रहा है। भक्तिकी स्वरूप सिद्धिके लिए ‘आनुकूल्येन’ अर्थात् ‘आनुकूल्य विशिष्ट’—इस विशेषणका प्रयोग किया गया है, क्योंकि प्रतिकूल अर्थात् विरुद्धाचरणके द्वारा भक्तिकी सिद्धि नहीं होती। किसी-किसी महानुभावोंने आनुकूल्य शब्दका अर्थ रोचमाना-प्रवृत्ति (रुचिकर) किया है अर्थात् श्री कृष्णका जो अनुशीलन (भक्ति) किया जा रहा है, वह अनुशीलन कृष्णको रुचिकर होना चाहिए।

श्रीकृष्णके लिए ऐसी रोचमाना-प्रवृत्तिका नाम आनुकूल्यविशिष्ट भक्ति है, किन्तु इस प्रकारका अर्थ ग्रहण करनेसे इसमें (लक्षणमें) अतिव्याप्ति और अव्याप्तिके दोषकी सम्भावना उपस्थित हो जाती है। जैसे—चाणूर-मुष्टिकादि असुरोंने मल्लयुद्धमें श्रीकृष्णके अङ्गोंपर प्रहार किया। उस प्रहारसे श्रीकृष्णको बड़ा ही उत्साह हुआ। वे चाणूर-मुष्टिकादिके साथ बड़े उत्साहसे वीररसका आस्वादन करने लगे। यहाँ असुरोंका प्रहाररूपी अनुशीलन कृष्णके लिए रुचिकर प्रतीत हो रहा है। यहाँ शङ्ख होती है कि असुरोंका प्रहार कृष्णके लिए किस प्रकार रुचिकर हो सकता है? इसके लिए श्रीमद्भागवत (१/१३/३०) का श्लोकांश उद्धृत किया जा रहा है—“मनस्विनामिव सन् संप्रहार” अर्थात् साधारण लोगोंकी दृष्टिमें शत्रुके साथ भयानक युद्ध दुःखजनक होनपर भी वीरोंके लिए रुचिकर ही होता है। अतएव मल्लयुद्धमें असुरोंका घोर प्रहार श्रीकृष्णको रुचिकर होनेके कारण, यदि असुरोंकी इस चेष्टाको भक्ति मान भी लिया जाय, तो भक्तिके इस लक्षणमें अतिव्याप्तिका दोष प्रवेश करता है अर्थात् असुरोंका द्वेषभावपूर्ण जो प्रहाररूप अनुशीलन है, वह भक्तिका अत्यन्त विरोधी है, किन्तु कृष्णको रुचिकर होनेके कारण उसमें भक्तिका लक्षण व्याप्त होता दिखाई पड़ता है।

पुनः यशोदा मैया श्रीकृष्णको गोदीमें बैठाकर स्तनपान करा रही थी, उधर चूल्हेपर दुग्ध उफनकर आगमें गिर रहा था। यशोदा मैया अतृप्त कृष्णको छोड़कर दुग्ध रक्षाके लिए चली गई। कृष्णको यह रुचिकर नहीं लगा, क्रोधसे उनके छोटे-छोटे हौंठ कौपने लगे—‘सज्जातकोपः स्फुरितारुणाधरम्’ (श्रीमद्भा. १०/९/६)। यहाँ यशोदा माँकी यह चेष्टा श्रीकृष्णके लिए अरुचिकर होनेके कारण भक्तिकी परिभाषामें व्याप्त नहीं होती। अतः यहाँपर भक्तिके लक्षणमें अव्याप्ति दोष प्रतीत होता है।

उपर्युक्त असुरों एवं यशोदा मैयाके अनुशीलनरूप उदाहरणोंमें जो क्रमशः अतिव्याप्ति और अव्याप्तिका दोष प्रतीत हो रहा है, उसे स्पष्ट करनेके अभिप्रायसे ही यहाँ आनुकूल्य शब्दका प्रयोग किया गया है।

अर्थात्, आनुकूल्यताका तात्पर्य प्रतिकूल भावसे रहित होना ही है।

प्रातिकूल्य शून्यत्व नहीं होनेसे भक्ति सिद्ध नहीं होती—इस सिद्धान्तके अनुसार असुरोंमें सर्वदा द्वेषरूपी प्रतिकूलता विद्यमान रहनेसे उनमें अतिव्याप्तिका दोष स्पर्श करता है अर्थात् प्रातिकूल्य (द्वेष) भावसे रहित न होनेके कारण उनका वह अनुशीलन भक्ति नहीं है। यहाँ पर आनुकूल्यका तात्पर्य प्रतिकूल भावसे रहित होना ही है। दूसरी ओर यशोदा मैयाके अनुशीलनमें ऊपरसे प्रतिकूलता दृष्टिगोचर होती है, क्योंकि उसमें कृष्णकी रुचि नहीं देखी जाती है, किन्तु यशोदा मैयामें प्रातिकूल्यकी कोई गन्ध भी न रहनेके कारण अर्थात् उनमें कृष्णके प्रति सर्वदा कल्याण और पालन-पोषणकी भावना ही अन्तर्निहित रहती है। अतएव इस लक्षणमें अव्याप्तिका दोष स्पर्श नहीं करता। भक्तोंकी स्वाभाविक रूपमें कृष्णकी अपेक्षा कृष्णके सेवोपकरणोंमें अधिक प्रीति देखी जाती है। उक्त दुग्धसे ही कृष्णका पालन-पोषण होगा, इस भावी कृष्ण कल्याणकी भावनासे यशोदा मैयाने कृष्णको छोड़कर उक्त दुग्ध रक्षाके लिए चेष्टा है, अतएव यह चेष्टा भी भक्ति है।

यदि कोई यह शङ्का करे कि जब आनुकूल्य अर्थात् प्रातिकूल्य-राहित्य ही भक्ति है और भक्तिमात्र ही यदि कृष्णके लिए आनुकूल्य या कृष्णके लिए रुचिकर चेष्टास्वरूपा है, तब अनुशीलनम् इस विशेष्य पदके प्रयोगकी आवश्यकता ही क्या है? निरर्थक ही इस अनुशीलनरूप विशेष्य पदका प्रयोग क्यों किया गया? इसी शङ्काका समाधान करनेके अभिप्रायसे अनुशीलन पदका प्रयोग किया गया है। केवलमात्र प्रातिकूल्यका अभाव होनेसे ही भक्ति सिद्ध नहीं होती, क्योंकि एक घटमें भी प्रातिकूल्यका अभाव होता है, तब क्या घटकों भी भक्ति कहा जा सकता है? कदापि नहीं। क्योंकि घटमें प्रतिकूलता नहीं है, यह बात तो ठीक है, किन्तु अनुशीलन शब्दसे जिस चेष्टाका बोध होता है, इसमें वैसी कोई चेष्टा नहीं होनेसे इसका भक्तित्व सिद्ध नहीं होता। अतः अनुशीलन शब्दका प्रयोग निरर्थक नहीं है।

इस प्रकार भक्तिका स्वरूप-लक्षण बतलाकर अब भक्तिकी उत्तमताको सिद्ध करनेके लिए उक्त श्लोकके

प्रारम्भमें दो विशेषण पदोंका प्रयोग किया गया है—(१) अन्याभिलाषिता शून्यं, (२) ज्ञान-कर्मादि अनावृतम्। वह अनुशीलन कैसा होना चाहिए?— भक्तिकी वृद्धि हो, इसके अतिरिक्त लौकिक या पारलौकिक (स्वर्गादि और योगसिद्धि आदि) किसी भी प्रकारकी दूसरी अभिलाषाओंसे रहित होना चाहिए। श्रीमद्भगवतमें भी ऐसा ही कहा गया है कि भक्तिके द्वारा ही भक्ति उत्पन्न होती है। 'भक्त्या सज्जातया भक्त्या' (श्रीमद्भा. ११/३/३१)— इस उक्तिके अनुसार भक्तिके उद्देश्यसे ही भक्ति (श्रवणादि साधन भक्ति) करना कर्तव्य है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रेमाभक्तिके उद्देश्यसे ही साधन और भाव भक्ति होनी चाहिए। इसलिए भक्तिके अतिरिक्त अन्य सभी प्रकारकी अभिलाषाओंसे शून्य होना ही उत्तमा भक्ति है।

एक विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि यहाँ 'अन्याभिलाष शून्यं' न कहकर 'अन्याभिलाषिताशून्यं' क्यों कहा गया? इसमें श्रीलरूप गोस्वामीपादका एक गूढ़ अन्तर्निहित भाव छिपा है। श्रीलरूप गोस्वामीपादने बहुत विचारकर अन्याभिलाषिताशून्यं पदका प्रयोग किया है। अन्याभिलाष शब्दके अन्तमें (स्वभावार्थ वाचक) शीलार्थ सूचक नि-नि प्रत्यय और उसके पश्चात् भावार्थमें ता प्रत्ययके द्वारा यह दिखलाया है कि किसी साधन-भक्तिकी स्वाभाविक स्थितिमें भक्तिके अतिरिक्त अन्य कोई भी अभिलाषा नहीं होनी चाहिए, किन्तु अकस्मात् कोई विपत्ति आनेपर (अस्वाभाविक स्थितिमें) यदि कोई साधक-भक्त ऐसी प्रार्थना करता है, "हे भगवन्! मैं तुम्हारा भक्त हूँ। मेरी इस विपत्तिसे रक्षा करें", तो ऐसी अभिलाषाके होनेपर भी उसकी भक्तिकी हानि नहीं होती। क्योंकि विपत्तिके कारण उसके स्वभावका विपर्यय हुआ है। इसलिए वह विवश होकर अस्वाभाविकरूपमें ऐसी प्रार्थना कर रहा है। उसकी ऐसी अभिलाषा स्वभावसिद्ध नहीं है—ऐसा समझना होगा।

पुनः द्वितीय गौण लक्षण बतला रहे हैं— ज्ञानकर्मादि अनावृतम् अर्थात् भक्तिका अनुशीलन ज्ञान और कर्मादिसे अनावृत होना चाहिए। ज्ञानके तीन अङ्ग हैं— तत्पदार्थका ज्ञान, पदार्थका ज्ञान और जीव-ब्रह्म ऐक्य ज्ञान।

तत्पदार्थका ज्ञान—श्रीकृष्ण ही परम तत्त्ववस्तु हैं,

वे अद्वयज्ञान परमब्रह्म हैं, सबके आदि स्वयं अनादि, सर्वकारणोंके कारण, ऐश्वर्य और माधुर्य गुणोंके परम निधान-स्वरूप हैं। वे प्राकृत हेय गुणोंसे सर्वथा रहित, अप्राकृत सर्वगुणसम्पन्न, सच्चिदानन्दमयविग्रह, अचिन्त्य सर्वशक्तिमान, रस एवं रसिकस्वरूप हैं। वे ही वेदादि समस्त शास्त्रोंके प्रतिपाद्य स्वयं-भगवान् हैं। वे ही भगवत् शब्दवाच्य हैं। ऐसे ज्ञानको तत्पदार्थका ज्ञान कहते हैं।

त्वं-पदार्थका ज्ञान—चित्स्वरूप जीव श्रीकृष्णके किरण-कण स्थानीय चित्-परमाणुस्वरूप हैं। ये हरिसे अभिन्न होते हुए भी उनसे नित्य भिन्न होते हैं। जीव अणुचैतन्य, भगवान् विभु-चैतन्य हैं, जीव मायावश्य और भगवान् मायाधीश हैं, जीव मुक्तावस्थामें भी अपने तटस्थ स्वभावके अनुसार माया-प्रकृतिके अधीन होने योग्य होता है। जीव ज्ञानस्वरूप और ज्ञातास्वरूप है, उसमें कर्तृत्व भी है, तथापि वह अणुचित् है। उसमें अणु-स्वातन्त्र्य भी है, इसलिए वह स्वरूपतः परतत्त्वस्वरूप श्रीकृष्णका नित्यदास है। उसका नित्य पृथक् अस्तित्व भी है। अर्थात्, वह परतत्र-स्वतन्त्र है। जीव श्रीकृष्णकी तटस्था शक्तिका परिणाम होनेके कारण श्रीकृष्णसे उसका अचिन्त्य भेदाभेद सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त भगवत्-अंश होनेके कारण, भगवत्-सेवाकी वृत्ति उनके स्वरूपमें ही अवस्थित होनेके कारण कृष्णसे जीवका नित्य सेव्य-सेवक सम्बन्ध भी है। ऐसे ज्ञानको त्वं पदार्थका ज्ञान कहते हैं।

जीव-ब्रह्म-ऐक्य ज्ञान—जीव और ब्रह्ममें कोई भेद नहीं है, अविद्याके दूर होनेपर जीव ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। उस समय जीवका कोई पृथक् अस्तित्व नहीं होता। ऐसे ज्ञानको जीव-ब्रह्म-ऐक्य ज्ञान कहा जाता है।

मूल श्लोकमें ज्ञान शब्दका तात्पर्य केवल जीव-ब्रह्मके इस ऐक्य ज्ञानसे ही है। ऐसे ज्ञानको निर्विशेष ज्ञान कहते हैं। यह निर्विशेष ज्ञान भक्ति-विरोधी ज्ञान है, किन्तु उपर्युक्त तत्पदार्थ एवं त्वं-पदार्थका ज्ञान भक्तिका विरोधी नहीं है। भक्तिमें प्रवेश करनेके समय उपरोक्त दोनों प्रकारके ज्ञानोंकी आवश्यकता रहती है, किन्तु भक्तिमें प्रवेश करनेपर ज्ञानमित्रा भक्तिको भी 'बाह्य' बतलाकर उसे भी त्याग

करनेकी बात कही गयी है। जीवब्रह्मके ऐक्य ज्ञानमें, ब्रह्म तथा जीवके स्वरूपगत सम्बन्ध अर्थात् सेव्य-सेवक सम्बन्धका उदय कभी सम्भव नहीं है। यह सेव्य-सेवक भाव ही भक्तिका प्राण है। अतः निर्विशेष ब्रह्मज्ञानसे सर्वथा विशुद्ध रहना ही उत्तमा भक्तिका गौण लक्षण है।

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि भक्ति तीन प्रकारकी होती है—स्वरूपसिद्धा, सङ्गसिद्धा और आरोपसिद्धा।

जिसमें स्वरूपतः भक्तित्व अर्थात् आनुकूल्यरूपसे कृष्णानुशीलन धर्म नहीं रहनेपर भी अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिए जो भगवत्-सन्तुष्टि हेतु उनको अपने कर्मों एवं कर्मफल आदिका अर्पण होता है, उसका नाम आरोपसिद्धा भक्ति है। अर्थात्, भगवान्में आरोप करनेके कारण ही उनमें भक्ति आरोपित हुई है।

स्वरूपतः भक्तित्व अर्थात् आनुकूल्य अनुशीलन न रहनेपर भक्तिके परिकररूपमें संस्थापित होनेके कारण जिनका भक्तित्व सिद्ध होता है, उसे सङ्गसिद्धा भक्ति कहते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवतके ग्यारहवें स्कन्धमें निमि महाराजके प्रति कहा गया है—लोगोंके प्रति दया, मैत्री, सम्मान प्रदर्शन करना, शौच, तपस्या, तितिक्षा, मौन, स्वाध्याय, सरलता, ब्रह्मचर्य, अहिंसा आदिका पालन करना चाहिए। सदी-गर्मी और सुख-दुःखको समान समझना चाहिए। सर्वत्र भगवान्का अस्तित्व देखना चाहिए। एकान्तमें वास करना, गृहकी ममता छोड़कर यथालाभमें ही सन्तुष्ट रहना चाहिए इत्यादि। जिस भागवत धर्मके आचरणकी बात कही गयी है, वह स्वरूपतः भक्ति नहीं होनेपर भी भक्तिके लिए सहायक है अथवा परिकरके समान है। यदि इन २६ गुणोंमेंसे भगवद्भक्तिको निकाल दिया जाय, तो दया, मैत्री, तितिक्षा और तपस्या आदिके साथ भगवान्का कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता है। भक्तिके सहायक या परिकर रूपमें रहनेपर ही इनका भक्तित्व सिद्ध होता है। इसलिए इन्हें सङ्गसिद्धा भक्ति कहते हैं।

श्रीकृष्णके अतिरिक्त सभी प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञान-कर्मादिसे अनावृत, आनुकूल्यमय श्रवण, कीर्तन, स्मरण आदि चेष्टाएँ और भाव स्वरूपसिद्धा भक्ति हैं। अर्थात्, व्यवधानरहित साक्षात् रूपसे कृष्णके

लिए और कृष्ण-सम्बन्धी कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टाओंका नाम स्वरूपसिद्धा भक्ति है।

इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृतके राय रामानन्द संवादमें आरोपसिद्धा और सङ्गसिद्धाको भी बाह्य बतलाया गया है। यहाँ कर्म शब्दसे स्मार्त अर्थात् स्मृति शास्त्रमें कहे गये नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका तथा कर्म-ज्ञानमिश्रा भक्ति आदिका ही निषेध किया गया है। भजनोपयोगी सेवा-परिचर्यारूप कर्म निषिद्ध नहीं हैं। क्योंकि भजनीय सेवा-परिचर्या आदि कर्मसमूह कृष्णानुशीलनके अन्तर्गत हैं, अतः ये कदापि वर्जनीय नहीं हो सकते। ज्ञान-कर्मादिके अन्तर्गत आदि शब्दसे फल्युवैराग्य, अष्टाङ्गयोग, सांख्यशास्त्रोक्त अभ्यासयोग और आलस्य इत्यादिका भी यहाँ निषेध किया गया है। यहाँ एक और बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि ज्ञानकर्मादिके द्वारा शून्य न कहकर अनावृत शब्दका प्रयोग क्यों किया गया? इसलिए कि केवल भक्तिको आवृत करनेवाले ज्ञानकर्मादिका निषेध करना ही एकमात्र अभिप्राय है, भक्ति पोषक ज्ञान-कर्मादिका नहीं। क्योंकि, कर्म-ज्ञानादि शून्य होनेसे साधकके जीवनका निर्वाह होना भी सम्भव नहीं है।

भक्तिके आवरण दो प्रकारके होते हैं—(१) शास्त्रके निर्देशानुसार नित्यकर्मोंको नहीं करनेसे पाप होता है इस भयसे, (२) स्मृतिशास्त्रमें बतलाए गये नित्य-नैमित्तिक कर्मोंका अनुष्ठान करनेसे भक्तिरूपी अभीष्ट फल प्राप्त होता है, ऐसा विश्वासकर श्रद्धापूर्वक इन कर्मोंको करनेसे भक्ति आवृत होती है। इसीलिए महानुभवजन (उत्रत श्रेणीके भक्त) लोकशिक्षा और लोकसंग्रहके लिए कभी-कभी श्रद्धा नहीं होनेपर भी पितृश्रद्धादि अनुष्ठान करते हैं, किन्तु वे अनुष्ठान अश्रद्धापूर्वक किए जानेके कारण शुद्धभक्तिके आवरक या बाधक नहीं होते।

कृष्णानुशीलन ही कृष्णभक्ति है, इसी अभिप्रायको स्पष्ट करनेके लिए यहाँ कृष्णानुशीलनम् शब्दका प्रयोग हुआ है। क्योंकि भागवत, नारदपञ्चरात्रादि भक्तिशास्त्रोंमें सर्वत्र ही भक्ति शब्दका उल्लेख भगवद्भक्तिके लिए ही किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि भक्ति शब्द केवल विष्णुतत्त्वके लिए प्रयुक्त

होना चाहिए।

'कृष्ण-अनुशीलन'के द्वारा यहाँ श्रीकृष्ण और राम-नृसिंह आदि सभी अवतारोंके अनुशीलनको ही समझना चाहिए। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि कृष्ण-अनुशीलनके द्वारा यदि सभीके अनुशीलनको समझा जाय, तो गौड़ीय वैष्णवोंके मूल गुरु श्रीलरूप गोस्वामीके द्वारा अभिव्यक्त उत्तमा भक्तिकी इस सर्वोत्कृष्ट लक्षणमें गौड़ियोंके सर्वोच्च भजनकी उत्तमा भक्तिकी पराकाष्ठाका इङ्गित रहना भी वाञ्छनीय है। इसलिए श्रील रूप गोस्वामीके अन्तरङ्ग निगूढ़ मर्मको समझनेवाले रूपानुगोंमें अन्यतम श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामिने उक्त श्लोकका अनुवाद इस प्रकार किया है—‘आनुकूल्ये सर्वेन्द्रिये कृष्णानुशीलन’— यहाँ ‘सर्वेन्द्रिय’ पदके द्वारा भक्तिकी सर्वोत्तम अवस्थाको इङ्गित किया गया है। समस्त इन्द्रियोंके द्वारा कृष्णका अनुशीलन एकमात्र मधुर रसमें ब्रज-गोपियोंके द्वारा ही सम्भवपर है, दूसरोंके द्वारा कृष्णानुशीलनकी पराकाष्ठा सम्भवपर नहीं है।

श्रवण-कीर्तन-स्मरणादि भक्तिके स्वरूप हैं, यह साधन भक्तिका अनुशीलन एकमात्र भगवत्-प्रीतिके लिए ही किए जानेपर शीघ्र ही कृष्ण-प्रेम तथा प्रेम-प्राप्तिके पश्चात् उत्तरोत्तर स्नेह, मान, प्रणयादिकी अवस्थाएँ प्राप्त हो सकती हैं। इसलिए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

भक्तियोगे भगवति तत्रामग्रहणादिभिः।

यहाँ केवल ‘भक्तियोग’ कहनेसे ही हो सकता था, किन्तु ‘भगवति’ कहनेका विशेष तात्पर्य है, वह यह कि नाम ग्रहण-स्मरणादि भक्तिके सभी अङ्ग जब एकमात्र भगवत्-प्रीतिके लिए ही अनुष्ठित होते हैं, तभी उसे भक्तियोग कहते हैं एवं ऐसा भक्तियोग ही प्रेम-फल देनेमें समर्थ है। भगवत्प्रीति-विधानके अतिरिक्त अन्यान्य उद्देश्यसे श्रवण-कीर्तनादि भक्ति-अङ्गसमूह अनुष्ठित होनेपर भी उसे ‘भक्तियोग’ संज्ञासे नहीं अभिहित किया जा सकता तथा उसके द्वारा प्रेम-फलकी प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है।

ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ

श्रीभागवत-पत्रिकाके पुनराविर्भावके अवसरपर श्रीगौड़ीय-गुरुवर्गके मनोऽभीष्ट और आशीर्वचन

आज श्रीभागवत-पत्रिका बीसवें वर्षमें पदार्पण कर रही है। हमने पूर्व महाजनोंके निर्देश ‘आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया’ को तिलाज्जलि देकर तथा अपनी स्वतन्त्रताका अपव्यवहारकर श्रीगुरुपादपद्मकी जिस अहैतुकी कृपाका उल्लंघन किया है, आज शायद हम उस कठिन परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। हे करुणामय गुरुदेव! आपके श्रीचरणोंमें इस दासानुदासाभासकी यही सकातर प्रार्थना है कि शत-शत विपदाओंमें भी आपके निष्कपट सेवकोंके आनुगत्यमें सर्वतोभावेन आपकी यथार्थ सेवामें तत्पर रहकर सेवाकी यथार्थताकी उपलब्धि कर सकूँ। श्रीगुरुदेवके प्रकाश-विग्रह अपने पूज्यपाद सतीर्थोंसे भी मेरा एकान्त नम्र निवेदन है कि अयोग्य होनेपर भी श्रीगुरुदेवकी अहैतुकी कृपाको शिरोधारणकर उनके आदेशों और निर्देशोंको पालन करनेकी जो यथासाध्य चेष्टा कर रहा हूँ एवं करता रहूँगा, उसमें उनकी सहानुभति एवं सहयोगितासे गोष्ठानन्दी श्रीगुरुदेवके संकीर्तन यज्ञमें आत्मनियोग करनेपर ही जीवनको धन्य समझूँगा, एकाकी हरिनाम संकीर्तन करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। श्रीगुरुदेवके प्रतिष्ठान जिससे सुरक्षित रहें, वही हमारा परम कर्तव्य है। उनका नाम एवं महिमा समग्र विश्वमें प्रचुररूपेण प्रचारित हो, इसके लिए हम अपना यथासर्वस्व उनकी सेवामें नियुक्त करेंगे। उनका मनोऽभीष्ट पूर्ण करना ही यथार्थ शिष्यका एकमात्र कर्तव्य समझता ह

श्रीगुरुदेवने हमें उपदेश दिया है, “श्रीगुरुदेवकी आज्ञाका पालन करनेवाले ही शिष्य हैं। जो इस तत्त्वको अस्वीकार करते हैं, वे गुरु-परम्पराके विरोधी, पथभ्रष्ट और गुरुब्रुव हैं। श्रीगुरुदेव नित्य हैं तथा प्रकट-अप्रकट सभी अवस्थाओंमें उनका अस्तित्व एकसमान प्रमाणित है। उनका आविर्भाव-तिरोभाव एक तात्पर्यमय है। शुद्ध गोष्ठानन्दी अथवा भजनानन्दी कोई भी निर्जन भजन नहीं करते तथा विविक्तानन्दी उनके नाम-प्रेम-प्रचारके सहायकरूपमें अनुकल भाव पोषणकर उनकी सहायता करते हैं। हम संन्यासी-समाज-संस्कारको धर्म-संस्कारका आनुष्ठानिक कार्य मानते हैं। हमें पराविद्यामें अनधिकार चेष्टारत तथाकथित शिक्षित समाजको भी कुछ निवेदन करनेका अधिकार है। यथार्थ सत्यका प्रचार करनेसे कुछ लोगोंके हृदयमें आधात लग सकता है, इत्यादि।”

जगद्गुरु श्रील प्रभुपादने कहा है, “श्रीपत्रिकाके शुभ फलका आस्वादन करनेवाले पाठकगण और श्रोतागण नित्यानन्द लाभ करें। ठाकुर नरोत्तमकी प्रार्थनाका गूढ़ तात्पर्य तथा ठाकुर भिक्तिविनोदकी गीतिमाला और पारमार्थिक साहित्य समग्र भारतभूमिमें प्रचुररूपमें प्रचारित हों। गौड़ीय त्रिदण्ड महोदयगण ‘श्रीपत्रिका’का आनन्दवर्द्धन करें। ‘भागवतकी घोषणा है कि जगत्‌में प्रचलित तथाकथित धर्मसमूह छल-धर्म हैं’—यही सिद्धान्त मनुष्यमात्रके लिए निरपेक्ष आदर्श होवें। श्रीरूपानुग वैष्णवोंके पारमार्थिक प्रतिष्ठान श्रीमन्महाप्रभुकी सेवामें नियुक्त रहें। मुद्रणयन्त्र-स्थापन, भक्तिग्रन्थ-प्रचार तथा नामहट्टसे ही श्रीमायापुर-नवद्वीपकी प्रकृत सेवा होगी। दूसरेकी निन्दा न कर आत्म-संशोधन करें। हम काठ-पत्थरके कारीगर होनेके लिए जगत्‌में नहीं आए हैं, हम चैतन्य-वाणीके वाहकमात्र हैं। माथुर-विरह-कातर ब्रजबासियोंकी सेवा ही हमारा परम धर्म है। श्रीचैतन्य-मनोऽभीष्ट-संस्थापक श्रीरूप गोस्वामीके श्रीचरणोंकी धूलि ही हमारे जीवनकी एकमात्र आकांक्षाकी वस्तु है।”

आज ‘श्रीपत्रिका’के पुनराविर्भावके शुभ अवसरपर मैं श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग, श्रीश्रीराधाविनोदविहारी, श्रीगिरिराज तथा श्रीनृसिंहदेवके श्रीचरणकमलोंकी वन्दनाकर अपने वक्तव्यका उपसंहार कर रहा हूँ।

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-किङ्गराभिलाषी
त्रिदण्ड भिक्षु श्रीभक्तिवदान्त वाम

श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेन या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थे महान् श्रीचैत्यन्यं महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दूई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

वर्ष २० } विक्रम संवत् २०५२-५३ वैशाख मास, सन् १९९६, अप्रैल-मई

{ संख्या २

श्रीश्रीजगन्नाथाष्टकम्

(श्रीगौरचन्द्र-मुखपद्म-विनिर्गतम्)

कदाचित्-कालिन्दीतट-विपिन-सङ्गीत-तरलो
मुदाभीरी - नारी-वदन-कमलास्वाद-मधुपः ।
रमा - शम्भु - ब्रह्मामरपति - गणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

जो कभी-कभी श्रीयमुनाके तटवर्ती वनमें गान करते-करते भ्रमरके समान ब्रज-गोपियोंके मुखारविन्दका आनन्दपूर्वक आस्वादन करते हैं तथा नारायणी श्रीलक्ष्मीजी, सेवक-भगवान् शङ्करजी, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, देवराज इन्द्र और सिद्धिदाता गणेशजी जिनके चरणोंका सदा-सर्वदा अर्चन करते हैं, वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयनगोचर हों ॥१॥

भुजे सब्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटिटटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचर-कटाक्षं विदधते ।
सदा श्रीमद्वृन्दावन-वसति-लीला-परिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहज-बलभद्रेण बलिनां
सुभद्रा-मध्यस्थः-सकल-सुर सेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥

कृपा-पारावारः सजल-जलद-श्रेणी-रुचिरो,
रमावाणीरामः स्फुरदमल-पङ्क्लेरुहमुखः ।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखा-गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

रथारूढ़ो गच्छन् पथि मिलित-भूदेव-पटलैः
स्तुति-प्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्यसदयः ।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकल जगतां सिन्धु-सुतयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥

परंब्रह्मापीडः कुवलय-दलोत्फुल्ल-नयनो,
निवासी नीलाद्रौ निहित'चरणोऽनन्त-शिरसि ।
रसानन्दी राधा-सरस-वपुरालिङ्गन-सुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

न वै याचे राज्यं न च कनक-मानिक्य विभवं,
न याचेऽहं रम्यां सकल-जन-काम्यां वरवधूः ।
सदा काले काले प्रमथ-पतिना गीत-चरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥७॥

जो बाई हाथमें वंशी, सिरपर मोरपङ्क्ष, कटिटटमें
पीताम्बर तथा नेत्रोंमें सखाओंके प्रति कटाक्ष धारणकर
सदा-सर्वदा निरतिशय शोभाशाली वृन्दावनमें निवास
करते हैं तथा वहाँ विविध लीलाएँ करते हैं, वे
मेरे स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयनगोचर हैं ॥२॥

जो महासागरके तटपर कनक-कान्तिवाले
नीलाचल-शिखरपर दिव्यातिदिव्य प्रासादमें अपने अग्रज
महाबली श्रीबलदेवजीके साथ बहन सुभद्राको बीचमें
रखकर अवस्थान करते हुए समस्त देववृन्दोंको अपनी
पुनीत सेवाका शुभ अवसर प्रदान करते हैं, वे मेरे
स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयनगोचर हैं ॥३॥

जो कृपाके सागर हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सजल
मेघके समान है, जो श्रीलक्ष्मी तथा सरस्वतीके साथ
विहार करते हैं, जिनका श्रीमुख देदीव्यमान निर्मल
कमलकी शोभाको धारण करता है, जो समस्त
देवताओंके आराध्य-धन हैं तथा वेद-पुराण-तन्त्रादि
शास्त्र समूह जिनके पावन चरित्रका गान करते हैं,
वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयनगोचर हैं ॥४॥

जो रथयात्राके समय मार्गमें एकत्रित हुए ब्राह्मणोंके
द्वारा पद-पदपर किये हुए स्तवोंको सुनकर दयासे
द्रवित होते रहते हैं, जो करुणावरुणालय हैं, जो निखिल
ब्रह्माण्डके बन्धु हैं एवं जो समुद्रपर कृपाकर उसके
तटपर निवास करते हैं, वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी
मेरे नयनगोचर हैं ॥५॥

जो परम अर्चनीय परब्रह्म हैं, जिनके नेत्र-युगल
कमल-दलके समान विकसित हैं, जो नीलाचलपर
निवास करते हैं, जो भगवान् अनन्त के मस्तकपर
चरण रखे रहते हैं, जो प्रेमानन्दमय हैं एवं जो
श्रीराधाके रसमय शरीरके आलिङ्गनके अनुपम सुखमें
सुखी हैं, वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयन पथके
पथिक हैं ॥६॥

न तो मैं राज्य की ही याचना करता हूँ और
न स्वर्ण एवं मानिक्यादि रत्नोंके वैभवकी ही प्रार्थना
करता हूँ। जिसे सब लोग चाहते हों, ऐसी सुन्दरी
एवं श्रेष्ठ रमणीकी भी मुझे कामना नहीं हैं। मैं तो
केवल यही चाहता हूँ कि भूतपति महादेव सर्वदा

हर त्वं संसारं दुततरमासारं सुरपते
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते।
अहो दीनेऽनाथे निहित-चरणो निश्चितमिदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥८॥

जगन्नाथाष्टकं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः शुचिः।
सर्व पाप-विशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति॥९॥

जिनके चरित्रका गान करते रहते हैं, वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयनगोचर हों॥७॥

हे सुरेश्वर ! शीघ्रातिशीघ्र इस असार-संसारका उद्धार करो; हे यदुनाथ ! जगत्‌से पापोंकी अमित राशिको दूर कर दो। जो दीन एवं अनाथोंको अपना श्रीचरण अवश्य समर्पण करते हैं, वे मेरे स्वामी जगन्नाथजी मेरे नयनगोचर हों॥८॥

जो एकाग्रचित्त एवं पवित्र होकर इस पवित्र श्रीजगन्नाथाष्टकका पाठ करता है, उसकी आत्मा समस्त पापोंसे विमुक्त हो जाती है और वह विष्णुलोकमें अर्थात् श्रीवैकुण्ठधाममें गमन करता है॥९॥ □

(श्रीजगन्नाथाष्टकम् सम्पूर्ण)



मायावादकी जीवनी

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या १, पृष्ठ १७ से आगे)

जी व मायाग्रस्त होनेके साथ-ही-साथ अपना स्वरूप भूल जाता है। ऐसी अवस्थामें भोक्तृ अभिमानके कारण वह 'कृष्ण-स्वरूप'की समता कर बैठता है। भगवान् भक्तोंके निकट आनन्द लाभकर अथवा आत्माराम होनेके कारण परमानन्दमें मग्न हैं। भगवान्‌के इस आनन्द-भावोंके त्वके एकच्छत्र अधिकारके प्रति इर्ष्यायुक्त होकर जीव उस पदपर स्वयं आरुढ़ होनेकी वासना करता है—यही अहंग्रह-भाव या पूर्ण बद्धावस्था है। इस प्रकार बद्धावस्थाकी बद्धधारणासे ही अर्थात् माया द्वारा कवलित होनेके बादसे ही जीव मायावादरूपी रोग द्वारा आक्रान्त हुआ। उसी समयसे 'सोऽहं' वादरूप मायावादके जन्मका कारण हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है। अतः भगवान्‌से विमुख जीव ही मायाश्रयी अथवा मायावादी हो पड़ा है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि ईश-भ्रान्ति और ईश-विमुखता ही मायावादके जन्मके मूल कारण हैं।

भोगवासना उत्पन्न होनेके साथ-ही-साथ जीव

मायिक जगत्‌में पतित हो जाता है। तब वह मायिक युग और मायिक-कालके भीतर "अस्ति-नास्ति" 'अहं-मम', 'सत्-असत्' जैसे विचारोंके भीतर प्रवेश करता है। वह सत्य वस्तुको मिथ्या तथा मिथ्या वस्तुको सत्य समझता है। जगत् स्वप्न तुल्य मिथ्या है, भ्रान्तिमय अथवा भ्रान्तिसे ही जगत्‌की उत्पत्ति है; तत्त्व-वस्तु शक्तिहीन, लीला-विलासशून्य तथा निर्विशेष है—ऐसी अनेक धारणाएँ करता है।

मायावाद किसे कहते हैं?

मायावादका दूसरा नाम विवर्तवाद है। वेदोंमें विवर्तवादके जो उद्धरण देखे जाते हैं, वे अद्वैतवादियोंके प्रचारित अद्वैतवादसे सर्वथा पृथक हैं। देहमें आत्मबुद्धि होना ही विवर्त है। ब्रह्ममें जगत्-भ्रम, यह वैदिक विवर्त नहीं, अपितु मायावाद है। आचार्य शङ्करका विवर्तवाद ही 'मायावाद' है। मायावादकी जीवनी कहनेसे विवर्तवादकी भी जीवनी समझी जाती है। प्रकृत (वास्तव) मायावाद किसे कहते हैं, इस सम्बन्धमें प्रसङ्गवशतः स्थान-स्थानपर आलोचना की जाएगी।

अभी संक्षेपमें निर्देश किया जा रहा है—

‘माया’ शब्द साधारणतः जड़ शक्ति या अविद्या शक्तिको लक्ष्य करता है। यह तत्त्व-वस्तुके स्वरूप-शक्तिकी छाया या प्रतिबिम्ब है। इस छायाशक्तिका चित् जगत्‌में प्रवेश करनेका अधिकार नहीं। यह जड़ जगत्‌की अधिकर्ता है। जीव इसी मायाद्वारा आक्रान्त होकर जड़जगत्‌में बद्ध होकर मायावादका आश्रय ग्रहण करता है। मायावादका यह कथन है कि माया नामक कोई भी शक्ति नहीं। मायाको बाद देकर ही ब्रह्मकी स्थिति है। वे निःशक्तिक हैं। मायिक तर्क और युक्ति द्वारा इस मतकी स्थापना करनेकी चेष्टा करनेके कारण ये तर्कपन्थी लोग ‘मायावादी’ नामसे प्रसिद्ध हैं। मायिक युक्तिके बलपर मायावादका कथन है कि—‘जीव ही ब्रह्म है’, केवल मायाकी क्रियासे ब्रह्म विभिन्न जीवरूपमें दिखलाई पड़ता है। किन्तु, माया दूर होते ही जीवोंकी पृथक् सत्ता नहीं रहती। जबतक माया है, उसके आवरणमें जीव रहेगा। जो लोग मायाके सहित जीवका ऐसा सम्बन्ध स्थापित करते हैं, वे ही मायावादी हैं अर्थात् वे लोग वेद-वेदान्तको न मानकर बलपूर्वक मायिक तर्क द्वारा कहते हैं—“माया दूर होनेसे जीवका कोई पृथक् अस्तित्व न रहेगा। जीवकी मायामुक्ति, इस प्रकारकी कोई भी विशुद्ध अवस्था नहीं।” मायावादियोंका यह विचार कुसिद्धान्तमूलक है। मायावादमें जीवकी नित्य-शुद्ध सत्ताकी कोई भी अवस्था स्वीकृत नहीं, अपितु मायावाद प्रमाणित करना चाहता है कि ईश्वर भी मायाग्रस्त तत्त्व है। ऐसा होनेसे तो ईश्वरको भी मायामुक्त होनेकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसी अवस्थामें ईश्वर और जीवमें वस्तुतः पार्थक्य ही क्या रहा? केवल मात्र कर्मफलसे अतीत अवस्था तथा कर्मफलकी बाध्यता ही ईश्वर और जीवके भेदको निरूपित करती है, ऐसा समझकर तत्त्व-निर्देश किये जानेसे ही मायावाद आ पड़ता है। यदि जीव और ईश्वर-तत्त्वका ऐसा निरूपण किया जाय तो इसकी अपेक्षा अधिक शोचनीय सिद्धान्त और क्या हो सकता है? यही उनके माया ग्रस्त होनेका प्रधान लक्षण है एवं इसके द्वारा वे

निर्विकल्पमें भी उद्धार लाभ न कर सकेंगे। उनका निर्वाण एक मिथ्या और काल्पनिक विचार मात्र है। ऐसे निर्वाण या निर्विकल्प मुक्तिका कहीं भी कोई प्रमाण या दृष्टान्त नहीं। अतः मायावादकी गणना वेद-वेदान्तानुग विशुद्ध पारमार्थिक सम्प्रदायोंमें नहीं की जा सकती—यही क्रमशः ऐतिह्यके प्रमाणोंके आधारपर प्रदर्शित होगा।

मायावादके सम्बन्धमें व्यासकी उक्तियाँ

वेदके विभाग करनेके समय भेद सूचक वाक्योंका सर्वतोमुखी विविध प्रमाण लक्ष्य करते हुए भी बादरायण ऋषिने किञ्चित परिमाणमें अभेदका भी सङ्केत पाया था। वेदोंके ऐसे अभेद सङ्केतों द्वारा मायावादकी सृष्टि हो सकती है, उन्होंने इस का कुछ-कुछ अनुमान लगाया था— ऐसा प्रतीत होता है। त्रिकालज्ञ आचार्योंके सम्बन्धमें यह कुछ अस्वाभाविक नहीं। अद्वैतभाव वेदोंका असम्पूर्ण एकदेशीय व्यापार है। वस्तुके पूर्णत्वका विचार न कर आंशिक विचार करनेसे उसे सत् विचारके रूपमें नहीं स्वीकार किया जा सकता। प्रत्युत् आंशिक सत्यको पूर्ण सत्यके रूपमें स्थापित करनेकी चेष्टाको असत् चेष्टा या बञ्चना कहते हैं। कृष्ण-द्वैपायन वेदव्यासने अपने रचित पुराणोंमें ही मायावादके असत् और अवैदिक होनेकी घोषणा की है—

“मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।”

(पद्मपुराण उ. ख. २५ अ. ७ श्लोक)

पद्मपुराणके विभिन्न स्थलोंमें, कूर्मपुराणके पूर्वभागमें तथा अन्यान्य पुराणोंमें मायावादके भावी आविर्भावकी उक्तियाँ देखी जाती हैं। उन्होंने पद्मपुराणमें मायावादको एक अवैदिक मत कहा है। वैदिक युगमें अर्थात् वेदोंमें मायावादका स्थान नहीं है—यह मैंने पहले ही निवेदन किया है। इसके सम्बन्धमें पद्मपुराणकी स्पष्ट उक्ति है—

वेदार्थविन्हाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।

मयैव कथितं देवि! जगतां नाश-कारणात्॥

श्रील ठाकुर भक्तिविनोद अपने ‘जैवधर्म’ नामक ग्रन्थमें मायावादके सम्बन्धमें लिखते हैं—

‘असुरगण भक्तिपथ ग्रहण करते हुए दुष्ट उद्देश्य

सफल करनेकी चेष्टा करने लगे। ऐसा देख सरल-हृदय जीवोंके प्रति भक्त-वात्सल्य-प्रयुक्त करुणामय भगवान्‌ने ऐसा उपाय सोचा जिससे कि ये असुरण किसी प्रकार भक्ति-पथको भ्रष्ट न कर सकें। उन्होंने श्रीमहादेवको बुलाकर कहा—“हे शम्भो! तामस-प्रवृत्तिवाले असुरोंके निकट शुद्ध-भक्ति-प्रचार करनेसे जैव जगत्का मङ्गल न होगा। तुम असुरोंको मोहित करनेके लिए एक ऐसे शास्त्रका प्रचार करो, जिसमें मुझे गोपनकर मायावाद प्रकाशित हो, जिसमें आसुरिक चिन्तामान जीवगण शुद्धभक्तिपथका परित्यागकर उस मायावादका आश्रय करें और हमारे सहदय भक्तगण निःसंशय होकर शुद्ध-भक्तिका आस्वादन कर सकें।” भगवान् विष्णु रुद्रसे कह रहे हैं—

स्वागमैः कल्पितैस्त्वज्ज्व जनान्मद्विमुखान् कुरु।
माज्ज्व गोपय येन स्यात् सृष्टिरेषोत्तरेत्तरा॥।

(पद्मपुराण उ. ख. ४२-११०)

एष मोहं सृजाम्याशु यो जनान् मोहयिष्यति
तज्ज्व रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय॥।
अतख्यानि वितख्यानि दर्शयस्व महाभुज।
प्रकाशं कुरु चात्मानमप्रकाशज्ज्व मां कुरु॥।

(वराहपुराण)

[अर्थात् हे शम्भो! तुम कलियुगमें मनुष्य आदि जीवाकें बीच अंशरूपसे अवतीर्ण होकर कल्पित अर्थात् मिथ्या-निर्मित अपने तन्त्रादि द्वारा मनुष्योंको मुझसे बहिर्मुख करो। उन कल्पित-शास्त्रोंमें मेरे नित्य-भगवत् स्वरूपका विषय गुप्त रखो। इससे जगत्की बहिर्मुख सृष्टि उत्तरोत्तर परिवर्द्धित होती रहेगी।

मैं इस तरहकी मोहसृष्टि कर रहा हूँ, जो जनसमुदायको मोहित करेगी। हे महाबाहो रुद्र! तुम भी मोहशास्त्रका प्रणयन करो। हे महाभुज! अन्याय और भगवत्-स्वरूप-प्रकाशका विरोधी मायिक-युक्तजाल प्रदर्शन करो, अपने रुद्ररूप (आत्मविनाशरूप संहार-मुर्तिका प्रकाश करो तथा मेरे नित्य भगवत्स्वरूपको आच्छादित करो।]

(ठाकुर भक्तिविनोदकृत “जैवधर्म” १८ अध्याय)

विज्ञान भिक्षुका मत

शंकर-सम्प्रदायके कतिपय विद्वानोंका विचार है कि पद्मपुराणमें इस प्रकारके उक्ति-समूह वैष्णवोंके द्वारा ईर्ष्यावश प्रक्षिप्त किए गये हैं। किन्तु सांख्य-योगी या समन्वयवादी विज्ञानभिक्षुने ‘सांख्यप्रवचन भाष्य’की भूमिकामें पद्मपुराणके इस वचनको उद्धृत किया है। पाठकवर्गकी अवगतिके लिए उसे उद्धृत किया जा रहा है—

“अस्तु वा पापिनां ज्ञानप्रतिबन्धार्थमास्तिक-
दर्शनेष्वप्यंशतः श्रुतिविरुद्धार्थव्यवस्थापनम्। तेषु
तेष्वंशेष्वप्रामाण्यं च। श्रुतिसृत्यविरुद्धेषु तु मुख्यविषयेषु
प्रामाण्यमरत्येव। अतएव पद्मपुराणे ब्रह्मयोगदर्शनातिरिक्तानां
दर्शनानां निन्दायुपपद्यते। यथा तत्र पार्वतीं प्रतीश्वरवाक्यम्—

श्रुणु देवि! प्रवक्ष्यामि तामसानि यथाक्रमम्।
येषां श्रवणमात्रेण पातित्यं ज्ञानिनामपि॥।
प्रथमं हि मयैवोक्तं शैवं पाशुपतादिकम्।
मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः संप्रोक्तानि ततः परम्॥।
कणादेन तु संप्रोक्तं शास्त्रं वैशेशिषिकं महत्।
गौतमेन तथा न्यायं सांख्यन्तु कपिलेन वै॥।
द्विजन्मना जैमिनिना पूर्वं वेदमयार्थतः।
निरीश्वरेण वादेन कृतं शास्त्रं महत्तरम्॥।
धिषणेन तथा प्रोक्तं चार्याकमतिगर्हितम्।
दैत्यानां नाशनार्थाय विष्णुना बुद्धरूपिणा॥।
बौद्धशास्त्रमसत् प्रोक्तं नग्ननीलपटादिकम्।
मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च॥।
मयैव कथितं देवि! कलौब्राह्मण रूपिणा।
अपार्थं श्रुतिवाक्यानां दर्शयल्लोक गर्हितम्॥।
कर्म स्वरूपत्याज्यत्वमत्र च प्रतिपाद्यते।
सर्वकर्म परिभ्रंशान्नैष्कर्म्य तत्र चोच्यते॥।
परात्म जीवयोरैक्यं मयात्र प्रतिपाद्यते।
ब्रह्मणोऽस्य परं रूपं निर्गणं दर्शितं मया॥।
सर्वस्य जगतोऽप्यस्य नाशनार्थं कलौयुगे।
वेदार्थवन्महाशास्त्रं मायावादमवैदिकम्।
मयैव कथितं देवि! जगतां नाशकारणात्॥।
इति—अधिकं तु ब्रह्ममीमांसाभाष्ये प्रपञ्चितम-
स्माभिरिति।

(सांख्यदर्शनम्-विज्ञान भिक्षु-विरचित भाष्य—
श्रीजीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य कर्तृक १२९६ बं.

सालमें प्रकाशित, द्वितीय संस्करण, भूमिका—५-६ पृष्ठ)

समस्त दर्शनोंका सामञ्जस्य स्थापन करना ही विज्ञान-भिक्षुका उद्देश्य था। उन्हें आचार्य शंकरसे ईर्ष्या न थी, वरन् निरपेक्ष भावसे उनके गुण और दोष दोनोंकी ही आलोचना उन्होंने की है। वास्तवदर्शी महाजनगण सत्यको सत्य एवं मिथ्याको मिथ्या ही जानते हैं। सत्यको मिथ्या या मिथ्याको सत्य नहीं जानते। किसी काल्पनिक मतका दोष दिग्दर्शन कराना ही यदि ईर्ष्यामूलक व्यवहार कहा जाय तो आचार्य शङ्कर भी उस दोषसे मुक्त न थे। उन्होंने शाक्यसिंह बुद्धको पागलकी आख्या देते हुए भी त्रुटि न की। आचार्य शङ्करने ब्रह्मसूत्रके भाष्यमें कहा है—“सुगत बुद्धने असम्बद्ध प्रलापोक्ति अर्थात् मतिभ्रष्टकी भृति प्रलाप किया है।” उक्त भाष्य नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

‘बाह्यार्थ-विज्ञान-शून्यवादत्रयमितरेतर-विरुद्धमुपदिशता ‘सुगतेन’ स्पष्टीकृतमात्मनोऽसम्बद्ध प्रलापित्वं।’

(ब्रह्मसूत्र शङ्करभाष्य—२/१/३२)

सुगतके प्रति शङ्कराचार्यके ऐसे श्लेषयुक्त वचनोंको देखकर कोई ऐसा न समझे कि शङ्कर बौद्ध मतके विद्वेषी थे। सुगत बुद्धके विज्ञानात्मवाद तथा बाह्यात्मवादका खण्डन करनेके लिए उन्होंने जिस बड़े समारोहके साथ युक्तियों तथा तर्कोंकी अवतारणा की है, शून्यवादके खण्डनमें उनकी वैसी चेष्टाएँ नहीं देखी जातीं। शङ्करकी श्रद्धा भीतर ही भीतर बुद्ध तथा उनके शून्यवादके प्रति प्रभूत परिमाणमें थी—इसका स्पष्टीकरण पीछे किया जाएगा। व्यासदेवकी इन उक्तियोंसे विदित होता है कि आचार्य शङ्कर प्रच्छन्न बौद्ध थे। बुद्धके वेद-विरुद्ध मतवादको उन्होंने वेदके सांचेमें ढालकर इस जगतमें प्रचुररुपसे प्रचार किया है।

बुद्धके सम्बन्धमें मतभेद विष्णुबुद्ध और शाक्यसिंह बुद्ध

पुराणोंके विभिन्न स्थलोंमें मायावादको बौद्धमतवाद कहा गया है—ऐसा देखा जाता है। ऐसी परिस्थितिमें यहाँ बौद्धमतवादके सम्बन्धमें भी प्रसङ्गवशतः कुछ आलोचना होनी आवश्यक है। बुद्धदेवका मतवाद ही बौद्धवाद है। अतः बुद्धदेवके सम्बन्धमें शास्त्रोंका विचार क्या है, पाठकवर्गको यह जानना आवश्यक

है। श्रीबुद्धदेव विष्णुके दश अवतारोंमें अन्यतम हैं। श्रील जयदेव गोस्वामी लिखते हैं—

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमूद्धभृते।
दैत्यं दायते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुवर्ते॥
पौलस्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते।
म्लेच्छान्मूर्च्छ्यते दशकृतकृतकृष्णाय तुभ्यं नमः॥

उन्होंने अन्यत्र दशावतार-स्तोत्रके नवम स्तोत्रमें बुद्धदेवके सम्बन्धमें लिख लिखते हैं—

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदय - हृदय - दर्शित - पशुधातम्।
केशवधृत बुद्ध शरीर जय जगदीश हरे॥

ये ही बुद्धदेव यदि विष्णु हों तब शङ्कराचार्यके साथ उनका क्या सम्बन्ध है, इस विषयकी विशद आलोचना होनी चाहिए। शङ्करके मतवादको यदि बौद्ध-मतवाद कहना हो तो दोनोंके बीच सम्बन्ध किस जगह है, उसे अनुसन्धान करनेकी आवश्यकता है।

आचार्य शङ्करने बुद्धदेवके सम्बन्धमें जो विचार किया है, वह विशुद्ध प्रतीत नहीं होता। वे कहना चाहते हैं कि वैष्णवोंके उपास्य बुद्ध और शाक्यसिंह बुद्ध एक हैं। किन्तु वास्तवमें बात ऐसी नहीं। परमपूज्य आचार्यकुल शिरोमणि जगदगुरु ३० विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुरका बुद्धके सम्बन्धमें कथन है—“शाक्यसिंह बुद्ध एक अतिज्ञानी जीव मात्र हैं।” अतः उन्हें भगवत् अवतार बुद्धके सहित एकाकार करने अथवा समान समझनेसे शाक्यसिंह बुद्धके प्रति आचार्य शङ्करकी यथेष्ट आन्तरिक श्रद्धाभक्तिका ही परिचय मिलता है। उनके द्वारा सुगत बुद्धको ‘असम्बन्ध प्रलापकारी’ कहकर श्लेष उक्ति करनेपर भी वह लोक छलनाके लिए केवल बाहरी रोषाभास प्रदर्शनमात्र ही है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि आचार्य शङ्करने किस स्थलपर ऐसा मन्तव्य प्रकट किया है, जिससे गौतम बुद्ध और भगवान् बुद्धका एक होना प्रतीत होता है? इसके उत्तरमें मैं सज्जन पाठक वर्गको शङ्करभाष्यपर विचार करनेके लिए अनुरोध करता हूँ। इस सम्पर्कमें हमारे पूर्व प्रदर्शित भाष्यधृत अंशमें ‘सुगतेन’ शब्द द्वारा उन्होंने आदि बुद्ध न जानकर शुद्धोदन और ‘माया’ पुत्र गौतम बुद्धको ही समझा है। बुद्धके सिद्धान्तके सम्बन्धमें उनका नाम उल्लेखकर अपने भाष्यमें उन्होंने कहा है—“सर्वथा

अपि अनादरणीय अयंसुगत-समयः श्रयेस्कामैः इति अभिप्रायः।” इस वाक्यमें उन्होंने मायापुत्र बुद्धको ही सुगत बुद्ध कहनेका भ्रम किया है। ‘समयः’ शब्दसे सिद्धान्तका बोध होता है। ‘सुगत-समय’ कहनेसे ‘सुगत-सिद्धान्त’ या ‘गौतम-सिद्धान्त’का बोध होता है। आदि बुद्ध या विष्णुके अवतार बुद्धका दूसरा नाम सुगत है। यही नाम बौद्ध सम्प्रदायमें प्रचलित है। ‘अमरकोष’ इसका साक्षी है। इसके रचयिता शून्यवादी बौद्ध अमरसिंह हैं। यह एक सुप्राचीन ग्रन्थ है। अमरसिंहका आविर्भावकाल आचार्य शङ्करके आविर्भावसे न्यूनाधिक १५० वर्ष पूर्व होनेका अनुमान किया जाता है। वे द्विज शबर स्वामीकी एक शूद्राणीके गर्भजात पुत्र थे। इनके सम्बन्धमें पण्डित-समाजमें अति प्राचीन समसे एक श्लोक प्रचलित है—

ब्राह्मण्यामभवद् वराहमिहिरो ज्योतिर्विदाभग्रणीः
राजा भर्तृहरिश्च विक्रमनृपः क्षत्रात्मजायामभूत्।
वैश्यायां हरिचन्द्रो वैद्यतिलको जातश्च शङ्कुः कृती॥
शुद्रायाममरः षड्वेव शबरस्वामी द्विजस्यात्मजाः॥
अमरकोषके दो बुद्ध

अमरसिंहने बौद्ध-धर्मके अनेक ग्रन्थोंकी रचना की थी। दैववश उनके सारे ग्रन्थ आचार्य शङ्करके हाथोंमें पढ़े। आचार्यने ‘कोष-ग्रन्थ’ को रख बाकी सभी ग्रन्थोंको जला दिया। उनके सुरक्षित इसी अमरकोषमें ही बुद्धदेवके सम्बन्धमें लिपिबद्ध है—

सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः।
समन्तभद्रो भगवान् मारजिल्लोकजिज्जिनः॥
षड्भिज्ञो दशवलोऽद्वयवादी विनायकः।
मुनीद्रः श्रीघनः शास्त्रामुनिः” (६) ‘शाक्यमुनिस्तुयः
स शाक्यसिंहः सवार्थसिद्ध शौद्धादनिश्च सः।
गौतमश्चार्क बन्धुश्च मायादेवीसुतश्च सः॥।” (७)

उक्त श्लोकमें “सर्वज्ञः” से लेकर “मुनिः” पर्यन्त अठारह नामोंसे बुद्ध अर्थात् (६) “आदि बुद्धको लक्ष्य किया गया है। (७) ‘शाक्यसिंहमुनिस्तु’ से “मायादेवीसुतश्चसः” पर्यन्त शाक्यसिंह बुद्ध और बादके सात नामोंसे परिचित बुद्ध कभी एक नहीं। इस सम्बन्धमें श्रीरघुनाथ चक्रवर्ती महोदयकी टीका आलोच्य है। मैं उसके प्रयोजनीय अंश उद्धृतकर पाठकवर्गको समझानेकी चेष्टा करूँगा। चक्रवर्ती

महोदयने उक्त श्लोकोंमें ‘मुनिः’ पर्यन्तको एक भाग एवं अवशिष्ट अंशको एक दूसरे भागमें विभक्तकर स्वर्ग वर्गमें ‘६’ और ‘७’ दोनों संख्याओंमें टीका की है। ‘६’ संख्या यथा—

“मुनिः पर्यन्तम् अष्टादश बुद्धः”

अर्थात् ‘सर्वज्ञ’ शब्दसे लेकर ‘मुनिः’ पर्यन्त बुद्ध-वाचक है। अतः सुगत-शब्द भी विष्णुबुद्ध-वाचक है। अब ‘७’ संख्याकी टीका देखिए—

“एते सप्त शाक्यवंशावतीर्ण बुद्धमुनि विशेषे”

अर्थात् ‘शाक्यसिंह’ शब्दसे ‘मायादेवी सुतश्च’ पर्यन्त ७ शब्दोंसे शाक्यवंशावतीर्ण शाक्यसिंह मुनि या बुद्धमुनिको समझा जाता है। उक्त श्लोक तथा टीकासे स्पष्टतः प्रतीत होता है कि सुगत बुद्ध और शून्यवादी मुनि बुद्ध एक नहीं। यहाँ पाठकवर्गसे माननीय Mr, Carey महोदय द्वारा मुद्रित तथा Mr. H.T. Cole Brooke महोदय द्वारा सन् १८०७ ई. में श्रीरामपुरसे प्रकाशित ‘अमरकोष’ ग्रन्थको देखनेका अनुरोध करूँगा। इस ग्रन्थके २ और ३ पृष्ठोंपर ‘बुद्ध’ शब्दका परिचय दिया गया है। २ पृष्ठपर Marginal note में प्रथमोक्त अष्टादश नामोंके सम्बन्धमें ‘AJINA Or. BUDDHA’ लिखा है तथा शेषके सात नामोंके Marginal note में इस प्रकार लिखा है। इस शेषोक्त बुद्ध शब्दके (b) foot note में लिखा है, (b) The founder of the religion named from him श्री एच. टी. कोल ब्रुक महोदयने जिन जिन टीकाओंका अवलम्बनकर इस ग्रन्थको प्रकाशित किया है, उन्हें अपनी भूमिकामें लिपिबद्ध किया है। उन्होंने माननीय रघुनाथ चक्रवर्ती महोदयकी टीकाके अलावा भी अन्य पच्चीस टीकाओंका उल्लेख किया है। गौतम बुद्धने ही बाह्यात्मवाद, ज्ञानात्मवाद तथा शून्यवादकी स्थापना की है। ‘सुगत’-बुद्धमें किसी प्रकारकी नास्तिकताकी गन्धका प्रमाण भी नहीं मिलता। शून्यवादी सि द्वार्थ कपिल-वंशके गौतम मुनिके शिष्य थे, इसीलिए उनका दूसरा नाम गौतम है।

“गुरुगोत्रादतः-कौत्स्नाते भविन्त स्म गौतमाः”

सुन्दरानन्द चरित

(क्रमशः) □

अभिकि मार्गका संक्षिप्त परिचय पिछली संख्याके “अभिकि-मार्ग”—शीर्षक लेखमें मैंने दिया है।



श्रीभक्ति मार्ग

—श्रील सरस्वती ठाकुर ‘प्रभुपाद’

यहाँ श्रीभक्ति-मार्गके सम्बन्धमें पाठकवर्गसे कुछ निवेदन कर रहा हूँ। अप्राकृत इन्द्रिय द्वारा अप्राकृत कृष्णका अनुशोलन ही भक्ति है। जो अभक्तिका मार्ग नहीं है और जिस पथमें अनुकूल अप्राकृत कृष्ण-सेवाकी बातें हैं, वही शुद्ध भक्तिका पथ है। अनुकूल कृष्ण-अनुशोलन कहनेसे कृष्णसे इतर अभिलाषा नामक प्रतिकूल मायिक विषय भोगको परित्यागकर शुद्धजीवोंके हरि-सेवन वृत्तिका बोध होता है अर्थात् प्रकृतिसे अतीत अप्राकृत वस्तु जीव अप्राकृत उपादानसे अप्राकृत-वैकुण्ठमें कृष्णका अप्राकृत अनुशोलन करता है। उस भक्तिमें वैकुण्ठेतर जड़मायाकी कोई उपयोगिता नहीं होती। नारद-पञ्चरात्रमें कहा गया है कि शुद्ध जीवकी अप्राकृत इन्द्रियों द्वारा अप्राकृत इन्द्रियाधिपति कृष्णके तत्परत्वसहित अर्थात् अनुकूल भावसे सभी उपाधियोंसे रहित सेवन या अनुशोलनको भक्ति कहते हैं।

माया और वैकुण्ठके धर्मार्थमें पार्थक्य

मायाका धर्म जीवको भोगोंमें प्रवृत्त कराना है, किन्तु वैकुण्ठका धर्म भक्ति है जो जीवको कृष्णदास्यमें नियुक्त करती है। मायाका धर्म प्राकृत अर्थात् भोगी जीवोंके इन्द्रियोंको तृप्त करनेवाला होता है और मायातीत वैकुण्ठ-धर्म अप्राकृत अर्थात् कृष्णकी इन्द्रियोंको प्रीति प्रदान करनेवाला है अथवा कृष्णके अप्राकृत रूप-रस-गच्छ-शब्द-स्पर्शादि विषयोंमें शुद्ध जीवकी अनुभूतिको वैकुण्ठ-धर्म कहते हैं। शुद्धजीवके इन्द्रियसमूह दुराशावश व्यतिरेक भावसे मायाके बाह्य विषयोंमें नियुक्त होनेसे उसका (जीवका) भोक्ताभिमान प्रबल होता है एवं तभी उसके स्वरूपकी विभ्रान्ति होती है। वह नित्य कृष्णदास्यको भूलकर मायाके आश्रयमें मा=नहीं या निन्दनीय, या=जो, अर्थात् माया=जो कृष्ण नहीं है अथवा ‘मियते अनया’ अर्थात् बाह्य-वस्तुका भोक्तृत्व अवलम्बनकर प्राकृत अभिमानमें नित्य संसार-भोगका पथ ग्रहणकर अपने भोग्य विषय-प्रकृत रूप-रसादिके परिमाण (मापतौल) में व्यस्त रहता है। शुद्ध-जीवके इन्द्रिय-समूह जब अनुकूल भावसे कृष्ण-प्रीतिके उद्देश्यसे कृष्णकी

इन्द्रियोंकी सेवामें नियुक्त होते हैं, तब जीवका अप्राकृत भोग्य अभिमान प्रबल होता है, जिसे भोगीजन निर्बुद्धिता कहकर नितान्त घृणा करते हैं, क्योंकि इसमें भोक्ताकी स्वार्थपरताका सम्पूर्णरूपसे निषेध होता है। अप्राकृत इन्द्रियों द्वारा कृष्ण-सेवाकी यह वृत्ति ही जीवके स व रु प क । उपलब्ध कराती है।

नीलकण्ठीय भक्ति या मायाका भजन भक्ति नहीं

दक्षिण भारतके नीलकण्ठीय शैव, विशिष्टाद्वैतवादकी भक्ति और किसी शुद्ध भक्त या रामानुजीय विशिष्टाद्वैतवादकी भक्ति एक नहीं। दोनोंमें आकाश-पातालका अन्तर है। जहाँ पर शुद्ध जीवानुभूति अपवर्ग लाभकर वैकुण्ठ-वस्तु भगवान्को भोक्ता जाननेके बदले अपना भोग्य समझती है, उसे दूसरे शब्दोंमें प्राकृत भोग अथवा अवैष्णव-धर्म कहते हैं। वहाँ मायाके साथ भगवान् योष (नारी) और जीव पुरुष होता है। अवैष्णवोंकी रुचिके अनुकूल मायाको ‘कृष्ण’ संज्ञा देकर मायाके भजनसे ही प्राकृत सहजिया, थियोसफी, बाउलादि इत्यादी उत्पत्ति हुई है, यह वैष्णवोंका भक्ति-धर्म नहीं है।

उपास्य तत्त्वमें मातृत्वका आरोप भक्ति नहीं

श्रीमन्महाप्रभुने प्रेम-भक्तिके सिलसिलेमें जिन दास्यादि रसोंका उपदेश दिया है उनमें अवैष्णवोंके उपास्य मातृत्वका आरोप कृष्णमें कहीं भी नहीं किया गया है, क्योंकि वैसी स्थिति भक्ति-धर्मका प्रतिकूल विषय है। मायावादी मौखिकरूपसे गौरभक्त बनकर श्रीकृष्णमें मातृत्व या कृष्णके साथ मायाकी एकताका आरोपकर भक्ति-धर्मका पथ भूल बैठते हैं।

प्राकृत सहजिया—(१) प्राकृत पुरुष-देहमें

योषित्-कल्पना

प्राकृत सहजिया (Anthropomorphists) कृष्णलीलाका अनुसरणकर अपनी प्राकृत भोगमय इन्द्रियसुखकर प्रवृत्तिको ही भक्ति समझते हैं। प्राकृत सहजिया दो प्रकारके होते हैं। जो प्राकृत इन्द्रिय तृप्ति परायण होकर कर्मफलके अनुसार प्राकृत पुरुष-शरीर धारण करके भी अपनेको योषित् (नारी) कल्पनाकर

स्थूल भोगोंमें आसक्त हैं एवं योषित् गुरु पर कृष्ण होनेका आरोपकर अपने को भावमार्गमें अवस्थित समझते हैं तथा प्राकृत जड़ सम्भोगको हरिलीलाका प्रकार भेद समझते हैं, वे एक प्रकारके सहजिया हैं।

प्राकृत सहजिया—(२) स्त्रैण गृहव्रत धर्मद्वारा कृष्ण प्रेम लाभ

दूसरे प्रकारके सहजिया सम्प्रदायका कहना है कि भोग्या स्त्री मात्र ही अप्राकृता है और भोक्ता पुरुष मात्र ही अप्राकृत है। स्त्रैणभावका पोषण करते हुए गृहव्रत धर्मका पालन करनेसे ही पुरुषोंका प्राकृतत्व कम होते-होते क्रमशः कृष्ण-प्रेम उदित होता है। इनके मतमें परमहंस वैष्णव गृहव्रती नहीं होनेके कारण वैधी साधकभक्त-श्रेणीके निम्नस्थ अधिकारी हैं तथा इन साधकोंको कृष्ण-प्रेमकी उपलब्धि नहीं होती। पवित्र हरि-सेवामें रत गृहस्थ वैष्णवोंको ये लोग अपनी तरह गृहव्रती समझते हैं। स्त्रैण न होकर शुद्ध गृहस्थ वैष्णवगण हरिभजन कैसे कर सकते हैं—वे इसे समझना नहीं चाहते। वे कृष्णके संसारके समस्त अर्थोंको केवल अपनी बहिर्मुखी विषय-प्रवृत्ति चरितार्थ करनेके उद्देश्यसे व्यय करते हैं तथा स्त्री-पुत्रादिकी माया-ममतामें आत्म-बलिदान किया करते हैं।

गृहस्थ वैष्णवोंका वैराग्य और स्त्रैण विषयीका सम्भोग रस एक नहीं

झड़ू ठाकुर या श्रीवासादिकी शुद्ध-भक्ति, श्रीरामानन्दरायका सुतीव्र वैराग्य, श्रीमन्महाप्रभुके भक्तोंका कृष्णोत्तर विषयोंसे वैराग्यप्रधान भाव और महाप्रभुके संन्यासका कारण समझनेमें अक्षम होकर ये अपने गृहव्रतधर्मके पालन और निज-निज इन्द्रिय तर्पण करनेमें ही आनन्द लाभ करते हैं। हरिभक्तिके नामपर इन्द्रिय-तर्पण (विषय-भोग) करनेमें खूब आनन्द लूटते हैं। स्त्रैण-विषयी लोग स्वजाति, स्वदेश और स्वदलमें रहकर रसगान सुनकर भक्तिको पार्थिव विचार (Material idea) अथवा प्राकृत समझकर शुद्ध गृहस्थ वैष्णवोंके चरणोंमें अपराधी होते हैं। श्रील भक्तिविनोद आनन्दसे गद्गद होकर 'मर्तिन् कृष्ण' श्लोक त्रय द्वारा इन विचारोंको खूब ही सुन्दररूपसे विश्लेषणकर समझाते थे। अपने सुखके लिए

सम्भोग-रसके उदय होनेपर वैसे आनन्दके प्रति भक्तोंको महाक्रोध होता है। श्रीचैतन्य चरितामृत आदि लीला चतुर्थ परिच्छेदके २०१ संख्यक पयार में कहा गया है—

निज प्रेमानन्दे कृष्ण सेवानन्द बाधे।
से आनन्देर प्रति भक्तेर हय महाक्रोधे॥
(कृष्ण-सेवानन्दमें बाधा प्रदान करनेवाले अपने आनन्दके प्रति भक्तोंको महाक्रोध उत्पन्न होता है।)
अङ्गस्तम्भारम्भमुतुङ्गयन्तं—
प्रेमानन्द दारुको नाभ्यनन्दत्॥

कंसारातेर्वर्जिने येन साक्षादक्षो—
दीयानन्तरायो व्यधायि॥ *

(भक्तिरसामृत सिन्धु, प० वि० २ तीय लहरी २३ श्लोक)

आर शुद्ध भक्त कृष्ण प्रेम-सेवा बिने।
स्वसुखार्थ सालोक्यादि ना करे ग्रहणे॥
(चै. च. आ. ४/२०४)

(शुद्ध भक्त कृष्ण-प्रेम-सेवाका परित्यागकर आत्म-सुखके लिए सालोक्यादि चतुर्विध मुक्ति भगवान्के द्वारा दिये जानेपर भी ग्रहण नहीं करते।)

आत्यन्तिक भक्तियोग

श्रीमद्बागवतके तृतीय स्कन्धमें कहा गया है कि श्रीकपिलदेव अपनी मातासे बोले कि जिनके हृदयमें अहैतुकी ओर विघ्नरहित कृष्ण-भक्ति उदित हुई है, उन्हें मेरे साथ समलोक, समरूप, समैश्वर्य और मेरा सामीप्य लाभ—इन चार प्रकारकी मुक्ति-सम्भोग देनेपर भी वे उसे ग्रहण नहीं करते। वे केवल मेरी सेवा प्रार्थना करते हैं। यही आत्यन्तिक भक्तियोग है।

रागानुगा भक्तिका साधन और परिचय

भक्ति-रसकी पराकाष्ठा गोपी-प्रेममें है। यह प्राकृत-काम-गन्धीन होता है। चरितामृतकी कतिपय कविताएँ इस विषयमें रागानुगीय भक्ति-साधकोंके उदाहरणस्वरूप हैं। इस अपूर्वभावसमूहसे विमुख होकर कोई भी रागानुगा-साधक अपना कल्याण लाभ नहीं कर सकता। स्त्री-पुरुषगत प्राकृत-रसके विप्रलभ्ममें (विरहमें) दुख-कष्टका अनुभवकर इसकी हेयताको अप्राकृत विप्रलभ्ममें

*अर्थात् श्रीकृष्णको चँवर व्यजन करनेके समय प्रेमानन्दसे उत्पन्न अपने देहकी जड़ताको कृष्ण सेवामें विघ्न समझकर दारुकने उसका अभिनन्दन न किया अर्थात् वे बड़े दुःखी हुए।

आरोपकर उससे बचनेके लिए कोई सम्भोग-रसका आवाहन न कर बैठे, इसीलिए श्रील भक्तिविनोदजीने अपने आश्रितजनोंको खूब ही सावधान किया है। जो उनके उपदेशका उल्लङ्घनकर अन्य पथके पथिक हुए हैं, उनके प्रति हमारा कुछ भी वक्तव्य नहीं है। श्रीचैतन्य चरितामृतके कुछ पयार इस प्रकार हैं—

आत्म-सुख-दुखे गोपीर नाहिक विचार।

कृष्ण-सुख-हेतु करे सब व्यवहार॥१॥

(आ. ४/१७४)

कामेर तात्पर्य—निज सम्भोग केवल।

कृष्ण सुखतात्पर्य—मात्र प्रेम त' प्रबल॥२॥

(आ. ४/१६६)

आत्मेन्द्रिय-प्रीतिवाञ्छा तारे बलि काम।

कृष्णोन्द्रिय प्रीति-इच्छा धरे प्रेम नाम॥३॥

(आ. ४/१६५)

सर्वत्याग करि' करे कृष्णोर भजन।

कृष्ण-सुख-हेतु करे प्रेम-सेवन॥४॥

(आ. ४/१६९)

अतएव काम-प्रेमे बहुत अन्तर।

काम—अन्धतमः, प्रेम—निर्मल भाष्कर॥५॥

अतएव गोपीगणेर नाहि कामगन्थ।

कृष्ण-सुख लागि मात्र, कृष्णसे सम्बन्ध॥६॥

(आ. ४/१७१-१७२)

ए देह-दर्शन स्पर्शे कृष्ण-सन्तोषण।

एइ लागि करे अङ्गेर मार्जन-भूषण॥७॥

(आ. ४/१८३)

गोपीगण करेन जबे कृष्ण दरशन।

सुखवाञ्छा नाहि, सुख हय कोटि गुण॥८॥

(आ. ४/१८६)

ताँ सबार नाहि निज सुख-अनुरोध।

तथापि बाड्ये सुख, पड़िल-विरोध॥९॥

(आ. ४/१८८)

आमार दर्शने कृष्ण पाइल एत सुख।

एइ सुखे गोपीर प्रफूल्ल अङ्ग-मुख॥१०॥

(आ. ४/१९१)

अतएव सेई सुख कृष्ण-सुखे पोषे।

एइ हेतु गोपी-प्रेम नाहि काम-दोष॥११॥

(आ. ४/१९५)

प्रीतिविषयानन्दे

ताहाँ नाहि निज-सुख-वाञ्छार सम्बन्ध॥१२॥

(आ. ४/१९९)

सखीर स्वभाव एक अकथ्य कथन।

कृष्णसह निज-लीलाय नाहि सखीर मन॥१३॥

(म. ८/२१५)

सहज गोपीर प्रेम, नहे प्राकृत-काम।

कामक्रीड़ा-साम्ये तार नाहि काम-नाम॥१४॥

(म. ८/२१५)

निजेन्द्रिय-सुखहेतु कामेर तात्पर्य।

कृष्ण-सुख-तात्पर्य गोपीभाव-वर्य॥१५॥

निजेन्द्रिय-सुखवाञ्छा नाहि गोपीकार।

कृष्णे सुख दिते करे सङ्गम-विहार॥१६॥

सेई गोपी भावामृते जाँर लोभ हय।

वेदधर्म त्यजिसे कृष्णके भजय॥१७॥

रागानुगमार्गे ताँरे भजे जेई जन।

सेई जन पाय ब्रजे ब्रजेन्द्रनन्दन॥१८॥

(म. ८/२१७-२१८, २१०-२११)

ना गनि आपन-दुःख, सबे वाञ्छि तार सुख,

ताँर सुख-अपार तात्पर्य।

मोरे यदि दिया सुख, ताँर हैल महासुख

सेई दुःख-मोर सुख वर्य॥१९॥

(अ. २०/५२)

निज-सुख माने लाभ, पड़ूक तार शिरे बाज,

कृष्णोर मात्र चाहये संतोष॥२०॥

(अ. २०। ५५)

अर्थात्—गोपियों को आत्म-सुख-दुःखकी तनिक

भी स्पृहा नहीं रहती; उनके सभी व्यवहार केवल

कृष्णको सुखी करनेके लिए होते हैं॥१॥

कामका तात्पर्य केवल आत्म-संभोगके लिए होता

है किन्तु प्रेम में तो कृष्ण-सुखकी अभिलाषा ही प्रबल

होती है॥२॥

अपने सुख-संभोगकी वाञ्छाका नाम काम है और

कृष्ण-सुखकी अभिलाषाको प्रेम कहते हैं, अथवा मैं

कृष्णदास हूँ—इस बुद्धिके अनुगत होकर जो सभी

वाञ्छाएँ होती हैं, उसे प्रेम तथा मैं फल भोक्ता हूँ—इस

बुद्धिसे चालित होकर जिन वाञ्छाओं का उद्गम होता

है, उसे काम कहते हैं॥३॥

भोक्ता अपना सर्वस्व-त्यागकर कृष्णका भजन

करता है; वह कृष्ण की प्रेम-सेवा करता है—केवल कृष्णके सुख के लिए ही ॥४॥

अतएव काम और प्रेममें बहुत ही अन्तर है। काम—घोर अंधकारस्वरूप है तथा प्रेम—निर्मल भाष्कर स्वरूप है ॥५॥

अतएव गोपियोंमें कामका गंध तक नहीं। उनका कृष्णके साथ सम्बन्ध तो केवल कृष्णको सुख देनेके निमित्त होता है ॥६॥

हमारे देहके दर्शन और स्पर्शनसे कृष्णको आनंद होता है—ऐसा जानकर गोपियाँ अपने अंगों का मार्जन और श्रृंगार करती हैं ॥७॥

गोपियोंको कृष्णके दर्शनमें आत्म-सुखकी वाज्ञा नहीं रहती, तथापि गोपियोंके दर्शनसे कृष्णको जितना सुख प्राप्त होता है, उस सुखसे कोटिगुणा सुख होता है गोपियोंको कृष्ण दर्शन से ॥८॥

उन्हें अपने सुखकी अभिलाषा नहीं रहती, फिर भी उनका सुख उत्तरोत्तर उज्ज्वल होकर बढ़ता जाता है। कहाँ गोपियाँ आयीं कृष्णको सुख देने—यहाँ तो इनका ही सुख कोटिगुणा अधिक बढ़ गया, अतः यहाँ विरोध उपस्थित हो जाता है ॥९॥

संशय यह होता है कि गोपियोंको भी जब कृष्ण-दर्शनसे सुख होता है तब गोपी-प्रेमको भी 'काम' क्यों न कहा जाय? यहाँ ग्रन्थकार इस संशयका छेदन करते हुए कहते हैं कि यहाँ ऐसे संशयकी सम्भावना नहीं, क्योंकि उनके अंगोंके दर्शनसे कृष्णको इतना आनन्द हुआ है—इससे मन ही मन सुख अनुभवकर उनका बदनकमल आनन्द से विकसित हो जाता है। यहाँ गोपियोंके मनका भाव ऐसा होता है—“हमें आनन्दित देखकर कृष्ण अधिक सुखी होते हैं, अतः हमें अधिकतर प्रफुल्ल रहना चाहिये।” अतः गोपी-सुख कृष्ण-सुखका पोषक है। अतएव गोपी-प्रेममें आत्म सुख-वाज्ञा-रूपी काम दोष नहीं है ॥१०-११॥

प्रीतिके विषय कृष्ण हैं, उनका आनन्द ही उनकी प्रीतिके आश्रय गोपियोंका आनन्द है। इस प्रकार

आनन्द समृद्धिमें गोपियोंको आत्म-सुखकी वाज्ञासे सम्बन्ध नहीं है ॥१२॥

सखियोंकी एक अकथनीय बात यह है कि उनको कृष्णके साथ स्वयं लीला करनेमें आनन्द नहीं आता—उन्हें तो श्रीकृष्णके साथ श्रीमती राधाकी लीला करकर ही अपूर्व सुख प्राप्त होता है ॥१३॥

गोपियोंका प्रेम सहज अर्थात् स्वाभाविक होता है। उनका प्रेम प्राकृत काम नहीं है। उसमें काम-क्रीड़ाका कुछ साम्य रहनेके कारण उसका नाम काम भी है ॥१४॥

अपने सुखकी अभिलाषा ही कामका तात्पर्य होता है, पर गोपी भावमें केवल कृष्ण-सुखकी ही अभिलाषा होती है। अतः गोपीभाव ही श्रेष्ठ है ॥१५॥

गोपियोंमें अपने सुखकी अभिलाषा नहीं होती। उनका कृष्णके साथ मिलन और विहार तो कृष्णके सुखके लिए ही होता है ॥१६॥

गोपियोंका कृष्णके प्रति जो स्वाभाविक राग (प्रेम-भाव) होता है, उस गोपीभावामृतके लिए जिसे लोभ होता है, वह वेद-धर्म (वैधी भक्ति) को त्यागकर रागानुगामार्गसे कृष्णका भजनकर ब्रजमें ब्रजेन्द्रनन्दनको प्राप्त करता है ॥१७-१८॥

गोपियाँ अपने सुख-दुःखकी गणना नहीं करतीं, उन्हें कृष्णसुखकी कामनाके अतिरिक्त अपने लिए स्वतन्त्र सुखकी कामना नहीं होती। एक गोपी कहती है—“मैं अपने दुर्खाँका विचार नहीं करती। मैं तो सर्वदा उनके ही सुखोंकी अभिलाषा करती हूँ—उनका सुख ही मुझे एकमात्र इष्ट है। यदि मुझे दुख देने से उन्हें महासुख हो, तो वही दुःख मेरे लिए सर्वश्रेष्ठ सुख है ॥१९॥

जो निज सुखमें ही अपनेको कृतार्थ समझता है उनके सिरपर बज्रपात हो अर्थात् उसका सर्वनाश हो। वह तो प्राकृत संभोग परायण सहजिया अभक्त हो पड़ता है। एकमात्र कृष्णको आनन्द हो—मुझे तो यही चाहिए” ॥२०॥ □

(क्रमशः)

सम्प्रदाय की परिभाषा और उसकी उत्पत्ति



विशुद्ध साम्प्रदायिकता ही आर्य-धर्मका गौरव है

—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद

साम्प्रदायिकताकी निन्दा करना ही आर्य-शास्त्रोंकी निन्दा है। आर्य-शास्त्र जीवमात्रके लिये मंगलप्रद हैं। वे अन्यान्य असम्पूर्ण धर्म-शास्त्रोंकी तरह संकीर्ण मतके प्रचारक नहीं हैं। जीवमात्र एक ही अधिकारमें अवस्थित है, ऐसा कहनेसे केवल विज्ञान और इतिहास ही सन्तुष्ट हो सकते हैं। वस्तुतः समस्त जीव भिन्न-भिन्न अधिकार प्राप्त भिन्न-भिन्न स्तरोंमें अवस्थित हैं। जिनमेंसे कुछ जीवोंका किसी मूलविषयमें अधिकारोंकी एकता है, उनका एक सम्प्रदाय है। उनके लिये शास्त्र जो उपदेश प्रदान करते हैं, वह उपदेश अन्य अधिकारगत सम्प्रदाय के लिये स्वीकार करने योग्य नहीं होता। इसी अधिकारके विचारक्रमसे ही कर्मी, ज्ञानी तथा भक्तोंके भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय हैं। भक्तोंमें भी अधिकारके भेदसे पृथक-पृथक सम्प्रदाय हैं। सम्प्रदायोंकी व्यवस्था ही आर्य-शास्त्रों और आर्य-आचार्योंके लिये प्रधान गौरवका विषय है। एक ही विद्यालयके अन्तर्गत जिस प्रकार दश या बारह श्रेणियाँ होती हैं, आर्य-जातिके परमार्थ विद्यालयमें उसी प्रकार कतिपय सम्प्रदायोंकी व्यवस्था की गई है। सम्प्रदायोंके पृथक-पृथक रहनेसे इस आर्य महाविद्यालयकी एकता नष्ट हो जाती हो, ऐसी बात नहीं।

**अँग्रेजी 'सेक्टरियन' तथा
शास्त्रीय 'साम्प्रदायिकता'**

**शब्द एक नहीं, जीवोंका अधिकार-विचार
ही शुद्ध साम्प्रदायिकता है**

पाश्चात्य विचार-शास्त्रमें जो 'Sectarian' शब्द व्यवहृत होता है, उसका अर्थ दूसरे प्रकारका है। साम्प्रदायिक धर्म अन्यान्य धर्मोंको एक विद्यालयकी भिन्न-भिन्न कक्षाओंकी तरह मानता है। 'साम्प्रदायिक' शब्दका अर्थ विकृतकर जो सम्प्रदाय-प्रणालीकी निन्दा करते हैं, वे शास्त्रोंके विषयमें नितान्त अनभिज्ञ हैं। एक सम्प्रदायका व्यक्ति दूसरे सम्प्रदायका प्रवेशाधिकार लाभ करनेसे उस सम्प्रदायमें प्रवेशकर सकता है। इस प्रकार एक सम्प्रदायसे दूसरे सम्प्रदायमें गमन करते-करते जीव अनेक जन्मोंमें सर्वोच्च

सम्प्रदायको प्राप्तकर चरितार्थ हो जाता है। "अनेक-जन्म संसिद्धस्ततो याती परांगतिमिति"—भगवान्‌का यह वचन अतिशय स्पष्ट है। अधिकार लाभ करनेसे अधिकारोचित सम्प्रदाय लाभ किया जा सकता है, किन्तु अधिकारका विचार किये बिना ही यदि किसी सम्प्रदायको ग्रहण किया जाय तो अधोपतन अवश्यम्भावी है। जिस अधिकारमें जो उपदेश है, वही उपदेश उस अधिकारका मत है तथा वही मत उस अधिकार-निर्दिष्ट सम्प्रदायका मत है। यदि कोई भिन्न-भिन्न सम्प्रदायोंके मतको एक अधिकारमें सन्त्रिवेशित करना चाहता है तो उसका एक भिन्न मत हो जाता है, विशुद्ध मत नहीं।

असाम्प्रदायिक मत अनार्यमत है एवं अधिकारके अनुसार शैव-शक्तादि सम्प्रदाय भेद जीवोंके लिये मङ्गलजनक हैं।

गुरुपम्परा-प्राप्त अधिकार सिद्ध उपदेशको हमारे आर्य ऋषियोंने साम्प्रदायिक मत निर्दिष्ट किया है। **असाम्प्रदायिक मत ही अनार्यमत है।** 'सम्प्रदाय विहीनाः ये मन्त्रास्ते निस्फला मताः' इत्यादि ऋषि वाक्योंके द्वारा हम जानते हैं कि सम्प्रदाय प्रणाली की निन्दा करनेवाले व्यक्ति नितान्त अनार्य और शिष्टाचार शून्य हैं। उपासना-काण्डमें शैव, शाक्त तथा गणपत्य प्रभृति जितने सम्प्रदाय हैं, ये सभी देवदेव महादेवके वाक्य अथवा पूज्यपाद ऋषियों वचनोंके द्वारा भिन्न-भिन्न अधिकार-प्राप्त जीवोंके मंगल साधनके लिये निर्दिष्ट हुए हैं। **उपास्य वस्तु मूलतः एक है, उसमें भेद नहीं।** केवल उपासकोंके अधिकार भेद से उपास्य-वस्तुका पार्थक्य सिद्ध हुआ है।

अधिकार-निष्ठा जीव को उन्नत करती है।

अपने-अपने उपास्य वस्तुमें विशेष निष्ठाका होना श्रेष्ठ होता है। वे उपास्य वस्तु ही क्रमशः कृपा कर उच्चाधिकार देकर उस उस अधिकारके उपयोगी मूर्तिसे प्रकाशित होते हैं। इसीलिये ऋषिगण सर्वत्र अधिकार निष्ठाको प्रबल रखनेके लिए उस-उस अधिकारके उपयुक्त मतको सर्वोच्च कहते गए हैं। शाक्त लोग जब विशुद्ध होते हैं, तब वे वामाचारके

निर्माल्यादिका सेवन नहीं कर सकते, तब वे जप यज्ञादि द्वारा श्यामाकी पूजा करने लगते हैं। उसी प्रकार जो वैष्णवाधिकार लाभ करते हैं, उन्हें भगवत्-निर्माल्यके सिवा अन्य निर्माल्य पानेका अधिकार नहीं रहता।

**निर्गुण निर्माल्यके अतिरिक्त
देव-देवियोंके सात्त्विकादि गौण निर्माल्य
वैष्णवोंके लिये अग्राह्य हैं।**

“सात्त्विकभावसे पूजा होनेसे वैष्णव लोग अन्य देवताओंका निर्माल्य ग्रहणकर सकते हैं” यह वाक्य निर्दोष नहीं है। वैष्णवोंकी उपासना निर्गुण होती है। वे सात्त्विक पूजाके निर्माल्य ग्रहण करनेके अधिकारी नहीं। वे तो निर्गुण पूजाके निर्माल्य ग्रहण करनेके ही अधिकारी हैं।

विष्णुके प्रसाद-नैवेद्य द्वारा देव देवियोंकी पूजा गौण नहीं।

श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्र में भगवत्-प्रसाद श्रीविमला देवीको अर्पण किया जाता है। वही प्रसाद समस्त वैष्णवोंके लिये ग्राह्य है। ‘विष्णो निवेदितात्रेन यष्टव्यं देवातान्तरमिति’—इस ऋषि वाक्य द्वारा वैष्णवोंके विष्णु नैवेद्य द्वारा अन्य देवताओं तथा पितृ-पुरुषोंकी पूजाका विधान दिया गया है। ये सभी बातें साधारणके विचारका विषय नहीं। आधिकार-प्राप्त व्यक्ति अपने अपने गुरुदेवके निकट इसकी विधि और तात्पर्य समझें।

विभिन्न सङ्घ, सभा, समिति प्रभृति सभी साम्प्रदायिक हैं, उनकी स्व-स्व निष्ठा ही मङ्गल-जनक है।

हरि सभाओंके प्रति हमारा विद्वेष नहीं। प्रत्युत् उनका नाम सुनते ही श्रद्धा करते हैं। हरि सभाएँ नष्ट हो जाय-ऐसी हमारी कामनाएँ नहीं। बल्कि भगवान्‌के चरणकमलोंमें प्रार्थना करते हैं कि ये सभी सभा-समितियाँ सदा ही विशुद्ध हरिभक्ति स्वयं आस्वादन करें और उसका बहुल प्रचार करें। अनार्य-सभाका अनुकरणकर अधिकार-तत्वके विरुद्ध मतका प्रचार

न करें। ‘हरि भक्ति दायिनी’ ‘हरि भक्तिप्रचारिणी’ प्रभृति नाम ग्रहणकर विशुद्ध हरिभक्तिका अनुकूल्य विधान करना ही प्रयोजन है। वे अनान्य अधिकारके मत-सिद्ध कार्योंका अनुष्ठान न करें, हमारी उनसे यही प्रार्थना है।

अन्यान्य

अधिकारोंकी आर्य सन्तानें हष्टचित्तसे एकत्रित होकर आर्य-धर्म-रक्षिणी, शिव-सभा, काली-सभा, गणपति-सभा तथा कर्माधिकारके अनुसार याजिक-सभा और ज्ञानाधिकारके अनुसार अध्यात्म्य-सभा, ब्रह्म-सभादि स्थापन द्वारा अपनी अपनी अधिकार निष्ठको समृद्ध करें। इससे हम विपुल आनन्द लाभ करेंगे।

हरि सभाका एकान्त कर्तव्य।

हरिसभाके सदस्यवर्ग विमल हरिभक्तिका आस्वादन करें और उसका प्रचार करें। इसके सम्बन्धमें अधिक कुछ कहना ही बाहुल्य होगा। हमारा परामर्श यह है कि हरिसभाके सदस्यवर्ग उपयुक्त वैष्णव गुरुओंके निकट विशुद्ध हरिभक्ति शिक्षाकर उसे आस्वादन करें। पहले स्वयं शिक्षा न ग्रहणकर दूसरोंको शिक्षा देना विधि नहीं। यदि विशुद्ध हरिभक्ति प्रचार करना उहें अभिप्रेत न हो, तो सभा-समितियोंका नाम परित्यागपूर्वक ‘आर्य-सभा’ नाम ग्रहण करें, नहीं तो मांस की दुकानमें शाक और शाककी दुकानमें मांस विक्रय करनेसे जिस प्रकार व्यवहारमें साझ़र्य उपस्थित होता है उसी प्रकार उनकी भी अवस्था होती रहेगी। शाककी दुकानमें मांस देखकर ब्रह्मचारी, यतिगण जिस प्रकार कष्टका अनुभव करते हैं, उसी प्रकार विशुद्ध हरिभक्त हरिसभामें उपस्थित होकर मनुसंहिता पाठ, होम, याग, बाउल गान, हारमोनियम वाद्य तथा उज्ज्वल-नीलमणि जैसे रस-ग्रन्थका सर्वसाधारणके निकट पाठादि अधिकार-साझ़र्य देखकर हतज्ञान हो पड़ते हैं। जिन हरिसभाओंमें इस प्रकार साझ़र्य नहीं, वहाँ मिश्र मत नहीं और उनकी कोई निन्दा भी नहीं करता। वे तो हमारी ही सभाएँ हैं। उनका नाम ‘वैष्णव-सभा’ ही होना चाहिये। जिन सभाओंमें अधिकार-विचारशून्य मिश्र-मत है—वे सभाएँ

हास्यास्पद होंगी, इसमें संदेह क्या है?



भक्त कालीदास



भगवान् सदासे निष्कपट भक्तिके वशमें होते आए हैं। वे योग-याग, कर्म-ज्ञान, व्रत, होम, स्वाध्याय और तपस्यादि साधनोंसे उतने वशमें नहीं होते जितने भक्तिसे। अनन्य प्रेम-भक्ति-रज्जुके द्वारा भक्त भगवान्‌को बाँध लेता है। भक्त भगवान्‌का हृदय है, और भगवान् भी भक्तके हृदय हैं। भक्त भगवान्‌के अतिरिक्त किसीको नहीं जानता और भगवान् भी भक्तके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं जानते। शास्त्रोंमें ऐसे भक्तोंकी पदधूलि, पादोदक और उच्छिष्टका अत्यधिक माहात्म्य कीर्तन किया गया है। श्रीकृष्णके उच्छिष्टको महाप्रसाद कहते हैं, फिर वही महाप्रसाद भक्तोंका उच्छिष्ट होने पर महामहाप्रसाद कहलाता है। घृणा, लाज और भयका परित्यागकर इस महामहाप्रसादका सेवन करनेसे साधककी सारी वाँछाएँ पूर्ण होती हैं। भक्तिके साधन में ये तीनों महान बल देते हैं। जिन श्रद्धालु साधकोंकी श्रद्धा इन तीनोंके प्रति हुई, फिर भगवान् भी पदधूलिकी लालसासे उनके पीछे-पीछे दौड़ते हैं। ऐसे भक्तोंको जड़ीय भेद-दर्शन नहीं रहता। ऐसे भक्तोंका जीवन धन्य है। जगत् उनके दर्शनोंसे पवित्र हो जाता है। भक्त-प्रवर कालीदास जी ऐसे ही परम भागवतोंमेंसे थे।

सरस्वतीका विशाल वृक्ष शुष्क होनेपर भी बंगालके इतिहासमें इसकी पुरानी सुजला-सुफला मूर्ति स्वर्णाक्षरोंमें अंकित है। इसी सरस्वती नदीके किनारे सप्तग्राम एक समय बंगालका प्रसिद्ध बन्दरगाह और समृद्धिशाली नगर था। उसके पास ही भद्रूया नामक ग्राममें श्रीमन्महाप्रभुके समसामयिक कालीदासजीका जन्म हुआ। ये परम वैष्णव थे। बाल्यकालसे ही भगवत्राममें इनकी अपूर्व निष्ठा थी। खाते-पीते, चलते-फिरते, सोते-जागते सर्वदा भगवान्‌के मधुर

नामोंका उच्च स्वरसे कीर्तन करते थे। ये अपने गृहमें प्रत्येक कार्य “हरे कृष्ण हरे कृष्ण” के संकेतसे करते थे। वैष्णवोंके प्रति तो इनकी बड़ी ही अद्भुत निष्ठा थी। वे जहाँ कहीं भी वैष्णवोंका पता पाते, वहीं दौड़ जाते, उनके पास खानेके लिए उत्तम-उत्तम वस्तुएँ भेंटकर उनका उच्छिष्ट महामहाप्रसाद आग्रहसे माँगकर खाते। इसीमें वे परमानन्दका अनुभव करते। यदि कोई भक्त संकोचवश इन्हें अपना उच्छिष्ट नहीं देता तो ये आस-पास कहीं छिप जाते। जब वह भक्त उस प्रसादको खाकर उच्छिष्ट-पात्र बाहर फेंक देता तो ये उस पात्रको लेकर चाटने लगते और उसके अप्राकृत रसास्वादनमें विभोर हो जाते। ब्राह्मण-वैष्णवोंकी तो बात ही क्या, शूद्र कुलोद्भूत वैष्णवोंके घर भी लुक-छिपकर उनके उच्छिष्ट खाया करते। ये जीवोंको भगवद्वासके रूपसे दर्शन करते थे। अतः सर्वदा ही उनकी स्वाभाविक सेवा-वृत्ति थी। उनमें सीमित सामाजिक दर्शनका तनिक भी स्थान न था। वे उनके उच्छिष्टको महामहाप्रसादके रूपमें ग्रहण करते थे न कि सामाजिक ब्राह्मण या शूद्रकी धारणा से। ये तन्य होकर श्रीहरिनामका उच्च स्वरसे कीर्तन करते, भक्तोंका पादोदक पान करते, उनकी पदधूलि मस्तकपर धारण करते तथा उनके उच्छिष्ट महामहाप्रसादका सेवन बड़ी श्रद्धाके साथ करते थे। यहीं थी उनकी भक्ति और यही

था उनका साधन-भजन।

उनके पड़ोसमें झड़ू नामक एक परम वैष्णव रहते थे। ये जातिके शूद्र थे। इनकी स्त्री भी पति-परायणा और परमा वैष्णवी थीं। एक दिन श्री कालीदासजी इनके दर्शनोंके लिए इनके घर पधारे। साथमें कुछ पके सुन्दर आम थे। दम्पति उस समय भगवत्-कथामें मग्न थे। कालीदासने बड़ी श्रद्धासे प्रणाम किया। एक अभिजात्य वैष्णवको अचानक

अपनी झोपड़ीमें आया देखकर दोनोंके आशचर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने उठकर अपने अतिथिकी अधर्यथनाकर बड़ी प्रीतिसे बैठाया। परस्पर कुछ देर तक इष्ट-गोष्ठी होनेके बाद झडू ठाकुर अत्यन्त ही दीनतासे कहने लगे—“प्रभो! आज हमारा अहोभाग्य है। आपकी पवित्र चरणरजसे हमारी कुटिया पवित्र हो गई। आज हमारा जीवन सार्थक हुआ। किन्तु, मैं शूद्र कुलोद्भूत एक नीच आपका सत्कार किस तरह करूँ? आज्ञा हो, किसी ब्राह्मणके घरमें आपके भोजनकी व्यवस्था करवा दूँ।” कालीदासने कृतज्ञताके भारसे दबते हुये कहा—“महाराज! मैं बड़ा ही पतित और अधम हूँ। आपके श्रीचरणोंके दर्शन तथा आपके मुखसे श्रीभगवत्-कथामृतका रसास्वादन करनेके लिये मैं यहाँ आया था। आपके पवित्र दर्शनसे मुझे सब-कुछ मिल गया। फिर भी एक बड़ी कृपा होगी यदि आप अपने चरणोंको मेरे मस्तकपर रखकर उनकी पवित्र रजसे मुझे अभिषिक्त कर दें।” “आपको ऐसा कहना उचित नहीं”—झडू ठाकुरने गिडिगड़ाकर कहा—“कहाँ एक शूद्र जातिका अधम मैं और कहाँ एक कुलीन कायस्थ आप, आपके मुखसे ये बातें शोभा नहीं देतीं।”

कालीदास बीच ही में बोल उठे—“वैष्णवोंकी कोई जाति-पाँति नहीं होती। वह तो जाति बन्धनसे परे होते हैं क्योंकि उनकी देहात्म बुद्धि नहीं होती। वे कृपाकर जिस जाति और कुलमें आविर्भूत होते हैं वह जाति और कुल धन्य हो जाता है। कृष्ण-भजनमें जाति कुलका विचार नहीं रहता। कृष्ण-भजनका तारतम्य ही उनमें छोटे-बड़े होनेका तुला-दण्ड है। भगवान्‌को अभक्त ब्राह्मण प्रिय नहीं, प्रिय तो उनके भक्त हैं—चाहे वह शूद्र कुलका हो अथवा अन्य किसी कुलका। मैं एक कृष्ण-विमुख द्वादश गुण-विशिष्ट विप्रकी अपेक्षा कुक्कुर भोजी चण्डाल कुलमें आविर्भूत व्यक्तिको श्रेष्ठ समझता हूँ, जिसका मन, वचन, कर्म, चेष्टा, अर्थ और प्राण श्रीहरिके चरणोंमें अर्पित हैं। चारों वर्ण और चारों आश्रम भक्ति तक पहुँचनेमें एक एक सोपान हैं। जो सर्वोच्च शिखर पर आरूढ़ है, वह निम्नस्थ सोपानोंका अतिक्रमणकर चुका है—ऐसा समझना चाहिये। जिस प्रकार उच्च कक्षामें

विद्यार्थीमें निम्न श्रेणियोंकी योग्यता गौण-रूपसे वर्तमान होती है, उसी तरह वैष्णवोंमें ब्राह्मणत्व आदिगुण गौणरूपसे अनुस्यूत होते हैं। ब्राह्मणत्व लाभ किए बिना वैष्णवत्व प्राप्त नहीं किया जा सकता। जो भगवन्नामोंका कीर्तन करते हैं, वे चण्डाल कुलमें अवतीर्ण होनेपर भी श्रेष्ठ हैं। उन्होंने अपने पूर्व-पूर्व जन्मोंमें ही सारी तपस्याओंको कर लिया है, ब्राह्मणादि उच्चवर्णोंके अधिकारोंचित होमादि अनुष्ठानोंको समाप्त कर लिया है तथा उनका समस्त तीर्थोंमें स्नान हो चुका है। वे ही प्रकृत सदाचारी आर्य हैं और वे स-अंग वेद अध्ययन कर चुके हैं। शास्त्रोंमें इसके भूरि-भूरि प्रमाण हैं। आप परम भागवत हैं। आप कृपा करें।”

“आपका सारा कथन शास्त्र सम्मत परम सत्य है, मैं इसे मानता हूँ।” झडू ठाकुरने नम्रतासे कहा—“किन्तु वह भक्त होना चाहिए। मैं अधम भला भक्ति करना क्या जानूँ? आहार, निद्रा, भय, मैथुनरूप पुश-धर्ममें हमारा जीवन कट गया। भगवन्नाम और उनकी कथाओंमें तनिक भी रुचि न हुई। मैं तो विषय-गर्तमें पड़ा हुआ एक क्षुद्र कीट हूँ।”

कालीदासने कहा—“महात्मन! दैन्य भगवद्वक्तिकी सुदृढ़ भित्ति है। इसी सुदृढ़ भित्तिपर भगवद्वक्तिका विराट महल खड़ा है। हरि-संकीर्तनका वही अधिकारी है, जो अपनेको तृणकी अपेक्षा क्षुद्र समझता है, जो वृक्षकी तरह सहिष्णु होता है, जो स्वयं मानशून्य होकर दूसरोंको सम्मान प्रदान करता है। हरि-संकीर्तनका तारतम्य ही वैष्णवताका तारतम्य है। अतः जिसमें जितना अधिक दैन्य है, उसका हरि संकीर्तन उतना ही अच्छा होता है और जिसका हरि-संकीर्तन जितना ही अच्छा होगा वह उतना ही उत्तम वैष्णव है। दैन्य, वैष्णवता और हरि-संकीर्तन एक ही सूत्र में परस्पर संबद्ध हैं। आप दीनताकी प्रतिमूर्ति हैं। आप अपनेको शूद्र कुलके आवरण में ढककर मुझे वंचित करना चाहते हैं।”

इस प्रकार कालीदासके बहुत आग्रह करनेपर भी झडू ठाकुर अपनी चरणरज देनेके लिये प्रस्तुत न हुए। आखिर कालीदास उस दम्पतिको प्रणामकर बिदा

हुए। झङ्गू ठाकुर उन्हें कुछ दूर तक पहुँचाकर घर लौट आए। कालीदासने सुअवसर देखकर जिस स्थानपर झङ्गू ठाकुरके पदचिह्न पड़े थे उस स्थानकी धूल उठाकर मस्तकपर धारण की, फिर सारे अंगोंमें लगाई और लौटकर झङ्गू ठाकुरकी झोपड़ीके पीछे छिप गये।

इधर झङ्गू ठाकुर घर लौटे। उन्होंने श्रीविग्रहके निकट तुलसी आदि द्वारा उसे निवेदित किया, विधिका अवलम्बन न कर उन आमोंको कृष्णके लिए मानस भोग लगाया। उनकी सहधर्मिणी उन प्रसादी आमोंको पतिदेवको खिलाने लगी। वे आमोंको चूसकर गुठलियों और छिलकोंको अलग रखते जाते थे। तत्पश्चात् उनकी सहधर्मिणीने स्वयं उन्हें चूसकर गुठलियों और छिलकोंको बाहर घूरे पर फेंक दिया।

झङ्गू ठाकुरने इससे पूर्व किसी ब्राह्मणके घर कालीदासके भोजनकी व्यवस्थाके लिये अनुरोध किया था। कालीदासको यह स्मरण था। किन्तु ब्राह्मणके घर प्रसाद पानेसे उनका आत्मभोग तथा वैष्णवको नीच कुलमें उद्भूत अस्पृश्य विचारसे उनकी अवज्ञाका अपराध लगेगा—ऐसा समझकर उनसे सहमत न हुए थे। अब उनके महामहाप्रसाद सेवनका सुयोग उपस्थित हुआ था। वे घूरे पर फेंके हुए उच्छिष्ट गुठलियों और छिलकोंको उठाकर चूस चूसकर महामहाप्रसादका सम्मान करते-करते प्रेमसनन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगे।

श्रीमन्महाप्रभुने इनकी निष्ठा और भक्ति-भावसे सन्तुष्ट होकर श्रीधाम पुरीमें इनके ऊपर स्वयं प्रचुर कृपा की थी।

हम लोग अनेक समय आत्म-भोगके लिए प्रसादके भक्त बनते हैं। वस्तुतः वहाँ अप्राकृत प्रसादमें हमारी सेवाबुद्धिका अभाव रहता है। हम आत्मभोगकी स्पृहा या जिह्वा लाम्पट्ट्यके लिए ही भक्तिके थालमें प्रसाद सजाया करते हैं। कालीदासने अपने आदर्शमें दिखलाया है कि जिस वस्तुको शुद्ध वैष्णव ग्रहण नहीं करते उसे नाना प्रकार नैवेद्यकी मुद्रा तथा अर्चन-विधिके अनुसार बाह्य दृष्टिसे तुलसी प्रभृति संयोग द्वारा श्रीविग्रहके निकट उपस्थित किये जानेपर

भी प्रकृत-प्रस्तावमें श्रीभगवान्‌ने उसे ग्रहण किया है या नहीं—उसमें संदेह रहता है। किन्तु वैष्णव ब्राह्मण, श्वपच या किसी अन्य कुलका क्यों न हों, वे बाह्य दर्शनसे स्त्री या पुरुष अथवा गृहस्थ या संन्यासी क्यों न हों, वे नैवेद्यका विधिसे भगवान्‌को भोग निवेदन किया हो अथवा न किया हो, भगवान् सुनिश्चितरूपसे उसे ग्रहण करते हैं। भगवान् स्वयं कहते हैं—“भक्तस्य रसनाग्रेण रसमश्नामि पद्यज”, अर्थात् ‘हे ब्रह्मन्! मैं भक्तोंकी जिह्वाके अग्रभागसे रस ग्रहण करता हूँ।’

यहाँ कालीदासके आदर्शसे एक और वस्तु लक्ष्य करनेका विषय है। हम बहुधा भूरि-भोजन या उत्तम वस्तुओंके भोजनके लिए महाप्रसादकी दुहाई देकर अपनी जिह्वा लाम्पट्ट्य चरितार्थ करनेका सुयोग अन्वेषण करते हैं। किन्तु कालीदासने घूरे पर पड़े जिन गुठलियों और छिलकोंका संग्रह किया था, उसमें उत्तम या भूरि-भोजनका पदार्थ कुछ भी अवशिष्ट न था। इसके द्वारा भी उन्होंने हमें समुचित शिक्षा दी है कि जो कुछ भी सार भाग है उसे हरि-गुरु वैष्णवोंको प्रदान करना चाहिए। मक्खन या रबड़ी उन्हें ही भोग लगाना चाहिए। हम लोग उनसे निःशेषित अवशिष्ट स्वल्प महाप्रसादरूपसे ग्रहणकर निरन्तर कृष्ण भजनके लिये जीवन धारण करेंगे। सार भाग ग्रहण नहीं करनेसे हमारा शरीर कैसे टिकेगा—ऐसी दुर्बुद्धि अनर्थयुक्त बद्ध जीवोंके हृदयमें उदित होती है। इस दुर्बुद्धिके मारे हम समझते नहीं कि उत्तम खाने तथा उत्तम पहननेसे हमारा जो शरीर पुष्ट होगा, उसे मायाकी दासता ही चूसकर खा जायेगी। जिनकी ऐसी दुर्बुद्धि दूर नहीं हुई है, वे शरीरकी पुष्टिके फलको भगवत् सेवामें कभी नियोजित नहीं कर सकते। निरन्तर अकृत्रिम कृष्ण-सेवा-परायण वैष्णवोंकी उत्तम वस्तुओंमें आसक्ति नहीं रहती। उनका विचार यह है कि हम प्रसादको भोजन नहीं कर सकते, प्रसाद हम लोगोंको भोजन करते हैं और करेंगे। महामहाप्रसाद जिनको आत्मसात कर चुके हैं अथवा करते हैं वे ही प्रकृत प्रस्ताव में चतुर्विध रस समन्वित उत्तम-उत्तम प्रसाद-सेवनके अधिकारी हैं।

श्रीकालीदास और श्रीझङ्गू ठाकुरके आदर्शसे

आधुनिक सुविधावादी सम्प्रदाय एक दूसरा ही तथ्य बाहर करनेकी चेष्टा करेगी। अतः उसके प्रतिषेधक कुछ बातें कहनी आवश्यक हैं—जो प्रकृत 'हरिजन' शब्दके तात्पर्यको विकृत करनेके पक्षपाती हैं और जागतिक सुविधावादी हैं, वे कह सकते हैं कि अभिजात्य सम्पन्न कालीदासने जब शूद्रका उच्छिष्ट खाया है तब महाप्रभु भी आधुनिक अस्पृश्यता निवारण आन्दोलनके प्रवर्तक हैं। कालीदास या महाप्रभुके अन्य भक्त किसी दिन भी शूद्र, यवन अथवा बहिर्मुख शौक्र ब्राह्मणोंके सामाजिकताके साथ अस्पृश्यताका विचार नहीं करते थे अथवा नीच कुलके व्यक्तियोंको 'हरिजन' नहीं कहा। एक तरफ जिस प्रकार झड़ू ठाकुर प्रकृत अप्राकृत हरिजन थे, दूसरी तरफ अभिजात्य सम्पन्न श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, श्रीकालीदास—ये सभी अप्राकृत हरिजन हैं। यदि कालीदास झड़ू ठाकुरको शूद्र होनेके नाते उनका अथवा उनकी स्त्रीका उच्छिष्ट

ग्रहण किए होते अथवा गृहस्थ लीला अभिनयकारी ब्राह्मण कुल शिरोमणियोंके अग्रणी श्रीअद्वैतप्रभु शान्तिपुरमें अपने गृहमें ठाकुर हरिदासजीको एक मुसलमान समझकर उनके साथ एक पंक्तिमें भोजन करते तो आधुनिक सुविधावादियोंका कहना सत्य समझा जाता। किन्तु उन्होंने—'तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा ह्याहं' विचारसे उन्हें अप्राकृत हरिजन जानकर उनके प्रति सम्पूर्ण जाति-बुद्धिरहित होकर केवलमात्र हरिभजनके अनुकूल षड्विध सङ्ग लाभके उद्देश्यसे ऐसा आचरण दिखलाया था। उनका आचरण महाप्रभुके भक्तोंका आदर्श है। गौड़ीय-वैष्णवोंका यह सुविचारपूर्ण सदाचार जिस दिन मानव जाति ग्रहण करेगी उसी दिन विश्वकी सभी अमीरांसित जटिल समस्याओंका सुन्दर समाधान हो जायगा। सर्वत्र ही उच्च गुणोंका आदर होना चाहिये। शास्त्र और महाजनों की यही शिक्षा है।



प्रेम-प्रदीप

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या १ पृष्ठ १५ से आगे)

द्वितीय प्रभा

हरिदास और प्रेमदास बाबाजी सम्पर्णरूपेण सज्जित होकर पण्डित बाबाजीके आश्रममें उपस्थित हुए। गोपीचन्द-निर्मित उद्धर्पुण्ड उनके ललाटपर सुशोभित हो रहा था, गलेमें त्रिकण्ठी तुलसीमाला लक्षित हो रही थी। दाहिने हाथमें माला-झोलीके अन्दर निरन्तर नाम-संख्या कर रहे थे। कौपीन और बहिर्वाससे उनका आधा शरीर ढँका हुआ था, मस्तकके ऊपर शिखा सुशोभित हो रही थी तथा सभी अङ्ग हरिनामाङ्कित थे। "हरे कृष्ण" "हरे कृष्ण"—ये शब्द उनके होठोंसे निःसृत हो रहे थे। रातमें सोये नहीं, करीब दो योजनका रास्ता तय किया, तथापि वे श्रान्त अथवा क्लान्त नहीं थे। वैष्णवके दर्शनकी उत्कण्ठा इतनी प्रबल थी कि गुफाके द्वारपर स्थित अनके लोगोंपर उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया। यद्यपि पण्डित बाबाजी गुफाके अन्दर भजन करते थे, तथापि अन्यान्य साधुओंसे

वार्तालाप करनेके लिए गुफाके बाहर कुछ कुटियों और बीचमें माधवी लताके मण्डपका निर्माण करवाए थे। दोनों बाबाजीने गुफामें प्रवेशकर पण्डित बाबजीको दण्डवत प्रणाम किया और उनका दर्शन किया। उन दोनों को देखकर पण्डित बाबाजी अत्यन्त आनन्दित हुए। कुछ क्षणके बाद ही अन्यान्य साधुओंके समागमकी बात श्रवणकर दोनों बाबाजीको लेकर वे मण्डपमें उपस्थित हुए। उस समय वीरभूम निवासी कुछ वैष्णव सम्पुखासीन होकर बाबाजीकी अनुमति प्राप्तकर गीतावलीका एक पद कीर्तन करने लगे—

(ललित राग)

नाकर्णयति सुहृदुपदेशम्।

माधव चाटू पठनमपि लेशम्॥१॥

सीदति सखि मम हृदयमधीरम्।

यदभजमिह नहि गोकुल-वीरम्॥२॥

नालोकयमर्पितमुरु हारम्।
प्रणयन्तज्ज्व दयितमनुवारम्॥३॥
हन्त सनातन-गुणमधियान्तम्।
किमधारयमहमुरसिन-कान्तम्॥४॥

कीर्तन श्रवणकर सभी परितृप्त हुए और गायक-बाबाजीको आलिङ्गन प्रदान किए। कीर्तन समाप्त होने तक शनैः शनैः अनेक साधुण वहाँ उपस्थित होकर बैठने लगे और नाना प्रकारकी कथा-वार्ता होने लगी। इस समय हरिदास बाबाजीने कहा—कृष्ण सेवकगण ही धन्य हैं। वे जहाँ कहीं रहें, उनका मार्ग ही समीचीन है, हम उनके दासानुदास हैं। इस कथनकी पुष्टि करते हुए प्रेमदास बाबाजीने कहा—“बाबाजीकी बात ठीक है,

श्रीमद्भागवतमें भी इसी प्रकार कहा गया है—
यमादिभिर्योगपथैः काम-लोभतो मुहुः।
मुकुन्द-सेवया यद्वत्तथाद्वात्मा न शास्यति॥

(श्रीमद्भा. १/६/३६)

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि—ये अष्टाङ्ग योग हैं। इनके अभ्यास करनेसे आत्मा शान्तिको तो प्राप्त कर सकता है, किन्तु इन प्रक्रियाओंमें किसी नकली अवस्थामें साधक काम और लोभके वशीभूत होकर चरमफल ‘शान्ति’ न प्राप्तकर, अवान्तर फल ‘विभूति’ भोग करते-करते पतित होता है। किन्तु, श्रीकृष्ण-सेवाक्रममें किसी अवान्तर फलकी आशङ्का नहीं रहनेके कारण कृष्ण सेवकको शान्ति निश्चितरूपेण प्राप्त होती है।

इस समय पण्डित बाबाजीकी सभामें एक अष्टाङ्ग योगी उपस्थित थे। यद्यापि वे वैष्णव थे, तथापि बहुत समय तक प्राणायमका अभ्यासकर सिद्ध हुए थे। फलतः वे नवधा भक्तिकी अपेक्षा अष्टाङ्ग योगकी अधिक महत्ता स्वीकार करते थे। प्रेमदास बाबाजीकी बात श्रवणकर कुछ असन्तुष्ट होते हुए उन्होंने कहा—बाबाजी! योगशास्त्रकी अवहेलना न करें। योगिण चिरजीवी होकर भी आहार-निद्राका त्याग कर सकते हैं। वे जिस प्रकार प्रगाढ़रूपसे कृष्ण भजन करेंगे, क्या आप उस प्रकार कर सकते हैं? अतएव योगमार्गको अर्चनमार्गसे श्रेष्ठ जानें।

वैष्णव स्वभावतः तर्कमें प्रीति नहीं करते, उसपर भी भक्तिके अङ्गोंको योगके अङ्गोंकी अपेक्षा सामान्य श्रवणकर योगी-वैष्णवकी बातमें किसी की

भी रुचि नहीं हुई। वे सभी निस्तब्ध रहे। इससे अपमानित की भाँति उन्होंने पण्डित बाबाजीसे सिद्धान्त बतानेकी प्रार्थना की।

सर्वप्रथम पण्डित बाबाजीने तर्कमें प्रवेश करना स्वीकार नहीं किया, किन्तु जब योगीने उन्हें बारम्बार सिद्धान्त ग्रहण करनेका आश्वासन दिया, तब वे कहने लगे—“जो भगवान् समस्त योगमार्ग और भक्तिमार्गके एकमात्र उद्देश्य हैं, उनकी ही जीवमात्र उपासना करते हैं। स्थूल विचारसे जीव दो प्रकारके हैं—शुद्धजीव और बद्धजीव। जड़ीय सम्बन्धरहित आत्माका नाम शुद्धजीव है। जड़ीय सम्बन्धविशिष्ट आत्माका नाम बद्धजीव है। बद्धजीव ही साधक है। शुद्धजीवकी साधना नहीं। बद्ध और शुद्ध जीवमें मूल भेद यही है कि शुद्धजीव विशुद्ध आत्मधर्ममें अवस्थित होता है, आत्मधर्म चालन ही उनका कार्य एवं निरुपाधिक आनन्द ही उनका स्वभाव है। बद्धजीव जड़ीय सम्बन्धसे जड़ीभूत होकर जड़ और आत्मधर्म-मिश्रित एक औपाधिक धर्म स्वीकार किया है। औपाधिक धर्म परित्यागकर अपने निरुपाधिक धर्म-प्राप्तिका नाम मोक्ष है। विशुद्ध प्रेम ही आत्माका निरुपाधिक धर्म है। विशुद्ध प्रेमकी प्राप्ति और मोक्ष भिन्न-भिन्न तत्त्व नहीं हो सकते। योगमार्गमें जिस मोक्षका अनुसन्धान है, वही भक्तिमार्गका प्रेमरूपी फल है। अतएव दोनों साधनोंका चरमफल एक है। इसलिए शास्त्रमें भक्तप्रधान शुकदेवको महायोगी और योगी-प्रधान महादेवको परम भक्तके रूपमें उल्लेख किया गया है। योग और भक्तिमार्गमें इतना ही अन्तर है कि योगमार्गमें कषाय अर्थात् आत्माकी उपाधि दूरकर समाधिकी अवस्थामें आत्माका स्वधर्म अर्थात् प्रेमको उद्दीप्त किया जाता है। इसमें इस बातकी आशङ्का है कि उपाधि-निवृत्तिकी चेष्टा करते-करते बहुत समय व्यतीत हो जाता है और स्थलविशेषमें चरमफल प्राप्त होनेके पूर्व ही किसी-न-किसी क्षुद्रफलमें आबद्ध होकर साधक भ्रष्ट हो जाता है। दूसरी ओर, भक्तिमार्गमें प्रेमकी ही साक्षात् आलोचना होती है। भक्ति प्रेमतत्त्वका अनुशीलनमात्र है। जहाँ सभी कार्य ही चरम फलका अनुशीलन है, वहाँ अवान्तर क्षुद्र फलकी आशङ्का नहीं है। साधन ही फल और फल ही साधन है।

“अतएव भक्तिमार्ग योगमार्गकी अपेक्षा सहज और सर्वतोभावेन आश्रय ग्रहण करने योग्य है।

“योगमार्गमें जो भौतिक जगत्‌के ऊपर अधिष्ठित होता है, वह भी औपाधिक फलमात्र है। इसमें चरमफलकी साधकता तो दूर रहे, कभी-कभी बाधकता लक्षित होती है। योगमार्गमें पद-पदमें व्याघात है। (१) यम-नियम साधनकालमें धार्मिकतारूप फलका उदय होता है, उसमें एवं उसके क्षुद्र फलमें अवस्थित होकर अनेक धार्मिक समझे जाते हैं, परन्तु प्रेमरूप फल-साधनमें प्रवृत्त नहीं होते। (२) ‘आसन’ और ‘प्राणायाम’के काल अनेक क्षण तक कुम्भक करनेमें समर्थ होकर दीर्घजीवन और रोगशून्यता प्राप्त करते हैं। यदि उसमें प्रेम-सम्बन्ध नहीं होता है, तो वह दीर्घ-जीवन और रोगशून्यता केवल अनर्थोंका मूल है। (३) ‘प्रत्याहार’ द्वारा इन्द्रियोंका संयम होनेपर भी यदि प्रेमका अभाव होता है, तो उसे शुष्क और तुच्छ वैराग्य कहा गया है। क्योंकि, परमार्थके लिए त्याग या ग्रहण दोनोंका ही समान फल है। निरर्थक त्याग केवल जीवनको पाषाणवत् बना देता है। (४) ‘ध्यान’, ‘धारणा’ और ‘समाधि’के समय यदि जड़ चिन्ता दूर हो जाती है, परन्तु प्रेमका उदय नहीं होता है, तो चैतन्यरूप जीवका नास्तित्व ही सिद्ध होता है। ‘मैं ब्रह्म हूँ’ यह ज्ञान यदि विशुद्ध प्रेमको उत्पन्न नहीं कर सका, तब वह स्व-अस्तित्वका विनाशक हो जाता है। अतः आप मेरी इस बातको पक्षपातशून्य होकर समझ सकते हैं।”

पण्डित-बाबाजीका वाक्य समाप्त होते-न-होते ही समस्त वैष्णवोंने “साधु साधु” कहा।

योगी-बाबाजीने कहा—“बाबाजी आपका सिद्धान्त उत्कृष्ट है, किन्तु उसके सम्बन्धमें मेरा और एक प्रश्न है, उसको कह रहा हूँ—मैंने योग शिक्षा करनेके पूर्व श्रवण-कीर्तनादि नौ प्रकारकी भक्ति अङ्गोंका सम्यकरूपसे अभ्यास किया था। किन्तु कहनेमें क्या है, मेरी इन्द्रियोंकी चेष्टा इतनी प्रबल थी कि सभी कार्योंमें ही इन्द्रिय-तृप्तिका अनुसन्धान करता था। विशेषतः वैष्णव-धर्ममें जिस प्रकारसे शृङ्खार-प्रेमका उपदेश है, उसमें मेरा चित्त निरूपाधिक नहीं होता था। मैंने ‘प्रत्याहार’का साधनकर शृङ्खार-रसका आस्वादन किया है, अब और इन्द्रिय-तर्पणकी लेशमात्र वासना नहीं होती। मेरा स्वभाव परिवर्तित हुआ है। अर्चन मार्गमें जो प्राणायामकी व्यवस्था देखी जाती

है, शायद वह वैष्णवोंको प्रत्याहार-साधकरूपसे भक्तिमार्गके लिए है। अतएव मेरे विचारसे योगमार्गका प्रयोजन है।”

पण्डित बाबाजीने योगी बाबाजीकी कथा श्रवणकर कुछ क्षण चिन्तन करनेके पश्चात् कहा—“आप धन्य है, क्योंकि ‘प्रत्याहार’ अभ्यास करनेपर भी रसतत्त्वको भूले नहीं। शुष्क चिन्ता एवं शुष्क अभ्यासक्रमके द्वारा आत्माका अनेक स्थानमें पतन होता है, क्योंकि आत्मा रसमय है, वह कभी भी शुष्कता सहन नहीं कर सकती। आत्मा अनुरागी है, इसीके कारण ही बद्ध आत्मा योग विषयसे च्युत होकर इतर विषयोंमें अनुराग करता है; इसीके कारण आत्मतर्पण सुदूरवर्ती होनेसे इन्द्रियतर्पण ही प्रबल हो जाता है। इन्द्रिय-परतत्त्व आत्मा जब उपयुक्त रसका दर्शन करता है, तब उसमें स्वभावसिद्ध रतिका उदय होनेसे जड़ीय रतिका नाश होता है। परतत्त्वमें प्रेमकी आलोचना ही भक्तिमार्ग है, उसमें अनुराग जितना गढ़ा होता है, उतनी ही इन्द्रिय चेष्टा कम होती है। ऐसा मालूम होता है कि जब आपने भक्तिमार्गमें प्रवेश किया, उस समय आपका प्रकृत साधु-सङ्ग नहीं हुआ था। इसी कारणसे आप भक्तिरस प्राप्त नहीं कर सके। भक्ति-अंगोंको कर्म-अंगोंके समान शुष्करूपसे और स्वार्थपरताके साथ साधन करते थे, उसमें परानन्द रसका कुछ भी उदय नहीं हुआ। उसीके कारण आपकी इन्द्रिय लालसा परिवर्द्धित हुई थी। उस स्थानमें योगमार्गमें कुछ उपकारकी सम्भावना होती है। भक्ति-साधकोंके लिए भक्तोंके साथ भक्तिका रसास्वादन करना ही प्रयोजन है। समस्त जड़ीय विषय-भोग करनेपर भी भोगका फल जो भोगवाच्छा उदित नहीं होती। भक्तोंका विषय-भोग ही विषयवाच्छा-त्यागका प्रधान हेतु है।” यह बात कहते-कहते ही वैष्णव-योगीने कहा—“बाबाजी! मेरी इस विषयमें अभिज्ञता नहीं थी। मैं संध्याके समय आकर जो कुछ संशय है उसे दूर करनेका प्रयत्न करूँगा। आज कलकत्तासे एक सज्जन आनेवाले हैं, मुझे अब जानेकी आज्ञा दीजिए। आप कृपा रखिए।”

योगी-बाबाजीके बाहर जानेके पश्चात् बाबाजीकी सभा भङ्ग हुई। □

(क्रमशः)



कलियुग और नाम-सङ्कीर्तन

शास्त्रोंमें विभिन्न कालके लिए विभिन्न साधनोंका परिचय प्राप्त होता है। ये साधन उस काल विशेषकी परिस्थितिओंके अनुसार तय किए गए हैं। शास्त्रमें कहा गया है—

**कृते यत्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्वरिकीर्तनात्॥**

सत्ययुगमें भगवान्‌का ध्यान करनेसे, त्रेतायां बड़े-बड़े यज्ञोंके द्वारा उनकी आराधना करनेसे और द्वापरमें विधिपूर्वक उनका अर्चन करनेसे जो फल मिलता है, वह कलियुगमें केवल भगवन्नामका कीर्तन करनेसे ही प्राप्त हो जाता है।

यद्यपि हरिनाम सङ्कीर्तन सर्वकालिक ओर सर्वदेशिक साधन है, तथापि अन्य युगोंमें अन्य साधनोंके द्वारा कुछ हद तक आत्म साक्षात्कारका मार्ग प्रशस्त होता है, किन्तु कलियुगमें हरिनाम सङ्कीर्तनके अलावा ओर कोई उपाय नहीं है, इसे ही वृहन्नारदीय पुराणमें इस प्रकार बताया गया है—

**हरेनामं हरेनामेव केवलम्।
कलौ नास्तेव नास्तेव नास्तेव गतिरन्यथा॥**

द्वापर युगके अन्तकालमें भगवान् श्रीकृष्णने गीताका उपेदश देकर लोगोंका कल्याण साधन किया, किन्तु साधारण लोग गीताके गूढ़ रहस्यको न समझकर उसके आंशिक भावको ही ग्रहणकर अपने अपने मतका प्रवर्तन करने लगे। पुनः लोगोंके कल्याणके लिए भगवान् श्रीकृष्ण कलियुगमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतारीण होकर सङ्कीर्तन आन्दोलनके द्वारा जीवोंका चरम साध्य कृष्ण प्रेमको प्रदान किया। शास्त्रोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं श्रीकृष्ण होनेके अनेक प्रमाण हैं। श्रीमद्भागवतमें वर्णित हैं—

**कृष्णवर्णं त्विषाऽकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम्।
यज्ञैः सङ्कीर्तनप्रायेयैन्ति हि सुमेधसः॥**

‘जिनके मुखसे ‘कृष्ण’ इन दो वर्णोंका सर्वदा कीर्तन होता है, जिनके ‘अङ्ग’—श्रीमन् नित्यानन्द तथा श्रीअद्वैतप्रभु, ‘उपाङ्ग’—तदाश्रित श्रीवासादि शुद्धभक्तगण, ‘अस्त्र’—श्रीहरिनाम एवं ‘पार्षद’—श्रीगदाधर, दामोदरस्वरूप,

रामानन्द, रूप-सनातन आदि हैं; जिनकी कान्ति अकृष्ण अर्थात् पीत (गौर) है, उन्हीं अन्तःकृष्ण बहिगौर राधाभावद्युतिसुवलित श्रीमद्भौतसुन्दरका कलियुगमें बुद्धिमान व्यक्तिगण सङ्कीर्तनप्रधान यज्ञ द्वारा अर्चन करते हैं।’

ऊपरका श्लोक सङ्कीर्तन धर्मके प्रवर्तक श्रीचैतन्यमहाप्रभुका प्रणाम-मंत्र है। इसमें कलिकालमें कलिहत जीवोंका उद्धार एकमात्र हरि-सङ्कीर्तन-यज्ञ द्वारा तथा श्रीमन्यमहाप्रभुके भजनसे ही हो सकता है—ऐसा दिखलाया गया है। कलियुगमें जिस तरह हरिनाम सङ्कीर्तनके प्रभावका शास्त्रोंमें उल्लेख है उसी तरह कलियुगमें साधारण परिस्थिति किस प्रकार की होगी और उस स्थितिसे मानवोंका परम मङ्गल कैसे होगा—इसका भी उनमें उल्लेख है। अमल पुराण श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कन्धके द्वितीय अध्यायमें इस विषयकी विशद आलोचना की गई है।

‘कलियुगमें धन ही सभी कार्योंका जीवन होगा। उस समय मनुष्य समाजको विभिन्न श्रेणियोंमें विभक्त करेगा। जिसके पास जितना धन रहेगा, उसको उसी प्रकारकी श्रेणीमें मान लिया जाएगा। अभिजात्य, गुण और विद्याके आधारपर श्रेणीका विभाग नहीं होगा। धनसे ही न्याय, स्वतन्त्रता तथा अधिकार खरीदे जायेंगे। शारीरिक सौन्दर्य ही स्त्री-पुरुषोंके दाम्पत्य जीवनकी कसौटी होगी। व्यवहारिक कार्योंमें परस्पर धोखा देना ही उपयोगी माना जायेगा। रति-कौशलकी उत्कर्षता ही स्त्री-पुरुषोंकी विशेषता मानी जाएगी। दो पैसेका सूत्र ही विप्रत्वका ज्ञापक होगा। गैरिक वसन, दण्ड, अजीन प्रभृति चिह्नसमूह ही एक आश्रमसे दूसरा आश्रम स्वीकार करनेमें अथवा आश्रम-परिचयका एकमात्र कारण होगा। कलियुगमें धनहीन होनेसे न्याय मिलना कठिन होगा। वाक्यचपलता पाण्डित्यकी परिचायिका होगी। गरीबोंको असाधु तथा दापिष्ठकोंको साधु माना जाएगा। परस्परकी स्वीकृतिसे ही विवाह कार्य सम्पादित हो जाएगा। बहुत दूर जानेवाले तीर्थयात्री समझे जायेंगे। अपनी सन्तानोंका प्रतिपालन ही कार्यदक्षता समझी

जायेगी। नामके लिए मनुष्य धर्मका पालन करेंगे। जब ऐसी प्रजाओंसे पृथ्वी भर जायेगी तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें जो कोई बलवान होंगे, वे ही राज्य शासनका अधिकार प्राप्त करेंगे। राज्यके अधिकारी अपने अपने फायदेके लिए घृणित दस्युओं जैसे हो जायेंगे, जिनके उत्पीड़नसे प्रजा अपने धन तथा स्त्री आदिका परित्यागकर जङ्गल और पहाड़ी-प्रदेशोंमें आश्रय ग्रहण करेगी तथा जङ्गली शाक, मूल और मांसादि आहारकर जीवन धारण करेगी। दुर्भिक्ष तथा राज्य-करकी वृद्धि होनेसे दुःखी प्रजा दिन-दिन क्षय रोगोंसे आक्रान्त होकर प्राण परित्याग करेंगी। वह शीत, वायु, वर्षा और हिम आदिके कारण नित्य भूखा, प्यास, व्याधि तथा अधिक चिन्ताके कारण सन्तप्त रहेंगी। मनुष्योंकी आयु अधिकसे अधिक तीस वर्षकी होगी। अनेक दुःखोंके चिन्ताके कारण वे क्षीणकाय होंगे। वेदानुग धर्मका पालन नहीं होनेसे सभी शूद्रके समान हो जायेंगे। फलस्वरूप वे चौर्य, मिथ्या, हिंसा आदि वृत्तियोंके अधीन होंगे।

जब सारी प्रजा शूद्रके समान हो जायेगी, जब गाय बकरियोंके समान क्षूद्र आकृतिवाली, बादल केवल विद्युतवाले बड़े-बड़े ग्राम जनशून्य, धर्म भगवद्भक्तिहीन पाषण्डके समान राजपुरुष दस्युके समान, औषधियाँ प्रभावहीन और वृक्ष शमी वृक्ष जैसे छोटे-छोटे हो जायेंगे तथा जब मनुष्योंको जीविका निर्वाहके लिए गदहोंके समान दुःसह्य परिश्रम करना होगा, तब कलियुगके अन्तिम भागमें शुद्ध-सत्त्व अखिलात्मा भगवान् ईर्षकी रक्षाके लिए अवतीर्ण होंगे।

साधुओंके कर्म विमोचन तथा धर्मकी रक्षाके लिए चराचर जगत्के गुरु सर्व अन्तर्यामी जगदीश्वर श्रीहरिका प्रादुर्भाव होता है। अतः सम्पल नामक प्रसिद्ध नगरमें विष्णुयश नामक उत्तम ब्राह्मणके गृहमें भगवान् कल्किका अवतार होगा। वे अणिमा, लधिमा, ईशिता प्रभृति अष्टश्वर्यसे समन्वित तथा सत्य, सङ्कल्प आदि गुणोंसे विभूषित होकर देवदत्त नामक घोड़ेपर सवार हो खड़ग द्वारा असाधु व्यक्तियों तथा राजवेषधारी कोटि-कोटि घृणित दस्युओंका विनाश करेंगे।

कलियुगके मनुष्य अधिक-से-अधिक तमोगुण

द्वारा प्रभावित होकर मिथ्या, तन्द्रा, आलस्य, हिंसा, विषाद, शोक, मोह, भय तथा दारिद्र्य आदि अपगुणोंमें अनुरक्त होंगे। वे अदूरशी, मन्दबुद्धि, मन्दभाग्य, बहुभोगी तथा कामी होंगे तथा स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी होंगी। बड़े-बड़े जनपदसमूह दस्युओं द्वारा आक्रान्त होंगे। वेद-धर्म पाषण्ड मतों द्वारा भगवद्भक्तिहीन प्रचारकों द्वारा दूषित होगा। राजपुरुष प्रजाका भक्षण करनेवाले तथा ब्राह्मण लोग शिश्नोदर परायण होंगे। ब्रह्मचारी आश्रमविहित आचारोंकी रक्षा न करेंगे। गृहस्थ लोग भीख मारेंगे तथा वानप्रस्थके पालन करनेवाले वन परित्यागकर ग्रामोंमें निवास करेंगे, संन्यासी अति धन लोभी होंगे। स्त्रियाँ अत्यन्त छोटे कदकी हो जायेंगी। वे अति भोजन करनेवाली, अनेक सन्तानोंको उत्पन्न करनेवाली, लज्जाहीना तथा कटु-भाषिणी होंगी।

कलियुगमें वर्णिक लोग धनहीन होनेके कारण काले-बाजारोंमें जुआ-चोरी करते-करते क्रय-विक्रय करेंगे तथा साधारण लोग आपतकालके बिना भी असाधु एवं घृणित कार्य-कलापोंको अधिक महत्व देंगे।

नौकर अपने सर्व गुण सम्पन्न होनेपर धनहीन स्वामियोंका तथा स्वामी अपने विपद्ग्रस्त नौकरोंका परित्याग करेंगे। वृद्ध गायोंका निरादर होगा। पुरुष अपने माता-पिता, सुहृद तथा स्वजनोंका परित्यागकर अपनी स्त्रीके अधीन हो जायेंगे। शूद्र लोक तपस्वियों तथा साधु-संन्यासियोंका वेश ग्रहण कर दान-प्रतिग्रह तथा अधर्मोंका अनुष्ठान करेंगे। वे उत्तम आसनपर बैठकर निरीश्वर धर्मोंकी व्याख्या करेंगे। कलियुगमें मनुष्य अन्न, वस्त्र, पान, श व्या, स्त्री सम्प्रोग, अलङ्कार तथा प्रसाधन सामग्रीसे सज्जित होकर अतिशय कुत्सित एवं पिशाचकी तरह शरीर धारण करेंगे।

कलियुगमें अधिक धनकी तो बात ही क्या, कुछ कौड़ियोंके लिए ही परस्पर वैर-विरोध होने लगता है। मनुष्य बहुत दिनोंके सुहृदभावको तिलाज्जलि देकर कौड़ी-कौड़ीके लिए अपने सगे-सम्बन्धियों तककी हत्या कर बैठते हैं और अपने सर्वप्रिय प्राणोंका भी विसर्जन करते हैं। पुत्र शिश्नोदर परायण होकर अपने बूढ़े माता-पिताकी रक्षा-पालन-पोषण नहीं करता। पिता अपनी सन्तानकी परवाह नहीं करता, उन्हें अलग कर देता है। पति सत्कुलमें उत्पन्न हुई अपनी विदुषी

भार्याका परित्याग कर देता है। वे भगवद्गिहीन पाण्डियोंके मतसे मोहित होकर जगद्गुरु त्रिलोकीनाथ भगवान्‌की पूजा नहीं करते। मनुष्य मरनेके समय आतुरताकी स्थितिमें अथवा गिरते या फिसलते समय विवश होकर भी यदि भगवान्‌के किसी एक नामका उच्चारण कर ले तो उसके सारे कर्म-बन्धन छिन्न-भिन्न हो जाते हैं और उसे उत्तम-से-उत्तम गति प्राप्त होती है। पर हाय रे कलियुग! कलियुगसे प्रभावित होकर लोग उन भगवान्‌की आराधनासे भी विमुख रहते हैं। परन्तु जब पुरुषोत्तम भगवान् मानवोंके हृदयमें आ विराजते हैं, तब उनके धर्म कृत्यसमूहमें द्रव्य, देशादि वैगुण्यके कारण कलिके द्वारा उत्पन्न सभी दोष क्षणमात्रमें नष्ट हो जाते हैं। भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला और धामके श्रवण, सङ्कीर्तन, ध्यान, पूजन और सम्मानसे वे मानवोंके हृदयमें आविर्भूत होकर उनके हृदयस्थ कोटि-कोटि जन्मोंके पापोंके

देर-के-देर भी क्षणभरमें भस्म कर देते हैं। जैसे सोनेके साथ संयुक्त होकर अग्नि उसके ताम्रादि धातु सम्बन्धी मलिनताको नष्ट कर देती है, वैसे ही साधकोंके हृदयमें स्थित होकर भगवान् विष्णु उनके अशुभ-संस्कारोंको सदाके लिए दूर कर देते हैं।

श्रीमद्भगवतमें वर्णित उपरोक्त बातोंके आधारपर यह सि द्ध हो जाता है कि भगवान्‌के नाम-की तर्तनके अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्ग कलियुगमें श्रेय नहीं है। अन्य साधनोंका अवलम्बन करनेपर साधक कुछ-कुछ तुच्छ फलोंको ही प्राप्तकर सन्तुष्ट हो जाते हैं तथा मनुष्य जीवके वास्तविक उद्देश्यसे वञ्चित रह जाते हैं। शास्त्रमें सर्वत्र ही हरिनाम-कीर्तनकी महिमाका गुणगान किया गया है, जिसका और विस्तृत विवरण हम आगामी अङ्गोंमें देंगे। □

हरि बोल!



‘कस्त्वं’ ‘खस्त्वं’

एक समय किसी गाँवमें बहुत विख्यात ब्राह्मणगण पण्डितगण वास करते थे। किन्तु कालक्रमसे उनके वंशधर विद्या अध्ययनसे इस प्रकार विरत हो गए कि उनका अधिकांश समय ताश, जुआ खेलनेमें ही बीतने लगा। केवल पेट भरनेके लिए ही यजमानाओंके पूजा-पाठके लिए जाते थे तथा लोगोंसे गर्वपूर्वक कहते थे कि हमारे जैसा पण्डित इस पृथ्वीपर नहीं है, क्योंकि अत्यन्त प्राचीन पण्डितोंका रक्त हमारे शरीरमें बह रहा है।

एक सत्यप्रिय व्यक्ति इन तथाकथित पण्डितोंके गर्वको चूर्ण करनेके लिए एक वास्तव पण्डितको उस गाँवमें लाए। जिस समय पण्डित महाशय गाँवमें प्रवेश किए उस समय वज्चक पण्डितगण अपने गाँवके मुखियाके पास जाकर इस विपत्तिसे उद्धार होनेके उपायके विषयमें जिज्ञासा करने लगे। पण्डितगण मुखियाको ‘दादा ठाकुर’के नामसे पुकारते

तथा वे ही उनलोगोंमें सर्वश्रेष्ठ पण्डितके रूपमें विख्यात थे। उन्होंने सबको आश्वासन दिया,—“आप लोगोंके भयका कोई कारण नहीं है, पूर्व पुरुषोंका जो रक्त शरीरमें बह रहा है, उसीसे इस पण्डितको परास्त करूँगा। मैं संस्कृत भाषामें उससे आलापकर उसका मुह बन्द कर दूँगा। अधिक विचार करने अथवा हम लोगोंको कलङ्कित करनेका मौका उसे नहीं दूँगा। उसे ही यहाँसे अपमानित होकर जाना पड़ेगा।”

पण्डित महाशयने विचार सभामें आकर देखा कि गाँवके दादा ठाकुर उच्च आसनपर विराजमान है, उस समय पण्डितजीने उनसे जिज्ञासा की—‘कस्त्वं?’ अर्थात् ‘आप कौन है?’ इसके उत्तरमें दादा ठाकुर एक ही निश्वासमें कहने लगे—‘खस्त्वं गस्त्वं घस्त्वं..... क्षस्त्वं।’

पण्डित महाशयने देखा कि इस प्रकारके पण्डितके

साथ विचार करना व्यर्थ है। ससम्मान यहाँसे प्रस्थान करना ही उचित है। उस समय पण्डित महाशयने दूरसे दण्डवत् प्रणामकर स्थानका त्याग किया। दादा ठाकुरके शिष्यगण जोर-जोरसे हसते हुए कहने लगे—‘देखा! दादा ठाकुर इतने बड़े पण्डितको भी मुख खोलनेका अवसर नहीं दिया। दादा ठाकुरके साथ संस्कृतमें विचार कर सके, क्या कोई ऐसा पण्डित पृथ्वीमें है? क्या दादा ठाकुर अनर्गल संस्कृत नहीं बोल सकते? अरे! उनके मुखसे तो फूलझड़ी छूटती है।’

अनेक लोग वंशानुक्रमसे विष्णु, वैष्णव, भगवान्‌के पार्षद, मुनि-ऋषि-ब्राह्मण और पण्डितके वंशादरकेरूपमें अभिमानपूर्वक भक्ति सिद्धान्तविद् निष्क्रियन, शुद्ध वैष्णवोंके उच्च कुल और पण्डित्यके अभावकी

कल्पना करते हैं। वे उस जड़ अभिमानमें मस्त होकर अनुस्वार-विसर्गके पाण्डित्यसे शुद्ध वैष्णव-सिद्धान्त खण्डन करनेकी स्पर्धा करते हैं। जब कोई शुद्ध वैष्णव इनसे पूछते हैं—‘कस्त्व? ‘अर्थात् आप कौन है?’ उस समय स्थूल बुद्धि और जड़-अहङ्कारी व्यक्तिगण अपने देहमें ही ‘मैं’ बुद्धिकर एक निःश्वासमें अपरा विद्याके जड़-पाण्डित्यपूर्ण उत्तरसे वैष्णवको पराजित करनेका अभिमान करते हैं। ऐसा पाण्डित्य ‘अस्त्व’ से ‘क्षस्त्व’ तक अपरा पाण्डित्यका प्रलापमात्र है। किन्तु, वास्तविक पण्डित इस प्रकारके उत्तरमें कहते हैं—‘गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः’ अर्थात् मैं गोपीनाथ श्रीकृष्णके चरणकमलके दासोंके दासोंका दास हूँ।



पाठकोंसे निवेदन—

(१) श्रीभगवानने गीतामें कहा है—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्व भिधायति । भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यसंशाय ।
न च तस्मान्मनुष्येषु कृश्चिन्मे प्रियकृत्तमः । भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतर्ये भुवि ॥

अर्थात्, जो मेरे भक्तोंको इस परम गुह्य गीतोपदेशका वर्णन करेंगे, वे मेरे निर्गुण भक्तिको प्राप्तकर मुझे ही प्राप्त होंगे। उनकी अपेक्षा इस जगतमें मेरा प्रिय कार्य करनेवाला तथा प्रिय और कोई नहीं है।

अतः आप पाठकोंसे नम निवेदन है कि नियमितरूपसे मनोनिवेशपूर्वक इस पत्रिकाका अद्ययन करें तथा अन्य लोगोंको भी नियमितरूपसे अध्ययन करनेके लिए प्रोत्साहित करें एवं इसका वितरण करें।

(२) यद्यपि प्रारम्भिक अवस्थामें श्रीपत्रिकाकी भाषा कठिन प्रतीत होगी, तथापि निरन्तर अनुशीलन करनेसे यह सरल हो जाएगी।

(३) अपने संशयोंका समाधान करनेके लिए अवश्य ही पत्र लिखें, जिसका उत्तर पत्रिकामें ही दिया जाएगा।

(४) आपको अपनी भक्ति सुदृढ़ करनेके लिए इसके प्रत्येक अङ्कका गहन पठन-पाठन अत्यावश्यक है। आपको यह अङ्क प्राप्त हुआ, इसकी सूचना अविलम्ब देनेका कष्ट करेंगे तथा पत्रिकाके संचालनके लिए उपयुक्त भिक्षा भी अवश्य भेजनेका कष्ट करेंगे।

समसामयिक विवरण

परमाराध्यतम नित्य लीलाप्रविष्ट ३५ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज, श्रीरूपानुग गुरुवर्ग तथा श्रीश्रीगुरु-गौर-नित्यानन्द प्रभुकी असीम करुणासे इस वर्ष भी नवद्वीप धाम परिक्रमाका आयोजन सुचारुरूपेण सम्पन्न हुआ। श्रीसमितिके वर्तमान सभापति ३५ विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजके नियामकत्व तथा त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजकी अध्यक्षतामें २९ फरवरीसे परिक्रमाका शुभारम्भ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे हुआ। श्रीमन्महाप्रभु अपने भक्तोंके कन्धोंपर विराजमान होकर परिक्रमामें सबसे आगे चल रहे थे। गङ्गा पार कर सुरभिकुञ्ज, भक्तविनोद-भजन कुटी व समाधि, हरिहर क्षेत्र, नृसिंह पल्ली एवं हंसवाहिनी होते हुए सन्ध्याके समय परिक्रमा अपने उद्गम स्थलपर लौट आई। अगले दिन दिनांक १ मार्चको समुद्रगढ़ और चम्पाहाटी, दिनांक २ मार्चको

कोबला, विद्यानागर, जहुद्वीप और मोदद्वीप द्वीप, दिनांक ३ मार्चको कुलिया एवं रुद्रद्वीप तथा दिनांक ४ मार्चको इशोद्यान, योगपीठ, श्रीवास आंगन, चन्द्रशेखर भवन, चाँदकाजी समाधि इत्यादिका दर्शन किया। दिनांक ५ फरवरीको श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव उत्सव मनाया गया तथा अगले दिन दीक्षा-संस्कार सम्पन्न हुआ। अपार जनसमूहने परिक्रमामें भाग लिया। अन्तिम दिन तो लोगोंकी संख्या दस हजारसे भी अधिक थी। लोगोंने सर्वत्र ही अप्राकृत हरिकीर्तन तथा हरिकथाका रसास्वादन किया।

आगामी वर्षमें भी श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ककी अहैतुकी कृपासे परिक्रमाका संचालन सुष्ठुरूपेण सम्पन्न हो, हम ऐसी प्रार्थना करते हैं। आप लोग भी आगामी परिक्रमामें भाग लेकर अप्राकृत आनन्दका अनुभव करेंगे, हम ऐसी कामना करते हैं। हरि बोल!

J

‘श्रीभागवत-पत्रिका’ मासिक-पत्रके सम्बन्धमें

प्रपत्र-४, नियम-८

- | | |
|---|---|
| १. प्रकाशन स्थान २. प्रकाशन अवधि ३. प्रकाशकका नाम पता नागरिकता ४. सम्पादकका नाम पता नागरिकता ५. मुद्रक | —श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.) —मासिक —श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी —श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.) —भारतीय —त्रिदण्डि स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज —श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.) —भारतीय —श्रीअजय कपूर, ५५, सूर्य किरण, १९ कस्तुरबा गान्धी मार्ग, नई दिल्ली-१ —श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति |
| ५. उन व्यक्तियोंके नाम और पते जो इस पत्रकेस्वामी हैं तथा इस पत्रके स्वामी हैं तथा जो समस्त पूँजीके एक प्रतिशतसे अधिकके हिस्सेदार हैं। | |

मैं नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी एतत् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार ऊपर दिये गए विवरण सत्य हैं।

मार्च १९९६

ह. नवीनकृष्ण ब्रह्मचारी

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे



श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्योश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्णेन या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दूई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष २० }

श्रीगौराब्द ५१०

विक्रम संवत् २०५२-५३ ज्येष्ठ मास, सन् १९९६, ४ मई-१ जून

{ संख्या ३

गुरांष्टक

(श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती-ठाकुर-कृत)

संसार-दावानल-लीढ़-लोक-त्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम् ।
प्राप्तस्य कल्याण-गुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥१॥
महाप्रभोः कीर्तन-नृत्य-गीत-वादित्रमाद्यन्मनसो रसेन ।
रोमाञ्च-कम्पाश्रु-तरङ्ग-भाजो, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥२॥

संसार-दावानलसे सन्तप्त लोगोंकी रक्षाके लिए जो करुणाके घने मेघस्वरूप होकर कृपावारिका वर्षण करते हैं, मैं उन्हीं कल्याण-गुणनिधि श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ ॥१॥

संकीर्तन, नृत्य, गीत, वाद्यादिके द्वारा उन्मत्तचित्त श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमरसमें जिन्हें रोमाञ्च, कम्प और अश्रुतरंग उद्गत होते हैं, मैं उन्हीं श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी वन्दना करता हूँ ॥२॥

श्रीविग्रहाराधन – नित्य – नाना-
शृङ्गार – तन्मन्दिर – मार्जनादै।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुज्जतोऽपि
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥३॥

चतुर्विध – श्रीभगवत्प्रसाद
स्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसङ्घान्।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥४॥

श्रीराधिकामाधवयोरपार-
माधुर्य-लीला-गुण-रूप-नामाम्।
प्रतिक्षणास्वादन – लोलुपस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥५॥

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिङ्ग्रै
या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्षादतिवल्लभस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥६॥

साक्षाद्वरित्वेन समस्तशास्त्रै-
रुक्स्तथा भाव्यत एव सद्ग्रीषः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥७॥

यस्य प्रसादाद्वगवत्प्रसादो
यस्याप्रसादान्नगतिः कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं
वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥८॥

श्रीमद्गुरोरष्टकमेतदुच्चै-
ब्राह्मेमुहूर्ते पठति प्रयत्नात्।
यस्तेन वृन्दावन-नाथ-साक्षात्-
सेवैव लभ्या जनुषोऽन्त एव॥९॥

जो श्रीभगवद्ग्रहकी नित्य-सेवा, शृङ्गारसोहीपक
तरह-तरहकी वेश रचना और श्रीमन्दिरके मार्जन
आदि सेवाओंमें स्वयं नियुक्त रहते हैं तथा
(अनुगत) भक्तजनको भी नियुक्त करते हैं, उन्हीं
श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥३॥

जो श्रीकृष्णभक्तोंको चर्व्य, चुष्य लेह्य और
पेय—इन चार प्रकारके रस-समन्वित सुस्वादु
प्रसादान्न द्वारा परितृप्त कर (अर्थात् प्रसाद-सेवनके
द्वारा प्रपञ्च-नाश और प्रेमानन्दका उदय कराकर
स्वयं तृप्ति लाभ करते हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके
पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥४॥

जो राधामाधवके अनन्त-मार्घ्यका आस्वादन
करनेके लिए सर्वदा लुब्धचित्त हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके
पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥५॥

निकुञ्ज विहारी 'ब्रज-युव-द्वन्द्वके' रतिक्रीड़ा-
साधनके निमित्त सखियाँ जो युक्ति अवलम्बन
करती हैं, उस विषयमें अति निपुण होनेके कारण
जो उनके अतिशय प्रिय हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके
पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥६॥

निखिल शास्त्रोंने साक्षात् हरिके अभिन्न-विग्रहरूपमें
जिनका गान किया है एवं साधुगण भी जिनकी
उसी प्रकारसे चिन्ता किया करते हैं, तथापि जो
भगवान्‌के एकान्त प्रिय हैं, उन्हीं (भगवान्‌के-अचिन्त्य-
भेदाभेद-प्रकाश-विग्रह) श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंकी मैं
वन्दना करता हूँ॥७॥

एकमात्र जिनकी कृपा द्वारा ही भगवत्-अनुग्रह
लाभ होता है, जिनके अप्रसन्न होनेसे जीवोंका कर्हीं
भी निस्तार नहीं है, मैं तीनों संध्याओंमें उन्हीं
श्रीगुरुदेवके कीर्त्तिसमूह स्तव और ध्यान करते-करते
उनके पादपद्मोंकी मैं वन्दना करता हूँ॥८॥

जो व्यक्ति इस गुरुदेवाष्टकका ब्राह्म-मुहूर्तमें
(अरुणोदयसे चार दण्ड पहले) अतिशय यत्नके
साथ उच्चस्वरसे पाठ करते हैं, वे वस्तु-सिद्धिके
समय वृन्दावनचन्द्रका सेवाधिकार प्राप्त करते हैं॥९॥

मायावादकी जीवनी

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या २, पृष्ठ ३१ से आगे]

अन्य बौद्ध-ग्रन्थोंके दो बुद्ध

आचार्य शंकर द्वारा आदृत अमर कोषके अतिरिक्त बौद्धशास्त्रके अन्य ग्रन्थ जैसे 'प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'अष्टसाहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'शत-साहस्रिक प्रज्ञा-पारमिता सूत्र', 'ललित विस्तार' आदि ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे भी मनुष्य-बुद्ध, बोधिसत्त्व बुद्ध और आदिबुद्ध-इन तीनों श्रेणियोंके बुद्धके विषयमें अवगत होते हैं। मनुष्य-बुद्धमें गौतम बुद्ध एक हैं। ज्ञान लाभ करनेके बाद ये 'बुद्ध' नामसे प्रसिद्ध हुए। बोधिसत्त्व बुद्धमें 'समन्त-भद्रक' का उल्लेख किया गया है। अमरकोषमें कहे गए भगवान् बुद्धका दूसरा नाम 'समन्त भद्र' है, एवं 'गौतम' मनुष्य बुद्ध हैं। अमर कोषमें लिखे गये अवतार बुद्धके अठारह नामोंके अतिरिक्त उल्लिखित ग्रन्थोंमें और भी अनेक बुद्धोंका उल्लेख पाया जाता है। 'ललित-विस्तार' ग्रन्थके २१ वें अध्यायके १७८ पृष्ठमें लिखा गया है कि 'पूर्व बुद्ध'के स्थानपर गौतम बुद्धने तपस्या की थी—

"एष धरणीमण्डे पूर्वं बुद्धासनस्थः"

समर्थ धनुर्गृहीत्वा शून्य-नैरात्मवाणैः ।

क्लेशारिपुं निहत्वा द्वष्टिजालञ्चभित्वा-

शिव विरजमशोकां प्राप्यते वांधिमग्रयां॥

उक्त श्लोकसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि शाक्यबुद्धने पूर्व बुद्धके आविर्भाव क्षेत्रको अपने सिद्धिके अनुकूल समझकर वहाँ एक पीपल-वृक्षके नीचे तपस्या की थी। इस स्थानका प्राचीन नाम कीकट था, पर गौतम बुद्धके वहाँ सिद्धि प्राप्त करनेके बादसे उस स्थान का नाम 'बुद्ध गया' (बोध गया) हो गया है। यहाँ आज भी बुद्ध देवकी

प्रतिमूर्ति शंकर-सम्प्रदायके गिरि संन्यासियोंके अधिनायकत्वमें परिसेवित हो रही है। वे स्वीकार करते हैं कि बुद्ध गया ही, 'पूर्व बुद्ध,' आदि बुद्ध या विष्णु-बुद्धका आविर्भाव स्थान है। यह स्थान शाक्यसिंह बुद्धके मुक्ति लाभ करने का उपासना क्षेत्र मात्र है। प्राचीन 'अवतार बुद्ध' और वर्तमान 'गौतम बुद्ध' एक नहीं हैं।

'लंकावतार सूत्र' एक प्रसिद्ध प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ है। इसमें भी जिस बुद्धका उल्लेख मिलता है, उससे पता चलता है कि उल्लिखित बुद्ध आधुनिक शाक्यसिंह बुद्धसे पृथक हैं। इस ग्रन्थके प्रथम भागमें ही लंकाधिपति रावणने अजीन-पुत्र भगवान् पूर्व-बुद्ध तथा भविष्य कालमें आविर्भूत होने वाले बुद्ध या बुद्धसुत— सभीका स्तव किया था। पाठकवर्गकी जानकारीके लिये उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

अथ रावणो लङ्घाधिपतिः तोटक वृत्तेनानुगच्छ्य पुनरपि गाथागीतेन अनुगायन्ति स्म।

लंकावतार सूत्रं वै पूर्वबुद्धानुर्विणतं।

स्मरामि पूर्वकैः बुद्धैर्जिनपुत्रपुरस्कृतैः ॥९॥

सूत्रमेतत्रिगद्यन्ते ★भगवानपि भाषतां।

भविष्यन्त्यनागते काले बुद्ध बुद्धसुताश्च ये ॥१०॥

—[लङ्घावतारसूत्रं—1st Eddn. Fosc 1—by S.C. Das, C.I.E. & S.C. Acharya Vidyabhusan M.A., M.R.A.S.; Published by the Buddhist Text Society of India under the patronage of Government of Bengal. Printed at the Government Press, in January, 1900.]

अञ्जनसुत बुद्ध और शुद्धोदन बुद्ध पृथक हैं।

कुछ लोग कह सकते हैं कि आचार्य शङ्करकी अपेक्षा वैष्णवोंने ही बुद्धके प्रति अधिक सम्मान (★"निगद्यते is correct")

और आन्तरिक श्रुद्धा प्रदर्शित की है। अतः वैष्णवोंको भी बौद्ध कहा जाय। यहाँ मेरा मत यह है कि लिङ्गपुराण, भविष्यपुराण तथा वराह पुराणोक्त दशावतारके वर्णन प्रसंगमें नवम अवतार-स्वरूप जिस बुद्धका उल्लेख आया है, वे बुद्ध शुद्धोधनके पुत्र गौतम बुद्ध नहीं हैं। वैष्णव शून्यवादी बुद्धकी पूजा नहीं करते। वे “नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानव-मोहिने” (भा० १०।४०।२२) — मन्त्र उच्चारण करते हुए श्रीबुद्धदेवको अर्थात् विष्णुके नवम अवतार बुद्धको नमस्कार करते हैं।

श्रीमद्भागवतमें अन्यत्र श्रीबुद्धदेवके आविर्भावके सम्बन्धमें जो वर्णन आया है उसे नीचे उद्धृत किया जाता है।

“ततः कलौ सम्प्रवृत्ते सम्मोहाय सुरद्धिषाम्।
बुद्धो नाम्नाज्जनसुतः ‘कीकटेषु’ भविष्यति॥”
(श्रीमद्भा० १।३।२४)

इस श्लोकमें जिस बुद्धका उल्लेख किया गया है, वे अज्जनके पुत्र हैं, जिन्हें कुछ लोग अजीनके पुत्र भी कहते हैं तथा इनका आविर्भाव कीकट नामक स्थान अर्थात् गयामें हुआ था। पूज्यपाद श्रीधरस्वामीने उपर्युक्त श्लोककी टीका इस प्रकार की है—

“बुद्धावतारमाह तत इति। अज्जनस्य सुतः।
अजिन सुत इति पाठे अजिनोऽपि स एव। ‘कीकटेषु’
मध्ये गया-प्रदेशो।”

अद्वैतवादी भूलवशतः हो अथवा किसी दूसरे कारणसे ही हो श्रीधरस्वामीपादको अपने सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त मानते हैं। कुछ भी हो इस सम्बन्धमें उनकी उक्तिको सत्य समझकर इसे मायावादियोंके लिये ग्रहण करनेमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। वे कहते हैं कि ‘अज्जनसुत-बुद्ध भागवत सम्प्रदायके पूज्य हैं एवं उनका जन्मस्थान गया प्रदेशमें है। कलिके सम्यक् आगमनमें अर्थात् प्रारम्भमें उनका आविर्भाव होता है। श्रीनृसिंह पुराणमें (३६।२९) इसी प्रकार लिखा है—

“कलौ प्राप्ते यथा बुद्धो भवत्रारायण-प्रभुः।”

इससे विदित होता है कि भगवान् बुद्धका आविर्भाव कम-से-कम आजसे ३५०० वर्ष पूर्व तथा ज्योतिषके मतानुसार ५००० वर्ष पूर्व है। उनकी जन्म-तिथिके सम्बन्धमें निर्णयसिन्धु द्वितीय परिच्छेदमें लिखा है—

“ज्येष्ठ शुक्ल द्वितीयायां बुद्धजन्म भाविष्यति।”

अर्थात् ज्येष्ठमासके शुक्ल-पक्षकी द्वितीया-तिथिमें बुद्धदेवका जन्म होगा। उक्त ग्रन्थमें अन्यत्र बुद्धदेव की पूजाके सम्बन्धमें लिखा है—

“पौष शुक्लस्य सप्तम्यां कुर्यात् बुद्धस्यपूजनम्”।

अर्थात् पौष मासकी शुक्ला सप्तमी तिथिमें बुद्धदेवकी पूजा करनी चाहिए। बुद्धदेवके सम्बन्धमें उक्त प्रकारकी पूजा, नमस्कार और अर्चन-विधि जो दृष्ट होती है, वह विष्णुके नवम अवतार बुद्धको लक्ष्य करती है। विष्णुपुराण, अग्निपुराण, वायुपुराण और स्कन्दपुराण आदि ग्रन्थोंमें अनेक स्थानोंमें उनके संबंधमें उल्लेख है। ‘देवी भागवत’ नामक एक आधुनिक ग्रन्थमें तथा ‘शक्ति-प्रमोद’ नामक दूसरे ग्रन्थमें भी किसी एक बुद्धका प्रसंग उल्लिखित हुआ है, वे शाक्यसिंह बुद्ध हैं—विष्णु बुद्ध नहीं। यदि देव-देवियोंके सेवक अथवा पञ्चोपासक शून्यवादी शाक्यसिंह बुद्धकी किसी तरह पूजा अथवा सम्मानादि करें, तो उसमें उससे सनातन धर्मावलम्बी भागवतोंका कुछ भी बिगड़ता नहीं। मैक्समूलरके (Maxmuller) विचारसे शाक्यसिंह बुद्धका जन्म ईसासे ४७७ वर्ष पूर्व (?) कपिलवस्तु नगरके लुम्बिनी वनमें हुआ था। प्राचीन कपिलवस्तु नगर नेपालकी तराईमें एक प्रसिद्ध जनपद है। गौतमके पिताका नाम शुद्धोदन और माताका नाम मायादेवी था। यह ऐतिहासिक प्रसिद्ध सत्य है। अज्जन-पुत्र एवं शुद्धोदन-पुत्र दोनोंके नाम एक होनेपर भी व्यक्ति एक नहीं हैं। एकका आविर्भाव स्थान ‘कीकट’ अर्थात् ‘गया’ है, जो बोध गयाके नामसे आजकल

प्रसिद्ध है और दूसरेका जन्म स्थान कपिलवस्तु नगर है। इसलिए विष्णु-बुद्धके आविर्भाव-स्थान तथा माता-पिता सभी गौतम बुद्धके जन्म-स्थान और माता-पिता अदिसे सम्पूर्ण पृथक् हैं।

अब देखा जाता है कि साधारणतः लोग जिन्हें 'बुद्ध' कहते या समझते हैं, असलमें वे विष्णुके नवम अवतार बुद्ध नहीं हैं। आचार्य शंकरका इस सम्बन्धमें जो विचार है, हम उसके साथ एकमत नहीं हो पाते। अवश्य, ऐतिह्यमूलक विचारोंमें इसी प्रकार मतभेद प्रायः द्वष्टिगोचर होता है, तथापि किसी गुरुत्वपूर्ण विषयके निरपेक्ष भावसे आलोचना होनेकी नितांत आवश्यकता है। बुद्धका ऐश्वर्य देखकर उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापन करना एक बात है और उनके सिद्धान्त तथा विचारोंसे आकृष्ट होकर उनकी पूजा और सम्मान करना कुछ और बात है। जैसा भी हो मेरा विश्वास है—पाठकवर्ग स्पष्ट ही समझ गये होंगे कि बुद्ध केवल एक नहीं हैं, शाक्यसिंह बुद्ध और अवतार बुद्ध सम्पूर्ण पृथक् हैं। हो सकता है कि दोनोंके बीच किसी-किसी अंशोंमें साम्य भी हो, तथापि दोनों को कभी भी एक स्वीकार नहीं किया जा सकता।

आचार्य शंकरका बौद्धत्व

बौद्धमतानुसार शंकर बौद्ध हैं।

बौद्ध मतावलम्बी किशोरी मोहन चट्टोपाध्यायने अपने प्रकाशित "प्रज्ञा-पारमिता सूत्र"—१७७ पृष्ठमें लिखा है—“बौद्धोंका शून्यवाद” और हिन्दुओंका (शंकराचार्यका) 'ब्रह्मवाद' एकार्थ-बोधक विभिन्न शब्दमात्र हैं। किशोरी मोहन एक प्रधान बौद्ध-धर्मावलम्बी थे। इसमें कोई मतभेद नहीं है। आचार्य शंकर और बुद्धदेवका एक ही मत था, इसे उन्होंने उक्त ग्रन्थमें प्रमाणित किया है। विज्ञान भिक्षु प्रमुख सांख्यके दार्शनिक पण्डितगण, पातञ्जल दार्शनिक योगिगण, वेदान्त दार्शनिक श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीजीव गोस्वामी,

श्रीबल्लभाचार्य, श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी, श्रीबलदेव इत्यादि आचार्योंने, यहाँतक कि बौद्ध पण्डितोंने भी शङ्करको बुद्ध विचार-धाराके परिपोषकरूपसे ग्रहण किया है। शङ्करने स्वयं ही हमारी पूर्वप्रदर्शित युक्तियों के अनुसार बुद्धके प्रति यथेष्ट श्रद्धा और सम्मानका प्रदेशन किया है। विविध पुराणोंमें शङ्करवादका निर्देश प्रच्छन्न बौद्धवादके नामसे किया गया है। पुराणोंकी उन उक्तियों को अकाट्य समझकर शङ्करवादी अनेक व्यक्ति उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहकर कपट युक्ति पेश करना चाहते हैं। असलमें उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त कहनेका कोई भी यथार्थ कारण नहीं।

बौद्ध और शांकर सिद्धान्तोंका ऐक्य

ऐतिह्यके आधारपर अनेक प्रकारसे हमने शङ्करमत और बौद्धमतमें परस्पर सौसात्वश्य लक्ष्य किया है। केवल ऐतिह्यके बलपर आचार्य शङ्करको प्रच्छन्न बौद्ध कहनेसे हो सकता है—मायावादियोंको कुछ आपत्ति हो। उनकी इस आपत्तिको दूर करनेके लिये तथा उनके सन्तोषविधानके लिए शङ्कर तथा बुद्ध दोनोंके सिद्धान्तोंका संग्रहकर उनका ऐक्य प्रदर्शित कर रहा हूँ। मायावादका जीवन किस श्रेणीकी विचार-धारामें किस तरह पुष्ट होकर क्रमशः वृद्धिप्राप्त हुआ है, यही यहाँ पर पाठकोंके सामने निवेदन करनेका विषय है। प्रकृति ही माया है अथवा मायाका अङ्ग है। अतः बुद्धके प्रकृतिवादको मायावाद कहनेसे कोई विशेष पार्थक्य नहीं होता। 'बुध' धातुके कर्तृवाच्यमें 'क्त' होने पर 'बुद्ध' शब्द निष्पत्र होता है। बुध धातुसे बोध या ज्ञानका लक्ष्य होता है। 'मायाके' गर्भमें जिस बुद्धका अर्थात् ज्ञानका आविर्भाव होता है, उसे मायावाद कहते हैं। वास्तवमें गौतमके आविर्भावके बादसे ही मायावाद एक विशिष्ट रूप धारणकर जगत्में प्रकाशित और प्रचारित हुआ है। बौद्ध युगके पूर्वका अद्वैतवाद आधुनिक बुद्ध और शङ्करके अद्वैतवाद या मायावादसे सम्पूर्ण पृथक् था। जैसा भी हो, यहाँ शङ्कर और बौद्ध मतका ऐक्य प्रदर्शन

ही हमारा कर्त्तव्य है। अतः 'जगत्', 'ब्रह्म', 'शून्य', 'मोक्षका उपाय' और 'ब्रह्म' तथा 'शून्यका एकत्व' आदि विषयोंके सम्बन्धमें बौद्ध और शङ्कर मतमें मूलतः कोई पार्थक्य नहीं— नीचे यही प्रदर्शित किया जा रहा है।

बौद्धमतमें जगत् मिथ्या है

बौद्ध-मतमें जगत् एक शून्यतत्त्व है। जगत्का आदि असत् अर्थात् शून्य है तथा अन्त भी असत्-स्वरूप शून्य है। जिसका आदि और अन्त असत् या शून्य है उसका मध्य भी असत् या शून्य ही होगा। उनके मतमें काल किसी भी रूपमें स्वीकृत नहीं। शून्य ही आदि और शून्य ही अन्त माना जाता है। 'अतीत' शून्य है, 'भविष्य' भी शून्य है तथा दोनोंका मध्यवर्ती 'वर्तमान' भी शून्य है। वे कहते हैं—'वर्तमान नामक कोई भी काल नहीं—वह अतीत एवं भविष्यका ही नामान्तर है। कोई भी वाक्य बोलनेसे पहले यह भविष्य है



तथा बोलनेके साथ-ही-साथ अतीत हो जाता है। अतः 'वर्तमान' नामक किसी भी कालका अस्तित्व ढूँढ़नेपर भी नहीं पाया जाता। इस युक्तिका अवलम्बन कर बौद्धवादी प्रमाणित करना चाहते हैं कि वर्तमान प्रत्यक्ष जगत्का भी अस्तित्व नहीं है। हमारा कहना है—'राम जीवित है'—कहनेसे क्या रामका अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता? राम नामका कोई भी व्यक्ति नहीं है—क्या यही कहना होगा? ऐसा होनेसे 'वर्तमान' कालको अस्वीकार करनेकी युक्ति देनेवाला वर्तमान रहकर जो युक्ति प्रदर्शित करता है, उस युक्ति और उस व्यक्ति—दोनोंको भी अस्वीकार करना होगा। वस्तुतः वर्तमान काल है, इसीलिये भूत और भविष्यकी सत्ताकी उपलब्धि होती है। जैसा भी हो बौद्धमतमें जगत्की त्रिकाल मिथ्यता ही प्रमाणित होती है, आचार्य शङ्करने भी यही मत ग्रहण किया है—यह पीछे दिखलाया जायगा। □

(क्रमशः)

श्रीभक्ति-मार्ग

जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील प्रभुपाद

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या २, पृष्ठ ३५ से आगे]

वैधी भक्तिका साधन और परिचय

जिनके नैसर्गिक सम्बन्धज्ञानका उदय नहीं हुआ है, वे भगवत्-प्रिय वस्तुका अलौकिक सौन्दर्य पहले देख नहीं पाते। अतः उनके लिए विधि-मार्गमें शास्त्रीय विचार और गुरुके उपदेश आवश्यक हैं। जो शास्त्रके वाक्योंपर श्रद्धाके साथ विश्वासकर गुरुके निकट भजन-शिक्षा करते हैं और भजनके प्रभावसे अनर्थोंके हाथसे परित्राण प्राप्त करते हैं, उनके साधन-भक्तिके कालमें ही निष्ठा नामकी एक अवस्था परिलक्षित होती है,

उसीसे रुचि उत्पन्न होती है। विधिके अनुगत होकर भजन करनेके लिए श्रीरूप गोस्वामीपादने अपने उपदेशामृतमें कहा है—

स्यात् कृष्णानामचरितादि सिताप्यविद्या,
पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा,
स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गद्मूलहन्त्री॥

(उपदेशामृत ७)

अर्थात् अहो! जिनकी जिह्वाका स्वाद पित्तके दोषसे बिगड़ा हुआ है अर्थात् जो अनादि कालसे

कृष्ण-विमुख होनेके कारण अविद्याग्रस्त हैं, उन्हें कृष्ण-नाम, गुण एवं उनकी लीला आदि गानरूपी सुमधुर मिश्री भी मीठी नहीं लगती। किन्तु, यदि आदरके साथ अर्थात् श्रद्धायुक्त होकर उसी कृष्ण-नाम-चरितादिरूपी मिश्रीका निरंतर सेवन किया जाय तो क्रमशः निश्चय ही उसका अस्वादन उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा और कृष्ण-विमुखतारूप जड़-भोग व्याधिका (पित्त रोग की तरह) समूल नाश हो जायेगा।

रागानुगा भक्तिका कपट अनुकरण अपराधमय है

रुचिका उदय हुआ हो, साथ ही साथ प्रवृत्तिरूपी अनर्थ भी प्रबल हो, ऐसी घटना निष्कपटता अथवा निर्वलीकत्वका बाधक है। इस प्रसंगमें श्रीमद्भागवत का निम्नलिखित श्लोक उल्लेखनीय है—

येषां स एव भगवान् दययेदनन्तः
सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो यदि निर्वलीकम् ।
ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां
नैषां ममाहमितिधीः शवशृगालभक्ष्ये ॥★
(भा० २।७।४२)

(★भावार्थ—भगवान् श्रीअनन्त देव जिनपर कृपा करते हैं, वे यदि निष्कपट होकर सब प्रकारसे कायमनोवाक्यसे उनके चरणोंमें शरणागत हो जाय, तो भगवान्‌की दुस्तरा अलौकिकी मायाको पार कर सकते हैं। ऐसे शरणागत भक्तों का कुत्तों और शृगालोंके भक्ष्य इस देहमें “मैं और मेरा” बुद्धि नहीं रहती।)

चैतन्यचन्द्रोदय नाटकमें कहा गया है—

“वाह्याभ्यन्तरयोः समं वत कदा वीक्ष्यामहे वैष्णवान्।”

जिनकी रुचि कृत्रिम होती है, वे शीघ्र ही विषयोंमें फँस जाते हैं। तब वे अपराधको ही

वैष्णव कृत्य जानकर रागानुग बाह्य साधन श्रवण-कीर्तनका आश्रयकर अपनी भक्तिलताको अपराध द्वारा उखाड़ फेंकते हैं, जिससे वह लता सूख जाती है। अतः अन्तश्चिन्तित उनका सिद्ध-देह उस समय कृष्ण सेवाके बदले कृष्णसे अतिरिक्त वस्तुका अनुशीलन करने लगता है, तब वैष्णव-विद्रेष करते-करते जीव अतिवाड़िओं★★ की तरह श्रीगुरु-पादपद्ममें अपराध कर बैठते हैं। ये अपनेको श्रीमन्महाप्रभुका अनुगत सम्प्रदाय कहते हैं, किन्तु वास्तवमें वे महाप्रभुके अनुगत गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदायसे अलग एक नवीन पंथी हैं। ये प्रसाद-सेवाके समय अपना उच्छिष्ट प्रसाद स्वयं सर्व साधारणमें वितरण करनेके कारण अतिवाड़ी सम्प्रदाय या रूप कविराजवादी सम्प्रदाय के नामसे ख्यात हैं।) वे शास्त्रोंकी अवज्ञा कर उच्छृंखल होकर रागानुगा भक्तिकी आड़में वैधी-भक्तिकी निंदा करते हैं। इस विषयमें शास्त्रका स्पष्ट निर्देश है—

“श्रुति स्मृतिपुराणादि पञ्चरात्र विधिं बिना।
आत्यन्तिकी हरेभक्तिरुपतायैव केवलम् ॥”

साधनभक्ति—वैधी और रागानुगा

वैधी और रागानुगा—ये दोनों ही मार्ग साधनभक्तिमें अवस्थित हैं। भावके उद्दित होने पर वैधी भक्तिके अधिकारी भी रागानुग मार्गसे भजन करना आरंभ करते हैं। वैधी भक्त ब्रजवासियोंके भावोंसे लुब्ध होनेके पहले शास्त्र और युक्तिकी अपेक्षा करते हैं। उनका संदेह दूर होनेपर वे विचार-प्रधान मार्गके सिद्धान्तको जानकर रुचि-प्रधान मार्गमें प्रवेश करते हैं। ऐसी अवस्था आनेसे पहले ही कपटतापूर्वक रुचि-प्रधान-पथमें अपनेको अवस्थित समझकर वैधी मार्गमें स्थित भक्तोंके साथ यदि वे व्यर्थके विवादमें प्रवृत होते हैं, तो ऐसा

(★★उत्कल प्रदेशमें जगन्नाथ दास और रूप कविराजको तथा इनके अनुगत सम्प्रदायको अतिवाड़ी सम्प्रदाय कहते हैं।

समझना चाहिये कि ऐसे 'रुचि-प्रधान' परिचयकी आकांक्षा करने वाले व्यक्तियोंके स्वरूपकी विभ्रान्ति हुई है। फिर रागानुगा मार्गके रूपानुग आचार्य श्रीजीवपादके द्वारा रचित 'श्रीभागवत-सन्दर्भ' के सिद्धान्तोंसे विमुख होकर नाम-श्रवण और अनर्थ-निवृतिके बाद क्रमशः रूप-श्रवण, गुण-श्रवण और लीला-श्रवणकी अवज्ञा होनेपर रागानुगा साधनका भी विरोध होना अवश्यम्भावी है। क्योंकि वाह्यतः हरिकथाका श्रवण और कीर्तन दोनों ही रागानुगा मार्गमें अत्याज्य (न छोड़ने योग्य) कृत्य विशेष (साधन) हैं।

साधन भक्तिका क्रम

श्रीजीवपादने लिखा है—तदेवं नामादिश्रवण भक्त्यज्ञक्रमः। तथापि प्रथमं नामः श्रवणम्, अन्तःकरणशुद्ध्यर्थमपेक्ष्यम्। शुद्धेचान्तःकरणे रूपश्रवणेन तदुभययोग्यता भवति। सम्युदिते च रूपे गुणानां स्फुरणं सम्पद्यते। ततस्तेषु नामरूपगुणेषु तत्परिकरेषु च सम्यक् स्फुरितेष्वेव लीलानां स्फुरणं सुष्ठु भवतीत्यभिप्रेत्य साधनक्रमो लिखितः। एवं कीर्तन-स्मरण योज्यम्। इदञ्च श्रवणं श्रीमन्मुखरितं चेन्माहात्म्यं जात रुचिनां परमसुखञ्च।

(श्रीभक्तिसंदर्भ-संख्या २५६)

अर्थात्, क्रमशः नाम-रूप-गुण आदिका श्रवण ही भक्तिके अंगोंका क्रम है। तथापि अन्तःकरणकी शुद्धताके लिए पहले-पहल नाम-श्रवण ही अपेक्षणीय होता है। अन्तःकरण शुद्ध होनेसे रूप-श्रवणके द्वारा हृदयमें रूपका उदय होता है,

इसके द्वारा गुणसमूहकी स्फूर्ति होती है। उसके बाद नाम, रूप, गुण और तदीय परिकरसमूहकी भली-भाँति स्फूर्ति होनेपर भलीभाँति लीलासमूहकी स्फूर्ति होती रहती है। इसी अभिप्रायसे साधनक्रम लिखा गया है। इसी प्रकार कीर्तन और स्मरणके विषयमें भी जानना चाहिए। यह श्रवण महाजन-मुखरित होनेपर महामाहात्म्यसे युक्त एवं जिन्हें रुचि उत्पन्न हो चुकी है, उनके लिए परम सुखप्रद होता है।

नाम ग्रहणके द्वारा अपने सिद्ध परिचयका उदय

जो अनर्थयुक्त जीवको जात-रुचि समझकर उन्हें कृष्ण-नाम-रूप-गुण-परिकर-वैशिष्ट्ययुक्त लीला-रसग्रन्थ श्रवण कराते हैं अथवा श्रवण करते हैं, उनकी यथेच्छाचारिता अवश्य ही विश्रृंखलता उत्पन्न करती है। कृष्ण-नाम करते-करते सिद्धान्तको जाननेपर शुद्ध भक्त अपना परिचय अच्छी तरह जान सकते हैं। नाम-भजनमें नाम उच्चारणकारी अपने अनुकूल या प्रतिकूल विचारसे युक्त-वैराग्यविशिष्ट गृहस्थ अथवा पारमहंस्य धर्म—इनमेंसे किसी एक को अपनी सुविधानुसार ग्रहण करेंगे। इसमें किसीको बाधा देना उचित नहीं। किन्तु, फिर भी जड़-गृहमें आसक्ति अथवा स्त्रैण होना भक्तोंके लिए उचित नहीं और तथाकथित परमहंस होकर फल्लु (शुष्क) वैराग्यका आश्रय करनेसे भजनमें विघ्न पड़ता है। □



साधु-संग

श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

मानवोंकी दो श्रेणियाँ

इस सुविस्तीर्ण भूमण्डलमें हम असंख्य मानवों को देखते हैं। साधारणतः हम उन्हें दो श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं—(१) ईश्वर विमुख (२) ईश्वरोन्मुख। उनमें ईश्वर-विमुख मानव प्रथम श्रेणीमें आते हैं। ये मायाद्वारा मुग्ध हाकर “मैं और मेरा” के अभिमानमें मत्त होकर इस संसारमें भटकते हैं और उसकी घोर यंत्रणओं की ज्वालामें दग्ध होते रहते हैं। इनमें कोई नैतिक, कोई कर्मी, कोई ज्ञानाभिमानी और अधिकांश स्वार्थपर विधि-विहीन अथवा उच्छृंखल होते हैं। द्वितीय श्रेणीके मानव ईश्वरके प्रति उन्मुख होते हैं। वे जगतमें रहकर भी ईश्वरका अनुग्रह लाभ करनेका प्रयत्न करते हैं। भिन्न-भिन्न साधनोंका अवलम्बन करनेसे उनमें भी विभिन्न श्रेणियाँ हो जाती हैं। कोई कर्मयोगी भगवदर्पित निष्काम कर्म करता है, कोई ज्ञानी वैराग्यके साथ ईश्वरकी ध्यानादि क्रियाएँ करता है, कोई अष्टांगयोगी आसन, प्राणायामके साथ आत्मा और परमात्माके संयोगका साधन करता है तथा कोई-कोई भक्त भी हैं, जो अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा अनुकूल भावसे श्रीकृष्णकी सेवा करते हैं।

द्वितीय श्रेणीके मानवोंमें भक्तका श्रेष्ठत्व

अब द्वितीय श्रेणीके मानवोंमें ईश्वरका अनुग्रह पानेका कौन विशेष अधिकारी है, इस प्रश्नकी मीमांसा सभी उपनिषदोंके सार श्रीमद्भगवद्गीतामें अति सुन्दर ढंगसे की गयी है। शास्त्रों में सरल विश्वास रखने वाले श्रद्धालु व्यक्ति सहज ही में भक्तिकी श्रेष्ठताकी उपलब्धि कर सकते हैं, किन्तु शास्त्रीय वाक्योंमें संदिग्ध, तार्किक व्यक्ति तरह-तरहके तर्कोंकी अवतारणा करके भी इस विषयकी मीमांसा करनेमें असमर्थ रहता है। तार्किक मन सर्वदा अपने हृदय क्षेत्रको दूषित रखता

है। कर्मी, ज्ञानी, योगी, भक्त आदिके तारतम्यमूलक विचारके स्थलमें भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनसे कह रहे हैं—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्रतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्तमो मतः॥

(गीता ६।४६-४७)

तपस्वीकी अपेक्षा योगी श्रेष्ठ है, योगी ज्ञानयोगका अवलम्बन करने वालेकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। अष्टांग-योगी कर्मयोगीसे भी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन! तुम योगी बनो। लेकिन यहांपर भगवान् अर्जुनको सावधान कर देते हैं। योगियोंमें कौन योगी सर्वोत्तम है तथा कौन योगी भगवान्को अतिशय प्रिय है—इस विषयमें किसीको भ्रम न हो इसलिए तुरन्त ही फिर कहने लगते हैं—जो लोग परम श्रद्धाके साथ अनन्यचित्त होकर मेरा भजन करते हैं, वे पूर्वोक्त सभी योगियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ हैं। क्योंकि श्रद्धालु साधक ही भक्त- योगी है और “भक्त्याहमेकया ग्राह्यः,” एकमात्र भक्तिके द्वारा ही साधक मुझे जान सकता है।

प्रकृत साधुसंगके अभावसे कर्म ज्ञानादिकी सृष्टि

संसारमें प्रविष्ट होकर मानव देश-भेद और अवस्था-भेदसे संस्कार, शिक्षा और संग्रहमसे भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ धारण करता है। इसीलिए कोई या तो कर्मप्रिय, कोई ज्ञानी अथवा कोई भक्त हो जाता है। ईश्वर स्वरूपतः क्या वस्तु है, जीवका स्वरूप क्या है, माया-निर्मित यह जगत् क्या है, इनमें परस्पर क्या सम्बन्ध है, जीवका लक्ष्य क्या है और वह लक्ष्य सिद्धि किस उपायसे हो सकती है—इन सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तत्त्वोंका विशुद्ध विचार तथा वास्तव साधुसंगका अभाव

भी इन भिन्न-भिन्न भावोंके प्रधान कारण हैं। वास्तव में परमेश्वर एक वस्तु है और जीव भी स्वरूपतः एक वस्तु है। यहाँ प्रत्येक मनुष्यमें जो रुचिकी विलक्षणता देखी जाती है, उसका कारण संस्कार, शिक्षा और संगफलके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सभी प्रकारकी उपाधियोंसे सर्वथा मुक्त भगवत्-तत्त्वज्ञ साधुओंके संग और उपदेशसे ही तत्त्वज्ञान मिलता है और ऐसे साधुओंकी कृपा-शक्तिसे ही वैसा तत्त्वज्ञान उपलब्ध किया जा सकता है। साधुसंग और साधुकृपा के बिना विशुद्ध तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए कोई भी दूसरा तरीका नहीं है।

साधुसंग ही भवसागरसे पार होनेका एकमात्र उपाय है

कुछ लोग ऐसे हैं जो ईश्वरका अनुग्रह तो पाना चाहते हैं, इसके लिए प्रयास भी करते हैं, किन्तु अपने कुसंस्कारके फेरसे हो अथवा अन्याय रूपसे आत्मनिर्भरताके वशमें ही होकर हो, वे न तो साधुसंगकी कुछ आवश्यकता अनुभव करते हैं और न साधुसंग लाभ करनेके लिए कुछ प्रयत्न ही करते हैं। यह उनके माया द्वारा मुख होनेकी पहचान है। संसार-समुद्रमें डूबते हुए मानवके लिए साधुसंग ही एकमात्र सहारा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरा पथ नहीं। श्रीशंकारचार्यने कहा है—

क्षणमपि सज्जन-संगतिरेका।
भवति भवार्णव-तरणे नौका॥

भक्तोंके संगसे भक्ति लाभ

लेकिन खेदका विषय है कि ऐसे साधुसंगमें भी उनकी प्रीति उत्पन्न नहीं होती। फिर यदि कोई साधुसंगकी आवश्यकता वचनोंसे स्वीकार करता भी है, तो वह हृदयसे उसे चाहता नहीं। यह उसके दुर्भाग्यका ही सूचक है। शास्त्रका कहना है—

भक्तिस्तु भगवद्भक्ति सङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्गः प्राप्यते पुम्भिः सुकृतैः पूर्व सञ्चितैः॥

(ब्रह्मारदीय पुराण)

भक्तोंके संगसे ही भक्ति प्राप्त होती है। पूर्वसंचित अनेक सुकृतियोंके फलस्वरूप

साधुओंका संग मिलता है। यद्यपि सुकृतिके अभावमें किसीको साधुसंग मिलना असम्भव है, फिर भी व्याकुल होकर प्रयत्न करनेसे साधुसंग दुर्लभ नहीं होता। इस जगत्‌में स्थान-स्थानपर साधु रहते हैं, प्रयत्न करनेसे उनका दर्शन मिल सकता है। लेकिन इसके लिए तो हार्दिक प्रयत्न करना चाहिए। घरमें पैरपर पैर रखे बैठे हुए केवल यह कहकर पछतानेसे क्या होगा कि साधुसंग नहीं मिला?

संसार प्रविष्ट जीवके लिए साधुसंग ही सुख-प्राप्तिका उपाय है

मानव इस मायिक जगत्‌में प्रवेशकर भूले हुए पर्थिककी तरह इधर-उधर भटक रहा है। किस रास्तेमें चलकर सुख प्राप्त हो सकेगा, किस उपायका अवलम्बन करनेसे अभीष्ट सिद्ध होगा—इन चिन्ताओंसे अस्थिर होकर कुछ भी स्थिर नहीं कर पाता है, किन्तु साधुसंग प्राप्त होनेके साथ-ही-साथ सभी संशय दूर हो जाते हैं और गन्तव्य पथ सामने दीख पड़ता है—

भवापार्णं भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तद्वच्युत सत्समागमः।
सत्सामो यर्ह तदैव सद्गातौ परावरेण त्वयि जायते रतिः॥

(भा० १०।५१।५३)

[अर्थात् अपने स्वरूपमें सर्वदा स्थित रहने वाले (अच्युत) भगवन्! जीव अनादि कालसे जन्म-मृत्यु रूप संसारके चक्करमें भटक रहा है। जब उस चक्करसे छूटनेका समय आता है, तब उसे सत्संग प्राप्त होता है। यह निश्चित है कि जिस क्षण सत्सङ्ग प्राप्त होता है, उसी क्षण संतोंके आश्रय, कार्यकारणरूप जगत्‌के एकमात्र स्वामी आपमें उसकी हङ्ग भक्ति उत्पन्न होती है और उसीसे मुक्ति प्राप्त हो जाती है।]

मायाके चक्करमें फँसनेके कारण जीवोंकी भगवद्भाविरुद्धता इतनी प्रबल हो गयी है कि विषयी-मानव एक क्षण भी विषय-चिन्ता अर्थात् विषयोंकी सेवा किए बिना रह नहीं सकता। अनेक प्रयत्न करके भी उसे मायाके निकट मुँहकी खानी पड़ती है। लेकिन संतोंके मुखसे निःसृत हरि-गुण गानका श्रवण करनेसे शीघ्र ही मायाका बंधन खुल

जाता है। श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—
 सतां प्रसंगान्मम वीर्यसर्विदो,
 भवन्ति हृत्कर्ण रसायनाः कथाः।
 तज्जोषणादाश्वपवर्ग वर्त्मनि
 श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥
 (भा० ३।२५।२५)

[संतोंके यथार्थ संगमें मेरे माहात्म्यको प्रकाश करनेवाली, शुद्ध हृदय और शुद्ध कर्णोंकी प्रीति उत्पन्न करनेवाली, जिन मधुर कथाओंकी चर्चा होती है, उसे प्रीतिके साथ श्रवण करते-करते शीघ्र ही अविद्या-निवृत्तिके वर्तमन्वरूप (पथस्वरूप) मुझमें पहले श्रद्धा, पीछे रति और अन्त में प्रेमभक्ति उदित होती है।]

निर्जनवाससे कृष्ण-भक्ति नहीं होती,
वह साधुसंगके सापेक्ष है

बहुत लोग ऐसा संदेह कर सकते हैं कि साधुसंगसे श्रीभगवान्‌की कथाओंका श्रवण और कीर्तन ही तो होता है, फिर इसके लिए इतने कष्टकी आवश्यकता ही क्या है? उसे तो ग्रन्थोंमें पढ़कर या निर्जनमें बैठ कर भी किया जा सकता है। फिर साधुसङ्गकी आवश्यकता ही क्या है? और भक्तिका मिलना भी साधु सङ्गके सापेक्ष क्यों है? इन संशयों को दूर करनेके लिए श्रीचैतन्यदेवने कहा है,

कृष्णभक्ति-जन्ममूल हय 'साधुसंग'।
 कृष्ण-प्रेमजन्मे तेहो पुनः मुख्य अंग॥
 महत्-कृपा बिना कोन कर्म 'भक्ति' नय।
 कृष्णभक्ति दूरे रह संसार नहे क्षय॥
 'साधुसंग', 'साधुसंग'-सर्व शास्त्रे कय।
 लवमात्र साधु संगे सर्वसिद्धि हय॥
 (चैतन्य चरितमृत मध्य २२।८३, ५१, ५४)

अर्थात्, यद्यपि साधुसंग पहले ही कृष्णभक्तिके जन्मका मूल है, तथापि कृष्णप्रेम उत्पन्न होनेपर भी वही साधुसङ्ग फिर प्रेमके मुख्य अङ्गमें परिगणित होता है। केवल कृष्णभक्तोंकी कृपाके बिना अप्राकृत कृष्णभक्तिके उदित होनेकी सम्भावना नहीं; कृष्ण भक्ति तो दूर रहे,

संसारचक्रका भी क्षय नहीं हो सकता। साधुसङ्गकी महिमा सभी शास्त्रोंने गाई है। निमेष-काल मात्र साधुओंके सङ्गमें सभी प्रकारकी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

महत् (साधु) कृपाके बिना किसी भी कर्मसे भक्तिलाभ नहीं होती

साधुओंके सङ्ग और उनकी कृपाके अतिरिक्त किसी भी कर्मसे भक्ति लाभ नहीं होती है। क्षणभरके साधुसङ्गसे भी उनकी कृपा प्राप्तकर सभी सिद्धियोंके सार भक्तिकी प्राप्ति हो सकती है। किन्तु साधु-कृपाके सिवा किसी भी अन्य उपायसे कुछ नहीं होना है। श्रीमद्भागवतमें परम भागवत जड़भरत रहगणसे कह रहे हैं—

रहूगणैतत् तपसा न याति
 न चेज्यया निर्वपणाद् गृहाद् वा।
 न छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्ये—
 विना महत्पाद रजोऽभिषेकम्॥

(भा० ५।१२।१२)

[रहूगण! महाभागवतोंके चरणोंकी धूलिसे आत्माको नहलाए बिना केवल ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, संन्यास अथवा जल, अग्नि या सूर्यकी उपासना आदि किसी भी साधनसे भगवत्तत्त्वका ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता।]

महाजनोंके चरणोंकी धूलिसे नहानेसे ही भक्ति प्राप्त होती है। श्रीप्रह्लादजी कह रहे हैं—

नैषा मतिस्तावदुरुक्रमाग्निं
 स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
 महीयशां पादरजोऽभिषेकं
 निष्कञ्चनानां न वृणीत यावत्॥

(भा० ७।५।३२)

'निष्कञ्चन अर्थात् जिनका विषयाभिमान दूर हो गया है—ऐसे परमहंस महावैष्णवोंके चरणोंकी धूलिसे जबतक ये इन्द्रिय-सुख-परायण देहारामी व्यक्तिगण स्नान नहीं करते, तब तक इनकी मति भगवान् उरुक्रमके चरणकमलोंमें नहीं लगती है; अर्थात् जबतक वे सन्तोंकी चरणोंकी धूलिका आश्रय नहीं लेते, तबतक भगवत्-चरणोंमें उनकी बुद्धि निविष्ट नहीं होती है'



क्या करूँ?

यद्यपि सबके सामने यह प्रश्न नहीं उठता, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि प्रायः सबको यह जानने की इच्छा होती है—“तो अब क्या करना चाहिए?” हाँ, हर समय हर प्रकारसे इस प्रश्नको उठनेका अवसर मिलता है। इस प्रश्नपर हम दो तरहसे विचार कर सकते हैं—

(१) सर्वसाधारण मनुष्यमात्रके लिये, जीवन भरके लिये।

(२) विशेष व्यक्तिके लिये, किसी विशेष अवसर पर।

यहाँ मेरी यह इच्छा नहीं है कि मैं इस दूसरे पहलू पर कुछ ज्यादा कहूँ, लेकिन साधारणतः उसके बारेमें कुछ परिचय देना अप्रासङ्गिक (०००००००००००००) न होगा। यद्यपि यह किसीको भी अपरिचित नहीं, फिर भी इसके अचानक सामने आनेका इतना जबरदस्त और तेज प्रभाव होता है कि यह आदमीको कभी-कभी बहुत परेशानीमें डाल देता है और वह आदमी न जाने कहाँ-से-कहाँ उड़ जाता है, न जाने कहाँ-कहाँ गहरा चक्कर खाता फिरता है।

उदाहरणके लिये—एक कॉलेजका लड़का परीक्षामें दाखिल हुआ, परीक्षा हो गयी; विचार यह था कि इन्टर पासकर बी० ए० के लिये तैयार हो जायगा। पास भी हुआ, किन्तु डिविजन (Division) थर्ड (III) मिला और बी० ए० में भर्ती होनेके लिये ‘सीट’ नहीं मिली। वह सोचने लगा—‘क्या करूँ?’ दूसरी एक लड़की जिसने इन्टर तो अच्छी तरहसे पास कर लिया और जिसके मनमें यह भारी इच्छा थी कि एम० ए० पढ़ेगी, किन्तु इसी अवसर पर उसकी शादी कर दी गयी। ससुरालके आदमी कुछ रुद्धिवादी (Conserva-

tive) प्रकृतिके थे। हुक्म हुआ—“नहीं, और पढ़नेकी जरूरत नहीं है, इस घरकी ऐसी ही रीति है।” लड़की सोचती है—“क्या हो गया? अब क्या करूँ?” लेकिन वह कर ही क्या सकती है? सौदागर व्यापारमें बहुत कुछ आशा करता है लेकिन अचानक भाव गिर जाता है, तो वही “क्या करूँ?” कोई आदमी शादीमें शामिल होनेके लिये जा रहा है, स्टेशन पर पहुँचनेके पहले ही गाड़ी छूट जाती है तो फिर वही “क्या करूँ?” इसी प्रकार अगर हम ध्यानसे देखें तो यह “क्या करूँ?” हमारे सामने तरह-तरहसे समय-असमय बिना सूचना दिये ही आ जाता है और हमें ऐसी परिस्थितिमें डाल देता है कि हमारी सारी चिन्ता उसीको सुलझानेमें लग जाती है। हम एक डवाँडोल परिस्थितिमें पड़कर चक्कर खाते रहते हैं। मैं चाहता हूँ कि हर आदमी यह अनुभव करे कि यह प्रश्न कितना आगन्तुक और आकर्षित है। यहाँ पर शायद सभी एकमत होंगे कि हाँ! बात तो ऐसी ही है। लेकिन इसका समाधान? यह उलझन किस तरहसे सुलझायी जा सकती है—यह बतानेकी आवश्यकता है। इसका उत्तर साधारण बुद्धिसे देनेके लिये नाना प्रकारके उपाय बतलाए जा सकते हैं तथा उन सबका मूल एक यही है—उसी परिस्थितिके अनुसार या समयानुकूल अपना कर्तव्य किया जाय और उसके बारेमें जानकारोंसे सलाह ली जाय। ये सभी संसारिक विषय हैं और इनमें हजारों सलाहकार मिल सकते हैं। लेकिन ऐसी सलाह देनेकी न तो मेरी इच्छा है और न उद्देश्य ही है।

मैं बात कुछ और कहना चाहता हूँ, जिसपर अच्छी तरह ध्यान देना चाहिये। मैं देखना चाहता

हूँ कि सभी अपने जीवनमें उसका प्रयोग करें (Have a practical side) और उससे फायदा उठावें, जिससे यह मालूम कर सकते हैं कि बात सच्ची है या झूठी?

इस प्रश्नके दूसरे पहलू का हल करनेके लिये हमें नं. १ का विचार करना आवश्यक है। वास्तवमें अगर हम इसका पहला पहलू अच्छी तरह समझें और काममें लावें तो दूसरा पहलू बहुत आसानीसे हल हो जाता है और हर एक व्यक्तिका जीवन सफल हो सकता है।

व्यापकरूपसे इस प्रश्नका उत्तर जाननेके लिये एक और प्रश्न सामने आ जाता है और वह है—“मैं कौन हूँ?” इसका जवाब तो हर आदमी दे सकता है। कोई कहेगा “मैं ब्राह्मण हूँ,” कोई कहेगा “मैं क्षत्रिय हूँ” और इस तरहसे चारों वर्णोंसे शुरू करके करीब-करीब चार हजार या चार लाख अथवा न जाने कितने जवाब मिलेंगे। फिर “मैं मंत्रीजी हूँ,” और “मैं चेयरमैन साहब हूँ” और “अजी, मैं तो प्रेसमैनों का नेता हूँ” आदि जवाब शुमारमें लावें तो फिर जवाबों का ताँता बँध जायगा। फिर “क्या करूँ” का जवाब भी उसीके अनुसार न जाने कितने ही हो जाएँगे जिसके लिए एक छोटा-सा विधान का ग्रन्थ (Volume of constitution) बन जायगा। इस तरह समस्या जटिल की जटिल ही रह जायगी। लेकिन इतनी गुंजाइश कहाँ कि इतनी लम्बी चौड़ी बातोंके चक्रकरमें फसूँ—और अगर फँस भी जाऊँ तो फिर उससे निकलना क्या कोई आसन बात है? इसलिए एक छोटासा सरल जवाब ढूँढ़ निकालना ठीक होगा।

यह कहा जा सकता है कि मैं एक आदमी हूँ। लेकिन फिर भी प्रश्नोंका ढेर लग जायगा—आदमी किसको कहते हैं? उसका लक्षण क्या है? वह क्या करता है? कैसा है? तो फिर भी उलझन ही उलझन। इसलिए यह जवाब भी छोड़ देना ही अच्छा रहेगा। अंतमें दार्शनिक भाषासे

हम कह सकते हैं कि हम जीव हैं। यहाँ पर एक छोटीसी बात मैं कहना चाहता हूँ और वह यह है कि मैं प्रमाणस्वरूप शास्त्रके श्लोक आदि उपस्थित करना नहीं चाहता हूँ क्योंकि मुझमें न तो इतना पाण्डित्य ही है और न अधिकार। जीवके विषयमें हम सुनते हैं और मानते भी हैं कि उसके साथ परमात्माका किसी न किसी तरहका सम्बन्ध है। एक भारतवासीके लिए जीव और परमात्मा नए शब्द नहीं हैं। प्रायः सभी इन दो शब्दों का नित्य व्यवहार करते हैं। जीवात्माका परमात्माके साथ अथवा जीव का ब्रह्मके साथ क्या सम्बन्ध है—इन उच्च सिद्धान्तों की बातोंको कहनेकी न तो मेरी शक्ति है और न अधिकार, लेकिन एक बात हम जानते हैं और हर समय अनुभव भी करते हैं कि जीव किसीके अधीन है। वह इच्छानुसार चल नहीं सकता, न जाने कौन उसको शासनमें रखता है और उसकी इच्छानुसार चलना पड़ता है। यह सभी जानते हैं कि हर काम किसीके अपने मनके अनुसार नहीं होता। करते-करते सब हार जाते हैं, लेकिन वह बात नहीं होती जो मन चाहता है। इसलिए इस बातमें संदेह नहीं है कि हम लोगोंको चलानेवाला कोई दूसरा अवश्य है और वही सबका नियन्ता है। खोलकर हम कह सकते हैं कि हम सब उसके दास हैं—दो एक दिनके लिए नहीं सदाके लिए हैं। एक ही जन्मका नहीं, जन्म-जन्मान्तरोंका सबके नियन्ताका आदर्श हम गीतामें स्पष्ट देखते हैं और देखकर दंग रह जाते हैं। डर भी लगता है, लेकिन फिर भूल जाते हैं। अर्जुन जैसा जबरदस्त आदमी जिसने अपने विचार-बलसे युद्ध नहीं करनेका निश्चय कर लिया था, अंतमें घुटने टेककर कहता है, किनसे—उसी सर्व-नियंता श्रीकृष्णसे। और क्या—“आपका कहना करूँगा।” कहाँ गया वह सुदृढ़ विचार और कहाँ गया वह निश्चय? तो बात यह है कि वहाँ पर किसीकी कुछ भी नहीं चलती।

अब इन सिद्धान्तोंका निचोड़ निकलता है कि जीव नित्य ही श्रीकृष्णका दास है। कोई अज्ञानतावश इसे नहीं जान पाता अथवा कभी कुछ ज्ञानसे भी भूल जाता है, लेकिन वह सम्बन्ध लगा हुआ है। उसको सदा प्राप्त करना ही मूल-ज्ञान अथवा स्वरूप-ज्ञान है और उसीसे आनंद मिलता है। उसे भूल जाना ही विपत्तिमें पड़ा और शोकसागरमें डूबना है। इस भूलसे ही “क्या करूँ?” प्रश्नका दूसरा पहलू उठता है। यहाँपर कोई यह नहीं समझे कि दास शब्दका अर्थ जैसा आजकलके कारखानेका नौकर या पुराने जमानेके क्रीतदास से (Slave) है। भगवान्‌का दास तो कुछ और ही है, परन्तु उसका विचार यहाँ करना नहीं है।

अब यह स्थिर हो चुका है कि मैं कौन हूँ?—मैं श्रीकृष्णका सदाके लिए दास हूँ। यह ‘दास’ पद या शब्द हेय नहीं, बल्कि बड़ा ही मधुर और रोचक है। दासका काम तो सेवा करना है अर्थात् ‘दास’ को हम सेवक कह सकते हैं। सेवा क्या है?—तदनुकूल आचरण करना ही सेवा अर्थात् श्रीकृष्णकी इच्छानुसार कार्य करना, अपनी इच्छाको उनकी इच्छाके पूर्ण अनुगतकर देना। यहाँ पर ‘क्या करूँ?’ का जवाब मिल जाता है। जब आदमी यह जान लेता है कि उसकी हुकूमत नहीं है और न चलती है, तो अन्तमें श्रीभगवानकी ही शरण लेनी पड़ती है। फिर वह यह स्थिर करता है कि उन्हींकी सेवामें अपना कल्याण और शान्ति है और तदनुसार उन्हींके शरणागत हो जाता

है। उस समय सब समस्याएँ खत्म हो जाती हैं। उसका जीवन बन जाता है—वह आगे चल पड़ता है। उसके बाद जो ‘क्या करूँ?’ प्रश्नका दूसरा पहलू आकर सामने खड़ा हो जाता है तो उसका समाधान उसी समय हो जाता है। इसमें तिलभर भी संदेहका अवसर नहीं है। कोई परीक्षाकर देखे तो सही! मैं तो यही कहूँगा कि आत्मनिवेदन होने पर अपना विशुद्ध अप्राकृत-स्वरूप कृष्णदास्य प्रकाशित हो जाता है, जिससे वह निरन्तर कृष्णकी सेवा करता है। कृष्ण की इच्छा ही उसकी इच्छा होती है। वह ‘करूँ’ क्रियाका स्वतंत्र कर्ता नहीं रह जाता है। उसमें परतंत्र कर्तृत्व अर्थात् भगवान्‌की सेवा करनेकी इच्छा नित्यकालके लिए प्रस्फुटित हो जाती है एवं मायिक क्रिया (स्वतंत्र-कर्तृत्व) बदल जाती है। अपना स्वरूप ढूँढ़ो और उसीमें स्थित हो जाओ तो सब ठीक हो जायेगा। लेकिन यह काम इतना सहज नहीं है जैसा मेरे कहने से मालूम पड़ता है। इसके लिए हार्दिक इच्छा और तदनुसार पूर्ण प्रयत्नकी आवश्यकता है।

हाँ! एक बात रह जाती है कि श्रीकृष्णकी शरणमें किस तरहसे कोई आ सकता है? इसका उत्तर यह है कि इसके लिए पहले किसी योग्य व्यक्तिके शरणमें जाना चाहिए और फिर उनके आनुगत्यमें रहकर अपना उद्देश्य पूरा करनेका प्रयत्न करना चाहिए। जो व्यक्ति निपुण कार्यकारी सज्जनोंका संग (साधुसंग) ढूँढ़ता है वह पाता भी है। लेकिन इच्छा होनी चाहिए। क्रमशः □



परमहंस-मुर्क्खगण भी श्रीनाम और श्रीमहाप्रसादकी नित्य सेवा करते हैं। शास्त्रका कहना है कि जो लोग विष्णुके नैवेद्यको दाल-रोटी समझते हैं, नामको सामान्य शब्द समझते हैं, चरणामृतको पानी समझते हैं और वैष्णवको किसी जातिके अन्तर्गत समझते हैं, वे नारकी हैं।

प्रेम—प्रदीप

—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या १ पृष्ठ ४३ से आगे)

(तृतीय प्रभा)

योगी बाबाजी पण्डित बाबाजीके आश्रमका परित्यागकर रास्तेमें सूर्यका निरीक्षणकर ये जान पाए कि बेला प्रायः डेढ़ प्रहर हो गयी है। वे कुछ तेजीसे अपने कुञ्जकी ओर अभिमुख होकर चलने लगे। तमाल वृक्षके निकट आकर वे देख पाए कि बड़ देशीय तीन सज्जन आ रहे हैं। उस समय उन्होंने सोचा कि इनमें ही कोई मल्लिक महाशय हैं। पहले ही उनके आनेका संवाद पाकर उन्होंने कुञ्जका परिष्कार कर रखा था। तीनों सज्जन जब निकट आए, तब बाबाजीने जिज्ञासा की—“आप लोगोंका निवास कहाँ है तथा आपलोग कहाँ जाएँगे?” उनमेंसे एक अधिक उम्रके तथा विज्ञ व्यक्ति थे, उनकी आयु ६० वर्षके करीब थी। बाल और दाढ़ी प्रायः सफेद हो गए थे, शरीरपर मलमलका कुर्ता, धोती, चादर, हाथमें बैग और पावोंमें जूते थे। अन्य दो लोगोंकी भी उम्र ३०-३२ वर्षके आस-पास थी। नाक पर चश्मा तथा हाथमें घड़ी और बैग था, पावोंमें विलायती जूते थे। सभीके माथेपर छोटी-छोटी छतरी थी। वे विज्ञ व्यक्ति थोड़ा अग्रसर होकर बोले—“हम लोग कलकत्तासे आए हैं, योगी बाबाजीके आश्रममें जाएँगे। उन्हें पहले ही निताई दास बाबाजी द्वारा पत्र भेजा जा चुका है।”

सुनते ही योगी बाबाजीने कहा—“तब आपलोग मेरा ही अन्वेषण कर रहे हैं, आप क्या मल्लिक महाशय हैं?” बाबूने कहा—“हाँ।” बाबाजी यत्नपूर्वक उन्हें अपने कुञ्जमें ले गए।

कुञ्ज अतिशय पवित्र था। चारों ओर वृक्षका घेरा था, बीचमें तीन-चार कुटिया थी। एक ठाकुरजीका घर था। अपने शिष्योंको आतिथ्य-सेवामें

नियुक्तकर बाबाजी उनलोगोंके लिए प्रसाद-सेवाका उपाय करने लगे। बाबूलोग मानसी-गङ्गामें स्नानादि समाप्तकर प्रसाद पाए। भोजनके उपरान्त वे लोग एक पञ्चवटीके नीचे परस्पर कथोपकथन करने लगे।

मल्लिक महाशयने कहा—“बाबाजी महाशय! कलकत्तामें सभी आपके यशका गान करते हैं। हमलोग कुछ ज्ञानोपदेश प्राप्त करनेकी प्रत्याशासे आपके श्रीचरणमें आए हैं।”

बाबाजी हर्षित होकर कहने लगे—“महाशय! आप लोग महात्मा हैं। नित्यानन्द दास बाबाजीने मुझे लिखा है कि आपके समान विद्यानुरागी व्यक्ति कलकत्तामें नहीं है। आपने अनेक शास्त्रोंका अध्ययनकर योगाभ्यास भी किया है।”

मल्लिक बाबू कुछ हँसते हुए कहने लगे—“आज मेरा सुप्रभात है। आपके जैसे योगीके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ।” ऐसा कहते-कहते मल्लिक बाबू योगी बाबाजीके चरणोंमें गिरकर कहने लगे—“बाबाजी! मेरा एक अपराध हुआ है, क्षमा करेंगे। जब मैंने आपको प्रथम बार देखा उस समय मैंने आपको दण्डवत-प्रणाम नहीं किया। आज-कल कलकत्तामें प्रचीन व्यवहार इस प्रकार लुप्त हो गया है कि हमलोग भी गुरुजनोंको देखकर दण्डवत नहीं करते हैं। अभी निर्जनमें आपके चरणरेणुके स्पर्शका सुख अनुभव कर रहा हूँ। मेरा इतिहास इस प्रकार है—बचपनमें मैं बहुत संशयी था, बादमें ईसाइयोंकी विद्या सीखकर उनके धर्मको अपने धर्मकी अपेक्षा श्रेष्ठ मानता था। बहुत दिनों तक गिरिजाघरमें भी जाकर उपासना करता था। बादमें राजा राममोहन रायके द्वारा प्रचारित नूतन ब्राह्म-धर्मका अवलम्बन किया।

कुछ दिन हुए विलायती भूतविद्या तथा 'क्लेयर भयेन्स' और 'मेसमेरिज्म' नामक समाधि-विशेषका भी अभ्यास करता हूँ। भलीभाँति इस विद्याका साधन करनेके लिए पिछले वर्ष मद्रासमें 'मैडम लॉरेन्स' के निकट गया था। उससे मैं मृत व्यक्तिको इच्छा करते ही जीवित कर सकता हूँ। बहुत दूरका संवाद भी अल्प चेष्टासे ही प्राप्त कर सकता हूँ। मेरी इन क्षमताओंको देखकर एकदिन नित्यानन्द दास बाबाजीने कहा—'बाबू! यदि आप गोवर्द्धनमें रहनेवाले बाबाजीके पास जा पाएँ, तो अनेक अलौकिक शक्ति अर्जित कर सकते हैं।'

उसी समयसे मुझे हिन्दू-शास्त्रमें दृढ़ विश्वास हुआ है। मैं और मांस इत्यादि नहीं खाता हूँ और सर्वदा पवित्र रहता हूँ। इस प्रकार चरित्रवान होनेके कारण मेरे अन्दर और अधिक सामर्थ्य उत्पन्न हुआ है। अब मैं अनेक हिन्दू व्रत भी करता हूँ, गङ्गा-जल पान करता हूँ। विजातीय लोगोंके द्वारा स्पर्श किए हुए खाद्य पदार्थोंको नहीं ग्रहण करता हूँ। प्रातः और सन्ध्या कालमें आहिनक करता हूँ।

"मेरे सङ्ग नरेन बाबू और आनन्द बाबू आए हैं। ये लोग ब्राह्म धर्मके प्रति श्रद्धा करते हैं, तथापि योगशास्त्रमें जो कुछ सत्य है, उसे स्वीकार करनेमें कुण्ठित नहीं हैं। मैंने इनलोगोंको कल अनेक योग दिखाए हैं। ये लोग भी अभी मुझपर

उसी प्रकार विश्वास करते हैं, जिस प्रकार अपने धर्माचार्यपर विश्वास करते हैं। हिन्दू तीर्थ प्रदेशोंमें आनेकी इन लोगोंकी इच्छा नहीं थी, क्योंकि यहाँ आनेपर अनेक पौत्रिलिक विषयोंको भी प्रश्रय देना होता है। आज प्रसाद पानेके समय नरेन बाबूके मनमें कुछ कष्ट हो रहा था। यह उनके मुखके हाव-भावसे प्रदर्शित हो रहा था। जो भी हो, मैं समझता हूँ कि ये लोग भी मेरी भाँति अतिशीघ्र हिन्दू-शास्त्रमें श्रद्धा करेंगे। मैंने आपके चरणका शरण लिया, आप मुझे राजयोगकी कुछ शिक्षा दें।"

मल्लिक बाबूकी प्रार्थना सुनकर कुछ हर्ष और विषादयुक्त होकर एक नया भाव प्रकाश करते हुए योगी बाबाजी बोले—“बाबूजी! मैं उदासीन हूँ, संसारके साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है। करीब एक वर्ष तक अनाहारी होकर कुम्भकके बलपर मैं बद्रिकाश्रमके पर्वतकी एक गुफामें बैठा था। हठात् श्रीशुकदेव गोस्वामीके साथ मेरा साक्षात्कार हुआ। परम भागवत व्यासकुमारने मुझे ब्रजधाम आनेका आदेश दिया। तभीसे मैं व्रजवासियोंके साथ कुछ-कुछ संसारी हो गया हूँ। आपका पहनावा, आहार और सङ्ग अभी तक नितान्त संसारीके समान है। मुझे भय होता है कि अधिक संसार-सङ्ग करनेसे मैं योगभ्रष्ट न हो जाऊँ।” □

(क्रमशः)

ज्यामिति शिक्षा

एक अत्यन्त दरिद्र विधवा थी। वह बहुत कष्टसे अपने एकमात्र पुत्रको अच्छा आदमी बनाना चाहती थी। पुत्रको अपने भविष्यका एकमात्र सहारा जानकर वह ऋण लेकर भी उसे पढ़ाई-लिखाई सिखा रही थी। उसने पुत्रके लिए एक गृह शिक्षककी भी व्यवस्था कर दी थी। बालक जब सातवीं कक्षामें पहुँचा, तो एक दिन वह जोर-जोरसे अंग्रेजी भाषामें ज्यामितिका पाठ कर

रहा था। जब बालक Let ABC be a triangle इस प्रकार पाठ कर रहा था, तो बालककी माँ घरके अन्दरसे इसे सुनी और सुनते ही गृहशिक्षकके पास आकर गर्जन-तर्जन करते हुए कहने लगी—"मैं प्रति महीने आपको ५०० रु. देती हूँ। कहाँ ऊँची कक्षामें जानेके बाद बच्चा और अधिक ऊँची बातोंको पढ़ेगा और कहाँ आप अभी भी उसे A B C D पढ़ा रहे हैं? यह तो इसने

बचपनमें वर्णमाला सीखनेके समय ही पढ़ लिया है। आजके बाद मैं आपको गृहशिक्षक नहीं रखूँगी। आप स्कूलमें ही शिक्षक होनेके उपयुक्त हैं। ABCD से अधिक आपको आता ही नहीं है।”

विधवा इस प्रकार क्रोध करने लगी कि शिक्षको कुछ कहनेका ही अवसर नहीं दिया। तब बाध्य होकर शिक्षको उस स्थानका परित्याग करना पड़ा।

अन्याभिलाषी,^१ कर्मी,^२ ज्ञानी,^३ योगी,^४ तपस्वी^५ आदि तथाकथित धर्म सम्प्रदायोंकी युक्ति भी विधवाकी युक्तिके समान ही है। वे कहते हैं—“इस जगतमें मायाका दासत्व करते-करते हम दीन हो गए हैं। यह दासत्व ही सभी असुविधाओंका मूल है। धर्म-राज्यमें प्रवेश करनेपर भी यदि दासत्व ही स्वीकार करना पड़े, इतना ही नहीं मुक्तिके बाद भी भगवान्‌की सेवा अर्थात् दासत्व ही स्वीकार करना पड़े, तो हमारी क्या उत्त्रति हुई? जब तक हम अज्ञानी हैं, मायाबद्ध हैं, तभी तक हमारा दास-मनोभाव (Slave mentality) प्रबल रहता है, किन्तु मुक्ति प्राप्त होनेके बाद हमें इसकी उपलब्धि होगी कि मैं ही ब्रह्म हूँ।”

शुद्धभक्त^६ ऐसी युक्ति सुनकर कहते हैं—“भक्ति अथवा भगवान्‌की सेवा चेतन जीवात्माकी नित्य वृत्ति है। वही भक्ति साधन-

भक्ति, भाव-भक्ति, प्रेम-भक्ति—इन तीन अवस्थाओंमें प्रकाशित होकर भक्तिकी नित्यताका स्थापन करती है।” साधन कालमें जो कृष्णका दासत्व है वह साधन-भक्ति है और मुक्त होनके बाद सिद्ध अवस्थामें जो कृष्णकी साक्षात् सेवा (दासत्व) है, वह प्रेम-भक्ति है। मुक्त अवस्थामें जो भगवान्‌का दासत्व है, वही अप्रतिहता सेवा है। वर्ण-परिचय कालमें A, B, C, D अथवा क, ख, ग, घ की शिक्षा की जाती है, परन्तु विश्वविद्यालय (University) में सर्वोच्च परीक्षामें उर्त्तीर्ण होने अथवा सबसे बड़े पण्डित होनेपर भी उसी वर्णमालाका विलास अथवा विचित्रताकी आलोचना करनी पड़ती है।

जो निर्विशेषवादी हैं, वे ही विधवाकी युक्तिके समान ऐसी कल्पना करते हैं कि A, B, C, D केवल शिशुके पढ़नेके लिए ही है, सर्वश्रेष्ठ पण्डितोंके लिए नहीं। कृष्णका दासत्व केवल साधनकी स्थितिमें करना पड़ेगा—ऐसा नहीं है। सिद्ध अवस्था प्राप्त करनेपर भी चिरकाल श्रीकृष्णका दासत्व नित्य नूतन भावसे करना होगा। सिद्ध अवस्थामें जो कृष्णका दासत्व अथवा सेवा है, वही वास्तविक और सम्पूर्ण सेवा है। मायाका दासत्व और कृष्णका दासत्व एक नहीं है। □



१. अन्याभिलाषी—कृष्णकी सेवाके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी कामनाओंको अन्याभिलाष कहते हैं तथा ऐसी अभिलाषा करनेवालेको अन्याभिलाषी कहते हैं।

२. कर्मी—जो कर्मसे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष या शान्ति फलकी कामना करते हैं तथा कर्मको ही ईश्वर मानते हैं।

३. ज्ञानी—जो ब्रह्मके साथ एकाकार हो जाना चाहते हैं। वे कहते हैं कि जीव नामकी कोई वस्तु नहीं है, सभी ब्रह्म हैं, जगत् मिथ्या है तथा भगवान्‌की सेवा या भक्ति नित्य नहीं है, केवलमात्र एक सामयिक उपाय है।

४. योगी—जो योगपथका अवलम्बनकर परमात्माके साथ मिलना चाहते हैं।

५. तपस्वी—जो तपस्याके द्वारा शान्ति या सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।

६. शुद्धभक्त—जो भगवद्भक्तिको ही एकमात्र भगवत्प्राप्तिका उपाय मानते हैं। कर्म, ज्ञान, योग, व्रत तथा तपस्याको भगवत्प्राप्तिका उपाय नहीं मानते; एकमात्र परात्पर विष्णुको ही अर्थात् श्रीकृष्णको ही स्वयं भगवान् जानकर शुद्धभक्तोंके आनुगत्यमें रहकर भक्तिका अनुष्ठान करते हैं।

समय नहीं है!!

मेरे पास सभी कामोंके लिए समय है, किन्तु हरिभजनके लिए समय नहीं है। मैं आहार, निद्रा, कुटुम्बभरण, इन्द्रिय-तर्पण आदि सभी काम करनेको समय पाता हूँ, किन्तु हरि-भजनके लिए समय नहीं पाता। बचपनमें जब स्कूलमें पढ़ता था, तब सोचा था कि और जरा सथाना होकर हरिकी आराधना करूँगा। जवान हुआ, पिता-माता मेरे मनको हरण करनेवाली एक सुन्दरी भार्यासे मेरा व्याह कर दिए। उसके साथ भोग-विलास आदि करनेमें, उसकी फरमाइशें पूरी करनेमें सारा समय चला जाता है। बाकी समय मैं इतना थका रहता हूँ कि उस समय विश्राम और स्त्री की चिन्ताके सिवा और किसी विषयमें उत्साह नहीं होता। अतः मुझे हरिभजनका समय नहीं मिलता। जिससे हरिभजनका अवसर आकर उपस्थित न हो इसलिए इन्द्रियतर्पणके लिए मनकी युक्ति लेकर कहता हूँ—“भगवान्‌ने मुझे जगत्‌में भेजा है, नाना कर्त्तव्योंके भीतर डाल दिया, अतएव स्त्रीचिन्ता, पुत्रचिन्ता, पिता-माताकी सेवा करना कर्त्तव्य है।” जिससे मेरे इन सब भोगोंके उपकरण जगत्‌में समृद्ध होकर मेरे इन्द्रिय-तर्पणके सहायक हो सकें, इसके लिए कहता हूँ कि बहिर्मुख देश और समाजकी रक्षा करना और उनकी बहिर्मुखताको प्रश्रय देना ही भगवान्‌की मर्जी है, यही उनका मनोभीष्ट कार्य है।” अपनी इन्द्रियोंको तृप्त करनेके लिए भोगके संसारको “कृष्णका संसार” कहकर हरि-भजनसे छुट्टी लेनेके लिए मैं कहा करता हूँ कि स्त्री, पुत्र आदिके प्रतिपालनरूप कर्त्तव्यका पालन ही मेरा भजन है। तब योषितरूपा स्त्री, जननी या जन्मभूमिके भजनको ही एकमात्र भजन कहकर मैं लोगोंके निकट प्रचार करता हूँ।

इसीलिए कहता था कि मुझे कामोंके लिए तो समय होता है, किन्तु हरि-भजनके लिए ही नहीं होता। कभी ऐसा होता है कि मैं घर-गृहस्थीके बहुतसे कामोंसे कुछ विश्राम पानेके लिए अथवा परिश्रम-दूर करनेके लिए एक छोटीसी कोठरी तैयार करता हूँ, उसमें बाजारसे अपने इन्द्रियतर्पणके अनुकूल (अर्थात् जो मेरी चक्षु इन्द्रियकी लालसा और भोगतृष्णा चरितार्थ करनेमें समर्थ हो) किसी एक देवी या बहुत देव-देवियोंके चित्र बाजारसे खरीद लाता हूँ और धूप, कुशासन या कंबलासन लाकर रख देता हूँ। किन्तु, उस कोठरीमें जाकर भी मुझे हरिभजनका समय नहीं मिलता। दुष्ट मन सदा इन्द्रियतर्पण चाहता है। मन कभी हरिभजनके लिए समय नहीं पा सकता। मनका धर्म ही बाह्यजगत्‌के पीछे दौड़ना है। अनेक चेष्टा करके मनको शान्त करनेका प्रयत्न करता हूँ, ध्यान करता हूँ, कभी रेचक, पूरक और कुम्भक (प्राणायाम) करके अजपा मन्त्र जपकर मनको शान्त करना चाहता हूँ, किन्तु वहाँ भी मुझे हरिभजनका समय नहीं होता। इस तरह मनको शान्त करनेकी चेष्टामें मेरे द्वारा हरितोषण नहीं होता, केवल चित्ततोषण होता है। वह कृष्ण-इन्द्रिय-प्रीति वाञ्छा नहीं है, केवल मेरी आत्म-इन्द्रिय-प्रीतिकी इच्छा या ‘काम’ मात्र है। इसीलिए कहता हूँ, मुझे हरिभजनका समय नहीं है।

प्रौढ़ावस्थामें सोचा था, पुत्र बालिग हुआ है। उसके हाथमें विषय सौंपकर जीवन भरके बत्तेश और ज्वालाको शान्त कर सकूँगा अर्थात् अपने इन्द्रियतोषणका एक उपाय खोज लूँगा। लोगोंके निकट भक्तकी प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिए और देश-भ्रमण आदिके द्वारा चित्तकी प्रसन्नतारूप

आत्म-तर्पणके लिए काशी, वृन्दावन आदि तीर्थस्थानोंमें जाऊँगा। अब बुढ़ापा आ गया है। इस समय स्त्री, पुत्रादि मेरे इन्द्रियतर्पणकी आगमें विशेष ईश्वन नहीं डाल सकते। कारण, सब इन्द्रियों शिथिल हो पड़ी हैं, किन्तु मेरी इन्द्रियोंकी अपरितृप्त आकांक्षाएँ जैसे इस समय जीभमें आकर बैठ गई हैं। इसीसे प्रसादसेवाका छल करके विताड़ित बेकार वृद्ध बैलकी तरह मैं तीर्थ और वैष्णव मठ आदिमें भ्रमण करके इन्द्रिय तर्पणकी चेष्टा करता हूँ। स्त्री-पुत्रादि मुझे संसारका एक व्यर्थ बोझ समझकर उस बोझसे अपनी जान बचानेके लिए मुझे साधु-सन्तोंके मठ आदिमें भेजनेकी व्यवस्था करते हैं, मुझे रेलका किराया देकर छुटकारा पानेकी चेष्टा करते देखे जाते हैं। घर लौटनेका खर्च देनेकी जरूरत नहीं समझते। किन्तु मैंने अपने लड़कपनसे प्रौढ़ावस्था तक उन लोगोंके निकट पहले कभी ऐसी सहायता नहीं पाई। मैं कहीं भूलकर भी हरिभजन न कर बैठूँ या यथार्थ साधु सद्गुरुका सत्सङ्ग न हो जाय, इस डरसे स्त्री-पुत्रादि सबने मिलकर इतने दिन मुझपर कड़ी नजर रखी थी, पहरा दिया था। मैं निष्क्रियन कृष्णतत्त्वके ज्ञाता शुद्ध वैष्णवोंके निकट जाकर अपने स्त्री, पुत्र आदि आत्मीय-स्वजनोंके इन्द्रिय तोषणमें कहीं विघ्न न डालूँ, इसलिए मेरे हाथका दिया जल शुद्ध करनेका बहाना करके उन्होंने मुझे गृहव्रत गुरुसे मन्त्रदीक्षा दिला दी है, जिसमें मुझको समाज-नीति, देश-नीति, साहित्य और काव्यकी आलोचना करनेका परामर्श दिया गया है। मुझे शुक्राचार्यके पुत्र षण्ड और अमर्कंके समान गृहव्रत गुरुओंके निकटसे उपदेश ग्रहण करनेके लिए उन्होंने बढ़ावा दिया है।

किन्तु, मुझे जान पड़ता है, दोष मेरा ही है, और किसी का नहीं। मैं हरिको भजना नहीं चाहता, इसीसे हरिभजनके लिए समय नहीं पाता। मैं यदि

प्रह्लादका आदर्श ग्रहण कर सकता, तब तो षण्ड-अमर्कंके गृहव्रती तथाकथित गुरु अथवा उसी प्रकारके हिरण्यकशिष्यु जैसे आत्मीय नामाधारी शत्रुके दुःसङ्गको दूरकर श्रीनारद गोस्वामीके समान निष्क्रियन परमहंस वैष्णवकी शरण ग्रहण करता।

इसीलिए कहता हूँ, हरि-भजनके लिए समय नहीं है। मैं कभी-कभी इस तरहके निष्क्रियन शुद्ध वैष्णवके निकट जानेका अभिनय करके भी नहीं जाता। उनके श्रीपादपद्मोंकी शरण एकान्त भावसे नहीं लेता। कभी कभी मैं “हरिका भजन करूँगा” ऐसा कहकर विवाह करनेको राजी नहीं होता। लोग मुझे ब्रह्मचारी कहते हैं और मैं भी अपनेको ब्रह्मचारी कहकर घोषित करता हूँ, किन्तु ब्रह्मचारी बननेपर भी मुझे हरि-भजनका समय नहीं मिलता। मेरे स्त्री अथवा पुत्र न रहनेपर भी एक दुखिया माता और वृद्ध पिता मौजूद हैं। मैं उनकी सेवाका बहाना करके अपनी इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करनेमें लग रहता हूँ—हरिकी सेवा छोड़कर मायाकी सेवा करने दौड़ता हूँ।

फिर कभी “कृष्णका संसार जमाकर स्त्रीसहित भजन करूँगा, स्त्रीको सच्ची सहधर्मिणी बनाऊँगा” इस प्रकार मनरूपी गुरुका परामर्श लेकर मैं इन्द्रियोंको सन्तुष्ट करनेमें लग जाता हूँ। इसीसे कहता हूँ, हरि-भजनके लिए समय नहीं है।

वह सुनो, वैष्णव ठाकुरने दुःखसे दुःखित होकर कहा है—

गोरा-चरण न मैं भजि लीने।

प्रेम रतन धन गँवाय दीने॥

धन त्याग कर यत्न अधनमें।

कर्म दोष से डूबा मन में॥

तजि सत्सङ्ग असत् को पकड़ा।

कर्मबन्धमें जिससे जकड़ा॥

विषम विषय-विष पिया निरन्तर।

गौर कीर्तन-रस मग्न न अन्तर।

रक्खा यह जीवन किस सुख को।

अधम दास यह मरा नहीं क्यों?॥



= पूतना-वध =

लाल कौ मुख देखन मैं आई।
सुन बात जसोधे! - माई!!
पट भूषण धर पूतना, आई नन्द निकेत।
बोली ब्रज विचरत फिरी, श्याम दरस के हेत॥
हरेत हार गई ब्रज डगरी।
रात बसी असुरन की नगरी।
अड़सठ तीरथ न्हाई॥ सुन बात॥
तेरे सुतके कारनै, छोड़ दई कुल-कानि।
हौं आई चलि दूर तें, करत अनेकत दान॥
लड़कन मैंइ मेरै जीवन बीत्यौ।
काहू कौ मैंने बुरौ न चीत्यौ॥
जसुमत् राम दुहाई॥ सुन बात॥
करत रूप को दृग-सलिल, निज हाथन शृङ्गार।
म्हाने अति नीकौ लगयौ, थारै जन-आधार॥
जेते महिर् न नभर्में तारे।
ऐते बालक देखे - भारे॥
याकी ज्योति सवाई॥ सुन बात॥

नाना मुद्रा भावनन, करत देख गुण-गान।
भवसागर की धारकौ, कियौ न मन अनुमान॥
चित सुध जान जसोधा रानी।
आर्गें बढ़ कीन्हीं अगवानी॥
पलना दियौ दिखाई॥ मुख देखन॥
तब ही पापिन हरष, हरि, लीने गोद उठाय।
अभय रहै सुत आजसों, लेंड उतार बलाय॥
बुद बुदाय कछु टौना कीन्यौ।
विष लगाय कुच, मुख महिदीन्यौ॥
खेंचे प्राण कन्हाई॥ मुख देखन॥
गोविन्दाय नमो नमः, कर मनमें हरषाय।
चाढ़ छाति मुसकाय हरि आसन दियौ जमाय।
गिरी जहाँ बन गई झील सी।
महिर जसोधा, खिली खील सी॥
माता की गति पाई॥ मुख देखन॥

— श्रीमहदेव चतुर्वेदी □

गुजराना गली, मथुरा



श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

(उपाध्यक्ष एवं सचिव, श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति)

का

विदेशमें प्रचार-कार्यक्रम

दिनांक

| | | |
|------------|----------|-----------|
| ५ मई से | १५ मई | स्थान |
| १६ मई से | ३१ मई | हॉलेण्ड |
| १ जून से | ६ जुलाई | इंग्लेण्ड |
| ६ जुलाई से | १६ जुलाई | अमेरिका |
| | | कनाडा |

पागलखाना

यह जगत् उनके लिए जेलखाना है, जो भगवान्को भूले हुए हैं; कोई कोई इसे पागलोंका गारद भी कहते हैं। पागलोंका गारद इसलिए कहते हैं कि यहाँके लोग अपनी सुस्थ या स्वाभाविक अवस्थाको खोकर कोई रूपके मदसे, कोई धनके मदसे, कोई जातिके मदसे और कोई विद्या-मदसे मतवाले होकर तरह-तरहकी बकवास किया करते हैं। अतः जब हम प्रत्येक आदमी ही इस कैदखाने या पागलखानेके एक कैदी हैं, तब हमलोगोंका मत-अमत, रुचि, भाव और उच्छ्वास सभी पागलों या विकारग्रस्त रोगियोंका प्रलापमात्र है।

विकारवाला रोगी ज्वर या अतिसारमें इमली चाटना चाहता है, शरीरकी ज्वालासे घबराकर हजार वर्ष तक तालाबके ठण्डे पानीमें नहाना चाहता है। पागल रास्तेके गन्दे नालेमें पड़कर “मैं बादशाह हूँ, मैं बड़ा लाट हूँ” इत्यादि न जाने कितने बकवास किया करता है। अच्छे आदमी यह हालत देखकर दुःखी होते हैं और कभी-कभी दुःखसे हँस भी देते हैं।

उधर पागलखानेमें पागलोंका प्रधान एक रहता है, पागल उसे खूब मानते हैं, बहुत बड़ा आदमी समझते हैं। पागल लोग समझते हैं कि दुनियामें उनसे बड़ा कोई है ही नहीं। पागल प्रधानका कहना मानकर ही सब काम करते हैं, अच्छे आदमियोंकी बात पर कान नहीं देते।

भाइयों, हमलोगोंकी अवस्था भी ऐसी ही है। हमलोग विकारग्रस्त रोगी हैं। हमलोग परम प्रभु भगवान्को भूलनेके कारण ही इस संसारमें पड़े हैं—इस पागलखानेके एक सभ्य बन बैठे हैं। यदि हम लोग भले-चङ्गे होते, तब तो नित्यधारमें नित्य भगवान्‌की सेवा ही करते। इस कैदखानेकी रक्षा करनेवाली भी एक है—उनका नाम महामाया या दुर्गा है। वे इन दुर्गके अपराधियोंका हर तरहसे शासन करती हैं।

भाइयों, पागलको पागल कहनेसे वह आँखे तरेरता है, अच्छे आदमीको भी पागल कहिये,

तो वह गाली दिये बिना नहीं रहता। इसीसे कहते हैं, कि हमारी रुचिके अनुकूल होनेसे ही उसे ‘धर्म’ कहा नहीं जा सकता। आजकल कितने ही ही लोग धर्मको रुचिके अनुकूल बनानेके लिए बहुत ही व्यस्त हो पड़े हैं। ऐसे लोगोंका कहना है—‘शास्त्रने हरेक आदमीकी धारणाके अनुरूप उपास्य की सामग्री बता दी है। इसलिए जितने मनुष्य हैं उतनी ही देव-देवियाँ संसारमें प्रकट हैं।’ कितने ही गाने बाँधकर कितनी ही बातोंका प्रचार किया है—

कृष्ण, राम, श्याम, श्यामा,
शिव में भेद न राखो रे मन।
नाम रूपके चादरसे ढके,
हैं वे ही एक निरंजन॥
चीनीके ऊँट, हाथी, घोड़ा,
पुतले, पक्षी, रथ, बनन।
जिसका जो मन होता लेता,
चीनी का सब एक गठन॥

भाईयों, इसीसे हमने पहले कहा है, कि हम भी पागलखानेके एक सभ्य हैं। अपने शौकके मुताबिक ताल, गाना, उच्छ्वास—हमें बहुत पसन्द है। इन सब कर्मोंमें बहुत जल्द मन लग जाता है। जो कोई हमारे मनकी बातें कहता है, उसे ही हम लोग ‘मोडल’ अर्थात् बड़े ही ‘महापुरुष’ और ‘महाजन’ समझते हुए उनकी दुमके पीछे-पीछे लगे रहते हैं।

भातृगण, ये सब बातें हमारे मनको कुछ बुरी लगेंगी। पहले ही कहा गया है कि पागलको पागल कहनेसे चिढ़ होती है; विशेषतः कोई पागलके ‘मोडल’ को जो कर्हीं पागल कह दे, तो फिर उसकी रक्षा कहाँ? उसी समय हजारों आदमी उसपर लाठी लेकर टूट पड़ेंगे। किसी ने सच कहा है,—

साँच कहे सिर लठ परै झूठे जग पतिताय।
गोरस मग-मग फिर बिकै, मदिरा बैठ बिकाय॥

दरिद्र नारायणकी सेवा (?)

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

“हाँ, तो मेरा प्रश्न यह है कि आँखे मूँदकर मंदिरोमें चुपचाप न बैठकर दीन-दुःखी, भूखे अथवा रोगी मनुष्योंकी सेवा करनेसे अन्न-वस्त्र और औषध-पथ्य आदि द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करनेसे भगवान्‌की सेवा होती है या नहीं?”—नरेन्द्रने पार्ककी हरी-हरी घासोंके ऊपर बैठते हुए कहा। उस समय तक चन्द्र अपनी शीतल स्थिति चान्द्रिकाओंको निस्तब्ध पृथ्वीपर बिखरने लग गया था। वह कहता गया—“मेरे विचारसे दरिद्र- नारायणकी सेवा ही सर्वश्रेष्ठ सेवा है। मन्दिरोंका निर्माण बन्द रखकर अस्पतालोंके निर्माणसे ही श्रेष्ठतर सेवा हो सकती है।”

“शायद तुम व्यासदेव आदि अध्मान्त शास्त्रकारों तथा भगवान्के शास्त्रिक अवतार श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंकी अपेक्षा अर्वाचीन ग्राम्य कवियोंकी रचनाओंका महत्व अधिक देना चाहते हो—यही न?” देवेन्द्र भी हँसते-हँसते नरेन्द्रकी बगलमें बैठ गया। उसके गलेमें तुलसीकी माला और चौड़े ललाटपर दिव्य तिलकको चन्द्र अपनी ज्योत्सनाकी झीनी चादरसे ढँक दिया था, जिसके भीतरसे उसके मुख-मण्डलकी सात्त्विक आभा झाँक रही थी। उसकी बात थमी नहीं—निरपेक्ष होकर विचार करनेसे विषयकी सत्यताकी उपलब्धि होती है। मन्दिरमें भगवत् विग्रह क्या वस्तु है, भगवान्‌की सेवा क्या चीज है—इन विषयोंको जो नहीं समझता, वही ऐसे अपराधयुक्त विचारोंको प्रकाश कर सकता है और उसे ही ठीक मानकर प्रचार करता है। तनिक विचारोंकी गहराइमें प्रवेश करना सीखो। जिनका हृदय रजोगुण ओर तमोगुणसे ढैंका हुआ है और जिनमें सत्त्वगुणका लेश भी नहीं है, ऐसे तामसिक कर्मीलोग भक्तिके माहात्म्यकी उपलब्धि नहीं कर पाते हैं। ये लोग केवल अपने इन्द्रिय सुखकी-कामनाओंको, भोगवादको भगवद्भक्तिकी आङ्में चलाना चाहते हैं।

इन्द्रिय-सुख दो प्रकारका होता है—व्यक्तिगत और समाजगत। केवल एक व्यक्तिके सुखको व्यक्तिगत-सुख कहते हैं तथा सारे समाजके लोगोंके सुखको समाजगत-सुख कहते हैं। इन्द्रिय-सुखका अर्थ बाह्य विषय-सुखसे है, जिससे हमारी इन्द्रियोंको सुख मिलता है। तुम्हारा विचार सीधा समाजगत इन्द्रिय-सुखसे है। मैं समाजकी उपेक्षा करनके लिए नहीं कहता, बल्कि उसकी रक्षा करना हमारा

कर्तव्य है। किन्तु हमारा समाज कैसा होना चाहिए, समाज संरक्षणका अर्थ क्या है, उसकी कैसे रक्षा की जाय—इन विषयोंका ज्ञान न होनेसे कल्याण होनेके बदले अकल्याण ही होता है। पाश्चात्य देशोंकी नकलकर भारतीय समाजका गठन करनेका उद्देश्य भौतिक नश्वर सुखोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इसके द्वारा पराशान्ति अर्थात् भगवद्भक्ति लाभ नहीं हो सकती।

हमारे प्राचीन ऋषियोंने जिस प्रकार समाज संरक्षणकी व्यवस्था की है, उसका प्रधान लक्ष्य पराशान्ति है। उन्होंने केवल ऐहिक सुखके लिए समाजकी व्यवस्था नहीं की है। परन्तु उन्होंने एक ऐसे समाजकी व्यवस्था की है, उसके संरक्षणके नियम बनाए हैं, जो समाज लागोंको भगवद्भक्ति प्राप्त करनेमें सहायक हो, अनुकूल हो। किन्तु उस समाजसे जिसमें भगवद्भक्तिकी बातें नहीं, जिसमें केवल ऐहिक भोगोंकी बातें ही भरपूर हैं, जीवोंके मङ्गल और शान्तिकी आशा करना मरीचिकासे जलकी आशा करनेके समान है। क्योंकि, भगवद्भक्तिके अतिरिक्त सभी वस्तुएँ नश्वर और अमङ्गलजनक हैं। आवश्यकतानुसार ग्रासाच्छादन (अन्न-वस्त्र) की समस्याको हल करते हुए शरीरकी रक्षा अवश्य करणीय है, किन्तु शरीर रक्षाका मूल उद्देश्य भगवान्‌की सेवा होनी उचित है।

यहाँ तुम कह सकते हो कि पहले शरीरकी रक्षा न होनेसे भगवान्‌की सेवा कैसे हो सकती है? हमारे देशके लोग भूखे हैं, दाने-दानेको तरसते हैं, पहननेको कपड़े नहीं, पढ़नेको शिक्षाकी उचित व्यवस्था नहीं, मरीजोंके लिए पर्याप्त अस्पताल नहीं, हमारे पास आधुनिक जगत्के साथ पैरोंमें पैर मिलाकर चलनेके लिए वैज्ञानिक प्रसाधन नहीं—इस समय मन्दिरोंमें भगवान्‌की सेवा बन्द रखनेकी आवश्यकता है। इसके उत्तरमें मैं तुमसे पूछता हूँ—मान लो, एक सती-साध्वी नारी है। वह सर्वदा तन, मन, धनसे अपने पतिदेवकी सेवा करती है। एक दिन जो कुछ संग्रह हुआ, उससे केवल एक आदमीका मुश्किलसे पेट भर सकता था। अब इस समय इनका क्या कर्तव्य है? क्या पत्नी यह कहेगी कि वह उनकी सेवा करती है, अतः पहले उसे ही (स्त्रीको) आहार-विहारकी आवश्यकता है। इसलिए पहले वह (स्त्री) भोजन कर ले और पतिदेव

उस समय भूखे रहें अथवा स्वर्य उपवास रहकर अपने प्राणप्रिय पतिदेवको समस्त भोजन करावेगी? भाई साहब, सेवा एक ऐसा मधुर और महान कार्य है, जिसमें भूख और प्यास अथवा कोई भी जागतिक अभाव बाधा नहीं डाल सकता है। सेवा आत्माकी वृत्ति है। इस वृत्तिके प्रकाशके द्वारा ही सेवा करनेका सामर्थ्य प्रकाशित होता है। नितान्त दरिद्र व्यक्तिका भी सेवामें पूर्ण अधिकार है। गीताजीमें भगवान् कहते हैं—

पत्रं पुष्टं फलं तोर्य यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहतमशनामि प्रयतात्मनः ॥

(गीता ९/२६)

अतएव जिनके घरोंमें सेवाका कुछ भी उपकरण न हो, वे तुलसीके पत्तेके साथ एक अञ्जली जल भी श्रद्धापूर्वक भगवान्को अर्पित करें, तो वे भगवान्का अनुग्रह पा सकते हैं। दरिद्रता भक्तिके पालनमें बाधा उत्पन्न नहीं करती, बाधा उत्पन्न करता है अबोध मन।

अपने इन्द्रियोंको चरितार्थ करनेके लिए मन्दिरमें श्रीविग्रहकी सेवा बन्द करना चरम नास्तिकता है। स्वयं भगवान् और हमारे ऋषियोंने दरिद्र और दुःखी व्यक्तियोंकी सहायता करनेके लिए विधान दिए हैं। 'दरिद्रान भर कौत्तेय' आदि वचन शास्त्रोंमें देखे जाते हैं। क्योंकि ऐसे कर्मोंसे चित्त क्रमशः उदार होता है। किन्तु, 'भगवान्की सेवा और दरिद्रोंकी सेवा एक चीज नहीं है', हमारे शास्त्रोंमें ऐसा कहीं नहीं कहा गया है। भगवान् अधोक्षज वस्तु है, वे अप्राकृत तत्त्व हैं—इन्द्रियोंसे परे हैं और दरिद्र व्यक्ति जड़-मायाके गुणोंके अधीन एक बद्ध जीव है। भगवान् मायाधीश हैं और मायाबद्ध दरिद्र व्यक्ति रजस्तमोगुणका प्रकाश है। अतः दोनोंको किस विचारसे एक किया जा सकता है? नारायण—लक्ष्मीके पति हैं, वे अनन्त ऐश्वर्यके मलिक हैं। उन्हें अन्न और वस्त्रका अभाव किसी कालमें नहीं होता, क्योंकि लक्ष्मीदेवी सर्वदा उनके श्रीचरण-कमलोंमें लोटटी रहती हैं। भला उनके लिए दरिद्रता कैसे सम्भवपर हो सकती है? अतः 'दरिद्र नारायण' एक अशास्त्रीय, सिद्धान्त-विरुद्ध और अयुक्तियुक्त बात है। वह आकाश-कुसुमकी तरह एक कोरी कल्पनाकी बात है।

क्या तुम कहना चाहते हो कि मनुष्यके भीतर भगवान् नहीं हैं? यदि प्रत्येक मनुष्यके भीतर भगवान् निवास करते हैं, तब मनुष्यकी सेवा द्वारा क्या भगवान्की सेवा नहीं होती?—नरेन्द्रने अपनी बातोंपर बल देते हुए कहा।



भैयाजी! मनुष्यके भीतर भगवान् हैं, यह तो सत्य है; परन्तु मनुष्य भगवान् नहीं है। मनुष्यके शरीर और मनकी बात तो दूर रहे उसकी आत्मा भी भगवान् नहीं है। मनुष्यके शरीर और मन दोनों उसकी आत्माके आवरण हैं। ये दोनों जड़ हैं। जड़ वस्तुओंको सुख देनेसे भगवान्की सेवा नहीं होती। क्योंकि भगवान् पूर्ण चेतन हैं। अचेतन अर्थात् जड़की सेवासे भगवान्की सेवा नहीं होती। तुम केवल दरिद्र व्यक्तियोंको नारायण मानकर सेवा करते हो। परन्तु धनी व्यक्तियोंको भी नारायण मानकर धनी व्यक्तियोंकी सेवा क्यों नहीं करते? क्या उनमें भगवान् नहीं? क्या धनी व्यक्ति मनुष्य नहीं हैं? एक बात और—भगवान् केवल मनुष्य देहमें ही वास नहीं करते, वे तो कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, मछली, मुर्गी, बकरी, गाय आदि प्रत्येक देहमें वास करते हैं। फिर इन जीव जन्तुओंकी हत्याकर, उनका मांस खाकर केवल दरिद्रको एक दिन खिचड़ी खिलानेसे ही क्या नारायणकी सेवा हो जाती है? यार! दरिद्रनारायणकी सेवाके लिए तुम्हारे प्राण इतने आकुल हैं, किन्तु पाठानारायण, भेड़नारायण, मछलीनारायण, मुर्गानारायण तथा गायनारायणके प्रति इतने निष्ठुर क्यों बन गए हो? उनकी हत्या करनेमें क्या तुम्हारे हाथ कौपते भी नहीं? यदि दरिद्रनारायण तुम्हारे इतने प्रिय हैं, तो स्वयं बड़े-बड़े अटारियोंमें उत्तम आसनोंपर बैठकर पूड़ी, कचौड़ी, लड्डू, खीर, मालपुआ आदि माल उड़ाते हो और अपने परमपूज्य दरिद्रनारायणजीको गन्दे रास्तोंपर बैठाकर खिचड़ी आदि क्यों खिलाते हो? यह कहाँका विचार है? धन्य हो तुम और धन्य है तुम्हारी दरिद्रनारायणकी भक्ति। हाय! हाय! कलिकाल है न, इसीलिए आजकल तुम्हारी ही विजय-डङ्गा सब ओर बज रही है। तुम लोग अस्पताल और स्कूल खोलकर सेवाकी बहादुरी लूटना चाहते हो, किन्तु मैं देखता हूँ—अगर अस्पताल और स्कूल खोलना ही श्रेष्ठ साधुता है, तो हमारी सरकार तो ऐसे-ऐसे कामोंको यथेष्ट परिणाममें कर रही है। किन्तु कुछ लोग सरकारके दिए हुए मालसे अपने दरिद्र पेटकी सेवाकर दरिद्रनारायणका (दरिद्रोंके पालनकर्ता) नाम सार्थक करते हैं। भाई, ऐसी कपटता करनेका प्रयोजन क्या है? अपने-अपने पापोंके लिए जीव दरिद्र घरमें पैदा होकर कष्ट पाता है। दीन-दुर्खियोंकी सहायता हमें अवश्य करनी चाहिए। यह पुण्यजनक कर्म है। किन्तु उन्हें नारायण कहनेसे अनन्त अपराध होता है।



(क्रमशः) □

प्रचार-प्रसङ्ग

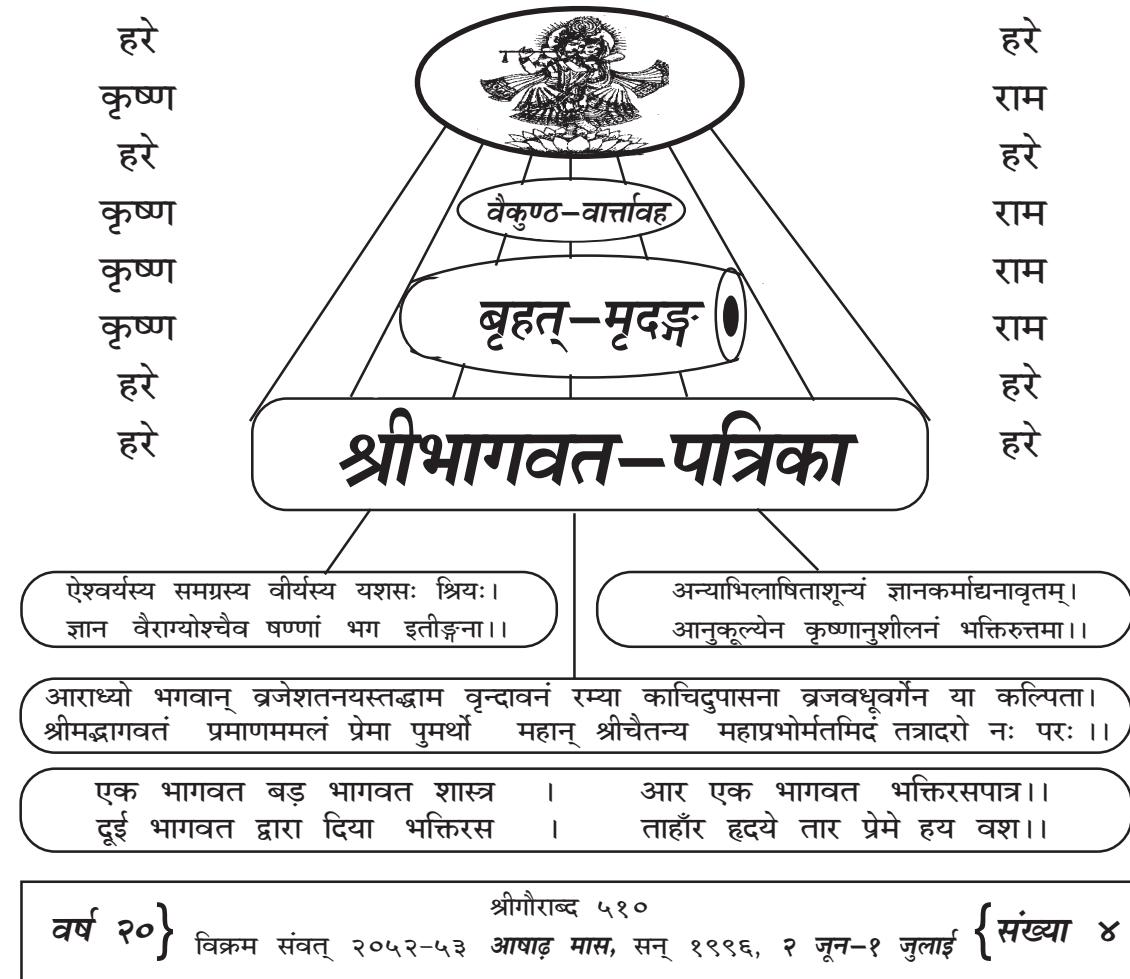
श्रीश्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ, दुर्गापुरमें श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा-महोत्सव

विगत १८, १९ और २० मार्चको समितिके अन्यतम प्रचार केन्द्र श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठके नवनिर्मित विशाल श्रीमन्दिरमें श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग-नित्यानन्द एवं श्रीश्रीराधाविनोदबिहारीजी धूमधामसे प्रतिष्ठित हुए।

इसके उपलक्ष्यमें समितिके वर्तमान आचार्य एवं सभापति परिचाजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज, समितिके उपाध्यक्ष एवं सम्पादक पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज,, पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिदण्ड महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त आचार्य महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त संन्यासी महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वैष्णव महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णु महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त यति महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त गोविन्द महाराज, श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त बोधायन महाराज, श्रीपाद कृष्णकृपा ब्रह्मचारी, इसके अतिरिक्त अनेक गौड़ीय मठोंके अध्यक्ष तथा लगभग १५०-२०० ब्रह्मचारी और हजारों गृहस्थ भक्त पधारे थे। इस उपलक्ष्यमें १८ और १९ मार्चको विशेषरूपसे श्रीविग्रहोंका अनुगमन करते हुए सङ्कीर्तनके साथ शोभायात्रा नगरके विभिन्न राजमार्गोंसे होकर निकाली गई। २० ता. को श्रीमन्दिर-प्रतिष्ठा, श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा, अभिषेक तथा वैष्णव-होम सम्पन्न होनेके पश्चात् आहूत-अनाहूत लगभग ५००० श्रद्धालुओंको महाप्रसाद वितरित किया गया। त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी परिचालनामें श्रीमान् शुभानन्द ब्रह्मचारी ‘भागवत-भूषण’, श्रीमान नरहरि दासाधिकारी, श्रीपाद कृष्णकृपा ब्रह्मचारी व कन्हाईलाल ब्रह्मचारीने श्रीविग्रह प्रतिष्ठा और उसके विभिन्न अनुष्ठानोंको सम्पन्न किया। १९ और २० के विशाल धर्मसभामें त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज तथा पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी अध्यक्षतामें श्रीविग्रहतत्त्व आधुनिक जगत्‌में श्रीविग्रह-सेवाकी प्रयोजनीयताके विषयमें विभिन्न वक्ताओंने अभिभाषण दिया। इस सभामें दुर्गापुर इस्पात कारखानेके Manging Director श्रीमान् पाण्डेजी और नगरके अनेक गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। श्रीमान मुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी, कन्हाईलाल ब्रह्मचारी, गोवर्द्धन ब्रह्मचारी, गौराङ्ग ब्रह्मचारी, कृष्णदास ब्रह्मचारी, वक्रेश्वर ब्रह्मचारी आदिने अपने सुमधुर कीर्तनके द्वारा सबका चित्त मोहित कर लिया। उस समय दुर्गापुर दुर्गापुर नहीं होकर ब्रजपुर हो गया था। सभी लोग भक्तिभावमें मत्त हो रहे थे। समितिके Superintendent त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजजीकी अथक सेवा-प्रचेष्टासे इतना शीघ्र इतना बड़ा सुरक्ष्य एवं दिव्य मन्दिर प्रकाशित हो रहा है। उनकी सेवा प्रचेष्टा एवं व्यवस्थासे इतना बड़ा महोत्सव सुचारू रूपसे सम्पन्न हुआ।



श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः



श्रीश्रीकेशवाचार्याष्टकम्

(त्रिदण्डस्वामी-श्रीमद्भक्तिवेदान्त-त्रिविक्रम महाराज-कृतः)

नमो ऊँविष्णुपादाय आचार्य-सिंह-रूपिणे ।
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान-केशव इति नामिने ॥१॥
श्रीसरस्वत्यभीष्मितं सर्वथा सुष्ठु-पालिने ।
श्रीसरस्वत्यभिन्नाय पतितोद्धार-कारिणे ॥२॥

३० विष्णुपाद श्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव नामक आचार्य-केशरीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

जो (जगद्गुरु) आचार्य श्रील सरस्वती प्रभुपादके अभीष्मित अथवा मनोभीष्टका सर्वतोभावेन भलीभाँति पालन करने वाले हैं एवं जो पतित-उद्धारके कार्यमें उन्हीं सरस्वती ठाकुरसे अभिन्न हैं, उन्हें नमस्कार है ॥२॥

वज्रादपि कठोराय चापसिद्धान्तं नाशिने।
सत्यस्यार्थं निर्भीकाय कुसंग-परिहारिणे ॥३॥

जो अपसिद्धान्तको ध्वंस करने, दुःसंग दूर करने तथा सत्यका स्थापन करनेमें निर्भीक और वज्रकी अपेक्षा भी कठोर हैं, उन्हें नमस्कार है ॥३॥

अतिमत्य-चरित्राय स्वाश्रितानाज्य पालिने।
जीव-दुःखे सदार्ताय श्रीनाम-प्रेम-दायिने ॥४॥

जो अतिमत्य (अप्राकृत) चरित्रविशिष्ट हैं, जो अपने आश्रितजनोंके पालनकर्ता हैं, जो जीवोंके दुःखसे दुःखी है तथा जो नाम-प्रेम प्रदान करनेवाले हैं, उनको नमस्कार है ॥४॥

विष्णुपाद-प्रकाशाय कृष्ण-कामैक-चारिणे।
गौर-चिन्ता-निमग्नाय श्रीगुरुं हृदि धारिणे ॥५॥

जो साज्ञात् श्रीविष्णुपादपद्मके प्रकाशस्वरूप हैं, जो केवल कृष्ण-कामनाकी पूर्तिमें ही लगे रहते हैं, जो चैतन्य महाप्रभुकी चिन्तामें निमग्न हैं तथा जिन्होंने अपने श्रीगुरुदेवको सर्वदा हृदयमें धारण कर रखा है, उन्हें नमस्कार है ॥५॥

विश्वं विष्णुमयमिति स्निग्ध-दर्शन-शालिने।
नमस्ते गुरु-देवाय कृष्ण-वैभव-रूपिणे ॥६॥

जो विश्वका विष्णुमय दर्शन करते हैं। ऐसे स्निग्ध दर्शनसे युक्त, कृष्ण-वैभवरूपी श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥६॥

श्रीश्रीगौड़ीय-वेदान्त-समितेः स्थापकाय च।
श्रीश्रीमायापुर-धाम्नः सेवा-समृद्धि-कारिणे ॥७॥

जो श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के संस्थापक हैं, एवं (श्रीगौर-जन्मस्थान) श्रीश्रीमायापुर धामकी सेवाको समृद्ध करने वाले हैं, उनको नमस्कार है ॥७॥

नवद्वीप-परिक्रमा येनैव रक्षिता सदा।
दीनं प्रति दयालवे तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥८॥

जिनके द्वारा श्रीधाम नवद्वीप-परिक्रमा सदा रक्षित है एवं जो दीनजनोंके प्रति दयालु हैं, उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है ॥८॥

देहि मे तव शक्तिस्तु दीनेनेयं सुयाचिता।
तव पाद-सरोजेभ्यो मतिरस्तु प्रधाविता ॥९॥

हे गुरुदेव ! यह दीन व्यक्ति सब प्रकारसे आपके शक्तिकी (कृपाकी) कामना करता है, उसे मुझे दान करें। आपके पाद-पद्मोंमें मेरी मति लगी रहे ॥९॥



श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें नागरिकों द्वारा विदेश यात्रासे पूर्व श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीका अभिनन्दन

दिनांक १-५-१६ बुधवारको श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें नगरके आम नागरिकों द्वारा श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीके लिए अभिनन्दन समारोहका आयोजन किया गया। सनद रहे कि पूज्य श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी विदेशोंमें भारतीय संस्कृति, विशेषकर ब्रज-भक्तिका प्रचार करनेके लिए अपने पचहत्तर दिनोंकी विदेश यात्राका शुभारम्भ विगत ३ मईको किया। इस सभाकी अध्यक्षता मथुरा नगरके सुप्रसिद्ध समाजसेवी एवं उद्योगपति श्रीफतेहलालजी गोयल द्वारा की गई। प्रमुख अतिथि श्रीचैतन्य कृष्णाश्रय तीर्थ महाराज (श्रीअतुलकृष्ण गोस्वामी), श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, श्रीमनोहरलाल शास्त्री, पद्मश्री विभूषित श्रीबरसाना चतुर्वेदी आदि ब्रजमण्डमलके प्रख्यात विद्वानोंने इस सभाको अलंकृत किया। सभाके आरम्भमें डा. आर. एम. शाहने अध्यक्ष महोदयको माल्यार्पण किया। तत्पश्चात् अध्यक्ष महोदयने श्रील महाराजजीको माल्यार्पण किया। तत्पश्चात् श्रील महाराजजीने अन्य अभ्यागतोंको माल्यार्पण किया। सभाके प्रारम्भमें श्रीकपिलदेव चतुर्वेदीजीने मङ्गलाचरण किया। उसके बाद माथुर मण्डलके मूर्धन्य विद्वान श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीजीने अपने अभिभाषणमें कहा कि पूज्य श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी श्रीचैतन्य महाप्रभुके 'तृणादपि सुनीचेन' इस उपदेशके मूर्तिमान स्वरूप हैं। उन्होंने कहा कि मैं अतिशय सौभाग्यशाली हूँ कि आजसे तीस साल पहले जब इस्कॉनके संस्थापक श्रीस्वामी महाराजजी विदेश यात्रापर जा रहे थे तो मैंने ही उनका मङ्गलाचरण किया था। अपने अभिभाषणके

अन्तमें उन्होंने कहा कि मैं नहीं मानता कि श्रील नारायण महाराजजी पहली बार विदेश यात्रा पर जा रहे हैं। श्रील महाराजजी तो आजसे तीस साल पहले श्रीस्वामी महाराजजीके साथ भावनात्मक रूपमें विदेश जा चुके हैं, इसलिए उनके जानेके पहले ही वहाँके हजारों लोग अत्यन्त अधीरतासे उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

उसके बाद श्रीचैतन्य कृष्णाश्रय तीर्थजीने अत्यन्त ही ओजस्वी और भावपूर्ण अभिभाषणमें कहा कि जैसे रामनवमी और जन्माष्टमी आदि अवसरोंपर भगवान्‌को भी आशीर्वाद देनेका अवसर प्राप्त होता है, वैसे ही आजका यह दिन भी हमलोगोंके समक्ष उपस्थित हुआ है। बादमें श्रीवीरेन्द्र अग्रवाल, अध्यक्ष नगरपालिका परिषद, श्रीगोपेश्वर चतुर्वेदी आदि सामाजिक कार्यकर्ताओंने भगवान्‌से यह शुभकामना की कि महाराजजीकी विदेश यात्रा सफल हो। तत्पश्चात् श्रीवल्लभ सम्प्रदायके सुविख्यात विद्वान श्रीमनोहर लाल शास्त्रीजीने श्रीमद्भागवतके श्लोकोंके आधारपर मार्मिकरूपसे महाराजजीकी प्रशंसा करते हुए उनके विदेश यात्राकी शुभकामना की। सभाके संचालक श्रीवसन्तलालजी चतुर्वेदीजीने नामात्मक पद्मके द्वारा महाराजश्रीके प्रति अपना श्रद्धा सुमन अर्पित किया। तत्पश्चात् श्रील महाराजीने स्वयं अपनी विदेश यात्रा पर प्रकाश डालते हुए अपने गुरुवर्ग तथा भगवान्‌की कृपा प्रार्थना की। सभाके शेषकालमें श्रीनिवासजी अग्रवालने अपने विचार प्रकट करते हुए भगवान्‌से उनकी शुभकामनाकी प्रार्थना की। सभाका समाप्त अध्यक्षीय भाषणके द्वारा सम्पन्न हुआ। यथा समय कार्यक्रमके बीचमें

श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीदामोदर दास, श्रीनिताई दास आदिने अपने सुमधुर भजन-कीर्तन द्वारा वहाँ उपस्थित लोगोंको भक्तिरसमें स्नात कराया।

३ मई

पहली मईके स्वागत समारोहके फूल अभी सूख भी नहीं पाए थे, दृश्य दृष्टिसे ओझल भी नहीं हो पाए थे कि ३ मईकी प्रातःकालका सूर्य उदित हुए, लगता है आज भास्कर कुछ ज्यादा लालिमा लेकर उदित हुए। आजके विशेष दिवसको भास्कर भगवान्‌ने अपने हृदयसे अंगीकार करके अपनी किरणोंमें एक विशेष आभा देकर उस महान पुरुषके चरणोंमें श्रद्धा सुमन अर्पित करनेकी एक नाकाम कोशिश की। आज दिनकरने उस दिव्य पुरुषका स्वागत किया है, जो श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षा-सागरके अमृतरूपी जलका आस्वादन करानेके लिए पाश्चात्य देशोंकी यात्रापर जानेका संकल्प लेकर दृढ़ विश्वासके साथ भास्करकी किरणोंमें आकर बैठे, मानो भास्करके द्वारा अर्पित श्रद्धा-सुमनको ग्रहण कर रहे हों।

सुबहके बालभोग लेते हुए अपने शिष्योंको करुणा दृष्टिके द्वारा निहारा। ओह! कितना स्नेह है इन आखोंमें, करुणाकी साक्षात् मूर्ति हैं ये आँखे। हे देव! हम कितने सौभाग्यशाली हैं—इस जन्ममें तो हमने कोई ऐसा पुण्य नहीं किया, लगता है यह तो पूर्वजन्मका ही कोई प्रतिफल है जो इतनी स्नेहमयी दृष्टिकी छायामें हम पनप रहे हैं। हमें अपनी शीतल छायामें पनपता हुआ देखकर युग पुरुष कुछ मुस्कराए। यह मुस्कराहट हमें धन्य कर गई, कोटि जीवन न्यौछावर है इस मुस्कराहटपर। मानो चन्द्रमाने अपनी छटा बिखेरी और कमलका फूल खिल उठा। शरीरमें एक रोमांचसा हुआ, इस मुस्कराहटको निहारकर। क्या इस मुस्कराहटका कोई किंचित्मात्र प्रतिदान दे

पायेगा? नहीं, यह मुस्कराहट कभी कुछ चाहती नहीं, इस मुस्कराहटमें कोई चाहत नहीं। निःस्वार्थ है यह मुस्कराहट, स्वाभाविक है यह मुस्कराहट।

मुस्कराहट मानो कह रही है—हे मेरे भविष्यत्! जिस पथका पथिक बनाकर मैंने तुम्हें अग्रसर किया है उस रास्तेपे चल, कहीं तुम विचलित होकर उससे विमुख मत हो जाना। उस रास्तेपर चलना ही मेरी मुस्कराहट की कीमत व मेरी गुरु-दक्षिणा समझना।

हाँ! तो मैंने जिस ३ मईका जिक्र शुरूमें किया था, उसी तारीखमें अभी हम बैठकर बाल भोग ले रहे हैं और सोच रहे हैं कि आजके इस महान गौरवशाली दिनको किस उपाधिसे सुशोभित किया जाय। उपाधियाँ शेष हो जायेंगी लेकिन इसकी महत्ताको उपाधियोंमें बाँध नहीं पायेंगे और अगर कोसना शुरू करेंगे तो उसका भी छोर नहीं मिलेगा क्योंकि आजका दिन हमें श्रीगुरुजीके ७५ दिनका विरह देकर जायेगा। आज सायं चार बजे श्रीगुरुजी ७५ दिनके लिए हमसे दूर चले जायेंगे। सुननेमें तो कोई भारी नहीं लगा, किन्तु चिन्तनकी चक्कीसे गुजरकर जब भावनाएँ बाहर आयी तो बड़ा ही वेदनाशील लगा। मानो हृदयपर एक वज्राघात-सा हुआ। आँखे छलछला आई और अश्रुबिन्दुओंको ढलने न देनेकी नाकाम कोशिशमें शरीरमें सिहरन-सी दौड़ गई। बड़ा दुष्करसा लगा। इतने दिन आपके बिना रह पाना तो हमारे लिए बहुत ही मुश्किल होगा।

नित्य प्रति सुबह आपके मंगल आरतीके दर्शनोंसे शुरू हुई दिनचर्या और सायं आपके दर्शनोंसे ही दिनका विराम, बीचमें आपके मनोहर दर्शन और मनोहर हरिकथाका आस्वादन। आप हमारे हम आपके, दिनभर आपके दर्शनार्थियोंके दर्शन, दिनभर आपके द्वारा निर्देशित होकर निकलते हुए शिष्योंको देखकर चित्तको जो शांति मिलती है, प्रभु इन सबका लेखनीके द्वारा या

वाणी द्वारा प्राकट्य बहुत मुश्किल ही नहीं असम्भव-सा है।

अचानक ये सब तार टूट गए और वह वक्त आ ही पहुँचा ३-४५। शहरके गणमान्य व्यक्ति जिनमें डॉक्टर, व्यवसायी, ऑफिसर, आपके सेवक, आपके हितैषी, आपके प्रेमी, सब शनैः शनैः अपने-अपने कर-कमलोंमें फूलमालाएँ लेकर आपके कमरेके सामने एक सभाके रूपमें एकत्रित होने लगे। दिल उछलकर हलकर्में आकर लगा और कपोंलोंपर खारे पानीकी कुछ बूँदे ढलकाकर चला गया। आपके दरवाजेमें चर.....की आवाज हुई, आपके दरवाजेके दोनों पलड़े निढालसे होकर मानो लटक गये, लगता है ये दोनों निर्जीव पल्ले भी कुछ ज्यादा ही दुःखी हैं और हो भी क्यों नहीं ७५ दिनोंके लिए ये निरीह पल्ले आपके स्पर्शसे वंचित होने जा रहे हैं। लेकिन इस सबकी परवाह किए बिना सबने देखा आपका फूल-सा खिला हुआ कोमल चेहरा, और यह चेहरा, मानो मुछ कह रहा हो। आगन्तुकोंमें माल्यार्पण करनेकी होड़-सी लग गई। अग्रिम नम्बरके लिए लालायित भीड़ तथा आपके चरणरजको तरसते हुए नागरिक चरणरज पाकर निहाल हो गए।

धरणी मुस्कराई और थोड़ी जोरसे खिलखिलायी और मन-ही-मन कहने लगी—आज मैं निहाल हो गई, मैं धन्य हो गई, मेरी कोख उज्ज्वल हो गई, मेरा लाल आज अपने गुरुकी वाणीका प्रचार करने उनकी आशाओंको पूर्ण करने पाश्चात्य देशोंमें भक्तिरूपी बाढ़के पानीमें सबको डुबोने जा रहा है। गोलोक वृन्दावन धामसे रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ दास गोस्वामी अपने दासके ऊपर पुष्प वर्षा कर रहे हैं।

तनिक धीरेसे युग पुरुष आगे बढ़े और धड़कने तेज हो गई, समीरने मानो सरकना रोका हो, साँसोंकी गति कुछ मंद गतिसे चली। युगपुरुष

कुछ और बढ़े। लेकिन लगता है युगपुरुषके चरणोंको भक्तोंकी नजरें अपने पलकोंमें धारण कर कह रहे हों—हे युगपुरुष ! आप निश्चन्त रहें हमारी शुभकामनाएँ आपके साथ है। लेकिन कुछ भक्तोंकी आँखे कुछ नम क्यों हैं। खुशीमें झूमते हुए ब्रह्मचारियोंके द्वारा करते हुए कीर्तनकी लयमें कदमोंको धिरकाते हुए युगपुरुषका अनुसरण करते हुए धीरे-धीरे सीढ़ियोंसे उतरनेका ताता लगा। अफिसके सामने एक महिलाकी माला ग्रहण करनेके लिए युगपुरुष रूपके। दो कदम रुकनेके साथ ही हजारों कदम रुके। माला ग्रहण की, महिलाको बैंचपर बैठाया और अपना वरदहस्त आशीर्वादकी मुद्रामें उठाया और फिर नजरें उठायी और वे नजरें हमारे ऊपर पड़ी, हम खुशीसे निहाल हो गए, शरीर व मनमें शीतलता छा गई। इन नजरोंने मानो कहा इसीके सहरे अपने विरहके दिन काट देना और युगपुरुष पुनः आगे बढ़े।

भास्कर भगवान्-ने सेवाका मौका अपने हाथसे नहीं जाने दिया। तपती हुई अपनी किरणोंको कम करनेके लिए किरणोंको बादलोंके पीछे छुपाकर बैठ गये मानो कह रहे हों ब्रह्मचारियों, ब्रजवासियों व भक्तों मैं तुम्हारे गुरुकी सेवामें तुम्हारे साथ हूँ। लगता है मथुरासे युगपुरुषका जाना भास्करको नहीं सुहाया।

युगपुरुषने अपना दाहिना पैर आगे गाड़ीमें बढ़ाया और गाड़ीमें बैठे। करुणासे भरपूर चमकती हुई नीली आँखे हमारे ऊपर दृष्टिपात करती रहीं, दाहिना हाथ आशीर्वादके रूपमें ऊपरकी ओर खिड़कीसे बाहर निकला, गाड़ी आगे बढ़ी और धीरे-धीरे आँखोंसे ओझल होती गई। हमने हजारों मनका पत्थर अपने दिलपर रखकर उस युगपुरुषको अश्रुपूरित विदाई देकर जल्दी आनेके लिए दिल ही दिल प्रार्थना की।



साधु-सङ्ग

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

साधु-संगका माहात्म्य

सभी शास्त्र साधुसङ्गके माहात्म्यसूचक ऐसे वचनोंका पुनः पुनः गान करते हैं। साधुसङ्गका इतना माहात्म्य, इतनी शक्ति और इतना मूल्य क्यों है, कहा नहीं जा सकता। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि साधुसङ्गके अभावमें किसी-किसी ने तो अनेक जन्मों तक साधन करके भी कृष्णकी भक्ति नहीं पायी। किन्तु, फिर उन्होंने ही साधुसङ्गके द्वारा अतिशीघ्र ही उसे पा लिया। साधुसङ्गमें कितनी माधुरी है, साधुसङ्गमें सन्तोंके मुँहसे प्रवाहित हरिकथा-रसमें कितनी आकर्षण शक्ति है तथा सन्तोंके चरित्रका कितना बड़ा बल है—इन्हें तो वही जानता है जिसने साधुसङ्ग किया है। साधुसङ्ग-विहीन तार्किकजन भी मुक्त कंठसे साधुसङ्गकी महिमा गाते हैं—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्संगिसंगस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(श्रीमद्भा. ११८।१३)

[भगवद्गत्के साथ निमेषकालमात्रके सङ्गसे जीवोंका जो असीम मङ्गल साधन होता है, उसके साथ जब स्वर्ग या मोक्षकी भी तुलनाकी सम्भावना नहीं की जा सकती, तो फिर मरणशील मानवके तुच्छ राज्यादि सम्पदकी बात ही क्या कहूँ।]

साधुका आन्तरिक-लक्षण

भगवान्की कृपा पानेके लिये साधुओंका सङ्ग करना कर्त्तव्य है और कर्त्तव्य है, इसमें तनिक भी सन्देहकी गुञ्जाइश नहीं है। किन्तु साधुसङ्ग करनेके पहले साधु कौन है—इसका विचार होना आवश्यक है। अगर ऐसा न किया गया तो साधुसङ्गके बदले असाधुसङ्ग हो जानेसे विशेष

अमङ्गल होनेकी संभावना है। शास्त्रमें सन्तोंके लक्षण इस प्रकार कहे गये हैं—

निर्वैरः सदयः शान्तो दम्भाहङ्कार वर्जितः।

निरपेक्षो मुनिर्वीतरागः साधुरिहोच्यते॥

[जो द्रेषशून्य, दयावान और शान्त हैं, जिनका दंभ और अहङ्कार दूर हो गया है, जो निरपेक्ष और विषयोंके प्रति रागशून्य हैं एवं जिनका मन भगवत्-चरणोंमें लगा हुआ है, उन्हें साधु कहते हैं।]

पाठक! साधु और वैष्णवोंमें भेद न समझेंगे। वैष्णवका लक्षण क्या है—इसके उत्तरमें श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने कहा है—

“—याँ त्रिंशु एक कृष्णनाम।

सेर्वे त वैष्णव, करिह ताँहार सम्मान॥

(चै. च. म. १५।११२)

कृष्णनाम निरन्तर याँहार बदने।

सेर्वे वैष्णव-श्रेष्ठ भज ताँहार चरणे॥

याँहार दर्शने मुखे आइसे कृष्णनाम।

ताँहारे जानिह तुमि वैष्णव-प्रधान॥”

(चै. च. म. १६।७२, ७४)

‘अर्थात्, जिनके मुखसे एक बार भी शुद्ध कृष्णनाम निकले, वे वैष्णव हैं, उनका सम्मान करना चाहिये; जिनके मुखमें कृष्णनाम निरन्तर नृत्य करता है, वे श्रेष्ठ वैष्णव हैं, उनके पादपद्मकी सेवा करनी चाहिए एवं जिनके दर्शनमात्रसे ही कृष्णनाम जिह्वा पर नृत्य करने लगे, उन्हें वैष्णवोंमें प्रधान समझो।’

किन्तु ये सभी अन्तर्लक्षण हैं, इसलिए इनके द्वारा अचानक एक साधुको पहचानना कठिन ही नहीं वरन् असम्भव हो जाता है।

साधुके बाहरी लक्षण

हमने पहले ही कहा है कि शुद्ध हरिनाम ग्रहण—यह आन्तरिक क्रिया है। इसके अतिरिक्त साधुका बाहरी आचार कैसा होना चाहिये, इसके सम्बन्धमें श्रीचैतन्य देवने कहा है—

असत् संग त्याग,—एई वैष्णव आचार।

स्त्री संगी—एक असाधु, 'कृष्णभक्त' आर॥

(चै. च. म. २२।८५)

असत्-सङ्गका परित्याग करना चाहिये। साधारणतः असत्-सङ्ग दो प्रकारका होता है— अवैध स्त्री-सङ्गी और कृष्ण-बहिर्मुख अभक्तका

सङ्ग। इन दोनों प्रकारके असाधु-सङ्गका परित्याग करना ही वैष्णवोंका बाह्य आचार है। जिनका ऐसा आचरण देखा जाय, उन्हें वैष्णव समझना चाहिए और उनका सङ्ग करना चाहिए। ऐसे ही वैष्णवोंके सङ्गसे सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। दूसरे पक्षमें, जो लोग असत्-सङ्ग त्याग करनेका जरा भी प्रयत्न नहीं करते, परन्तु हरिनाम-ग्रहणादि भक्ति-अङ्गोंका साधन करते हैं, वे शुद्ध वैष्णव नहीं, वैष्णवप्राय या वैष्णवाभास हैं। ऐसे लोगोंके सङ्गसे साधुसङ्गका फल होना असम्भव है। □



मायावादकी जीवनी

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ३, पृष्ठ ३१ से आगे]

शंकर—मतमें भी जगत् मिथ्या है

आचार्य शंकरने भी बुद्धदेवका पदाङ्ग अनुसरणकर जगत् का कारण त्रिकाल शून्यस्वरूप एक तत्त्वको स्वीकार किया है। उसका नाम अविद्या है। यह अविद्या सत् और असत् से विलक्षण एक अनिर्वचनीय तत्त्व है अर्थात् अविद्या न तो सत् है, न असत्; इन दोनों से विलक्षण होनेसे उसे अनिर्वचनीय कहते हैं। श्रीशंकरने अपने 'अज्ञान बोधिनी' ग्रन्थमें जगत् के सम्बन्धमें जो लिखा है, उसकी आलोचना करनेसे इस विषयकी सत्यताकी उपलब्धि की जा सकती है। उसका आठवाँ वाक्य इस तरह है—

"भ्रो भगवन्! यद् भ्रम मात्रासिद्धं तत् किं सत्यम्? अरे यथा इन्द्रजालं पश्यति जनः व्याघ्रजलतङ्गादि असत्यतया प्रतिभाति किम्? इन्द्रजालभ्रमे निवृत्ते सति सर्वं मिथ्योति जानाति। इदन्तु सर्वेषामनुभवासिद्धम्!"

उक्त वाक्योंमें उन्होंने जगत् को भ्रममात्र एवं

इन्द्रजालकी तरह सम्पूर्ण मिथ्या कहा है। 'निर्वाण-दशक' के छठे श्लोकमें भी "न जाग्रत्र मे स्वप्नको वा सुषुप्तिर्न विश्वे।" इत्यादि वाक्योंमें उन्होंने भी बुद्ध की तरह जगत् का अस्तित्व अस्वीकार किया है। वे और भी कहते हैं—

आभातीदं विश्वमात्मन्यसत्यं
सत्यज्ञानानन्दरूपेण विप्रोहात्।

निद्रामोहात् स्वप्नवत् तत्र सत्यं
शुद्धं पूर्णं नित्यं एकः शिवोऽहम्॥
(आत्मपञ्चक—३य श्लोक)

अर्थात् 'तत्र सत्यं स्वप्नवत्'—विश्व सत्य नहीं है, यह असत् और स्वप्नकी तरह मिथ्या है। जगत् का अस्तित्व निद्राकालके स्वप्नकी तरह केवल प्रतीत होता है। वास्तवमें यह सत्य नहीं है।

बुद्धने कहीं कहीं पर विश्वको 'संस्कार' विशेष कहा है। आचार्य शंकरने ऐसा कहा है कि यह

स्वप्नकीं तरह केवल प्रतिभात होता है। वास्तवमें स्वप्न और संस्कार एक ही धारणाके ज्ञापक हैं; क्योंकि स्वप्न और संस्कार दोनों ही कल्पनासे उपत्र होते हैं। जहाँ अकलित्य वस्तु भी स्वप्नमें दृष्ट होती है, वहाँ भी संस्कार ही मूल कारण है। दार्शनिक पण्डितोंका यही मत है। शंकरने यद्यपि वेदान्त सूत्रके भाष्यमें बौद्धोंके 'संस्कारवाद'के प्रति आक्रमण किया है, तथापि सूक्ष्मरूपसे विचारकर देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि इनकी स्वप्न-तुल्य जगत्-प्रतीति और संस्कारवाद दोनों एक ही कल्पना है—केवल शब्दमात्र पृथक् पृथक् हैं।

आचार्य शंकरने जगत्के कारण अविद्याका परिचय देते समय सत्-असत्से विलक्षण अनिर्वचनीयत्वकी बात जिस तरहसे कही है उससे बुद्धके त्रिकाल शून्यत्वके साथ कुछ भी भेद नहीं है। शुक्ति और रजतके उदाहरणके द्वारा वे कहते हैं कि शुक्तिमें रजतका ज्ञान अविद्या या अज्ञानके द्वारा उत्पन्न होता है। अतः यह रजतज्ञान प्रातिभासिक मात्र है। प्रातिभासिक वस्तु तब तक (जब तक अविद्याकी स्थिति रहती है) स्थायी होती है, बौद्ध मतमें यह केवल क्षणिक है। अर्थात् शुक्तिमें रजतका जो तात्कालिक ज्ञान होता है, वह केवल अज्ञान है। भूत, भावघ्यत् और वर्तमान इन तीनों कालोंमें उसका अस्तित्व नहीं रहनेसे उक्त अज्ञान या अविद्या सत् नहीं, बल्कि केवल मिथ्या है। माननीय राजेन्द्रनाथ घोष महोदयने आचार्य शंकरका मत व्यक्त करते हुए आश्चर्यजनक वाक्योंका आवाहन किया है—

“जिसका अस्तित्व नहीं है, वह प्रतिभात होता है, जैसे—जगत् और जिसका अस्तित्व है वह प्रतिभात नहीं होता, जैसे—ब्रह्म।” उक्त वाक्य बौद्धमतकी प्रतिध्वनिमात्र है। बौद्ध ज्ञानश्री कहते हैं, “यत् सत् तत् क्षणिकम्” अर्थात् जो सत्य रूपसे प्रतीयमान होता है, वही क्षणिक या तात्कालिक

है। अतः मिथ्या है। आचार्य शंकरने अपने ‘अपरोक्षानभूति’ नामक ग्रन्थके ४४ श्लोकमें बुद्धके क्षणिकवादकी प्रतिध्वनि करते हुए कहा है—

‘रज्जुज्ञानात् क्षणेनैव यद्वद् रज्जुर्हि सर्पिनी।’

अर्थात् रज्जुमें सर्पभ्रमके द्वारा जो अनुभूति होती है, वह भ्रान्तिमय होनेपर भी क्षणिक है। अतः जगत्रूप जो भ्रंति होती है, वह भी क्षणिक है। जगत्के त्रैकालिक सत्य-शून्यत्वकी तात्कालिता स्वीकार करनेसे बुद्धके जगद्-व्यापारमें आदि और अन्तमें असत् विश्वके त्रिकाल शून्यताका क्षणिकत्वके साथ क्या अन्तर रहा? सुधी पाठकवर्ग ही विचारकर देखें।

ब्रह्म और शून्य

जगत्के सम्बन्धमें बुद्ध और आचार्य शंकरका एक ही सिद्धान्त है, मैंने पाठकोंसे यह निवेदन किया है। जगत् यदि अस्तित्वहीन, मिथ्या अथवा क्षणिक और प्रतिभासिक हो तो सत्य और नित्य वस्तु क्या है?—यही यहाँ विचार करनेका विषय है। अद्वयवादी बुद्धका शून्य ही उनका सत् और नित्य है अर्थात् शून्यज्ञान ही चरम ज्ञान है। दूसरी तरफ ब्रह्मवादी शंकरका ब्रह्म ही सत् और नित्य है अर्थात् ब्रह्मज्ञान ही चरम ज्ञान है। पहले कहा गया है कि शंकरके मतसे ‘जिसकी प्रतीति नहीं वही सत् है’ और बुद्धने भी प्रतीति हीन वस्तुको शून्य या सत् कहा है। शंकरने उसे ‘ब्रह्म’ शब्दके द्वारा समझाने जाकर शून्यके अतिरिक्त और अधिक क्या बतलाया है?—पाठकवर्ग यह विचार करें। हमारे विचारसे शून्यकी धारणाको सम्पूर्ण रूपसे सुरक्षित रखकर उन्होंने ‘ब्रह्म’ शब्दके द्वारा ‘शून्य’ शब्दको केवल भाषान्तरित किया है। शून्यके सम्बन्धमें बौद्ध लोगोंका जो कुछ कहना है, शंकरने भी ब्रह्मके विषयमें उसकी प्रतिध्वनि मात्र की है। अतः शून्य और ब्रह्ममें किसी प्रकारका पार्थक्य नहीं दीखता। मैं दो-एक प्रमाण उद्भूतकर उक्त सिद्धान्तकी पुष्टि कर रहा हूँ।

(क्रमशः)



‘श्रीगौड़ीय-कण्ठहार’ निवेदन

‘श्रीगौड़ीय कण्ठहार’ नामक ग्रन्थ श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिसे ‘आदि संस्करण रूपमें प्रकाशित हुआ है। श्रीब्रह्म-मध्य-गौड़ीय-सारस्वत सम्प्रदायके अन्तर्गत वैष्णव-सिद्धान्तावली इससे पूर्व हिन्दी भाषामें इस प्रकार गुम्फित होकर प्रकाशित नहीं हुई। बांग्ला भाषामें इस प्रकार ग्रन्थ संस्करण श्रीधाम मायापुर स्थित श्रीचैतन्य मठ और उपरोक्त श्रीसमितिसे प्रकाशित और प्रचारित होनेपर भी हिन्दी भाषामें उसका अभाव दीर्घकालसे परिलक्षित हो रहा था। इसलिए वर्तमान संस्करण हिन्दी भाषी व्यक्तियोंके लिए शुद्ध तत्त्वसिद्धान्त आलोचनामें अत्यन्त सहायक होगा—इसमें सन्देह नहीं है।

श्रीगुरुवैष्णवगण कलियुग-पावनावतारी श्रीमद्गौरसुन्दरके ‘कीर्तनीयः सदा हरिः’ वाणीके मूर्त विग्रह हैं। संसारमें त्रितापसे दग्ध जीवोंको हमेशा हरिकथारूप शान्तिवारिसे सिद्धनकर उद्धारके लिए ही उनका इस धराधाममें आविर्भाव होता है। कीर्तनाख्या भक्तियाजन ही हरिविमुख जीवोंके लिए इस कलिकालमें एकमात्र श्रेष्ठ साधन और साध्य है। इसे प्रदर्शित करनेके लिए श्रीगुरुवैष्णवगण अचिन्त्य भेदाभेद-तत्त्वरूपमें कीर्तन विग्रह और कृष्णप्रेष्ठ रूपमें जगत्‌में प्रकटित होते हैं। वे मूर्तिमान करुणाधन कृष्णकृपामूर्ति तत्त्वसिद्धान्तरूपसे जीवोंके आत्यन्तिक कल्याण चिन्तामें निमग्न हैं। भक्तभाव अंगीकार करनेवाले स्वयं भगवान् श्रीशचीनन्दन गौरहरि महावदान्य एवं श्रीगुरुवैष्णवगण महामहावदान्य हैं।

श्रीगुरुवैष्णवोंके श्रीमुख निःसृत भगवत्‌कथारूपी अमृत ही भवदावानलसे दग्ध जीवोंके लिए एकमात्र आश्रय और पथेय है। यही आप्नाय और श्रौतवाणी है। विशुद्ध हृदयसे एकमात्र उसका

अनुशोलन करनेसे अविद्यानिवृत्तिके सहित निष्ठा, रति और अन्तमें प्रेमाभक्तिका उदय होता है। निष्क्रियन भगवद्भक्तोंका आश्रय नहीं लेनेसे अनर्थनाशक कृष्णपादद्वारोंकी साक्षात् सेवाकी प्राप्ति नहीं होती है। महाभागवतोंकी पदरेणुमें अभिषिक्त नहीं होनेसे उनकी शक्तिशाली वाणीका अनुसरण करनेमें असमर्थ होनेपर वास्तवरूपमें भगवत्-तत्त्वशानकी प्राप्ति असम्भव है। महान् व्यक्तियोंकी सेवा अल्पसुकृतिवान् व्यक्तिके पक्षमें दुर्लभ होनेपर भी भूतभावन श्रीभगवान् भक्तोंके निकट हमेशा नित्यप्रकटित और आराधित होते हैं। देहात्माभिमानके कारण ही जीवोंकी स्वरूप-विस्मृति और अनात्मवस्तुमें अभिनिवेश होता है। इसलिए भगवत्-प्रेष्ठ गुरुवैष्णवोंका भक्तिके सहित भजन ही शास्त्रोंका विशेष निर्देश है।

“गौड़ीय” शब्दसे गुरु-वैष्णव सभी निर्दिष्ट होते हैं। इसलिए “गौड़ीय-कण्ठहार” कहनेसे गौड़ीय गुरुवर्गको समझना चाहिए। गुरुको छोड़कर वैष्णव नहीं हैं। श्रीगुरु ही श्रेष्ठ वैष्णव हैं, पुनः वैष्णव श्रेष्ठ ही गुरुपादपद्म हैं। इसलिए श्रीगुरु और वैष्णव दोनों एक अखण्ड तत्त्व हैं। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीपादने लिखा है—

“ग्रन्थेर आरम्भे करि मङ्गलाचरण।
गुरु, वैष्णव, भगवान्-तिनेर स्मरण॥
तिनेर स्मरणे हय विघ्नविनाशन।
अनायासे हय निज वाञ्छित पूरण॥”
“साधु-शास्त्र-गुरुवाक्य, हृदये करिया ऐक्य,
सतत भासिब प्रेममाझे॥”

श्रीगुरुदेव शास्त्रकी वाणीका ही कीर्तन करते हैं, फिर शास्त्र श्रीगुरुमुखके अतिरिक्त कीर्तित नहीं होते हैं। श्रीगुरुदेव साधु या वैष्णव महाजनोंके

पथका ही अनुसरण करते हैं। इसलिए श्रीगुरु-वैष्णवोंका आचरण ही शास्त्र है, श्रीगुरु-वैष्णवोंकी मुख्यविगलित वाणी ही शास्त्र है, शास्त्र ही वैष्णव हैं, शास्त्र गुरु हैं, वैष्णव ही शास्त्र या भागवत हैं, फिर गुरु ही शास्त्र या आदर्श मूर्त—महाभागवत हैं। इसलिए साधु-शास्त्र-गुरुवाक्य एक ही सूत्रमें ग्रथित—परमात्मासे विशेष सम्बन्ध और सम्पर्कयुक्त हैं। प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवावृत्तिके द्वारा सेवोन्मुख वृत्तिसे ही यह उपलब्धिका विषय हो सकता है।

हम लोग साधु-शास्त्र-गुरुवाक्यमें देख सकते हैं—“सविशेष चिदविलास विष्णुके उपासक ही ‘वैष्णव’ एवं निर्गुण ब्रह्मके उपासक ही ‘ब्राह्मण’ हैं। ब्रह्मज्ञका नाम ‘ब्राह्मण’ एवं ब्रह्मज्ञ भगवदुपासक का नाम ‘वैष्णव’ है। इसलिए सम्बन्धज्ञानमय ब्राह्मण ही भजन करके वैष्णव हो सकते हैं। विष्णुकी कृपासे मायावादके हाथसे निस्तार पानेसे ब्राह्मणसे ‘अविमिश्र ब्राह्मण’ या वैष्णव हुआ जा सकता है। ब्राह्मणता वैष्णवताका सबसे निम्न सोपान है। ‘वैष्णवता’ ब्राह्मणतासे अत्यन्त श्रेष्ठ वस्तु है। वैष्णवोंके दास ही ब्राह्मण हैं। अब्राह्मण कभी भी वैष्णव नहीं हो सकते हैं। गुरु माने ही ब्राह्मण। श्रीमन्महाप्रभुने जिन समस्त आदर्शोंकी शिक्षा प्रदान की थी, आजकल वे किस प्रकार विकृत हो गयी हैं। आजकल धर्मके नामपर व्यापार, व्यधिचार, कपटता, लोकवज्चना ही ‘वैष्णवधर्म’के नामसे धर्मके बाजारमें प्रचलित है। जिनको लोकोत्तर महापुरुषोंके आचरणको देखनेके लिए नेत्र नहीं हैं, वे लोग ही वैष्णव एवं गुरुमें अब्राह्मण-ज्ञानसे जातिबुद्धि करके अपने-अपने नरकका पथ परिष्कार कर रहे हैं।

“श्रीगौड़ीय कण्ठहर” शुद्ध गौड़ीय-गुरु-वैष्णववर्गके कण्ठदेशमें पहनाकर अप्राकृत हरिजनसेवामें विशेष अधिकार प्राप्त होता है। फिर विद्वाभक्तिका आश्रय ग्रहण करनेवाले वास्तविक कृष्ण-कार्ण सेवासे वज्ज्ञत व्यक्ति भी इसका

आश्रय ग्रहण करनेपर अपने वास्तविक स्वरूपोपलब्धिमें समर्थ होंगे। वे अन्वय-व्यतिरेक रूपमें इसके अनुशीलनके द्वारा प्राकृत भोग-त्यागरहित होकर अद्वयज्ञान तत्त्वकी साक्षात् सेवा-सौन्दर्य प्राप्त करेंगे। दुःसङ्ग-वर्जन और महाजनोंका अनुगमन करना ही हमारी चरम आकांक्षा और करणीय विषय है।

अप्राकृत कविकुल शिरोमणि श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी शुद्धतत्त्वसिद्धान्तानुशीलनकी अपरिहार्यताके सम्बन्धमें कहते हैं—

‘सिद्धान्त बलिया चित्ते ना करह अलस।

इहा हइते कृष्णे लागे सुदृढ मानस॥’

भगवत्-तत्त्व, जीवतत्त्व, मायातत्त्वादि विषयक-सिद्धान्त आलोचनाके अभावमें असत्यको सत्यरूप माननेसे शुद्धा-भक्तियाजनसे वज्ज्ञत होना होगा। फिर उक्त आलोचना जिससे स्वकपोलकल्पना प्रसूत नहीं हो, इसके लिए श्रीमन्महाप्रभुने शास्त्रग्रन्थ-प्रकाशके प्रसङ्गमें श्रील सनातन गोस्वामीसे कहा है—“सर्वत्र प्रमाण दिवे पुराण वचन।” “श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलम्”—श्रीचैतन्य महाप्रभुके इस सिद्धान्तानुसार सम्बन्ध-अधिधेय-प्रयोजनात्मक इस कण्ठहारके गुम्फनमें अमलपुराण श्रीमद्भागवतसे मुख्य प्रमाणरूपी पुष्पसमूह चयन किए गये हैं। उनके अनुकूल अन्यान्य पुराणों एवं वैष्णव-महाजनों द्वारा रचित भाष्यादिसे प्रयोजनीय प्रमाणसमूह उद्घृत होनेसे सर्वाङ्गीण सुन्दर कण्ठहार गौड़ीयगणोंके कण्ठभूषणके योग्य हुआ है।

इस प्रसङ्गमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सह-सभापति और साधारण सम्पादक मदीय सतीर्थ पूज्यपाद श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी महान प्रचेष्टा अशेष प्रशंसनीय है। श्रीसमिति एवं हिन्दी भाषावलम्बी तत्त्वानुसन्धितसुगण इसके लिए उनके निकट निःसन्देह चिरकृतज्ञ रहेंगे।

श्रीगुरु-वैष्णव-दासानुदास
त्रिदण्डभिक्षु
श्रीभक्तिवेदान्त वामन



कृपा

‘कृपा’ शब्दसे साधारणतः सभी लोग परिचित हैं एवं बहुधा बोल-चालकी भाषा या लेखोंमें इसका प्रयोग भी करते हैं। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति इसका कुछ ऐसे अर्थमें व्यवहार करता है जिससे इस शब्दका ठीक-ठीक मतलब मालूम करना बड़ा ही कठिन हो जाता है।

साधारणतः कृपा शब्द अनुग्रहका प्रकाशक है। लेकिन किसकी कृपा? किसलिए कृपा? और किसपर कृपा? इत्यादि प्रश्नोंपर विचार करनेसे इस शब्दमें व्यवहारके तारतम्यसे कुछ विभिन्नता प्रतीत होती है। किसी आदमीको उसकी आवश्यकतानुसार कुछ प्राप्त करना ही कृपाका द्योतक बन जाता है। किसीको एक रूपयाकी आवश्यकता है, दूसरे किसीने उसे एक रूपया दे दिया, तो पहला व्यक्ति कृतज्ञ होकर कहने लगता है, “आपने बहुत कृपा की।” कोई अकेला कहीं जा रहा था, किसीने उसका साथ दे दिया, तो वह आदमी इसे कृपा समझता है। एक आदमी दुःखमें बैठा था। कोई दूसरा व्यक्ति उसके पास आकर उसके साथ बात-चीत करने लगा। इससे दुःखी आदमीको कुछ सांत्वना मिली और वह कहने लगा है, “आपकी बड़ी कृपा हुई।” इस तरह हम देखते हैं कि कुछ उपकार करना ही एक प्रकारसे कृपा है। लेकिन उपकार कई तरहका होता है, सभी उपकार बराबर नहीं होते। अतः सब उपकारोंको वास्तवमें एक दृष्टिसे नहीं देखा जा सकता है। ‘उपकार’ शब्दपर अगर हम गौरसे विचार करें तो हम समझ पायेंगे कि उससे कुछ प्राप्ति होती है। अर्थात् जिसका कोई उपकार हो गया उसे मालूम पड़ता है कि उसको कुछ मिल गया, वह वस्तु चाहे आकारयुक्त हो या आकारहीन

अथवा वह वस्तु भौतिक (Material), आध्यात्मिक (Spiritual) या अप्राकृत (Supernatural) हो। जैसा कि पहले कहा गया है, एक आदमीको समयपर एक रूपया मिलना एक संसारिक आकारयुक्त वस्तुसे उपकार है। लेकिन किसी आदमीकी मधुर वाणीसे एक दुःखी व्यक्तिका दुःख दूर हो जानेसे किसी निराकार वस्तु द्वारा या भावनाद्वारा उपकार कहा जा सकता है। लेकिन ये दोनों प्रकारके उपकार भौतिक या पार्थिव हैं। यह उपकार एक बार हो जाने पर भी फिर किसी न किसी समय उसकी आवश्यकता हो सकती है। ऐसा सदासे ही होता आया है और होता रहेगा। ऐसी कृपा संसारका प्रत्येक व्यक्ति हर समय प्रत्येकको किसी न किसी प्रकारसे कर सकता है, यह तो पारस्परिक व्यवहार है। किन्तु, ऐसी कृपा मिलना भी सबके भाग्यमें नहीं होता, उसके लिये कुछ संस्कारकी आवश्यकता होती है।

कृपाका फल उपकार है और उपकारका अर्थ कुछ प्राप्ति है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। चाहे वह प्राप्ति कैसी भी क्यों न हो। प्राप्तिके ऊपर ही उपकारका गुरुत्व निर्भर करता है अर्थात् प्राप्त-वस्तु जितनी ही महान होगी, उपकार उतना ही उच्च कोटिका होगा। बड़ी कृपा वह है जो बड़ा उपकार करती है और जो बड़ी कृपा करता है, उसका महत्व अन्य कृपाकारियोंसे अधिक है। अतः जो सबसे बड़ी कृपा करता है, वह सर्वश्रेष्ठ कृपालु है। इस प्रकार देखा जाता है कि कृपाके साथ-साथ कृपालुका स्तर भी क्रमशः ऊँचा उठता जाता है।

यहाँपर सर्वश्रेष्ठ कृपा और सर्वश्रेष्ठ कृपालुके विषयमें कहना हमारा लक्ष्य है। अर्थात्, सर्वश्रेष्ठ

कृपा क्या है? सर्वश्रेष्ठ कृपालुकी कृपा कैसी होती है? और उस कृपाका फल क्या होता है?—हमें यह विचार करना है। पहले कहा गया है कि प्राप्त वस्तु देखकर हम उपकारकी महानता समझ सकते हैं। बड़ा उपकार वह है जो बड़ी वस्तु देता है। सबसे बड़ी वस्तु क्या है?—सबसे बड़ी वस्तु वह है जिसके मिलनेपर किसी वस्तुका मिलना बाकी नहीं रह जाता है अर्थात् जिस वस्तुके मिलनेपर सबकुछ मिल जाता है तथा दूसरी किसी वस्तुकी चाह नहीं रह जाती है, जीवन भरपूर हो जाता है। आत्मा कृत-कृतार्थ हो जाती है। ऐसी पूर्ण, स्वच्छ, अविरल शान्ति-स्रोतके नीरव प्रवाहसे न जाने कहाँका अपूर्व मधुरातिमधुर अमृतास्वाद मिलता है—यही वस्तु सब तरहकी प्राप्य वस्तुओंमें श्रेष्ठ है। वह वस्तु क्या है?—इसका विचार करना इस लेखका उद्देश्य नहीं है। यहाँ तो सिर्फ कृपाका ही स्वरूप देखना है, वह भी सर्वप्रधान कृपाका ही।

जब हम यह कह सकते हैं कि सर्वश्रेष्ठ वस्तुको प्रदान करने वाली ही सर्वश्रेष्ठ कृपा है, दूसरे रूपमें हम यह भी कह सकते हैं कि सर्वश्रेष्ठ कृपाका दान सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। सर्वश्रेष्ठ कृपा एक तुच्छ वस्तु नहीं देती। सर्वश्रेष्ठ कृपालुकी कृपा ही सर्वश्रेष्ठ वस्तु दे सकती है। इस तरह हम देखें तो यह मालूम होना कठिन नहीं है कि एकमात्र श्रीभगवान् ही हैं, जो सर्वश्रेष्ठ वस्तु दान कर सकते हैं। ऐसे तो संसारकी सभी वस्तुओंकी प्राप्ति मूलतः भगवत्-कृपाके ही अधीन है। लेकिन उसका सच्चा-स्वरूप क्या है?—इसमें कुछ रहस्य है। भगवत्-प्राप्ति ही मानव जीवनका पुरुषार्थ है, उसके सिवा सब विषय ही बन्धनके कारण हैं। उनसे कोई कल्याण नहीं हो सकता है। इसलिए कोई भी वस्तु मिलनेपर उसको भगवत्-कृपा मानना उनकी कृपाकी अवज्ञा करनेके सिवा और कुछ नहीं है। जिस वस्तुके मिलनेसे चाह मिट्टी

नहीं, अधिकन्तु बढ़ जाती है और तृष्णाकी विषम ज्वालासे हृदय जल जाता है, वह क्या भगवत्-कृपाका फल हो सकता है? कुछ गहराईसे विचार करनेपर इस बातकी सत्यताका अनुभव हो जाता है। भगवान् आनन्दमय हैं और सबको आनन्द देनेवाले हैं। सांसारिक सुख आनन्दजनक नहीं, बल्कि क्षणिक तृप्तिके बाद अतृप्त तृष्णाको क्रमशः अनन्त प्रकारसे अनन्त गुणा चाह द्वारा बढ़ानेवाला है। जहाँ वासनाएँ मिट्टी नहीं, प्यास बुझती नहीं, दिल तड़फड़ाता है, भला! वहाँ आनन्द कहाँ है? भगवत्-कृपाका फल विषय-भोग नहीं, परन्तु विषय-त्याग है। शारीरिक सुख, सन्तान और धन-जन आदिकी प्राप्ति भगवत्-कृपा नहीं है। यद्यपि संसारकी सभी वस्तुओंकी प्राप्ति साधारणतः भगवत्-कृपाके ही अन्तर्भुक्त है, तथापि भगवत्-कृपाका असल तत्त्व कुछ और ही है, वह यह कि जिसके ऊपर वह कृपा करते हैं, उसके सभी मायिक धन-संपद (विषय) नष्ट हो जाते हैं। सांसारिक धन-जन, प्रतिष्ठा आदि मनुष्योंके लिए क्षणिक और आपात सुखके हेतु हैं। प्रायः देखा जाता है कि इस संसारमें कभी एक समय जिसके पास ऐसी संपदाकी कोई सीमा न थी, जिसने सांसारिक सभी प्रकारके विषय-सुखोंको पूर्णतया भोग कर लिया है, वह भी अन्तमें उससे ऊबकर, उन्हें दुःखदायी समझकर स्वेच्छापूर्वक साधुसङ्गसे भगवत्-कृपाकी प्रार्थना करता है। यदि भगवत्-कृपाका फल इस जगत्का भोग ही होता तो उक्त व्यक्ति फिर भगवत्-कृपाकी लालसा क्यों करता है? और भी देखा जाता है कि सभी प्रकार जागतिक (Worldly) संपदाओंसे पूर्ण होकर भी कोई मनुष्य उसका विनाश होनेके लिए भगवत्-कृपाकी प्रार्थना करता है। यह तो एक सर्वसिद्ध बात है कि प्रत्येक सुकृतिवान् पुरुष किसी न किसी समय साधुके पास जाकर उनके उपदेशसे संसारसे वैराग्य

लाभकर भगवत्-कृपाकी खोज करता है। जब ऐसी ही बात है, तो विषयोंका (जागतिक वस्तुओंका) मिलना किस तरहसे भगवत्-कृपा कहा जा सकता है, सृष्टिका उद्देश्य ही सृष्टिकर्ताकी खोज करना है और उस उद्देश्यकी पूर्तिमें ही मनुष्य जीवनकी सार्थकता है। इसलिए थोड़ेसे विषय-सुखको पाकर उसे भगवत्-कृपा नहीं समझना चाहिए अथवा उसमें मग्न रहकर निश्चिन्त नहीं होना चाहिए। बल्कि सर्वदा भगवत्-कृपाकी आशा और उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए, जिससे श्रीभगवान्‌का नाम, रूप, गुण और लीलादिमें मन लगाकर वह आनन्द मिल सके, जिससे श्रेष्ठ कोई भी अन्य प्राप्तिका विषय नहीं। इसलिए भगवत्-भक्त सांसारिक सुखकी कामना नहीं करता। संयोगवशतः ऐसा सुख होनेपर भी उछलता नहीं बल्कि उस सांसारिक सुखके कारण अपने इष्टसे मन कुछ हट न जाय इस डरसे दृढ़ताके साथ भगवत्-चरणारविन्दमें यथाशक्ति अपनी इन्द्रियोंको नियुक्त करता है। सांसारिक सुखोंके लिए प्रार्थनाकी तो बात ही क्या, कोई कोई भक्त तो भगवान्‌से आजीवन दुःख-भोग ही माँगता है, क्योंकि दुःखमें भगवत्-स्मरण होनेकी

अधिक सम्भावना रहती है। भक्त अपने इष्टसे सांसारिक वस्तुकी प्रार्थना नहीं करता। उसे तो अपने इष्टके सिवा किसी भी दूसरी चीजकी आवश्यकता ही नहीं होती। वह संसारकी सभी वस्तुओंको हटाकर उनके स्थानपर अपनी अभीष्ट वस्तुके विराजमान होनेके लिए सदा प्रयत्न करता है और तत्पर रहता है। भगवत्-सेवाके बिना उसका जीवन शून्य है, अँधेरा है, मृत्यु है। जब तक वह भगवान्‌के सम्बन्धसे लगा रहता है तभी तक वह अपने ऊपर भगवान्‌का अनुग्रह मानता है। यही है भगवत् कृपाका अनुभव और यही है भगवत् कृपाका स्वरूप। “क्षान्तिरव्यर्थ कालत्वम्.....” श्लोककी सफलता प्राप्ति ही भगवत् कृपाका फल है। उसीके अनुसार कृपाका परिमाण किया जा सकता है अर्थात् श्रेष्ठ कृपा उसीको कह सकते हैं, जिससे उक्त श्लोककी सभी बातें कृपापात्रमें आ जातीं हैं। इसके सिवा विषयोंके मिलनेसे भगवत्-कृपा समझना विडम्बना मात्र है। अतः बहुत निपुणताके साथ इसका विचार नहीं करनेसे विपर्यय अवश्यम्भावी है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।



प्रेम-प्रदीप

—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ३ पृष्ठ ६३ से आगे)

बाबाजीके इस बातको सुनकर मल्लिक बाबूने कहा—मैं आपके आदेशके अनुसार वेश और आहार आदि स्वीकार करनेके लिए तैयार हूँ, किन्तु मैं अपने दोनों सङ्गीका परित्याग कैसे करूँ? मैं एक युक्ति लगाता हूँ, नरेन बाबू और आनन्द बाबू दो-एक दिन यहाँ रहकर वृन्दावनके बङ्गीय समाजमें चले जाय और मैं छः महीने आपके

चरणोंमें रहकर योगाभ्यास करूँगा।

नरेन बाबू और आनन्द बाबू मल्लिक बाबूके इस प्रस्तावको सुनकर इसे हर्षसे स्वीकार करते हुए कहा कि दो दिनोंमें ही हमलोग वृन्दावन चले जायेंगे। सेवकगण वहाँ मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। यही विचार तय हुआ।

नरेन बाबू और आनन्द बाबू प्रकृतिकी शोभा

देखनके लिए भ्रमणको निकल गए। बाबजीको अकले देखकर मल्लिक बाबू कहने लगे—बाबाजी! उन दोनोंको अपने साथ लाना अच्छा नहीं हुआ, क्योंकि उनकी वेश-भूषाको देखकर सभी लोग उनकी अवहेलना करते हैं। यदि आप कृपा करें तो मैं शीघ्र ही इस अनार्य-संसर्गसे मुक्त हो पाऊँगा।

बाबाजीने कहा—बहुतसे वैष्णव वेश-भूषा और संसर्ग देखकर ही उनका सङ्ग परित्याग करते हैं। किन्तु, मेरी नीति ऐसी नहीं है। मैं यद्यन आदिके साथ भी एक स्थानमें रहनेमें कभी कुण्ठित नहीं होता हूँ। वैष्णवगण जातिविशेषसे द्वेष नहीं करते हैं, तथापि सुविधाके लिए वैष्णव वेश-भूषा और वैष्णवोचित व्यवहार स्वीकार करना कर्तव्य बोध होता है।

एक ही दिनके उपदेशसे ही कभी कोई वैष्णव वेश स्वीकार नहीं करता, तथापि पूर्व संस्कारके कारण हो अथवा योगी बाबाजीके प्रति श्रद्धालु होनके कारण हो, मल्लिक बाबूने तत्क्षणात् अपने कीमती चमड़ेके जूतको परित्याग किया। गलेमें तुलसी और ललाटमें उर्ध्वपुद्र धारणकर योगी बाबाजीको दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजीने उन्हें हरिनाम मन्त्र जप करनेकी अनुमति प्रदान की। मल्लिक महाशय बाबजीके निर्देशके अनुरूप ही करने लगे।

जब नरेन बाबू और आनन्द बाबू घूमकर वापस आए तो कुछ दूरसे ही मल्लिक महाशयके रूपको देखकर कहने लगे—अरे! यह क्या, हमलोगोंका यहाँ रहना किसी भी प्रकार उचित नहीं है। यद्यपि मल्लिक बाबूमें अनेक पाण्डित्य है और इन्होंने बहुत कुछ अनुसन्धान भी किया है, तथापि स्थिर चित्तवाले नहीं हैं। आज इन्होंने कैसा रूप धारण किया है? एक ही दिनमें इतना परिवर्तन क्यों हुआ? देखता हूँ, आगे क्या होता है। हमलोग पवित्र ब्राह्म-धर्मकी अवमानना नहीं करेंगे। हम प्रकृतिके सौन्दर्यका दर्शन करते रहेंगे। और मानवके स्वभावकी परीक्षा करते रहेंगे।

जब नरेन बाबू और आनन्द बाबू और निकट आए तो उन्हें देखकर मल्लिक महाशय थोड़ा अस्थिर होते हुए कहने लगे—नरेन! देखो, मैं क्या हो गया? आनन्द! क्या तुम असन्तुष्ट हो रहे हो?

नरेन और आनन्द बाबूने कहा—आप हमारे श्रद्धाके पात्र हैं। आपके किसी कार्यसे हम दुःखित नहीं हैं।

योगी बाबाजीने कहा—आपलोग विद्वान और धार्मिक है किन्तु तत्त्वके विषयमें आपलोगोंने क्या आलोचना की है?

नरेन बाबू ब्राह्म धर्मके एक आचार्य हैं। बहुत दिनों तक उपाचार्य रहकर उन्होंने ब्राह्म-समाजको माननेवालोंको शिक्षा भी दी है। बाबाजीके प्रश्नको सुनते ही अपने चश्माको नाकपर लगाकर कहने लगे—भारत बहुत दिनोंसे कुछ दोषोंसे दूषित है। ये दोष इस प्रकार हैं—(१) जातिभेद—मानवमात्र ही एक पिताके सन्तान हैं। सभी लोग भाई हैं। जातिभेदके कारण भारतवासियोंके उत्रत होनेकी बात तो दूर रहे, वे और भी पतित हो रहे हैं। विशेषकर पाश्चात्य देशोंके उत्रत समाजके लिए वे धृणाके पात्र हैं। (२) भारतवासीण निराकार ब्रह्मकी उपासनाको छोड़कर अनेक कल्पित देव-देवियोंकी पूजा करनेके कारण परमेश्वरसे बहुत दूर हो गए हैं। (३) पौत्रिक पूजा (मूर्ति-पूजा)। (४) निरर्थक उपवास आदि व्रत धारण करना। (५) धूर्त ब्राह्मण जातिको निरर्थक सम्मान देना। (६) अनेक कदाचारके कारण हमारे बन्धुगणका नरकगामी होना। (७) और पुनर्जन्ममें विश्वास करनेके कारण क्षुद्र जन्मोंको भी जीव कहना। (८) उन जीवोंके मांस-भक्षणसे विरत होना और फलस्वरूप उपयुक्त आहारके अभावमें शरीरका दुर्बल होना तथा राज-काजमें अक्षम होना। (९) पति विहीन अबलाओंको वैधव्य यन्त्रणा द्वारा हीन करना।

इन समस्त कुव्यवहारोंसे भारत भूमिको उपर

उठानेके लिए देश-हितैषी राजा राममोहन रायने जिस पवित्र ब्राह्म धर्मका बीज बोया है, आजकल वही बीज वृक्ष होकर फल दे रहा है। मैं उसी निराकार प्रभुके निकट प्रार्थना करता हूँ, जिससे कि समस्त भारतवासी इस मोहरूपी अन्धकारसे उपर उठकर उपनिषदोंमें प्रचारित ब्राह्मधर्म स्वीकार करें। बाबाजी महाशय ! ऐसा दिन कब होगा जब आप और हम सभी एकत्रित होकर उन्हीं निराकार प्रभुसे प्रार्थना करेंगे।

नरेन बाबू गद्गदभावसे बोलते-बोलते निस्तब्ध हुए।

थोड़ा स्थिर होकर बाबाजीने कहा—हाँ, जब मैं वात्स्मिक मुनिके आश्रमको छोड़कर कानपुर आया। वहाँ एक आलोकित स्थानमें एक श्वेत पुरुष (अंग्रेज) को इन सब विषयोंके बारेमें बोलते हुए सुना था। उसके बाद पुनः कभी ये सब सुना नहीं।

बाबाजीने और कहा—अच्छा, मैं एक मूल बात पूछ रहा हूँ—(१) ईश्वरका स्वरूप क्या है? (२) जीवके साथ उसका क्या सम्बन्ध है? (३) किस प्रकार उन्हें सन्तुष्ट किया जाता है? (४) उनके सन्तुष्ट होनेपर जीवका क्या होता है? (५) उनकी उपासना क्यों करते हैं?

आनन्द बाबू एक भद्रवंशमें उत्पन्न नवयुवक हैं। वे अपने यज्ञोपवीतका परित्यागकर ब्राह्म-धर्मके प्रचारक बने हैं। बाबाजीके प्रश्नोंको सुनते ही वे अत्यधिक उत्साहित होकर उठ खड़े हुए और बोले—हे महात्मन्! श्रवण करे, ब्राह्मधर्मके भण्डारमें सभी प्रश्नोंका उत्तर है। ब्राह्म धर्मका कोई पुस्तक नहीं है, ऐसा समझकर आप ये नहीं सोचें कि ब्राह्म धर्म क्षुद्र है। जिन धर्मोंमें किसी विशेष पुस्तकका सम्मान है, उन सभी धर्मोंमें अवश्य ही कुछ-न-कुछ प्राचीन भ्रम दृष्टिगोचर होता है। आप लोगोंके वैष्णव-धर्मकी तुलना

ब्राह्म-धर्मसे करना, एक सरोवरकी तुलना सागरसे करनेके समान प्रतीत होता है। छोटे सरोवरमें मुक्ता नहीं मिलता, बल्कि समुद्रमें ही मुक्ता पाया जाता है। यद्यपि हमलोगोंकी कोई बृहत् पुस्तक नहीं है, तथापि ब्राह्म-धर्म नामक एक पुस्तिका है, जिसमें आपके समस्त प्रश्नोंका उत्तर नख दर्पणके समान लिखा हुआ है।

आनन्द बाबू नाकपर चश्मा चढ़ाए और अपना बैग खोलकर एक पुस्तिका निकालकर पढ़ने लगे—(१) ईश्वरका स्वरूप निराकार है (२) जीवके साथ उनका पिता-पुत्रका सम्बन्ध है (३) उनके प्रिय कार्यको पूर्ण करनेसे वे सन्तुष्ट होते हैं। (४) उनके सन्तुष्ट होनेसे हम भूमानन्द प्राप्त करते हैं। (५) उन्होंने हमारे लिए माताके स्तनमें दूध, खेतमें हरी-हरी घास और जलाशयमें मछलीकी सृष्टि की है। अतएव हमलोग कृतज्ञतापूर्वक उनकी उपासना करनेके लिए बाध्य हैं। देखिए, कितने कम अक्षरोंमें हमारे धर्माचार्योंने वास्तविक बातोंको लिखा है। इन पाँच बातोंको लिखनेके लिए आपलोग एक महाभारत लिख देते। धन्य हैं राजा राममोहन राय, उनकी जय हो। ब्राह्म-धर्मकी पताका पृथ्वीपर सर्वत्र उड़ीयमान हो।

आनन्द बाबूके तीक्ष्ण नेत्र और मुखको देखते हुए सहास्य वदनसे बाबाजी कहने लगे—आपलोगोंका मङ्गल हो, परात्पर प्रभु एकबार आपलोगोंको आकर्षित करें। आज आपलोग मेरे अतिथि हुए हैं। किसी प्रकारके वाक्यसे आपलोगोंको उद्वेग देना मेरा कर्तव्य नहीं है। श्रीगौराङ्ककी इच्छा होनेपर शीघ्र ही इस सभी विषयोंकी आलोचना करेंगे।

बाबाजीके विनय-वाक्यके श्रवण करते ही नरेन बाबू और आनन्द बाबू नाकसे चश्मा उतारकर रखते हुए हँसकर बोले—जैसी आज्ञा ! क्रमशः आपके सिद्धान्तोंका श्रवण करुँगा।

■ (क्रमशः)



पुरुषोत्तम-व्रत

पुरुषोत्तममास और मलमास (अधिकमास)

श्रीहरिभक्तिविलासके अनुसार पुरुषोत्तम मासमें ही पुरुषोत्तम व्रत हुआ करता है। इस वर्ष २ आषाढ़, १७ जून, सोमवारसे ३० आषाढ़, १५ जुलाई सोमवार तक पुरुषोत्तम मास है। स्मार्त लोग इसे मलमास या अधिकमास कहते हैं। यही नहीं, वे लोग इस अधिकमासको 'मलिम्लुच' (चोर), मलिनमास आदि नाम देकर घुणा प्रकाश करनेमें भी कुंठित नहीं होते। उनके विचारके अनुसार इस महीनेमें कोई भी शुभ कर्म नहीं किया जा सकता है। इसीलिए यह महीनोंमें मल-स्वरूप है। अतएव उन्होंने साधारण जनतामें इस अधिकमासको मलमासके नामसे ही प्रसिद्ध कर रखा है। परन्तु वैष्णव-समाज स्मार्तोंके इस विचारका किसी प्रकार भी अनुमोदन नहीं करता है।

हमारे देशमें दो प्रकारके शास्त्र परिलक्षित होते हैं। लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार शास्त्रोंकी युक्तियोंको ग्रहण करते हैं। इसीलिए पारमार्थिक शास्त्र स्मार्तशास्त्रसे अलग हैं। जो लोग विषय-भोगोंको भोगनेके लिये कर्ममार्गमें प्रवेश करते हैं, वे ही स्मार्त-शास्त्रोंका आदर करते हैं। ऐसे स्मार्त मतके अनुसार ही मलमास या अधिकमासका एक महीना निष्क्रिय होकर बिताये जानेकी विधि है। शरीर और मनके निष्क्रिय रहने पर ही शैतान वहाँ पर अपना अड्डा जमा लेता है। स्मार्तों या कर्मियोंको पीड़ित करनेके लिए इसी समय शैतानको सुवर्ण सुयोग प्राप्त होता है।

वैष्णव लोग अपना एक क्षणका समय भी हरि-सेवाके अतिरिक्त किसी दूसरे कर्मोंमें गँवाते नहीं हैं। वैष्णव लोग जिन भक्ति-अङ्गोंका आचरण करते हैं, उनमें 'अव्यर्थकालत्व' एक प्रधान अंग

है। श्रीपुरुषोत्तम मास २ वर्ष, ८ महीना, १६ दिन, ४ घंटेके बाद एक बार आविर्भूत होता है। अतएव वैष्णवोंके लिये यह मलमास नहीं, बल्कि प्रचलित बारह महीनोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ मास है। यहाँ तक कि बारह महीनोंके मध्य वैशाख, कार्त्तिक और माघ—इन तीन पवित्र महीनोंसे भी बढ़कर इस अधिक मासकी महिमा नारदीय पुराणमें बतलायी गयी है।

पुरुषोत्तम मासके सम्बन्धमें नारदीय पुराण

बारह सौर मासोंके साथ बारह चाद्र मासोंका मेल रखनेके लिये प्रति ३२ माह, १६ दिन और ४ घन्टोंके बाद एक चान्द्र मास अर्थात् एक अमावस्यासे लेकर दूसरी अमावस्या तक एक अधिक मास स्वीकार करना पड़ता है। स्मार्त मतमें इस अधिक मासको वर्षका मल माना गया है। इस अधिक मासके सम्बन्धमें नारदीय पुराणमें एक आच्यायिकाका वर्णन है। वह आच्यायिका इस प्रकार है—एक समय दूसरे-दूसरे मासोंका आधिपत्य और स्मार्तोंके द्वारा अपनी उपेक्षा देख कर 'अधिक-मास' बड़े दुःखित हुए और वैकुण्ठपति नारायणके चरणोंमें उपस्थित होकर अपने दुःखका कारण बताए। श्रीवैकुण्ठनाथको इनपर बड़ी दया आई। वे इन्हें साथ लेकर गोलोकमें स्वयं भगवान् कृष्णके पास पहुँचे और अधिक मासका दुःख दूर करनेके लिये उनसे प्रार्थना किए। उनकी प्रार्थनाको सुनकर श्रीकृष्णने मुस्कराते हुए नारायणसे कहा— हे रमापते! जैसे मैं जगत्‌में पुरुषोत्तमके नामसे विख्यात हूँ, उसी प्रकार यह अधिक मास भी संसारमें 'पुरुषोत्तम मास'के नामसे प्रसिद्ध होगा। आजसे मैंने अपने सारे गुणोंको इस मासमें स्थापित कर दिया। यह मेरी साद्वश्यताको प्राप्त करके अन्य सभी मासोंका

अधिपति होगा। जो व्यक्ति निष्काम होकर अथवा समस्त प्रकारकी कामनाओंसे मुक्त होकर इस मासमें मेरा पूजन करेगा, वह समस्त प्रकारके सुखोंको भोगता हुआ अन्तमें मुझको ही प्राप्त होगा। दूसरे मास सकाम हैं, यह मास निष्काम है अर्थात् कामनावाले मनुष्य फल भोगकी कामनाको पूर्ण करनेके लिये प्रचलित बारह चान्द्र मासोंमें नाना-प्रकारके सकाम कर्मोंके अनुष्ठानमें लिप्त रहते हैं, परन्तु इस अधिक मासमें वैसे सकाम पुरुषोंकी किसी कामनाकी पूर्ति न होनेके कारण यह मास निष्काम है। इसलिये निष्काम भगवद्भक्तगण इस पुरुषोत्तम मासमें भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करने पर धन-जन, पुत्र-परिवार आदिका सुख अनायास ही (स्वयं ही) प्राप्त करते हैं और अन्तमें वे (पुरुषोत्तम मासमें मेरी पूजा करने वाले) मुक्ति लाभ कर नित्यानन्दमय गोलोकवासी होते हैं—

अहमेतैर्थथा लोके प्रथितः पुरुषोत्तमः।
तथायमपि लोकेषु प्रथितः पुरुषोत्तमः॥
अस्मै समर्पिताः सर्वे ये गुणा मयि सर्वित्थाः।
मत्सादृश्यमुपगम्य मासानामधिपो भवेत्॥
जगत्पूज्यो जगद्वन्द्यो मासोऽयं तु भविष्यति।
सर्वमासाः समामाश्च निष्कामोऽयं भया कृतः॥
ऋ ॠ ॠ
येनाहमर्चितो भवत्या मासेऽस्मिन् पुरुषोत्तममे।
धन-पुत्र-सुखं भुक्त्वा पश्चाद् गोलोक-वासभाक्॥

(नारदीय पुराण)

अतएव स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने वैकुण्ठके अधिपति श्रीनारायणकी प्रार्थनासे अधिक मासकी सर्वोत्तमताको आत्मकल्याणकामी जीवोंके निकट जनाया। इसीलिए सर्वशास्त्रोंमें पारंगत वैष्णव पण्डितगण अधिक मासको 'पुरुषोत्तम मास' मानते हैं और इसी मासमें पुरुषोत्तम व्रतका पालन करते हैं। इस व्रतमें कर्त्तिक व्रतके समस्त नियम ही सर्वतोभावेन पालनीय हैं। आहार-विहारके सम्बन्धमें भी एक ही प्रकारकी विधि अवलम्बनीय

है। विशेष विधि और निषेध जाननेके लिये इसी लेखके परिशिष्ट "श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य" नामक लेखका पाठ करें। वह लेख जगद्गुरु श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा लिखा गया है।

सात्त्विक शास्त्रोंका श्रेष्ठत्व

कोई-कोई ऐसा कह सकते हैं कि यदि किसी शास्त्रमें अधिकमासको मलमास अथवा मलिम्लुच्या मलिनमास कहा गया हो, तो वैष्णवगण उसे क्यों नहीं स्वीकार करते? इस विषयमें हमारा यह कहना है कि इस अधिकमासको शास्त्रोंमें पुरुषोत्तम मास भी तो कहा गया है। अब यह देखना है कि इन दो प्रकारके शास्त्रोंमें किस शास्त्रकी प्रथानता स्वीकृत है। पुराण अठारह हैं। ये १८ पुराण तीन भागोंमें विभक्त हैं—सात्त्विक पुराण, राजसिक पुराण और राजसिक पुराण। इनमेंसे सात्त्विक पुराण ही सर्वसम्मत रूपमें श्रेष्ठ हैं। अब यह ठीक हो गया कि सात्त्विक पुराण ही श्रेष्ठ हैं। अतएव सात्त्विक पुराण के अन्तर्गत नारदीय पुराणकी प्रामाणिकता अन्य राजसिक और तामसिक पुराणोंकी अपेक्षा स्वतः सिद्ध है। ऐसा होनेपर नारदीय पुराणमें उल्लिखित 'अधिक मास' सम्बन्धी यह विचार कि अधिक मास "पुरुषोत्तम मास" है—प्रमाणिक और निर्भर योग्य ठहरता है। यही कारण है कि वैष्णवगण सात्त्विक पुराणोंके प्रमाणको ही श्रेष्ठ प्रमाण स्वीकार करते हैं तथा स्मार्तों द्वारा समर्थित राजसिक या तामसिक पुराणोंकी प्रामाणिकताको सात्त्विक पुराणोंके मुकाबले स्वीकार करनेमें असमर्थ हैं। तब यह बात ठीक है कि जहाँ राजसिक और तामसिक पुराणोंके वचनसमूह सात्त्विक पुराणोंका आनुगत्य करते हैं अर्थात् विरोध नहीं करते हैं, वहाँ राजसिक और तामसिक पुराणोंके वचनोंको भी माननेमें कोई बाधा नहीं है। इसका कारण यह है कि राजसिक और तामसिक स्वभाववाले मनुष्योंको सत्त्वगुणकी तरफ आकर्षित करनेके लिए उन पुराणोंमें (राजसिक और तामसिक पुराणोंमें) ऐसा लिखा

गया है।

सात्त्विक, राजसिक और तामसिक—इन तीनों गुणोंमें सात्त्विक गुण ही श्रेष्ठ है। श्रेष्ठता और निकृष्टताका परिचय उसके फलसे ही मिलता है। जिस गुणका फल श्रेष्ठ होगा, वही गुण श्रेष्ठ होगा। इस विषयमें गीता शास्त्रने हमें सावधान कर दिया है। जिन्होंने गीताके चौदहवें अध्यायका भलीभौति अध्ययन किया है, उनको इस विषयमें कोई संदेह नहीं हो सकता है। सत्त्वगुण ही निर्मल ज्ञान और सुख प्रदानकर क्रमशः ऊँची गति प्रदान करता है। दूसरी और रजः और तमोगुण जीवको निम्नगामी, दुःखमय और घोर अज्ञान रूप अन्धकारमें फेंक देता है। यहाँ गीताके दो-तीन श्लोक पाठकोंकी जानकारीके लिये उद्धृत किये जा रहे हैं—

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्।
सुखसङ्गेन बधनाति ज्ञानसङ्गेन चानघ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम्॥
तत्रिबधनाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम्॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम्॥
प्रमादालस्यनिद्राभिस्तत्रिबधनाति भारत॥
कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्॥
रजस्तु फलं दुःखम् अज्ञानं तमसः फलम्॥
उर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्तिराजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अथोगच्छन्ति तामसाः॥

(गीता १४।६, ७, ८, १६, १८)

गीताको समस्त सनातन धर्मावलम्बियोंने सर्वसम्पत्तिसे प्रमाण माना है। साक्षात् गोलोकपति श्रीकृष्णकी श्रीमुख-वाणी होनेके कारण वे इसे गीतोपनिषद् मानते हैं तथा इसका पूजन भी करते हैं। अतएव श्रीगीतोपनिषद्की उक्त वाणियोंसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि सात्त्विक गुण ही श्रेष्ठ है और इसीके द्वारा विशुद्ध ज्ञान लाभकर उत्तम गति पायी जा सकती है। रजोगुणकी वृद्धि होने पर जीव सकाम कर्मी हो पड़ता है, यह सकाम कर्म ही जीवके बन्धनका कारण है। उससे लोभ

आदि नाना प्रकारकी कामनाएँ और सत्-असत् क्रियाओंमें प्रवृत्ति पैदा होती है। इस विषयमें भी गीताने हमें स्पष्ट सावधान किया है—

लोभः प्रवृत्तिरामभः कर्मणामशमः स्पृहा।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभा॥

(गीता १४।१२)

गीताके प्रमाणके अनुसार कोई-कोई यह भी कह सकते हैं सात्त्विक गुण श्रेष्ठ है तथा सात्त्विक शास्त्रोंकी प्रामाणिकता भी स्वीकार्य है; परन्तु नारदीय पुराण सात्त्विक पुराण है इसका क्या प्रमाण है? इस विषयमें हम ब्रह्मवैवर्तपुराणका प्रमाण देकर इस सन्देहको दूर करते हैं। अठारह पुराणोंमें से कौन-कौन पुराण किस गुणकी श्रेणीमें हैं, यह स्थिर करते हुए ब्रह्मवैवर्तमें इस प्रकार कहा गया है—

वैष्णवं नारदीयञ्च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडञ्च तथा पाद्रं वराहं शुभदर्शने।
सात्त्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि मनीषिभिः॥
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्तं मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राह्मं राजसानि निबोधत॥
मात्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयञ्च षडतानि तामसानि निबोधत॥

अर्थात् अठारह पुराणोंमें से मनीषियोंने विष्णु पुराण, नारदीय पुराण, मङ्गलमय भागवत पुराण, गरुड पुराण, पद्मपुराण एवं बाराह पुराण—इन छः पुराणोंको सात्त्विक पुराण माना है। ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्मपुराण—ये छः राजस पुराण हैं एवं मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्द और अग्नि—ये छः पुराण तामसिक कहे गये हैं।

यहाँ विशेष लक्ष्य करनेकी बात यह है कि ब्रह्मवैवर्त पुराण राजसिक पुराणके अन्तर्गत है और ब्रह्मवैवर्त पुराण अर्थात् राजसिक पुराणमें ही सात्त्विक पुराणोंकी सर्वश्रेष्ठताका उल्लेख है। यदि सात्त्विक पुराणों की श्रेष्ठताका यह उल्लेख किसी सात्त्विक पुराणमें होता, तो राजस या तामस व्यक्ति

यह कहनेका अवसर पा सकते थे कि अपनी प्रशंसा तो सभी करते हैं; यदि सात्त्विक पुराणोंमें सात्त्विक पुराणोंकी सर्वोत्तमताका उल्लेख है तो इससे प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। परन्तु यहाँ तो राजसिक पुराणोंमें सात्त्विक पुराणोंकी सर्वश्रेष्ठताका उल्लेख रहनेके कारण अपनी प्रशंसा आप करनेका दोष यहाँ स्पर्श नहीं करता है।

अतएव अधिक मासको 'मलमास' के रूपमें ग्रहण न करके सात्त्विक पुराणोंके अनुसार हम इसे 'पुरुषोत्तम मास' के रूपमें इसकी सर्वश्रेष्ठता स्थापित करेंगे। यह सारे शुभ कर्मोंका आकर-स्वरूप और स्वभावतः ही समस्त प्रकारकी मनोकामनाओंको पूर्ण करनेवाला है।

अधिकमासको मलमास कहना अयुक्ति-संगत है

यदि एक ही शास्त्रकर्त्ताके विभिन्न मत एक ही स्थानमें दिखलायी पड़ते हों, तो उनमेंसे कौन-सा मत ग्रहण करने योग्य है—इस विषयमें और भी विचार करना आवश्यक है। शास्त्रमें परस्पर विरोधी विचार उपस्थित होने पर वहाँ एक मात्र युक्ति ही उनकी संगति स्थापन करती हैं—

केवलं शास्त्रामाश्रित्य न कर्तव्या विनिर्णयः।

युक्तिहीन-विचारे तु धर्महानिः प्रजायते॥

इस प्रकार पूर्व पक्ष उठाने पर भी हम युक्तिके द्वारा ही इसको स्थापन कर सकेंगे कि

अधिकमासको मलमास कहना उचित नहीं है। क्योंकि यह अधिक मास चान्द्र मासका अभाव पूरा करता है। केवल यही नहीं, यह सौर वर्षके साथ मिलन करनेवाला भी है। जो अभाव पूरा करते हैं उनको तुच्छ या दीन समझना अन्याय और दुर्नीतिकता है। कर्मजड़ स्मार्तलोग मलके द्वारा अभाव पूरा करना चाहते हैं—इसे युक्तिवादी नैतिक सज्जन पुरुष कैसे मान सकते हैं? जो चन्द्र सूर्यके आलोकसे प्रदीप्त होकर आत्मगरिमा व्यक्त करते हैं, उन चन्द्रकी गति ३२ महीनोंमें हासप्राप्त होनेपर उनमें सूर्यके साथ मिलनेकी आकांक्षा बड़ी ही प्रबल हो उठती है। यह अधिक मास चन्द्रकी गतिको बढ़ाकर सूर्यके बराबर पंक्तिमें लाता है अर्थात् चान्द्र वर्ष पूरा करके, उसको सौरवर्षके समानान्तर रेखामें उपस्थितकर दोनोंको मिलाता है। अतः यह दोनोंसे मिलन करानेवाला है। इसलिए मिलन करानेवाले इस अधिकमासको सर्वोत्तम 'पुरुषोत्तम मास' न जान कर मल या मलिम्लुच माननेसे नैतिकगण उपहास करेंगे। मलिम्लुच शब्दका अर्थ चोर होता है। चोरोंका रात्रिकालमें आपसमें मिलना हास्यास्पद और घृणित है। अतएव अधिक मासको मलिन मास या मलमास कहना किसी प्रकार भी युक्ति-संगत नहीं है।

—[श्रीगौड़ीय पत्रिकासे]

श्रीपुरुषोत्तम मासके कृत्य

—श्रील ठाकुर भक्तिविनोद

पुरुषोत्तम मासमें पालनीय नियमोंके सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकिने लिखा है—

हविष्यान्नं च भुज्जीत प्रयतः पुरुषोत्तमे।
गोधूमाः शालयः सर्वाः सिता मुद्गा यवास्तिलाः॥

कलाय—कंगुनी—बारा वास्तुकं हिलमोचिका।

आद्रकं काल—शाकज्ञ मूलं कन्दज्ञ कर्कटीम्॥

रम्भा सैन्धव—सामुद्रे लवणे दधि—सर्पिषी।

पयोऽनुद्धृत—सारज्ञ पनसाम्र—हरितकी॥

पिप्पली—जीरकञ्जचैव नागरं चैव तिन्तिडी।
क्रमुकं लवली—धात्री फलान्यगुड़मैक्षवम्॥
अतैल—पक्कं मुनयो हविष्यं प्रवदन्ति च।
हविष्यं—भोजनं नृणामुपवास—समं विदू॥

ब्रतका पालन करनेवालेको हविष्यात्र भोजन करना चाहिए। गेहूँ, चावल, शालि चावल, मँग, जौ, तिल, मटर, बथुआ, शहतूत, ककड़ी, केला, कन्द, कटहल, आम, आँवला, अदरख, धी, हरें, पीपल, जीरा, सोंठ, सुपारी, सेंधा नमक, इमली, ईख्से बनी चीनी, मिश्री और बिना तेलसे बने व्यज्जन—ये सब हविष्यात्र भोजन और उपवास दोनोंका एक ही प्रकारका फल होता है।

परित्याज्य वस्तु और आचरण
सर्वामिषाणि मांसञ्च क्षोद्रं सौवीरकं तथा।
राजमासादिकं चैव राजिका मादकं तथा॥
द्विदलं तिल—तैलञ्च तथात्रं शाल्य—दुषितम्।
भाव—दुष्टं क्रिया—दुष्टं शब्द—दुष्टं च वर्जयेत्॥
पराव्रज्य धरद्रोहं पर—दार—गमं तथा।
तीर्थ बिना प्रयाणञ्च परदेश परित्यजेत्॥
देव वेद—द्विजानञ्च गुरु—गो—व्रतिनां तथा।
स्त्री—राज—महतां निन्दा वर्जयेत् पुरुषोत्तमे॥

सब प्रकारकी मछलियाँ और आमिष जातीय द्रव्य, मांस, मधु, सेम, राई, सरसों और सब प्रकारके मादक द्रव्योंका परित्याग करना चाहिए। मसूर और कलाई (उड्द) की दाल, तिल, तैल, कंकड़ युक्त अन्न, भाव—दुष्ट, क्रिया—दुष्ट और शब्द—दुष्ट पदार्थोंका वर्जन करना चाहिए। बासी अन्नका भोजन, परद्रोह, परस्त्री गमन, तीर्थ यात्राको छोड़कर दूर देश या परदेशमें गमन—इन सबका परित्याग करना चाहिए। पुरुषोत्तम मासमें देवता, वेद, गुरु, गो, ब्रती मनुष्यों, स्त्रियों, राजा और सज्जनोंकी निन्दा नहीं करनी चाहिए।

आमिष किसे कहते हैं?

प्राण्यङ्गमामिषं चूर्णं फले जम्बीरमामिषम्।
धान्ये मसूरिका प्रोक्ता अन्नं पर्युषितं तथा॥

अजा—गो—महिषी—दुग्धादन्य—दुग्धादि चामिषम्।
द्विज—क्रीता रसाः सर्वे लवणं भूमिजं तथा॥
ताम्र—पात्रस्थितं गव्यं जलं चमणि संस्थितम्।
आत्मार्थ पाचितं चान्तमामिषं तद्बुधैः स्मृतम्॥

जीव—जन्तुओंके अङ्गसे प्रस्तुत किया हुआ चूर्ण, जँबीरी नीबू, मसूर, दूषित या बासी अन्न; बकरी, गाय और भैंसके दूधके अतिरिक्त अन्य दूध, मिठ्ठीसे तैयार किया गया नमक, ताँबेके बर्तनमें गायका दूध, चमड़ेमें रखा हुआ पानी अर्थात् भिस्तीका पानी, और केवल अपने लिए ही पकाया हुआ अन्न—इन सबको आमिष माना गया है। पुरुषोत्तम मासमें इनका वर्जन करना चाहिए।

रजस्वलां त्यजन् म्लेच्छ—पतितैर्वात्यकैः सह।
द्विज—द्विट्—वेद—बाह्यैश्च न वदेत् पुरुषोत्तमे॥
एभिः दृष्टं च काकैश्च सूतकान्नं च यद्ववेत्।
द्विपाचितं च दग्धान्नं नैवाद्यात् पुरुषोत्तमे॥
पलाण्डुं लशूनं मुस्तां छत्राकं गृज्जनं तथा।
नालिकं मूलकं शीघ्रं वर्जयेत् पुरुषोत्तमे॥
यद्—यद् यो वर्जयेत् किञ्चित् पुरुषोत्तम तुष्टये।
तत्पुनब्राह्मणे दत्त्वा भक्षयेत् सर्वदेव हि॥

रजस्वला स्त्री, म्लेच्छ, पतित, धर्मभ्रष्ट संस्कारशून्य, द्विज—द्रोही और वेद—निन्दक—इनसे बातचीत नहीं करनी चाहिए। ऐसे लोगों, कुत्तों और कौवोंकी दृष्टिसे दूषित अन्न, सूतकका अन्न, दुबारा पकाया हुआ अन्न तथा जलाया हुआ अन्न या पदार्थ नहीं खाना चाहिए। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, छत्री, गाजर और सजना आदिका त्याग करना चाहिए।

पुरुषोत्तम, कार्तिक और माघ—इन तीनों मासोंके एक ही कृत्य हैं
ब्रह्मचर्यमधः शथ्यां पत्रावल्यांच भोजनम्।
चतुर्थकाले भुक्तिं च प्रकुर्यात् पुरुषोत्तमे॥
कुर्यादेतांश्च नियमान् व्रती ‘कार्तिकमाघयोः’।
पुण्येहि प्रातरुत्थाय कृत्वा पौवाहिकीः क्रियाः॥

गृहीयान्नियमं भक्त्या श्रीकृष्णञ्च हवि स्मरन्।
उपवासस्य नक्तस्य चैकभुक्तस्य भूपते॥
एवश्च निश्चयं कृत्वा व्रतमेतत् समाचरेत्॥

पुरुषोत्तम मासमें ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए अर्थात् स्त्रीसङ्गसे सर्वथा दूर रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त जमीन पर सोना, पत्तलमें भोजन तथा चतुर्थ याममें भोजन करना उत्तम है। कर्त्तिक और माघ मासमें भी इन्हीं नियमोंके अनुसार व्रत-पालन करना चाहिए। प्रातःकाल उठकर पौर्वाहिकी क्रिया करके श्रीकृष्णको भक्तिपूर्वक हृदयमें स्मरणकर पूर्वोक्त नियमोंको ग्रहण करना चाहिए। व्रत तीन प्रकारके होते हैं—उपवास, नक्त हविष्यान्न ग्रहण और एक बार भोजन। इन तीनोंमें से व्रत आचरणकारीके लिए जो करणीय जान पड़े उसे स्थिरकर व्रतका आचरण करना चाहिए।

पुरुषोत्तम मासमें श्रीभागवत-श्रवण और व्रत पालनका फल

श्रीमद्भागवतं भक्त्या श्रोतव्यं पुरुषोत्तमे॥
तत्पुण्यं वचसा वक्तुं विधाता हि न शुक्रयात्।
शालग्रामार्चनं कार्यं मासे श्रीपुरुषोत्तमे॥
एतन्नासव्रतं राजन् श्रेष्ठं क्रतुशतादपि।
क्रतुं कृत्वाप्नुयात् स्वर्गं गोलोकं पुरुषोत्तमे॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि क्षेत्राणि सर्वदीवताः।
तद्वेते तानि तिष्ठन्ति यः कुर्यात् पुरुषोत्तमम्॥

श्रीपुरुषोत्तम मासमें भक्तिपूर्वक श्रीमद्भागवतका श्रवण करना चाहिए। श्रीमद्भागवत श्रवणका पुण्य स्वयं विधाता ब्रह्मा भी नहीं बतला सकते। उस समय भक्तजन श्रीशालग्राम शिलाका अर्चन करेंगे। इस मासका व्रत यज्ञकी अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ है। क्योंकि यज्ञसे स्वर्गकी ही प्राप्ति होती है और पुरुषोत्तम व्रतका पालन करनेवालोंके शरीरमें सभी तीर्थ, सभी क्षेत्र और सभी देवता निवास करते हैं।

दीपदान और उसका फल

कर्तव्यं दीप दानं च पुरुषोत्तम-तुष्टये।
तिल-तैलेन कर्तव्यं सर्पिषा वैभवे सति॥
तयोर्मध्ये न किञ्चित्ते कानने वसनोऽधुना।
इङ्गुदीजेन तैलेन दीपः कार्यस्त्वयानय॥
योगो ज्ञानं सांख्यं तन्त्राणि सकलान्यापि।
पुरुषोत्तम दीपस्य कलां नाहन्ति षोडशीम्॥

पुरुषोत्तमकी प्रीतिके लिए दीप प्रदान करना कर्तव्य है। धन रहनेपर धीका दीपक देना चाहिए, अन्यथा तिल तेलका देना चाहिए। हे मनिग्रीव ! तुम्हारे वनवासमें धी या तिल तेल—ये दोनों नहीं मिल सकेंगे, अतएव तुम इंगुदि तेलका प्रदीप दान कर सकते हो। अष्टाङ्ग योग, ब्रह्मज्ञान और सांख्यज्ञान एवं समस्त तान्त्रिक क्रिया—ये सब पुरुषोत्तम मासमें दीपदानकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं होते।

पुरुषोत्तम मासमें कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी और अष्टमी तिथियोंका विशेष महत्व

इस व्रतके उद्यापन (समाप्तिपर किया जानेवाला कृत्य) के सम्बन्धमें बाल्मीकिजी कहते हैं—महाराज ! कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नवमी या अष्टमी तिथिको पुरुषोत्तम मासमें इस व्रतका उद्यापन करना चाहिए। विशुद्ध भक्त-ब्राह्मणको निमन्त्रित करके स्थिर चित्तसे उद्यापन क्रिया करनी चाहिए। पंच-धानोंसे अतिशय सुन्दर मण्डलकी रचना करनी चाहिए। मण्डलके ऊपर चार कलस स्थापन करके चतुर्व्यूहकी प्रीतिके लिए उनके ऊपर फल (नारियल आदि) रखना चाहिए। सुन्दर वस्त्रोंमें लपेटे हुए पान द्वारा चतुर्व्यूहकी स्थापना करनी चाहिए। श्रीराधामाधवकी कलसके साथ स्थापना करनी चाहिए। चतुर्व्यूहका जप करके चारों दिशाओंमें चार प्रदीप प्रज्ज्वलित करना चाहिए।

अर्ध-मंत्र और नमस्कार-मंत्र

क्रमानुसार श्रद्धाभक्तिपूर्वक पत्नीके साथ नारियल आदिका अर्ध देना चाहिए। अर्धका यह मन्त्र है—

देव-देव नमस्तुभ्यं पुराण-पुरुषोत्तम्।
गृहणार्थं मया दत्तं राधया सहित हरे॥
निम्नलिखित मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिए—
वन्दे नवधन-श्यामं द्विभुजं मुरलीधरम्।
पीताम्बरधरं देवं सवाधं पुरुषोत्तम्॥

नीराजन, ध्यान और पुष्पांजलिका मंत्र

उसके पश्चात तिलसे होम करके नीराजन करना चाहिए। नीराजन-मन्त्र इस प्रकार है—

निराजयामि देवेशमिन्दीवर दलच्छविम्।
राधिका-रमणं प्रेमणा कोटि-कन्दर्प सुन्दरम्॥

ध्यानका मन्त्र

अन्तर्ज्योतिरनन्त-रत्न-रचिते सिंहासने संस्थितम्।
वंशीनाद-विमोहित-व्रजवधू वृन्दावने सुन्दरम्॥

ध्यायेद् राधिकया सकौस्तुभमणि-प्रद्योतितोरस्थलम्।

राजदत्त-किरीट-कुण्डलधरं प्रत्यग्र-पीताम्बरम्॥

इस प्रकार ध्यान करके पुष्पांजलि देना चाहिए और नीचे के मन्त्रसे नमस्कार करना चाहिए—

नौमि नवघनश्यामं पीतवाससमच्युतम्।

श्रीवत्स-भावसितोरस्कं राधिका सहितं हरिम्॥

इन सबके पश्चात् भक्त ब्राह्मणको पूर्णपात्र दान करके आचार्यको दक्षिणा देनी चाहिए। उसके बाद दान देना चाहिए। इस समय उपयुक्त वैष्णव-ब्राह्मणको श्रीमद्भागवत दान करनेकी विधि है। ब्राह्मणको संपुटित काँसेका वर्तन देना चाहिए। उसके बाद ब्राह्मणोंको घृत-पायस (खीर) भोजन करना चाहिए। अन्तमें सबको प्रसादका अन्न वितरणकर अपने स्वजनोंके साथ भोजन करना चाहिए। उद्यापनपूर्वक ब्रतके नियमोंका परित्याग करना चाहिए।



दरिद्रनारायणकी सेवा (?)

—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्विकितवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ३, पृष्ठ ७१ से आगे]

नरन्दने प्रतिवाद किया। 'क्यों, तुमलोग भी तो सभी वस्तुओंमें भगवान्‌का दर्शन करते हो। अक्रुरने सर्वत्र भगवन्‌का दर्शन किया था। गीता और श्रीमद्भागवतमें भी सर्वत्र भगवत्-दर्शनका वर्णन है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद्वगवद्वावमात्मनः।

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥'

(श्रीमद्बा. ११/२/४५)

देवेन्द्रने उत्तर दिया—'वैष्णवलोग सभी

वस्तुओंमें भगवद्वर्षण करते हैं—इसका अर्थ यह नहीं कि सभी चीजें भगवान् हैं। वे समस्त वस्तुओंको अपने उपास्य भगवान् श्रीविष्णुसे सम्बन्धित दर्शन करते हैं। उन वस्तुओंको भगवान्‌की सेवाके उपकरणरूपमें दर्शन करते हैं तथा उससे अपने आराध्यदेवकी सेवा करते हैं। महाभागवत समस्त वस्तुओंमें अपने आराध्य भगवान्‌का अधिष्ठान दर्शन करते हैं तथा उनके दर्शनमें कोई भी वस्तु भगवान्‌से स्वतन्त्र नहीं होती

है। प्रह्लादजीने स्तम्भके भीतर अपने आराध्यदेवका दर्शन किया था, किन्तु उन्होंने स्तम्भको अपना आराध्यदेव नहीं बतलाया। उन्होंने न तो स्तम्भकी पूजा ही की। उन्होंने सर्वत्र सभी वस्तुओंमें अपने भगवान्‌को विराजमान देखा था। परन्तु, हिरण्यकशिषुने उनके भावको न समझकर स्तम्भको ही विष्णु मान उसे चकनाचूरकर विष्णुको ध्वंस करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु, नृसिंहदेवका तो बाल भी बाँका न हुआ। जैसे स्तम्भके ध्वंस होनेपर भी नृसिंहदेवका ध्वंस नहीं हुआ, वैसे ही स्तम्भकी सेवा द्वारा भी नृसिंहदेवकी सेवा नहीं होती। सीधी बात यह है कि आधार और आधेय एक वस्तु नहीं है। 'घड़ेमें जल हैं'—कहनेसे जैसे घड़ा और जल एक ही वस्तु नहीं है, वैसे ही मनुष्यमें या प्रत्येक प्राणियोंमें भगवान् हैं—कहनेसे प्रत्येक प्राणी या मनुष्य भी भगवान् नहीं हो सकते अथवा सभी वस्तुओंको भगवान् मानना नितान्त मूर्खता है। वस्तु आधार है और भगवान् आधेय हैं—दोनों कभी एक नहीं हो सकते।

'अच्छी बात है, यदि मनुष्यकी सेवा द्वारा भगवान्‌की सेवा नहीं होती तो तुमलोग साधु वैष्णवोंकी सेवा क्यों करते हो?'—नरेन्द्रने पुनः प्रश्न किया।

देवन्द्रने कहा—'हमलोग वैष्णवोंकी, सन्तोंकी सेवा करते हैं—यह बिलकुल सत्य है, किन्तु वैष्णवोंको हमलोग विष्णुके पर्यायमें गणना नहीं करते। हम उन्हें विषयजातीय भोक्ता अर्थात् भगवान् नहीं मानते। हाँ, वैष्णव भगवान्‌के अत्यन्त प्रिय होते हैं, यहाँ तक कि भगवान्‌ने अपने श्रीमुखसे कहा है—'मैं उन लोगोंके प्रति उतना प्रसन्न नहीं होता जो हमारी सेवा करते हैं, जितना उन लोगोंके प्रति, जो हमारे भक्तोंकी सेवा करते हैं।' बद्ध जीव वैष्णवोंकी सेवा करते हैं—यह तो दूर रहे, स्वयं भगवान् भी वैष्णवोंकी सेवा कर

अघाते नहीं। भक्त भगवान्‌के कितने प्रिय हैं, वे उद्धवसे स्वयं कहते हैं—

न तथा मे प्रियतम आत्मयोनिर्न शङ्करः।

न च सङ्कर्षणो न श्रीर्नेवात्मा न यथा भवान्॥

(श्रीमद्भा. ११/१४/१५)

अर्थात् हे उद्धव ! ब्रह्मा, सङ्कर्षण, लक्ष्मी या स्वयं अपने आप मैं भी मुझे उतना प्रिय नहीं हूँ, जितना तुम मेरे प्रिय हो।

और भी—'मद्भक्तपूजाभ्यधिका सर्वभूतेषु मन्मतिः॥'

यहाँ भी भगवान् अपने भक्तोंकी श्रेष्ठता बतला रहे हैं। पद्मपुराणमें शिवजीने अपनी प्रिया पार्वतीजीको इसी तत्त्वका उपदेश दिया है—

आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।

तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥

श्रीमद्भागवतमें और भी कहा गया है—

महत्सेवां द्वारमाहुरिविमुक्तेः

तमोद्वारं योषितां सङ्ग्निसङ्गम्॥

(श्रीमद्भा. ५/५/२)

'महत् व्यक्तियोंकी अर्थात् साधु-वैष्णवोंकी सेवा करना सभीका कर्तव्य है। इससे परामुक्ति अर्थात् प्रेमभक्ति लाभ होती है और विषयभोगोंमें आसक्त व्यक्तियोंकी सेवा करनेसे तमोद्वार अर्थात् नरकमें सदाके लिए पतन हो जाता है। इसलिए पापात्मा व्यक्तिको अन्न-वस्त्र आदिका दान और साधु-वैष्णवोंकी सेवा समान समझना अथवा दरिद्रोंकी सहायताको नारायणकी सेवा मानना चरम नास्तिकता है।'

'ओह ! दस बज गये।' नरेन्द्रने अपनी घड़ीकी ओर देखा। 'तुम्हारी बातें बड़ी युक्तिपूर्ण और शास्त्रसम्मत हैं अब मैं समझ गया की दरिद्र नारायणकी सेवा और भगवान्‌की सेवा एक नहीं है। चलो, फिर दूसरे दिन मिलेंगे।' वह उठ खड़ा हुआ और चल पड़ा।



सत्यकी खोज

हम अरे देहरूपी घरमें एक प्रजाका निवास है। उसका नाम जीव है। वह जब तक इस घरमें रहता है, तब तक घरके खिड़की-दरवाजे (कर्मन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय) आदिको यथारीति खोलता और बन्द करता है तथा प्रयोजनानुसार उन सबको व्यवहारमें लाता है, किन्तु वह किसीसे यह इकरार नहीं करता कि वह कब तक इस घरमें निवास करेगा। वह जानेके समय किसीसे कहकर भी नहीं जाता और खिड़की दरवाजे अच्छी तरहसे बन्द करके भी नहीं जाता।

इसके घर छोड़नेका कोई समय ही नहीं, कोई तिथि-नक्षत्र भी नहीं, समय-असमय भी नहीं, महीनेकी परवाह नहीं, ग्रह-स्पर्श आदिका विचार नहीं, घर-घाट या स्थान-अस्थानका भी विचार नहीं। जिस घरमें इतने यत्नसे निवास किया, उस घरके लिए जरा भी चिन्ता नहीं करता कि उसके छोड़ जानेपर घरकी क्या दशा होगी या जानेके समय उसकी कोई व्यवस्था भी नहीं करता। कैसी विचित्र प्रजा है।

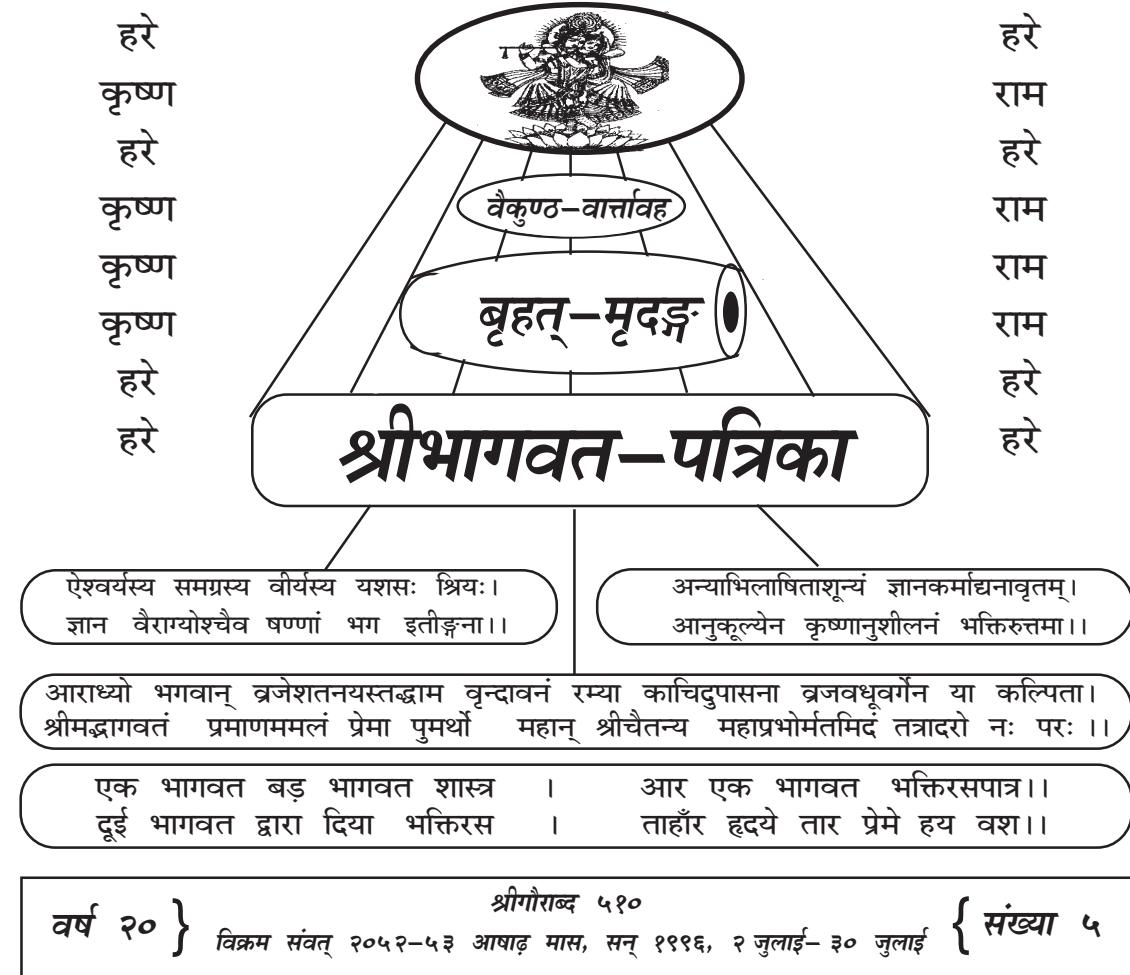
राहके किनारे, होटल या शर्बतकी दूकानपर लोग कब तक रहते हैं? जब तक पेट नहीं भर जाता या प्यास नहीं बुझ जाती। इसके बाद कोई वहाँ नहीं ठहरता। किन्तु, जिस घरकी बात कही गई है, उस घरमें कुछ भोगके लिए अथवा विषय-तृष्णाके निवारणके लिए आकर उस कामके हो जानेपर जब वह अन्यत्र चला जाता है, तब क्या वह कुछ भी शोक करता है? अथवा उस स्थानको त्यागनेमें क्या उसे कुछ दुःख होता है? यदि ऐसा नहीं होता है तो जब जीव इस देहरूपी घरको छोड़कर चला जाता है, तब दूसरे लोग शोक क्यों करते हैं? अथवा हम लोग ही इस घरको छोड़नेके भयसे व्याकुल क्यों होते हैं? क्या कोई इसपर कुछ विचार करत हैं?

मृत शरीर जिस समय हमारे सामने पड़ा रहता है, उस समय हम लोग रोते हैं। क्यों रोते है? शोक होनेकी वजहसे। अच्छा, शरीर जिस प्रकार मरनेके बाद पड़ा ही रहता है, उसी प्रकार नित्य ही नींदके समय भी तो पड़ा ही रहता है, उस समय हमलोग क्यों नहीं रोते या शोकसे अधीर क्यों नहीं होते? क्योंकि हम जानते हैं कि नींदसे वह पुनः जागेगा और फिर हमारे साथ बातें करेगा, हमारा चित्तविनोद करेगा, इन्द्रियतृप्तिका विधान करेगा। किन्तु, मरा हुआ शरीर पुनः न जागेगा और न इन्द्रियतर्पण करेगा। अतः देहके द्वारा इन्द्रिय-तर्पण या सुख-भोगकी सुविधा न होनेकी वजहसे ही हम रोते हैं।

क्या किसीने कभी देखा है कि इस शरीरमें कौन है, जिसके रहनेके कारण शरीर इस प्रकार चलता-फिरता है, हमसे बातें करता है, हमारे भावके बदलेमें भाव प्रदान करता है? क्या कोई जानता है कि इस शरीरमें कौन है, जो हमारी सभी इन्द्रियोंको धोखा देकर, सारी बुद्धिपर पानी फेरकर सबके अनजानमें ही चला जाता है? नहीं, हम लोगोंने उन्हें देखा भी नहीं और देखते भी नहीं। किन्तु, क्या कभी देखनेकी चेष्टा भी की है? या उसके जाननेकी कभी इच्छा भी हुई है? कितने ही लोग यह जाननेके लिए व्यस्त रहते हैं कि आकाशमें कितने तारे हैं, समुद्र तटपर कितने बालू है, विश्वकी आबादी कितनी है, विश्व सुन्दरी कौन है, उसका सम्बन्ध किसके साथ है इत्यादि। इन व्यर्थकी बातोंको जाननेके लिए वे सम्पूर्ण मनुष्य जीवन व्यतीत कर सकते हैं, किन्तु इस शरीररूपी घरमें रहनेवाला 'मैं कौन हूँ' इस शरीरको छोड़नेके बाद मैं कहा जाता हूँ—इन यथार्थ बातोंको जाननेके लिए अपने जीवनके चंद्र क्षण भी नहीं निकाल सकते। धिक्कार है ऐसे लक्ष्मीन जीवनको।



श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः



प्रभुपाद-दशकम्

(श्रील भक्तिरक्षक-श्रीधर गोस्वामी महाराज-विरचितम्)

सुजनाबुद्धराधितपादयुगं युगधर्मधुरन्धर पात्रवरम्।
वरदाभयदायक-पूज्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्॥१॥

मैं कोटि-कोटि सज्जनोंके द्वारा आराधित, कृष्ण सङ्कीर्तन युग-धर्मके संस्थापक, विश्ववैष्णव राजसभाके पात्रराज अर्थात् अधिकारीवर्गमें श्रेष्ठतम, निखिल जीवोंके भय दूर करनेवालोंकी भी मनोकामना पूर्ण करनेवाले, सर्वपूज्य उन श्रील प्रभुपादके श्रीचरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥१॥

भजनोर्जितसज्जनसङ्घपतिं पतिताधिककारुणिकैकगतिम्।
गतिवच्चितवच्चकाचिन्त्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥२॥

अतिकोमलकाञ्चनदीर्घतनुं तनुनिन्दितहेममृणालमदम्।
मदनार्दुदवन्दितचन्द्रपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥३॥

निजसेवकतारकरञ्जिविधुं विधूताहितहुड़कृतसिंहवरम्।
वरणागतबालिश-शन्दपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥४॥

विपुलीकृतवैभवगौरभुवं भुवनेषु विकीर्तित गौरदयम्।
दयनीयगणार्पित-गौरपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥५॥

चिरगौरजनाश्रयविश्वगुरुं गुरु-गौरकिशोरक-दास्यपरम्।
परमाद्वृतभक्तिविनोदपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥६॥

रघुरूपसनातनकीर्तिधरं धरणीतलकीर्तितजीवकविम्।
कविराज नरोत्तमसख्यपदमं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥७॥

कृपया हरिकीर्तनमूर्तिधरं धरणीभरहारक-गौरजनम्।
जनकाधिकवत्सल मिन्दधपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥८॥

जो भजन-सम्पत्र सज्जन-वृन्दोंके अधिपति हैं, जो पतितजनोंके प्रति अति करुणामय तथा उनकी एकमात्र गति हैं एवं जो वच्चकोंके भी वच्चक हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके अचिन्त्य चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥२॥

अतिकोमल काञ्चनवर्णवाले सुदीर्घ तनु जिसके द्वारा स्वर्णमय कमलनालोंकी मत्तता (सौन्दर्य) भी निन्दित होती है, जिन नख-चन्द्रोंकी बन्दना कोटि-कोटि कामदेव करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥३॥

जो नक्षत्र-मण्डलको रंजित करनेवाले चन्द्रकी तरह सेवक-मण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर उनके चित्तको प्रफुल्लित रखते हैं, भक्तिविद्वेषिजन जिनके सिंहनादसे भयभीत रहते हैं एवं निरीह व्यक्ति जिनके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहणकर परम कल्याण लाभ करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥४॥

जिन्होंने श्रीगौरधामका (श्रीनवद्वीपधामका) विपुल ऐश्वर्य प्रकटित किया है, जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेवकी महोदारताकी कथाओंका सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार किया है एवं जिन्होंने अपने कृपापात्रोंके हृदयमें श्रीगौरपादपद्मकी स्थापना की है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥५॥

जो चैतन्यमहाप्रभुके आश्रितजनोंके नित्य आश्रयस्थल और जगदगुरु हैं, जो अपने गुरु श्रीगौरकिशोरके सेवापरायण हैं एवं जो श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके सम्बन्धमात्रसे ही परम आदरयुक्त हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥६॥

जो श्रीरूप, सनातन और रघुनाथके कीर्तिरूपी झण्डेका उत्तोलनकर विराजमान हैं, अनेक लोग इस धरणीतलपर जिन्हें पाण्डित्य-प्रतिभामय जीव गोस्वामीसे अभिन्न तनु कहकर उनकी प्रशंसा किया करते हैं एवं जिनका श्रीलकृष्णदास कविराज तथा ठाकुर नरोत्तमसे सख्यभाव है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥७॥

जीवोंके प्रति असीम कृपाकर जो मूर्तिमान हरिकीर्तनरूपमें प्रकाशित हैं, जो धरणीके पापभारको दूर करनेवाले गौरपाष्ठ वैष्णव हैं एवं जो जीवोंके प्रति पितासे भी अधिक वात्सल्यके सुकोमल आकरस्वरूप हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥८॥

शरणागतकिङ्करकल्पतरुं तस्थिकृतधीरवदान्यवरम्।
वरदेन्द्रगणार्चितदिव्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादपदम्॥१॥

परहंसवरं परमार्थपतिं पतितोद्धरणे कृतवेशयतिम्।
यतिराजगणैः परिसेव्यपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्॥१०॥

वृषभानुसुतादयितानुचरं चरणाश्रित रेणुधरस्तमहम्।
महदद्वृतपावनशक्तिपदं प्रणमामि सदा प्रभुपादम्॥११॥

शरणागत किङ्करोंके लिए (अभीष्ट प्रदान करनेमें) जो कल्पतरुके समान हैं, जिनकी सहिष्णुता और उदारता वृक्षोंको भी लज्जित करती हैं एवं वरदाताओंमें श्रेष्ठ व्यक्ति भी जिनके दिव्य श्रीचरणकमलोंकी पूजा किया करते हैं, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥१९॥

जो परमहंसकुलके चूडामणि हैं, जो परम पुरुषार्थ श्रीकृष्णप्रेम-सम्पत्तिके मालिक हैं, पतित जीवोंके उद्धारके लिए जिन्होंने सन्यासीका वेश धारण किया है एवं श्रेष्ठ त्रिदण्ड सन्यासियोंका समूह जिनके पादपद्मोंकी सेवा करता है, मैं उन श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥१०॥

जो वृषभानुर्नन्दनीके परमप्रिय अनुचर हैं, जिनकी चरण-रजको मैं अपने मस्तकपर धारण करनेके सौभाग्यके लिए अभिमान करता हूँ, उन अद्भुत पावनीशक्तिसम्पन्न श्रीलप्रभुपादके चरणकमलोंमें मैं सदा-सर्वदा प्रणाम करता हूँ॥११॥ □



श्रीवैष्णवचरणे दण्डवन्नति
पूर्विकेयम्—

पूज्यपाद महाराज ! आपकी
१२/४/९६ तारीखकी कृपालिपि
बहुत विलम्बसे कल ही मेरे
हस्तगत हुई है। आशा करता
हूँ कि परमाराध्यतम श्रील

गुरुपादपद्मकी अहैतुकी करुणासे आप सर्वाङ्गीन कुशल होंगे।

विदेशी भक्तोंके पुनः पुनः आग्रहसे आप हॉलैण्ड, इंग्लैण्ड, अमेरिका और कनडा आदि पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मकी वाणीके प्रचारके उद्देश्यसे शुभयात्रा कर रहे हैं, यह जानकर विशेष आनन्दित और उत्साहित हुआ। वहाँके भक्तोंने आप तीन व्यक्तियोंका यातायात वहन किया है एवं टिकट और बीसा भी हो गया है, ऐसा मुझे ज्ञात हुआ। सिंगापुर और हाँगकाँग श्रीगौरसुन्दरकी प्रेमवाणीसे बञ्जित क्यों होगा ?

आप शुद्धभक्ति कथा प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही विदेश जा रहे हैं। आपको लाभालाभकी चिन्ता नहीं, किन्तु वहाँके वासियोंके पक्षमें यह सुवर्ण अवसर और सौभाग्य समझता हूँ। श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधा-विनोदविहारी-नृसिंहदेव, सर्वोपरि सर्वाभिष्टप्रदाता श्रीगिरिराज महाराजकी अहैतुकी कृपा और शुभाशिष आपके ऊपर वर्षित होवे। आप उनकी वाणीके प्रचारके द्वारा अवश्य ही उनके मनोऽभीष्टके संरक्षणमें सक्षम होंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। आपकी इस वृद्धावस्थामें पाश्चात्य देशोंमें श्रीगौरवाणीके प्रचारका धैर्य और उत्साह निःसन्देह सत्साहस ही है। यदि इसे दुःसाहस कहा जाय, तो यह सत्यका अपलाप करनेके समान होगा।

आप अपने स्वगणोंके सहित जययुक्त होवें। आपकी शुभयात्राकी तिथि ५/५/९६ तारीख निर्धारित हुई है। मेरी दण्डवन्नति कृपापूर्वक ग्रहण करेंगे। इति

श्रीवैष्णवदासाभास प्रणत
श्रीभक्तिवेदान्त वामन

अपनी दो-एक बातें

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील प्रभुपाद

श्रीगौरसुन्दर स्वयं भगवान्—परतत्त्व हैं। उनका उपदेश-वाक्य ही उनका श्रीअङ्ग है, समय-समयपर उनकी वाणियोंके प्रचारक ही उनके उपाङ्ग हैं, श्रीगौरचन्द्रकी शिक्षा ही अस्त्र है, श्रीचैतन्य-वाणीमें अवस्थित श्रीहरिजन ही उनके पार्षद हैं। अतएव आवरणके साथ अर्थात् अङ्ग, उपाङ्ग, पार्षद आदिके साथ श्रीगौरसुन्दरकी पूजाके उद्देश्यसे शुद्धाशुद्ध गौड़ीयगण और उनके सर्वस्व गौड़ीयनाथकी पूजाके माध्यम देश-विदेशके प्रचारकोंके निकट मैं अपनी दो-एक बातें आज निवेदन करना चाहता हूँ।

मेरे प्रभुके प्रभुने हमें जो शिक्षाएँ दी हैं, उनमें हम ये कतिपय महावाक्य पाते हैं—(१) तुणादपि सुनीच, (२) वृक्षके समान सहिष्णु, (३) अमानी और (४) मानद होकर निरन्तर हरिकीर्तन करना ही जीवका परम धर्म है। मेरे श्रीगुरुदेवने इन चारों महावाक्योंकी ही जीवन्त मूर्ति प्रकाशकर मुझे अपने श्रीचरणकमलोंमें आकर्षित किया। मैं भी अपने बन्धुओंको इस अव्यर्थ प्रणालीका अनुसरण करके ही जगत्के समस्त जीवोंको वास्तव सत्यके पादपीठकी ओर खींच लानेका परामर्श दे रहा हूँ।

त्रिदण्डकुलचूड़ामणि श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामिपादने “दन्ते निधाय तृणकं पदयोर्निपत्य, कृत्वा च काकुशतमेतदहं ब्रवीमि। हे साधवः सकलमेव विदाय दूरात् चैतन्यचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्”—इस उपदेश द्वारा त्रिदण्ड भिक्षुओंके लिए जिस प्रकारकी प्रचार-प्रणालीकी शिक्षा दी है, मैं भी महाजनोंका पदाङ्गानुसरण करके अपने बन्धुवर्गको उसी प्रकारकी प्रचार-प्रणालीका अनुसरण करनेके लिए ही निवेदन कर रहा हूँ।

श्रीचैतन्यदेव जगत्के सभी शिक्षकोंके परम शिक्षक और सबसे श्रेष्ठ बुद्धिमत्ताके आदर्श हैं।

उन्होंने हमें अपने शिक्षाष्टकमें जो ‘चेतोदर्पणमार्जन’ का उपदेश दिया है, हमें उसीका अनुकीर्तन करना होगा। हम श्रौत-वाणीके वाहकमात्र हैं। हमें अपनी किसी प्रकारकी दाम्भिकता करने या व्यर्थके अहङ्कार करनेका अवसर नहीं, हमें यह बात सदा-सर्वदा स्मरण रखनी होगी।

हमें जगत्के सभी लोगोंको उनके प्राप्य सम्मान और अधिकार प्रदान करनेमें कुण्ठित नहीं होना चाहिए। हमलोग सबके निकट ही कृष्णभक्तिकी वरप्रार्थना करेंगे। संसारमें जितने प्रकारके अनुकूल और प्रतिकूल चरित्र हमारे सामने क्यों न उपस्थित हों, हम सभीको यथायोग्य सम्मान प्रदानकर अपने इष्टदेवकी प्रेमसेवा करते रहेंगे। हमारे शिक्षणीय व्रजवासियोंकी परमोच्च धाराका यह मन्त्र है—

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।

नन्दगोप सुतं देवि पति मे करु ते नमः॥

वृन्दावनावनिपते जय सोम सोममौले

सनक सनन्दन-सनातन-नारदेऽत्य।

गोपीश्वर व्रजविलासियुगाङ्गिष्ठपद्मे

प्रेम प्रयच्छ निरुपाधि नमो नमस्ते॥

हमें पृथ्वीपर सर्वत्र और सब प्रकारके लोगोंके निकट हरिकीर्तन प्रचार करते समय बहुत कुछ देखना, सुनना और सीखना पड़ेगा। किन्तु, हमें इस बातको कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारे श्रीश्रीगुरुदेवमें ये समस्त विषय अपाश्रित भावमें उनकी सेवाकी पुष्टिके लिए विद्यमान हैं। ऊँचे-से-ऊँचा जागतिक ज्ञान और ऊँचीसे ऊँची जागतिक शिक्षा यदि गुरुपादपद्मकी धूलिकणके पीछे उनकी सेवाके लिए उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करे, तभी उनकी सार्थकता है, अन्यथा वे माया-मरीचिका मात्र हैं—इसे सर्वदा स्मरण रखना होगा। हमारे जो बन्धुवर्ग श्रीचैतन्यवाणीका प्रचार

करनेके लिए पाश्चात्य देशोमें जा रहे हैं, उन्हें मैं अपने प्रभु श्रीरूपगोस्वामीकी दो वाणियोंका पुनः स्मरण करा देना अपना कर्तव्य समझता हूँ—

**अनासक्तस्य विषयान् यथार्हमुपयुज्जतः।
निर्बन्धः कृष्णसम्बन्धे युक्तं वैराग्यमुच्यते॥
प्रापञ्चिकतया बुद्ध्या हरिसम्बन्धिवस्तुनः।
मुमुक्षुभिः परित्यागो वैराग्यं फल्यु कथ्यते॥**

श्रीसनातन गोस्वामी प्रभुने “जयति-जयति नामानन्दरूपं मुरारे” आदि श्लोकोंमें वेदान्तके फलपादके “अनावृत्तिः शब्दात् अनावृत्तिः शब्दात्”—सूत्रकी जो व्याख्या की है, हमारे बन्धुजन सबको मान प्रदान करते हुए निरन्तर उसीका अनुकीर्तन करें, यही मेरा अनुरोध है।

आप जिस जातिके लोगोंके निकट हरिकीर्तनका प्रचार करनेके लिए जा रहे हैं, वे जागतिक समस्त विषयोंमें उन्नतिके शिखर पर चढ़े हुए हैं। वे विचार परायण हैं, सौजन्य आदि गुणोंसे विभूषित हैं और अनेक विषयोंमें श्रेष्ठ एवं गौरावान्वित हैं। अतएव उनके निकट सद्युक्ति और सद्विचारोंकी अकृत्रिम प्रदर्शनी उन्मुक्त करनेपर वे श्रौत-वाणीके श्रेष्ठ ग्राहक बनेंगे। इस विषयमें हमें दृढ़ आशावादी होना उचित है। हम सहिष्णुता धर्मका अवलम्बनकर निष्कपट होकर हरिकीर्तन करेंगे। इसका असर उन जातियोंपर होना अनिवार्य है।

हम किसी प्रतिद्वन्द्विता या प्रतियोगिताके लिए प्रचार कार्यमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं—यह बात हमें सर्वदा याद रखनी होगी। हम लोग केवल सत्यके प्रचारके लिए सत्यानुरागियोंके द्वार-द्वार पर जायेंगे। लोगोंके आदर या अनादरसे हमें घबड़ाना उचित नहीं। हम अपने प्रभुकी निष्कपट सेवा करके उनके सुखके लिए ही सर्वदा सचेष्ट रहेंगे।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हम किसी विशेष व्यक्तिके जागतिक पाण्डित्य और कुलीनता अथवा उसकी मूर्खताके प्रति कटाक्ष करनेके लिए प्रचार क्षेत्रमें प्रवृत्त नहीं हुए हैं। यह तो स्वरूप भ्रान्तिकी अवस्था है। जगत्के सब लोग वास्तवमें ही समस्त जागतिक विषयोंमें हमसे

बढ़े-चढ़े हैं। वे सांसारिक द्रव्य हमें नहीं चाहिए। हम तो केवल श्रीचैतन्यवाणीके कीर्तनकारी त्रिदण्डभिक्षुक मात्र हैं। हमें तो श्रीहरि-गुरु-वैष्णवकी सेवासुखके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं चाहिए।

हम यन्त्री नहीं हैं, यन्त्र मात्र हैं, हमें इस बातको सदा याद रखना चाहिए। त्रिदण्डभिक्षुक श्रीचैतन्यके जीवन्त मृदृङ्ग हैं। श्रीगुरुपादपद्मके आश्रयमें हम सदा बजते रहेंगे। श्रीगुरु-वैष्णवोंके अनुक्षण आनुगत्य और श्रौत वाणीको जीवनका ध्रुवतारा बनाकर हमें भगवान् श्रीगौरसुन्दरकी आदेशवाणीकी विजय पताकाको फहराकर परिव्राजक-धर्मका पालन करना होगा।

हमें सर्वदा स्मरण रखना होगा कि एकमात्र गुरु-गौराङ्गके मनोऽभीष्ट प्रचारके लिए ही हमने परिव्राजकका ब्रत ग्रहण किया है। श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंके आनुगत्यमें निरन्तर कीर्तन-ब्रतमें दीक्षित रहनेसे व्यर्थके भ्रमणकी पिपासा या अन्याभिलाषकी प्रच्छन्न मूर्ति हमारे हृदयमें किसी प्रकार कोई उपद्रव करनेका साहस नहीं कर सकती।

श्रीगौर नाम, श्रीगौर धाम और श्रीगौर कामका सेवा-ब्रत ही हमारा नित्य धर्म है। हम त्रिदण्ड भिक्षुक हैं, विश्वमें सर्वत्र श्रीमठका प्रकाश-विग्रह प्रकट करनेके लिए माधुकरी भिक्षा ही हमारा अवलम्बन है। हम भोगी या त्यागी नहीं हैं, हम अप्राकृत परमहंसकुलकी पादुकाको वहन करनेकी आकांक्षाको ही सर्वोच्च आकांक्षा मानते हैं।

हम तृणसे भी अधिक सुनीच होकर सबको यह बतलावेंगे कि विकृत प्रतिफलित राज्यकी आंशिक स्वतन्त्रताके अधिकारकी अपेक्षा अप्राकृत वास्तव सत्यके प्रति सम्पूर्ण निर्भरता ही स्वाधीनताकी सच्ची और सर्वोत्तम मूर्ति है। ‘रक्षिष्यतीति विश्वासो’ श्रीरूपानुमोदित शरणागतिको मूलमन्त्र कर हम सर्वदा श्रीहरिसङ्गीर्तनमें नियुक्त रहेंगे। □



प्रतिष्ठाकी आशा

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

ज्ञानवैराग्यादि सभी धर्मोंके अन्तरालमें प्रतिष्ठाकी आशा

हम लोग आत्मोन्नतिकी जितनी भी चेष्टा क्यों न करें, धर्मिक होनेका जितना भी यत्न क्यों न करें अथवा जितनी भी ज्ञान-चर्चा क्यों न करें, प्रतिष्ठा की आशा हमारे चित्तको उतनी ही अधिक मलिन करती है तथा चरित्रको दूषित करती है। अनेक यत्नसे काम, क्रोध, लोभ, मोह और मदको दूर करते हैं, कठोर तपस्याकर इन्द्रियोंका दमन करते हैं, तथापि हमारे हृदयमें अत्यन्त गुप्तरूपसे प्रतिष्ठाशारूपी साँपका बच्चा धीरे-धीरे सम्बर्द्धित होता रहता है। अष्टांगयोगकी शिक्षाकर योगीरूप से प्रतिष्ठा पानेकी कामना करते हैं। यदि कोई कहे कि तुम्हारी शिक्षा केवल धूर्ततामात्र है—केवल जनताको ठगने के लिये है, तभी मेरे क्रोधकी आग भभक उठती है। मैं अनेक शास्त्रोंकी आलोचनाकर अपनेको ब्रह्म-तत्त्वमें लीन करनेकी चेष्टा करता हूँ। यदि कोई कहे कि यह प्रक्रिया निष्फल है, तभी मेरा मन उद्धिग्न हो जाता है और अपने निन्दककी निन्दा करने लगता हूँ। हम शम, दम, तप, अस्तेय आदि दशविध धर्मकी शिक्षा करते हैं और नित्य, नैमित्तिक कर्मोंको करते-करते संसार यात्राका निर्वाह करते हैं। अगर कोई कहे कि कर्म-काण्ड केवल निरर्थक श्रममात्र है, तभी हमारे मनमें दुःख होता है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि हमारी प्रतिष्ठा नष्ट होने से हमें कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

भुक्ति (लौकिक सुख) और मुक्तिकामी अशान्त और प्रतिष्ठाके दास होते हैं।

कर्म, ज्ञानी, योगी प्रभृति जब लौकिक सुख

अर्थात् भुक्ति और मुक्तिकी आशामें इधर-उधर भटकते फिरते हैं, तब उन्हें शान्ति कहाँ? अतः वे प्रतिष्ठाकी सुनहरी आशाका परित्याग नहीं कर पाते। किन्तु भुक्ति-मुक्ति पिपासाशून्य वैष्णवोंके लिए प्रतिष्ठाकी आशा नितान्त ही निकृष्ट है।

वर्तमान वैष्णव आचार्य और प्रतिष्ठा

आजकल जो वैष्णव धर्मके आचार्य है, वे किसी तरह असम्मान बर्दास्त नहीं कर सकते। वे पहले ही सभीके मस्तकपर पैर उठाकर अपना गौरव वृद्धि करनेकी चेष्टा करते हैं। आचार्य रूपसे दूसरे लोग सम्मान करें—यह अन्याय नहीं है, किन्तु उस सम्मानको बटोरनेका जो स्वयं प्रयत्न करते हैं, इससे उनका श्रेय कहाँ रहा? फिर अगर किसी व्यक्तिने साष्टांग दण्डवत् प्रणाम नहीं किया तो ऐसा देखकर उसपर क्रोध प्रकाश करना अति निन्दनीय कार्य है। आचार्योंका सम्मान करनेके लिये सज्जन लोग उनके बैठनेके लिये पृथक आसन दिया करते हैं। किन्तु इन आचार्योंके आसनपर अगर कोई दूसरा व्यक्ति बैठ जाय और इससे उन आचार्योंको यदि क्रोधकी उत्पत्ति होती है, तो यह बड़े दुःखकी बात है। ऐसा क्रोध केवल प्रतिष्ठाकी आशासे उत्पन्न होता है।

प्रतिष्ठाकी आशाका त्याग करना दुष्कर है

वैष्णवोंमें कुछ लोग गृह त्यागकर भेक (भेष) ग्रहण करते हैं। गृहस्थ आश्रममें प्रतिष्ठाकी आशा अधिक करनी होगी—ऐसा समझकर शान्ति परायण व्यक्ति संसार त्यागकर भेक ग्रहण करते हैं। फिर ऐसी अवस्थामें भी प्रतिष्ठाकी आशा अधिक बलवती हो उठती है। अगर किसी भेकधारीका सम्मान न किया जाय तो वे उबल पड़ते हैं।

गृहस्थ वैष्णव आचार्यों तथा भेकधारी वैष्णवोंमें भी अगर प्रतिष्ठाकी आशा रही तो फिर किसका चित्त उस आशासे शून्य हो सकता है।

कृष्ण-सेवाके बिना प्रतिष्ठाकी आशा दूर नहीं होती

हमने बहुधा चिन्ता द्वारा तथा सन्तोंके उपदेश संग्रहकर समझा है कि जब तक प्रतिष्ठाकी आशा दूर नहीं की जाती, तब तक 'मैं वैष्णव हो गया हूँ'—यह समझना नितान्त भ्रम है। केवल मौखिक दैन्य करने से कुछ नहीं होता। हम कहा करते हैं, "मैं वैष्णवोंके दासोंके दास होने योग्य भी नहीं," किन्तु मन-ही-मन सोचते हैं कि श्रोतागण ऐसी बात सुनकर मुझे शुद्ध वैष्णव समझकर प्रतिष्ठा देंगे। हाय! प्रतिष्ठा की आशा हमें छोड़ना नहीं चाहती। अतएव वैष्णवाग्रगण्य श्रील रघुनाथ दास गोस्वामीने कहा है—

"प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपच-रमणी मे हृदि नटेत्,
कथं साधुः प्रेमा स्पृशति शुचिरेतत्रनु मनः।
सदा त्वं सेवस्व प्रभु-दयित सामन्तमतुलं,
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः ॥"

(मन: शिक्षा—७)

अर्थात्, जितने दिनों तक मेरे हृदयमें प्रतिष्ठाशारूपी निर्लज्ज चण्डालिनी नृत्य करती रहेगी, उतने दिनों तक निर्मल-साधु-प्रेम हमारे मनको किस तरह स्पर्श करेगा? अतएव हे मन! तुम अपने प्रभु श्रीकृष्णके अतुलनीय सामन्तरूप (योद्धारूप) शुद्धवैष्णवोंकी सेवा करो। ऐसा करनेसे वे उस चण्डालिनीको तुम्हारे हृदयमन्दिरसे शीघ्र दूरकर प्रेम वस्तुका प्रवेश करावेंगे।

विशुद्ध वैष्णवोंके संगसे प्रतिष्ठाकी आशाका विलोप

उक्त महाजन वाक्यसे हम क्या सीखते हैं? हम शिक्षा पाते हैं कि केवल ग्रंथचर्चा और जिन

व्यक्तियोंने प्रेमकी अवस्था प्राप्त नहीं की है उनके उपदेश तथा शारीरिक योगादि द्वारा प्रतिष्ठाकी आशा दूर नहीं हो सकती। केवल विशुद्ध-वैष्णव संग और वैष्णवोंकी सेवाद्वारा वह निश्चत रूपसे दूर होती है। हम विशेष यत्नके साथ विशुद्ध वैष्णवोंका अनुसन्धान कर उनका संग और उनकी सेवा करेंगे—यही हमारा परम कर्तव्य है।

सत्संग ग्रहण और असत्संग त्याग एकही बात है।

वैष्णवोंके संगसे हमारे हृदयमें साधुता उत्पन्न होगी एवं असाधुता सम्पूर्णरूपसे दूर हो जायगी। हृदय विशुद्ध होनेसे साधु-वैष्णवोंके हृदयसे विकरित प्रेम-सूर्यकी किरणें हमारे हृदयमें प्रवेशकर प्रेमरूपमें प्रकाशित होंगी, इसके सिवा कोई अन्य उपाय नहीं। साधु बननेके लिए यही स्वाभाविक उपाय है। अन्य प्रकारकी सारी चेष्टाएँ विफल हो जाती हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सत् स्वभाव ग्रहण और असत् स्वभाव त्याग एक ही बात है।

साधु-संगके प्रभावसे प्रतिष्ठाकी आशा दूर होती है और कृष्णप्रेम लाभ होता है।

प्रेम धर्म केवल विशुद्ध कृष्णपरायण आत्माओं में निवास करता है। प्रेम अन्यत्र कहीं भी नहीं रहता। प्रेम एक आत्मासे दूसरी आत्माओं में सञ्चरित होता है। संग-क्रमसे जब प्रेमकी लहर वैष्णव आत्मासे दूसरे जीवोंकी आत्मामें स्वभावतः प्रवेश करती है, तो अन्य जीवोंके हृदयका कुवासनारूपी मन्दभाव दूर हो जाता है और तब साधु स्वभाव पहले-पहल सञ्चरित होता है। सभी महद्गुण प्रेमके संगी हैं। अतः प्रेमके प्रवेश करनेसे उसी समय सभी महद्गुण अग्रसर होकर हृदयको शुद्ध कर देते हैं। अतएव साधुसंगमें प्रतिष्ठाकी आशाको दूर करना नितान्त कर्तव्य है। □



‘नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्’

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण

अर्जुन मिश्र एक दरिद्र ब्राह्मण थे, किन्तु थे परम भगवद्भक्त। इन्होंने श्रीमद्भगवद्गीताकी एक टीका लिखी है। ये नित्य प्रातःकाल भजन कार्यसे निबटकर एक प्रहर दिन चढ़ने तक श्रीगीताकी टीका लिखा करते थे। उसके बाद भिक्षाके लिए बाहर चले जाते। भिक्षामें जो कुछ पाते पत्नीके आगे रख देते। वे बड़े प्रेमसे रन्धन करतीं, भगवान्‌को भोग लगाकर स्वामीको महाप्रसाद भोजन करतीं और जो कुछ बचता सन्तुष्ट चित्तसे स्वयं पा लेतीं। उनके सभी कपड़े फटे-पुराने थे। केवल एक धोती कुछ अच्छी थी, जो बाहर पहनकर जानेके उपयुक्त थी। जब ब्राह्मण उसे पहनकर भिक्षाके लिए बाहर जाते, तो ब्राह्मणी चिथड़ोंसे अपने अङ्गोंको ढककर लज्जा निवारण करतीं। स्वामी जब भिक्षासे लौटते, तब ब्राह्मणी उसी धोतीको पहनकर बाहर आतीं-जातीं और गृहकार्योंको सम्पन्न करतीं। फिर भी दरिद्रताको भगवान्‌की देन समझकर दोनों सर्वदा सन्तुष्ट रहते। ‘गृहदेवता श्रीगोपीनाथजी कृपाकर जो कुछ भिक्षा दे देते हैं, उसे उनको निविदितकर महाप्रसाद पाते हैं’—सर्वदा उनकी ऐसी ही भावना होती। उनके दिन आनन्दसे कटते। सांसारिक दुःख-कष्टसे वे तनिक भी विचलित नहीं होते।

इसी प्रकार नियमितरूपसे गीताकी टीका लिखी जाती। एक दिन ब्राह्मण भजनसे निवृत्त होकर टीका लिखने बैठे। ‘अनन्याश्चिन्तयन्तो मां
.....नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्’ (गीता ९/२२) श्लोककी टीका लिखनी थी। श्लोक पढ़ते ही एक जटिल समस्या पैदा हुई। वे किसी प्रकार भी उसका समाधान नहीं कर पा रहे थे। जो स्वयं भगवान् हैं, जो सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डके एकमात्र अधीश्वर हैं, क्या वे अपना अनन्य भावसे भजन करनेवाले व्यक्तियोंका योग-क्षेम स्वयं बहन

करते हैं? नहीं, ऐसा कदापि सम्भव नहीं। यदि यह सत्य है, तो मेरी अवस्था ऐसी क्यों है? मैं तो अनन्य भावसे केवल उन्हींका भरोसा करता हूँ; अपना यथासर्वस्व उन्हींके चरणोंमें अर्पण कर दिया हूँ, फिर भी मुझे ऐसा दारिद्र्य-दुःख क्यों भोगना पड़ता है? अतः ‘नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्’ भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकला हुआ वाक्य नहीं, बल्कि प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। वे अपनी बुद्धिसे गुत्थीको जितना ही सुलझानेकी चेष्टा करते और अधिक उलझते जाते। धीरे-धीरे उनका सन्देह बढ़ता गया। आखिर उन्होंने उस अंशको लाल स्याहीकी तीन रेखाओंसे काट दिया और ग्रन्थ लिखना बन्दकर भिक्षाके लिए निकल पड़े।

इधर करुणामय प्रणतपाल भगवान्‌ने देखा कि मेरे भक्तके मनमें मेरे वचनोंपर सन्देह उत्पन्न हुआ है। वे अति मनोहर सुकुमार श्याम वर्णका बालक वेश धारणकर दो टोकरियोंमें प्रचुर चावल, दाल, तरकारी और धी वगैरह सामान भरकर बहाँगीपर रखकर उसे स्वयं अपने कन्धोंपर बहन करते हुए मिश्रजीके दरवाजेपर पहुँचे। दरवाजा भीतरसे बन्द था। उन्होंने पहले दरवाजा खटखटाया और फिर जोर-जोरसे पुकारने लगे—माताजी! माताजी!! बेचारी ब्राह्मणीके पास कोई कपड़ा नहीं था। चिथड़ोंको लपेटकर किसीके सामने जाय भी तो कैसे? वे लज्जावशतः चुपचाप बैठी रहीं। किन्तु, दरवाजेकी खटखटाहट और पुकारनेकी आवाज बन्द होनेके बदले क्रमशः बढ़ती गयी। आखिर लाचार होकर दरवाजा खोल दिया। बालक भार उठाकर भीतर आँगनमें रखकर वहीं एक तरफ खड़ा हो गया। ब्राह्मणी लज्जासे सिमटी-सी मुख नीचे कर घरके भीतर घुस गयीं। बालक वेशधारी भगवान्‌ने ब्राह्मणीसे कहा—

“माँ! पण्डितजीने (मिश्रजीने) मुझे यह सीधा देकर भेजा है। आप इसे भीतर रख लें।”

ब्राह्मणी अब तक लज्जाके मारे घरमें मुख नीचा किए हुए खड़ी थीं। बालकके मधुर शब्दोंको सुनकर आँगनमें देखा—बड़ी-बड़ी दो टोकरियाँ खाद्य-द्रव्योंसे भरी हुई हैं। इतना बड़ा सीधा उन्होंने अपने जीवनभर कभी नहीं देखा था। बालकके बार-बार कहनेसे वे सामानोंको एक एक कर घरमें रखने लगीं। आनन्द और उत्साहसे सामानोंको ले जानेके समय बार-बार बालकके मुखारविन्दकी ओर निहारती जाती थीं।

बालकका सुन्दर मुख-मण्डल देखकर वे निहाल हो गईं—अहो! कितना सुन्दर मुख है, श्याम वर्णमें इतना अलोकिक सौन्दर्य हो सकता है—इसकी जीवनमें कभी कल्पना तक नहीं की थी। वे ठगी-सी रह गईं। देखते-देखते उनकी दृष्टि बालकके वक्षस्थलपर पड़ी। उन्होंने देखा कि उसकी छातीपर तीन लम्बे-लम्बे दाग पड़े हैं, मानो किसीने अभी अभी किसी तेज अस्त्रसे चीर दिया हो और खून निकल रहा हो। वे आतुर होकर बोलीं—“बेटा! तुम्हारे वक्षस्थलको किस निर्ममने चीरा? हाय हाय! ऐसे सुकोमल अङ्गोपर आघात करनेसे तो पाषाण हृदय भी गल जाय।” बालक वेशधारी कृष्णने कहा—“माँ! मुझे सीधा लोनेमें कुछ देर हो गयी थी, इसलिए मिश्रजीने स्वयं मेरी छातीको चीर दिया।”

“ऐं! उन्होंने तुम्हारी छातीको चीर दिया?”—ब्राह्मणीकी आँखे सजल हो आई—“अच्छा, घर आने दो, उनसे पूछूँगी, तुम्हारे सुकोमल अङ्गोपर उन्होंने किस प्रकार निष्ठुर होकर हाथ उठाया? बेटा! दुःख न करो। थोड़ी देर ठहर जा, अभी रसोई तैयार करती हूँ। तुम ठाकुरजीका प्रसाद पाकर जाना।”

ब्राह्मणीने बालकको आँगनमें बैठाकर रसोईके आयोजनमें व्यस्त हो पड़ीं। इधर भगवान्ने सोचा—“जिस उद्देश्यके लिए मैंने इन सामानोंको स्वयं वहन कर लिया था, वह तो पूर्ण हो गया। ब्राह्मण अब घर आकर हाथों-हाथ मेरे वाक्यकी

सत्यताका प्रमाण पा जायेंगे। उन्हें फिर कभी भी मेरे वाक्योंपर अविश्वास या सन्देह न होगा।” इस तरह भक्तका सन्देह दूर करनेकी व्यवस्थाकर वे तत्क्षण अन्तर्द्धान हो गए।

इधर ब्राह्मणको आज बहुत चेष्टा करनेपर भी कुछ भिक्षा न मिली। निराश होकर घर लौटे। सोचा—“ठाकुरजीकी ऐसी ही इच्छा है।” दरवाजा खटखटाते ही ब्राह्मणीने दरवाजा खोल दिया। घरमें प्रवेश करते ही पत्नीको रन्धनका आयोजन करते देखकर बोले—“रसोईका आयोजन तो कर रही हो, पर आज कुछ भी भिक्षा नहीं मिली। क्या बनाओगी?”

“क्यों? कुछ देर पहले ही तो आपने उस बालकके हाथ जो इतना बड़ा सीधा भेजा है, हम दोनों उसे छः महीनोंमें भी समाप्त नहीं कर सकेंगे। फिर ‘रसोई क्या होगी’—ऐसा क्यों कहते हैं”—ब्राह्मणीको कुछ विस्मय हुआ। “किन्तु आपका हृदय पाषाण जैसा इतना कठोर हो सकता है—मैं पहले तो ऐसा नहीं जानती थी। इस निराह बालकके सुकोमल अङ्गोपर आपने कैसे आघात किया? थोड़ी भी दया न आयी? उसकी छाती चिर जानेसे लाल-लाल तीन दाग हो गये हैं, मानो अभी अभी रक्त निकल पड़ेंगे।”

मिश्रजीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—“आखिर बात क्या है? साफ साफ कहो। मैंने न तो कोई सामान भेजा है और न ही किसी बालकको मारा है। मेरी समझमें कुछ नहीं आ रहा है।”

ब्राह्मणीने पतिदेवकी बात सुनकर उन्हें घरमें रखे चावल दाल, आटा आदि सामानोंको दिखलाया और आँगनमें बैठे बालकके वक्षस्थलमें चिरे हुए दागोंको दिखलानेके लिए उन्हें साथ लेकर आँगनमें आई। देखा, वहाँ बालक नहीं है। कहाँ गया? इधर उधर खोजा, बाहरका दरवाजा पूर्ववत् बन्द था। दोनों हैरान होकर एक दूसरेकी तरफ देखने लगे। मिश्रजीको अब कुछ भी समझना बाकी नहीं रहा। उनकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। फिर भी रहा-सहा सन्देह दूर करनेके

लिए हाथ-पैर धोकर ठाकुरजीके घरमें गए और गीता ग्रन्थको खोलकर देखा—आज सबरे उन्होंने लाल स्याहीकी जिन तीन रेखाओंसे “नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यवहम्” को काट दिया था, अब वे तीनों रेखाएँ नहीं हैं। वे आनन्दसे गदगद होकर ठाकुर घरसे निकल आए और रोते रोते पत्नीसे बोले—“प्रिये! तुम धन्य हो, आज तुम्हें गोपीनाथजीके साक्षात् दर्शन मिले। ये सभी सामान वे स्वयं वहन कर लाए हैं। भला मैं इतना सामान कहाँ पाऊँगा? आज सबरे गीताकी टीका लिखनेके समय मुझे भगवान्की वाणीपर सन्देह हुआ था। मैंने सन्देहयुक्त अंशको लाल स्याहीकी तीन रेखाओंसे काट दिया था। इसीसे हमारे गोपीनाथजीका

सुकोमल वक्षःस्थल चिर गया। वे परम करुणामय हैं। उन्होंने अपनी वाणीकी सत्यता प्रमाणितकर मेरे जैसे नास्तिकका सन्देह दूर करनेके लिए कितना कष्ट उठाया है।” वे आगे बोल न सके, गला रुद्ध हो गया। वे प्रेममें विभोर होकर ‘हा गोपीनाथ! हा गोपीनाथ!!’ कहकर गिर पडे। ब्राह्मणी गोपीनाथके सामने सुध-बुध खोई-सी खड़ी थी, उसकी भी आँखे बरस पड़ीं। कुछ देर बाद ब्राह्मणकी चेतना आयी। उन्होंने स्नानादि नित्य क्रिया समाप्तकर गोपीनाथजीका भोग लगाया और परम प्रीतिके साथ दोनोंने महाप्रसाद पाया। फिर वे नियमित रूपसे गीताकी टीका लिखने लगे। उनका जीवन अत्यन्त प्रेममय हो उठा। □



जीवके नित्य कल्याण प्राप्तिका उपाय क्या है?

—ओमप्रकाश ब्रजवासी

भगवद्भक्तोंकी शुभाकांक्षा यह है कि जीवण केवल अमङ्गलके मध्य ही न रहें, वे नित्य कल्याण प्राप्त करें। उस नित्य कल्याण प्राप्तिका उपाय—कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेवके पादपद्मोंका आश्रय हैं। जिनके पादपद्मोंका आश्रय करनेपर नन्दनन्दन कृष्णकी सेवा प्राप्त होती है, श्रीरूप गोस्वामीसे अभिन्न उन श्रीगुरुदेवकी सेवा दृढ़ विश्वास और प्रीतिपूर्वक करनी होगी एवं उनके श्रीमुखसे हरिभजनकी कथा श्रवण करनी होगी। श्रीगुरुदेवकी पदधूलिका सहारा मिल जानेपर भुवनमोहन श्रीकृष्णकी माधुर्यमयी सेवा प्राप्त की जा सकती है।

इसलिए श्रीगुरुदेवके पादपद्म नित्य भजनीय हैं। अप्राकृत श्रीगुरुदेवके पादपद्म इस जगत्की वस्तु नहीं है, वे रक्त-मांस के पिण्डमात्र नहीं हैं। वे भगवान्की भाँति सच्चिदानन्द विग्रह हैं। श्रीगुरुपादपद्म नर-ब्रह्म हैं, नर-मात्र नहीं। जो भगवद्वस्तुको अर्थात् श्रीगुरु और श्रीगौराङ्गको जगत्की अन्यतम वस्तु मानते हैं, वे स्वयंकी स्वार्थसिद्धिके लिए सेवाका अभिन्नमात्र करते हैं। वह शुद्ध सेवा नहीं है, उसको बनियावृत्ति कही जाती है।

जीव जब तक भजनीय वस्तु श्रीगुरुपादपद्मोंका पूर्ण आनुगत्य न करे, तब तक उसको भगवान्के दर्शन नहीं होते। जो श्रीगुरुपादपद्मोंके अप्राकृतत्व, ईश्वरत्व और

कृष्णप्रेष्ठत्वसे अवगत नहीं है, वे चिदराज्यमें अर्थात् कृष्णसेवा-राज्यमें प्रवेशके लिए सम्पूर्ण अयोग्य हैं।

श्रीगुरुदेवकी कृपा होनेपर ही हम अप्राकृत वस्तुके निकट जा सकते हैं—श्रीचैतन्यदेवके श्रीपादपद्मोंका आश्रय करके चेतनमय, सेवा-शोभामय दिव्य चक्षुओंके द्वारा उनका दर्शन पा सकेंगे, स्वयंरूप श्रीकृष्णके श्रीपादपद्मोंके निकट पहुँचनेका सौभाग्य पाकर धन्य और कृतार्थ होंगे। प्राकृत रूपमें आबद्ध रहनेपर श्रीरूपाभिन्न श्रीगुरुपादपद्मोंका दर्शन प्राप्त नहीं होगा। भजनीय वस्तु गुरु-कृष्णका निष्कपट भावसे भजन करनेपर मङ्गल होगा, तब भोगोंके प्रति रुचि नहीं रहेगी।

मैं दाँतोंमें तृण धारणकर पुनः पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं अन्य कुछ नहीं चाहता, मैं केवलमात्र श्रीगुरुदेवकी पदधूलि ही चाहता हूँ—श्रीगुरुदेव जिस प्रकार भगवान्की सतत सेवा करते हैं, मैं भी उनके आनुगत्यमें उसी भावसे भगवान्की सेवा करना चाहता हूँ। कृष्ण मेरे हैं, कृष्णकी सेवा न करनेपर कृष्णको बहुत कष्ट होगा—इस प्रकारके भावकी पूर्णरूपसे वृद्धि होनेपर तब हमको कृष्णप्रेम अथवा कृष्णप्राप्ति होगी। श्रीगुरुदेवकी प्रीतिपूर्वक सेवा द्वारा ही यह सौभाग्य प्राप्त होता है।

श्रीगुरोः कृपाहि केवलम्। □



मायावादकी जीवनी

—३५ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ४, पृष्ठ ८० से आगे]

बुद्धका शून्यवाद

प्रज्ञापारमिता सूत्र (बौद्धोंका एक प्रामाणिक ग्रन्थ) के सोलहवें सूत्रमें भी इसी प्रकार देखा जाता है—

“सुदुर्वर्थासि मायैव दृश्यसे न च दृश्यसे।”

अर्थात्, तुम (शून्य) अतिशय दुर्बोध हो और कभी मायाकी तरह दृष्टिगोचर होते हो, तो कभी नहीं भी होते।

उक्त ग्रन्थके द्वितीय सूत्रमें लिखा है—

“आकाशमिव निर्लेपं निष्प्रपञ्चं निरक्षराम्। यस्तां पश्यति भावेन स पश्यति तथागतम्।”

अर्थात्, जो तुमको आकाशकी तरह अर्थात् शून्यकी तरह निर्लेप, निष्प्रपञ्च और निरक्षर रूपसे दर्शन करता है, वह ‘तथागत’ अर्थात् शून्यत्वको प्राप्त होता है।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताके द्वितीय विवर्तमें ऐसा लिखा गया है—

“सर्वधर्मा अपि देवपुत्रा मायोपमाः स्वप्नोपमाः

* * *प्रत्यक्बुद्धोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः।

प्रत्यक्बुद्धोऽपि मायोपमः स्वप्नोपमः सम्यक् सम्बुद्धत्वमपि मायोपमं स्वप्नोपमम्।”

अर्थात्, सुगत बुद्ध देवपुत्रोंको कहते हैं—“समस्त धर्म ही माया और स्वप्नकी तरह हैं। प्रत्यक्बुद्ध, सम्यक् सम्बुद्ध एवं उन-उनके सभी धर्म ही माया और स्वप्नकी तरह हैं।”

सर्वदर्शन—संग्रह नामक ग्रन्थमें सायनमाधवने बौद्ध-दर्शन वर्णनके प्रसङ्गमें १५ वें वाक्यमें इस प्रकार लिखा है—

“माध्यमिकास्तावदुत्तमं प्रज्ञा इथ्यमचीकथन्।

भिक्षुपाद प्रसारण-न्यायेन क्षणभङ्गाद्यभिधानमुखेन स्थायित्वानुकूलवेदनीयत्वानुगत सर्वसत्यत्वभ्रमव्यावर्तनेन सर्वशून्यतायामेव पर्यवसानम्। अतस्तत्त्वं सदसदुभया-नभयात्मकचतुष्कोटिविनिर्मुक्तं शून्यमेव।”

उक्त ग्रन्थके २९ वें वाक्यमें भी शून्यके सम्बन्धमें ऐसा लिखा गया है—

“केचन बौद्धा बाह्येषु गन्धादिषु आन्तरेषु रूपादि-स्कन्धेषु सत्स्वापि तत्रानास्थामुत्पादयितुं सर्वं शून्यमिति प्राथमिकान् विनेयानचीकथत्।”

अर्थात्, कोई कोई बौद्धमतावलम्बी बाह्य वस्तु गन्ध, आन्तरिक और रूपादि स्कन्धमें, यहाँ तक कि ‘सत्’ में भी अश्रद्धा उत्पन्न करानेके लिए समस्त शून्य है—ऐसा प्राथमिक श्रेणीके लोगोंके लिए कहा है।

शाक्य सिंह बुद्धके सम्बन्धमें भी ‘ललित विस्तार’ बौद्ध ग्रन्थके २१ वें अध्यायमें ऐसा लिखा गया है—“शाक्य सिंह बुद्धने ‘शून्य’ और ‘नैरात्मवाद’ धनुष द्वारा सांसारिक क्लेश-रिपुका विनाश किया है”—समर्थ धनुरूहीत्वा शून्य-नैरात्मवादिने क्लेशरिपुन् निहत्वा। उपर्युक्त बौद्धग्रन्थोंके प्रमाण द्वारा यह जाना जाता है कि महानिर्वाणरूप शून्यवस्तु आकाशकी तरह निरक्षर, निष्प्रपञ्च है एवं जो प्रपञ्च अर्थात् कारणरूप शून्यका कार्य या धर्मज्ञापक है, वे सभी शून्य हैं तथा स्वप्न और मायाकी तरह हैं। प्रपञ्च क्षणिक होनेपर भी इसका मूल कारण ‘शून्य’ है। प्रज्ञापारमिता सूत्रमें कहा गया है—आप्रका आप्रत्व गुण दूर हो जानेसे वह शून्यमें ही पर्यवसित हो जाता है। शंकरका निर्गुण ब्रह्मवाद इसीका नामान्तर है। बुद्धका कहना है—जिसमें गुण या कार्य नहीं, वह शून्य है। शंकरका भी कथन है—जिसमें गुण नहीं, वही ब्रह्म है।

शंकराचार्यका ब्रह्मवाद

सम्प्रति बुद्धके शून्यवादके साथ आचार्य शंकरके ब्रह्मवादकी एकता दिखलायी जा रही है। अतः उल्लिखित प्रमाणोंके साथ तुलनाकर पढ़ना होगा। अपरोक्षानुभूति नामक ग्रन्थके ४५ वें श्लोकमें श्रीपाद शंकरने कहा है—

उपादानं प्रपञ्चस्य ब्रह्मणोन्य न विद्यते।
तस्मात् सर्वप्रपञ्चोऽयं ब्रह्मैवास्ति न चेतरत्॥
४६ श्लोकमें—

ब्रह्मणः सर्वभूतानि जायन्ते परमात्मनः।
तस्मादेतानि ब्रह्मैव भवन्तीत्यवधारयेत्॥

९४ श्लोकमें—

उपादानं प्रपञ्चस्य मृद्घाण्डस्येव दृश्यते।
अज्ञानञ्चेति वेदान्तास्तन्नष्टैव का विश्वता॥

अर्थात्, प्रपञ्चका उपादान ब्रह्मके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है (४५)। परमात्मा ब्रह्मसे ही भूतसमूह उत्पन्न हुए हैं। अतः ये सब (प्रपञ्चभूत) भेदसमूह ब्रह्म हैं—ऐसा निर्णय करना चाहिए (९९)। जिस प्रकार मिट्टीके पात्रका उपादान जल-मिट्टी आदि है, उसी प्रकार प्रपञ्चका उपादान अज्ञान है। वेदान्तमें (?) ऐसा कहा गया है कि उस अज्ञानके नष्ट होनेपर विश्वत्व या प्रपञ्चत्वकी भावना ही कहाँ रहती है (९४) ? अतएव ऐसा देखा जाता है कि शंकरके मतसे ब्रह्म जगत्का मूल कारण है। ब्रह्मसे ही सम्पूर्ण भूत-समूहकी उत्पत्ति होती है। ब्रह्म ही अज्ञानके कारण जगत्के रूपमें प्रतिभात हो रहा है। इस हेतु अर्थात् अज्ञानके विनाश या दूर होनेपर ही दृश्यत्व (भूत-समूह) विनष्ट होकर ब्रह्ममें पर्यवसित हो जायेगा अर्थात् ब्रह्म हो जायेगा। विश्व ही द्वैत उत्पत्तिरूप भय-क्लेश आदिका आकर है।

बुद्धदेवने अपने शून्यवादरूप अस्त्रसे विश्वक्लेशको विनष्ट करनेकी चेष्टा की है एवं आचार्य शंकरने

भी ब्रह्मवादरूप अस्त्रसे विश्वक्लेशको ध्वंस करनेका प्रयास किया है। संसार-क्लेश दूर करनेके हेतुभूत जैसे शंकरका ब्रह्मवाद है, वैसे ही बुद्धका शून्यवाद है। जगत्की प्रतीति नष्ट होनेपर एकमें शून्य और दूसरेमें ब्रह्म रह जाता है। अब जगत्-प्रतीति नष्ट करनेके उपायके सम्बन्धमें बौद्ध और शंकरके अनुयायियोंका परस्पर क्या विचार है, उसकी कुछ कुछ समालोचनाकी आवश्यकता है एवं दोनों मतोंका ऐक्य कहाँ है, यह भी दिखलाना आवश्यक है।

बौद्धमतमें मोक्षका उपाय

मोक्षके उपाय अर्थात् जगत्के विनाश करनेकी चेष्टाके सम्बन्धमें बौद्धोंका कथन है—

“तत् द्विविधं तदिदं सर्व दुःखं दुखायतनं दुःखसाधनञ्चेति भावित्वा तन्निरोधोपायं तत्त्वज्ञानं सम्पादयेत्। अतएवोक्तं दुःख-समुदाय-निरोध-मार्गाशत्वारः आर्यस्य बुद्धाभिमतानि तत्त्वानि। तत्र दुःखं प्रसिद्धं समुदाय दुःख-कारणं तद्द्विविधं प्रत्ययोप-निबन्धनो हेतूपनिबन्धनश्च।”—सायन माधव

सारे विश्वको दुःखमय, दुःखायतन एवं दुःखदायक समझकर उसके निरोधके उपायस्वरूप तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेके लिए चेष्टा करनी चाहिए। अतएव दुःख समुदायके निरोधके ४ मार्ग हैं। किन्तु, आर्य बुद्धके विचारसे सभी तत्त्व दुःख निरोधके मार्ग हैं। दुःख किसे कहते हैं, यह तो सभी जानते हैं। किन्तु, सभी दुःखोंका कारण ‘विश्व’ ही है एवं यह कारण दो प्रकारका होता है, यथा—प्रत्ययोपनिबन्धन और हेतूपनिबन्धन।

प्रज्ञापारमिता सूत्र १७ में लिखा गया है, “मार्गस्तेमेको मोक्षस्य नास्तन्य इति निश्चयः” अर्थात् प्रज्ञापारमिताको लक्ष्यकर उसका स्तव कर रहे हैं—तुम्हीं एकमात्र मोक्षके मार्ग हो, दूसरा नहीं; यह निश्चित है।

बौद्ध महायान शाखाके अनेक ग्रन्थोंमें

प्रज्ञापारमिताको मोक्षका एकमात्र उपाय बतलाया गया है। शतसाहस्रिका प्रज्ञापारमिताके प्रारम्भमें ही इस प्रकार लिखा गया है—

“नैव तेन विना मोक्षं तस्मात् श्रोतव्यं आदरात्।”

अर्थात् प्रज्ञापारमिताके अतिरिक्त मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए आदरपूर्वक उसका श्रवण करना चाहिए। उक्त ग्रन्थमें अन्यत्र भी उक्त वाक्यके पृष्ठपोषक वाक्य मिलते हैं। यथा—
 या सर्वज्ञतया नयन्तुपसमं शन्त्यैशिणः श्रावकान्।
 या मार्गज्ञतया जगद्वितकृप लोकार्थं सम्पादिका॥
 सर्वकारमिदं वदन्ति मुनयो विश्वं यथा सङ्गता।
 तस्मै श्रावक-बोधसत्त्वगणिनो बुद्धस्य मात्रेनमः॥

अर्थात्, जिनकी कृपासे सर्वज्ञता प्राप्त होती है, वे प्रज्ञापारमिता ही शान्तिकामी श्रोताओंके समस्त संसार-क्लेश दूर कर देते हैं। वे जानते हैं कि किस मार्गसे चलनेसे मोक्ष मिल सकता है। अतएव वे ही जगत्‌का कल्याण किया करते हैं। उस श्रावकबोधिसत्त्व बुद्ध प्रज्ञापारमिताको नमस्कार करता हूँ।

उक्त बौद्धशास्त्रोंके प्रमाणसमूह द्वारा देखा जाता है कि मोक्ष अर्थात् शून्यत्व लाभ करनेका उपाय तत्त्वज्ञान या प्रज्ञापारमिता है। प्रज्ञापारमिता कहनेसे बौद्ध लोगोंका जो विचार है, उसे संक्षेपमें निवेदित किया जा रहा है। प्रज्ञापारमिता सूत्रके प्रथम सूत्रमें प्रज्ञापारमिताका स्वरूप निर्णय करते हुए लिखा गया है—

**निर्विकल्पे नमस्तुभ्यं प्रज्ञापारमितेऽमिते।
 या त्वं सर्वानवद्याङ्गि निरवद्यैर्नीक्षसे॥**

अर्थात्, हे प्रज्ञापारमिते! मैं तुम्हें नमस्कार कर रहा हूँ। तुम निर्विकल्प और अमित हो। तुम्हारा अङ्ग अनवद्य अर्थात् निर्दोष है। अतः निर्दोष व्यक्ति ही तुम्हें देखनेमें समर्थ होते हैं। उक्त श्लोकके प्रत्येक शब्दको लेकर विचार करनेसे देखा जाता है कि शङ्करने ब्रह्मप्राप्तिके लिए जिन

उपायोंका निर्देश किया है, वे प्रज्ञापारमिताके साथ एक ही जैसे (अभिन्न) स्थिर होते हैं। बौद्धोंका और भी कहना है कि संसार-क्लेशका पूर्वोक्त ‘प्रत्ययोपनिबन्धन’ और ‘हेतूपनिबन्धन’ इन दोनों कारणोंका निरोध करनेसे मुक्ति होती है।

“तदुभय निरोधकरणान्तरं विमलोज्ञानोदयो वा मुक्ति तान्निरोधोपायोमार्गः स च तत्त्वज्ञानं तच्च प्राचीनभावनावलाद्वतीति परमं रहस्यम्॥”—सायन माधव।

अर्थात्, उक्त दोनों कारणोंके निरोध होनेपर विमल ज्ञानका उदय होता है या मुक्ति होती है। जो उक्त दोनों कारणोंका निरोध करनेमें समर्थ होते हैं, वे तत्त्वज्ञान प्राप्त करते हैं। प्राचीन भावनाके बलसे ही तत्त्वज्ञान अर्थात् प्रज्ञापारमिता प्राप्त होती है। यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य है।

क्षणिक जगत्‌के या प्रातिभासिक रजतज्ञानके उक्त दोनों कारणोंका निरोध या विनाश कर सकनेसे शून्य-प्रज्ञा या ब्रह्म-प्रज्ञा उदित होती है ‘कारण’ नष्ट होनेसे ही ‘कार्य’ का नाश हो जाता है—यह स्वतः सिद्ध है। अतएव बौद्ध मतमें शून्य प्राप्तिका उपाय जगत् प्रतीतिके कारणका नाश होना है एवं अमिता निर्विकल्प-प्रज्ञा ही एकमात्र कारण नाश करनेका उपाय है।

आचार्य शंकरके मतानुसार मोक्षका उपाय

आचार्य श्रीपाद शंकरने मुक्तिका उपाय निर्देशित करनेके लिए “केवलोऽहम्” शीर्षक नाम देकर एक पद्यकी रचना की है। उसका एक श्लोक उद्घृत किया जा रहा है—

**ब्रह्मभिन्नत्वाविज्ञानं भवमोक्षस्य कारणम्।
 येनाद्वितीयमानन्दं ब्रह्मसम्पद्यते बुधैः॥२॥**
 उनके ही द्वारा कृत अपरोक्षानुभूतिमें—
त्यगः प्रपञ्चस्वरूपस्य चिदात्मत्वावलोकनात्।
त्यगो हि महतां पूज्यः सद्यो मोक्षमयोयतः॥१०६॥
 अर्थात्, ब्रह्मका (ब्रह्म और प्रपञ्चका)

अभिन्नत्व ज्ञान ही भवमोक्ष अथवा संसार मोचनका कारण है। इसके द्वारा पण्डित व्यक्ति अद्वितीय आनन्द स्वरूप ब्रह्म सम्पादन किया करते हैं अर्थात् ब्रह्म लाभ करते हैं॥२॥

चिदात्माका अवलोकन करनेसे प्रपञ्चके रूपोंका त्याग हो जाता है। यह त्याग महद् व्यक्तियोंके लिए पूज्य है, इसी त्यागसे अतिशीघ्र मोक्षमय हुआ जाता है॥१०६॥

चिदात्माका अवलोकन या ब्रह्मसे अभिन्न चिन्तन आदि उपायोंके द्वारा ब्रह्मप्राप्ति या मोक्ष लाभ होता है। ब्रह्म-ज्ञान ही विश्वरूप अविद्याके विनाशका कारण बतलाया गया है। बुद्धकी प्रज्ञा और आचार्य शंकरका ब्रह्म-ज्ञान एक ही चीज है। प्रज्ञा और ब्रह्ममें कोई पार्थक्य नहीं। ऐसा दिखलानेके लिए शारीरिक भाष्य आदि अनेक ग्रन्थोंमें ऐतरेय उपनिषदका 'प्रज्ञानं ब्रह्म' मन्त्र उद्घृत कर सर्वत्र ही उक्त मतका अनुमोदन किया गया है। ऐतरेय उ. में अन्यत्र भी—'प्रज्ञाने प्रतिष्ठितम्', 'प्रज्ञानेत्रोलोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा'—ऐसे मन्त्र देखे जाते हैं। उनका शंकरने जो भाष्य किया है तथा सायनाचार्य प्रभृति मनीषियोंने इनका अवलम्बनकर जो कुछ लिखा है, उससे जाना जाता है कि 'प्रज्ञान' शब्दका अर्थ 'निरूपाधिक चैतन्य' एवं 'प्रतिष्ठित' शब्दका अर्थ 'सर्व-जगत् रज्जुमें सर्पकी भाँति आरोपित' से है। प्रज्ञाने निरूपाधिक चैतन्ये पूर्वोक्तं सर्वं जगत् प्रतिष्ठं रज्ज्वां सर्ववदारोपितम्। अतः देखा जाता है कि श्रीशंकरपादने बुद्धकी प्रज्ञाको ही अङ्गीकार कर उसे निरूपाधिक चैतन्य-स्वरूप और उसीको रज्जुमें सर्पके आरोपकी भाँति क्षणिक जगत् कहा है। इसी प्रज्ञा या ब्रह्मज्ञान द्वारा क्षणिक या प्रातिभाषिक तात्कालिक जगत् नष्ट होगा और शून्यरूप ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हो जायेगा। और भी

कहते हैं—

कार्यं कारणता जाता कारणे न हि कार्यता।
कारणत्वं ततो गच्छेत् कार्याभावे विचारतः॥

—अपरोक्षानुभूति १३५

कार्यमें कारणता रहता है, किन्तु कारणमें कार्यता नहीं रहती। अतः जगत्-रूप कार्यकी क्षणिकता विचारपूर्वक उसका निरोध या अभाव होनेपर ब्रह्मरूप कारणत्व प्राप्त हो जाता है॥१३५॥

पुनः अन्यत्र—

कार्यं हि कारणं पश्येत् पश्चात् कार्यं विवर्जयेत्।
कारणत्वं ततो गच्छेत् वशिष्ठं भवेन्मुनिः॥

—अपरोक्षानुभूति १३९

कार्यके भीतर कारणको देखकर पीछे कार्यका परित्याग करना चाहिए। कार्य और कारण-इन दोनोंमें कार्य परित्यक्त होनेसे अवशिष्ट कारणत्व स्वयं प्रकाशित हो जाता है। यही कार्य-कारणका विचार है॥१३९॥

बौद्धोंके उदाहृत 'आप्रका आप्रत्व' विचारमें भी वही अवशेषरूपमें पाया जाता है। यहाँ पाठकवर्ग ही विचारकर देखें कि श्रीशंकरके कहे गए 'अवशिष्टं भवेत्' वाक्यद्वारा शून्यका ही लक्ष्य होता है या नहीं, आप्रका आप्रत्व नष्ट होनेपर कुछ भी शेष नहीं रहता अर्थात् शून्य ही अवशिष्ट रहता है। अतः 'अवशिष्ट' शब्द द्वारा शंकरने प्रच्छन्नरूपसे बुद्धके शून्यको ही लक्ष्य किया है। अतएव मोक्षके उपायके सम्बन्धमें शंकरने बुद्धके मायावादसे प्रभावित होकर अपना मत स्थापन करनेकी चेष्टा की है—यह कहना शायद अन्याय नहीं होगा। मोक्षका उपाय निरूपण करनेके विषयमें भी बुद्ध और शंकरका एक ही मत है—यह स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है। □

(क्रमशः)



श्रीचरणामृत

साधारण मन्त्र

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्॥

गुरु चरणामृत मन्त्र
अशेष-क्लेशनिःशेषकारणं शुद्धभक्तिदम्।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्॥

गौर चरणामृत मन्त्र
अशेष-क्लेशनिःशेषकारणं शुद्धभक्तिदम्।
गौर पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्॥
श्रीराधाकृष्ण चरणामृत मन्त्र
श्रीगग्नाम-प्रेमभक्तिदं मुदा।
भक्तिभरेण वै पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्॥

श्रीविष्णु और वैष्णवोंका चरणधौत-जल और श्रीशालग्राम शिलारूपी श्रीहरिका स्नान-जल अमृतस्वरूप होनेके कारण श्रीचरणामृत कहा गया है। श्रीचरणामृत सर्वदा समस्त तीर्थोंकी अपेक्षा पवित्र होता है। श्रीकृष्णका चरणामृत पान करनेके बाद मस्तकपर धारण करना ही विधि मानी गई है। श्रीचरणोदकका पानकर मनुष्य सब प्रकारके पापोंसे मुक्त हो जाता है। विष्णुका चरणामृत पान करनेसे कोटि-कोटि ब्रह्मत्याका पाप भी नष्ट हो जाता है। किन्तु, वही चरणामृत पृथ्वीपर गिर जानेसे आठगुणा पाप होता है। पद्मपुराणमें कहा गया है—“हे अम्बरीष ! श्रीहरिका चरणामृत जिनके उदरमें अवस्थित रहता है, तुम्हें उनको प्रणामकर उनके चरणोंकी धूलि लेनी चाहिए।”

अगर श्रीशालग्रामशिलाके स्नान कराये हुए जलको प्रतिदिन पानकर मस्तकपर धारण किया जाय, तो सहस्रकोटि तीर्थोंमें स्नान करनेका प्रयोजन ही क्या है? क्योंकि, गङ्गा, गोदावरी, रेवा और अन्यान्य मुक्ति देनेवाली नदियाँ समस्त तीर्थोंके साथ श्रीचरणामृतमें वास करती हैं। यथा—

गङ्गा गोदावरी रेवा नद्यो मुक्तिप्रदास्तु याः।
निवसन्ति सतीर्थस्ता: शालग्रामशिला-जले॥
कोटिर्थ-सहस्रेस्तु सेविते: किं प्रयोजनम्।
तीर्थं यदि भवेत् पुण्यं शालग्रामशिलाद्ववम्॥
जो प्रतिदिन श्रीशालग्रामशिलाका चरणामृत पान करते हैं, उनका पुनः जन्म नहीं होता। श्रीचरणामृतका पान करनेसे तथा उसे मस्तकपर धारण करनेसे समस्त देवता प्रसन्न होते हैं। कलिकालमें श्रीहरिका चरणोदक पान करनेसे समस्त पापोंका प्रायश्चित्त हो जाता है। गङ्गा श्रीहरिका चरणोदक है। सरस्वतीका जल पान करनेसे तीन दिनमें, नर्मदाका सात दिनमें, गङ्गा जल तत्क्षण तथा यमुनाका जल दर्शन मात्रसे पवित्र करता है। इनका दर्शन तथा इनमें स्नान करनेसे ये पवित्र करते हैं। किन्तु, कलिकालमें श्रीहरिके चरणोदकका स्मरण करनेसे ही पवित्रता लाभ होती है। इसके सम्बन्धमें शास्त्र कहते हैं—

त्रिभिः सारस्वतं तोयं सत्पाहने तु नामदम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव यामुनम्॥
पुनन्त्येतानि तोयानि स्नानदर्शनकीर्तनैः।
पुनाति स्मरणादेव कलौ पादोदकं हरेः॥

(पद्मपुराण)

प्रतिदिन शिवलिङ्गका अर्चन करनेसे जितना फल होता है, श्रीचरणामृतका पान करनेसे उसकी अपेक्षा सहस्रगुणा अधिक फल होता है। अपवित्र हो, दुराचारी हो अथवा महापापी ही क्यों न हो, श्रीविष्णुके चरणामृतका स्पर्श करनेके साथ ही उसी क्षण वह पवित्र हो जाता है। कोटि-कोटि पातकोंसे युक्त रहनेपर भी मरनेके समय जिस व्यक्तिके मस्तक, मुख और देहमें विष्णुका चरणोदक स्पर्श कराया जाता है, वह यमलोकमें गमन नहीं करता। जिन लोगोंने कभी भी दान, होम, वेदपाठ अथवा

देवताओंकी पूजा नहीं की है, वे लोग भी विष्णुके चरणोदकका पानकर उत्तम गति प्राप्त करते हैं। जो चरणामृतको मस्तकपर धारण करते हैं, उनके प्रति ब्रह्मा, शिव और केशव सभी प्रसन्न रहते हैं। जो चरणामृतका माहात्म्य वर्णन करते हैं, वे भगवद्गाममें गमन करते हैं। जिनका आचरण चिर दिन तक आचारहीन रहा हो, ऐसे व्यक्तिको भी अन्तकालमें चरणामृतका पान करनेसे वह परम गति लाभ करता है। चरणामृतका पान करनेसे अपेय-पायी अर्थात् मद्यादिका पान करनेवाले, अभोज्यभोजी, कुमार्गी तथा पाप स्वभाववाले व्यक्ति भी शीघ्र ही वन्दनीय हो जाते हैं। प्रत्येक दिन चरणामृत पान करनेसे तथा मस्तकपर धारण करनेसे जरा, मृत्यु, दुःख और संसारसे मुक्ति पाई जाती है। श्रीचरणामृत मङ्गलस्वरूप, सुखदायक, दुःखनिवारक, शीघ्र फलप्रद, सर्वपापनाशक, दुःस्वप्ननाशक, सर्वविघ्नविनाशक और सब प्रकारके व्याधियोंको दूर करनेवाला होता है। यथा—

सद्यः फलप्रदं पुण्यं सर्वपापविनाशनम्।
सर्वमङ्गलं माङ्गल्यं सर्वदुःखविनाशनम्॥
दुःस्वप्ननाशनं पुण्यं विष्णुपादोदकं शुभम्।
सर्वोप्रदवहन्तारं सर्वं व्याधिविनाशनम्॥

(विष्णुधर्मोत्तर)

श्रीचरणामृत मस्तकपर धारण करनेसे सब प्रकारके उपद्रव शान्त हो जाते हैं। वैष्णवराज शम्भु श्रीचरणामृतकी महिमा जानते हैं। इसीलिए उन्होंने विष्णुके चरणोंसे निकली हुई गङ्गाको अपने मस्तकपर धारण कर रखा है। महापापी और सैकड़ों रोगोंसे आक्रान्त व्यक्ति भी चरणामृत पान करनेसे उनसे मुक्त हो जाता है। महापापी होनेपर भी श्रीचरणामृत पानपूर्वक शरीर त्याग करनेसे यमदूत लोग उनका कुछ भी नहीं कर सकते। ऐसे व्यक्ति यमदूतोंकी कुछ भी परवाह न कर विष्णुलोकमें गमन करते हैं। विष्णुका चरणामृत पान करना ही परम धर्म है, परम तपस्या है।

जो चरणामृतका पान करते हैं, उनका सभी तीर्थोंमें स्नान हो जाता है और वे विष्णुके अत्यन्त प्रिय होते हैं। श्रीचरणामृत अकाल मृत्यु, सब प्रकारकी व्याधियों तथा दुःखोंका विनाश करता है। श्रीचरणामृत पान करनेसे भगवान्‌के चरणोंमें भक्ति भी लाभ होती है।

वृहत्रारदीय पुराणमें कहा गया है—लुब्धक नामक एक बहेलियेने चरणामृतका स्पर्श पाकर साथ-ही-साथ निष्पाप होकर उत्तम विमानमें आरूढ़ होकर मुनिके प्रति कहा था—हे मुने! आपने मुझपर चरणामृत छिड़का है, इसीलिए मुझे विष्णुके परम पदकी प्राप्ति हुई।

सात समुद्रोंका जल भी त्रितापकी ज्वाला शान्त नहीं कर सकता, किन्तु थोड़से चरणामृतके द्वारा ही इस संसारकी अग्नि आसानीसे बुझ जाती है। चरणामृत अमूल्य होता है, अन्य किसी भी वस्तुसे इसकी तुलना नहीं हो सकती। समुद्रकी तरङ्गे गिनी जा सकती हैं, किन्तु चरणामृतकी अनन्त महिमाका वर्णनकर शेष नहीं किया जा सकता है।

भक्तोंका चरणामृत भी श्रीहरिचरणामृतकी तरह पवित्र होता है। भक्त-चरणामृत भी सर्वतीर्थ-स्वरूप, सर्वप्रकारके अशुभोंका विनाशक और मङ्गलप्रद होता है। भक्त चरणामृतकी महिमाका भी वर्णनकर शेष नहीं किया जा सकता। इसीलिए शास्त्रोंका कहना है—

येषां पादरजेनैव प्राप्यते जाहनीजलम्।
नार्मदं यामुनञ्चैव किं पुनः पादयोर्जलम्॥
येषां वाक्यजलैधेन विना गङ्गाजलैरपि।
विना तीर्थसहस्रेण स्नातो भवति मानव॥

(स्कन्द पुराण)

जिनके चरण रेणुसे जाहवी, नर्मदा और यमुनाका जल प्राप्त होता है और जिनके श्रीमुखसे निकले हुए हरिकथामृतका पान करनेसे सज्जनवृन्द बिना असंख्य तीर्थोंमें स्नान करनेपर भी पवित्र हो जाते हैं, उन भक्तोंके चरणामृतके महात्म्यका और अधिक क्या वर्णन करूँ? श्रीमद्भागवत (११/६/१९) में कहा गया है—‘हे हृषीकेश !

आपने त्रिलोकीकी पाप-राशिको धो देनेके लिए दो प्रकारकी पवित्र नदियाँ बहा रखी हैं। एक तो आपकी अमृतमयी लीलासे भरी कथानदी और दूसरी आपके पाद-प्रक्षालनके जलसे भरी गङ्गाजी। अतः सत्सङ्गसेवी विवेकीजन कानोंके द्वारा आपकी कथानदीमें और शरीरके द्वारा गङ्गाजीमें गोता लगाकर दोनों ही तीर्थोंका सेवन करते हैं और अपने पाप-ताप मिटा देते हैं।” कृष्णदास कविराज गोस्वामी भी दृढ़तापूर्वक कहते हैं,—

भक्त पदधूलि आर भक्तपद जल।
भक्तभुक्त-शेष इऽ तीन साधने बल॥
एऽ तीन-सेवा हैते कृष्ण-प्रेमा हय।
युनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय॥
ताते बार बार कहि, सुन भक्तगन।
विश्वास करिया कर ए तीन-सेवन॥
(चैतन्यचरितामृत अन्त्य १६/६०-६२)



व्याकरणका पण्डित

एक समय संस्कृत व्याकरणका कोई पण्डित बनके रास्तेसे अपनी ससुरालको जा रहा था। चलते-चलते शाम हो गई। रास्तेमें गाँव आया। गाँवके लोगोंने उसे बुलाकर कहा—“पण्डित महाशयजी संध्या होने जा रही है और आप बनपथसे कहाँ जा रहे हैं। बनमें तो वाघ, भालू आदिका डर है। अतः आप आगें नहीं जावें और आप इसी गाँवमें रात्रिमें विश्राम करें, प्रातः होते ही चले जाय।” इस बातके सुनते ही पण्डित महाशय कुछ हँसते हुए बोले—“तुमलोग तो मूर्ख हो, तुमने कभी भी व्याकरण नहीं पढ़ा, इसीलिए तुमलोग मूर्ख जैसी बातें कर रहे हो। व्याघ्र शब्दका अर्थ क्या है, पहले इसे जानो? व्याघ्र शब्द वि पूर्वक आ पूर्वक घा धातुके उत्तर कृत् वाच्यमें ‘उ’ प्रत्यय (वि-आ-घ + कृत्वाच्यमें उ) करके निष्पत्र हुआ है अर्थात् जो विशेष रूपसे घ्राण करता है, उसे व्याघ्र कहते हैं। अतः व्याघ्रसे मुझे

अर्थात् भक्तपदरज, भक्तपदधौत जल और भक्तोंका उच्छ्वष्ट—ये तीनों भगवद्भजनमें प्रधान सहायक हैं। इन तीनोंका श्रद्धापूर्वक सेवन करनेसे कृष्ण प्रेमकी प्राप्ति होती है। ऐसा सभी शास्त्रोंमें कहा गया है। इसलिए हे भक्तवृन्द! मैं बार-बार आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप लोग विश्वासपूर्वक इन तीनोंका सेवन करें।

श्रीविष्णु और वैष्णवोंका परम पवित्र चरणामृत पान करनेके बाद आचमन नहीं करना चाहिए। इसके सम्बन्धमें शास्त्रका कथन है—

विष्णु पादोदकं पीत्वा भक्तपादोदकं तथा।

य आचमति सम्मोहाद्ब्रह्महा सनिगद्यते॥

(गरुडपुराण)

जो श्रीहरिके और हरिके भक्तोंका चरणामृत पान करनेके बाद अज्ञानवश भी आचमन करते हैं, उनकी गणना ब्रह्मघातियोंमें की जाती है।□

भय नहीं। यदि व्याघ्र मेरे सामने उपस्थित भी हो जाय तो वह मेरे इस परम पुण्य शरीरका विशेषरूपसे केवल घ्राण करेगा। इसमें क्या आपत्ति है? परोपकार करना तो ब्राह्मणका धर्म होता है।

पण्डितकी इस प्रकार बात समाप्त भी नहीं हुई थी कि इतनेमें ही बनमार्गसे एक व्याघ्र बाहर आया और उसने पण्डितके ऊपर छलाँग लगाई और उसका रक्तपान करने लगा। व्याघ्रके चुंगलमें अपनेको फँसा देखकर पण्डित बोला—“घा-धातु क्वचिच्चतु खादनेऽपि वर्तते’ अर्थात् कभी-कभी घ्रा धातु ‘भक्षण’ अर्थमें भी व्यवहृत होता है, यह साधारण व्यावहारिक ज्ञान आज प्राप्त हुआ।” ऐसा कहते-कहते उसने अपने प्राण त्याग दिए।

जो लोग केवल जड़ीय पाण्डित्यके द्वारा शास्त्र एवं धर्मतत्त्वकी उपलब्धि करनेकी स्पृहा करते हैं, उनकी अवस्था व्याकरणके इस पण्डितकी भाँति ही होती है। जड़देहमें ‘मैं’ और ‘मेरा’ की बुद्धि

रखनेवाला जीव ही मायाबद्ध जीव है और यही मायाबद्ध जीव अपनेको सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण या पण्डित समझता है। दूसरी और जगत्के लोग भी उसे दिग्विजयी पण्डित ही क्यों न समझें अथवा जो बाह्य रूपसे त्यागी-संन्यासीका वेश ही क्यों न धारण करें, किन्तु यदि वह शुद्ध भावसे हरिभजन नहीं करता है, तो उसके लिए भी मृत्युका अतिक्रमण करना असम्भव है। जिनकी श्रीकृष्णके चरणोंमें भक्ति नहीं है, वे लोग अनेक देवी-देवताओंकी पूजा तथा वेद-वेदान्त, उपनिषद्, महाभारत, गीता, धर्मशास्त्र, पुराणादिका पाठ करने पर भी संसाररूपी मृत्युका अतिक्रमण नहीं सकते हैं। ये लोग पितृ-पुरुषकी पूजा और सन्ध्या-बन्दनादि करते हैं, यहाँ तक कि भगवान्‌का नाम भी ग्रहण करनेका अभिनय करते हैं। वे केवल अन्न-वस्त्र या भविष्यके सुखके लिए करते हैं अथवा जगत्के क्लेशोंसे बचनेके उद्देश्यसे ही करते हैं। जब तक हम श्रीभगवान्‌की इन्द्रियतृप्तिके उद्देश्यसे उनकी सेवा नहीं करेंगे, तब तक हमारा आत्मकल्याण साधित नहीं होगा। भगवान्‌की निष्कपट सेवाके अतिरिक्त आत्मकल्याणका और कोई उपाय नहीं है।

इसलिए कलियुग पावनावतारी, राधाभाव-द्युतिसुवलित श्रीचैतन्यदेवने भी व्याकरणके अध्यापनका परित्याग करनेकी लीलाका प्रकाश किया और व्याकरणके प्रत्येक सूत्र, वृत्ति और टीकाका तात्पर्य एकमात्र हरिनाम या कृष्णको ही प्रदर्शित किया। कृष्णनाम स्वयं कृष्ण ही है। कृष्णकी सेवा करनेसे ही पण्डित्य, कुलीनता एवं ऐश्वर्य आदि सभी गुणोंकी सार्थकता है। श्रीशङ्कराचार्यने भी कहा है—
भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढमते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे न हि न हि रक्षति इकृज् करणे॥

—चर्चपञ्जरिकास्तोत्र

हे मूढमते ! तुम गोविन्दका भजन करो, मृत्यु तुम्हारे सिरपर नाच रही है; व्याकरणका सूत्र एवं पण्डित्य मृत्युसे तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे।

श्रीशंकराचार्य असुरोंको मोहित करनेके लिए जगत्‌में अवतीर्ण हुए थे, यह शास्त्रोंमें कहा गया है। शंकराचार्यजीका ऐसा उपदेश होनेपर भी उनके शिष्य-सम्प्रदाय पण्डित्यके अहंकारसे कुर्तार्किक हो गए हैं। वे लोग गोविन्दकी नित्य भक्तिका अनुशीलन न कर, तर्क और पण्डित्य द्वारा गोविन्दको अनित्य वस्तु एवं उनकी भक्तिको भी अनित्य व्यापार प्रतिपादित करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। किन्तु, श्रीकृष्णचैतन्यदेवने 'कृष्णनाम' को सर्वकाल नित्य सत्य कहा है।

आविष्ट हड्या प्रभु करेन व्याख्यान।
सुत्र-वृत्ति-टीकाय, सकल हरिनाम॥
प्रभु बले,—सर्वकाल सत्य कृष्णनाम।
सर्वशास्त्रे 'कृष्ण' वर्झ ना बलये आन॥
हर्ता, कर्ता, पालयिता कृष्ण से ईश्वर।
अज-भव आदि, सब—कृष्णर किङ्कर॥
कृष्णर चरण छाड़ि' जे आर वाखाने।
वृथा जन्म जाय ता'र असत्य-वचने॥
आगम-वेदान्त आदि जत दरशन।
सर्वशास्त्रे कहे 'कृष्णपदे भक्तिधन'॥
मुग्ध सब अध्यापक कृष्णर मायाय।
छाड़िया कृष्णर भक्ति अन्य पथे जाय॥
करुणा-सागर कृष्ण जगत-जीवन।
से वक-वत्सल नन्दगोपेर नन्दन॥
हेन कृष्णनामे जार नाहि रति-मति।
पड़ियाओ सर्वशास्त्र, ताहार दुगति॥
दरिद्र अधम यदि लय कृष्णनाम।
सर्वदोष थाकिलेओ जाय कृष्णधाम॥
एइ मत सकल शास्त्रे अभिप्राय।
इहाते सन्देह जार, सई दुःख पाय॥
कृष्णर भजन छाड़ि' जे शास्त्र वाखाने।
से अधम कभु शास्त्र-मर्म नाहि जाने॥
शास्त्रे ना जाने मर्म अध्यापना करे।
गहभेर प्राय जेन शास्त्र वहि' मरे॥
पड़िया शुनिया लोक गेल छारे-खारे।
कृष्ण—महामहोत्सवे वज्जिला ताहारे॥"

(श्रीचैतन्यभागवत म. १/१४६-१५९)



सोचें, समझें और करें

—डा. सत्यपाल गोयल

आश्चर्य का विषय है कि प्रत्येक शरीरधारी जीवको मृत्यु से डर लगता है। फिर भी मनुष्य शरीरधारी जीव भूल जाते हैं कि एक दिन उसकी मृत्यु अवश्य होगी। संसारकी रचनामें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ रचना है, क्योंकि उसमें अच्छे-बुरेकी विवेचना करनेकी शक्ति है। भगवान्‌को भी मनुष्य शरीर प्रिय है।

सब मम प्रिय सब मम उपजाए।

सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥

(रामचरितमानस)

आखिर प्यारा भी क्यों न हो, भगवान्‌को भी जब विशेष लीला करनी होती है, तब भगवान्‌ भी अधिकतर मनुष्यका ही रूप धारण करते हैं। ऐसे अनुपम मनुष्य शरीरको पाकर भी जीव संसारके नाशवान पदार्थों, उपलब्धियोंके प्रति आसक्त होकर देव दुर्लभ मनुष्य जन्मको नष्ट कर देता है। तुलसीदासजीने तो इसे 'साधन धाम मोक्षकर द्वारा' कहा है, क्योंकि देवताओंको भी यदि भगवान्को पानेके लिए आराधना करना पड़े, तो उन्हें भी मनुष्य देह धारण करना होगा। मनुष्य शरीरमें ही साधन भजन सम्भव है। अन्य योनियाँ भोग योनियाँ हैं। देह कितना भी सुगठित और निरोग रहे, उसे एक-न-एक दिन नष्ट होना ही है। चीटीसे ब्रह्मा पर्यन्त अपने शरीरको छोड़नेके लिये विवश हैं। इस मरणधर्म संसारमें मृत्युसे कोई नहीं बचा है।

मृत्युको भूल जानेके कारण ही जीवके सामने सारे कष्टोंका अम्बार है। मृत्युको भूल जानेके का अर्थ यह है कि हमने अपनी इस नाशवान देहको ही आत्मा समझ लिया है और स्वयंको अमर मानकर निरन्तर योग, विलास, धन, मकान, जायदाद, कार, बंगला, सुन्दर स्त्री, पुत्र आदिके मोहमें पड़कर इन्हें प्राप्त करनेके लिये हम प्रति

मिनट इतने दुष्कार्य कर रहे हैं कि २०० योनियोंमें जाना पड़ेगा।

हजारों लोग मृत्युके मुहमें जा रहे हैं, यह जानकर भी शेष लोग अपनेको अमर समझे हुए हैं। भारतमें प्रति ६० सेकेण्डमें २१५ मनुष्य तथा विश्वमें १४०० मनुष्य मृत्युके मुँहमें जा रहे हैं। इसमें ऐसा भी कोई प्रत्यक्ष अनुबन्ध नहीं है कि कोई शरीरधारी १०० वर्ष या ५० वर्षका जीवन जीयेगा ही। अनिश्चितताकी ऐसी स्थितिमें भी मनुष्य भजनको कलके लिए टालता रहता है, जबकि कल क्या, अगले क्षणके जीवनकी भी गारन्टी नहीं है। मेरे विचारमें चाहे जो कुछ निश्चित हो, परन्तु अगले पल तक कोई जीवित रहेगा, इसकी कोई पक्की भविष्यवाणी नहीं कर सकता।

महात्मा युधिष्ठिरसे यक्षका भी यही प्रश्न था कि इस संसारमें सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है? उत्तरमें युधिष्ठिरजी द्वारा यही कहा गया कि लोग नित्य कालके ग्रास बन रहे हैं, फिर भी शेष बचे लोग ऐसा समझ रहे हैं कि वे नहीं मरेंगे—यही सबसे बड़ा आश्चर्य है।

मृत्युको भूलकर हम निरन्तर उनलोगोंके लिये असत्य, अन्याय और पापपूर्ण रास्तोंसे धन अर्जित करनेमें लगे हैं, जो पहले कभी हमारे साथ नहीं थे और आगे भी हमारे साथ रहनेवाले नहीं हैं, फिर भी उनके लिए जिस किसी प्रकारसे धन अर्जित करनेमें लगे। यह भी सुनिश्चित है कि पापकर्मसे अर्जित धन, जमीन, जायदादको भोगने में ही वे हमारा साथ देनेवाले हैं उसके लिये जो फल भोगना पड़ेगा उसमें वे साथ नहीं देंगे। अपने आश्रित स्त्री, पुत्र, पुत्री आदिका पालन-पोषण करनेका दायित्व तो अपना है। अब यह हमारे ऊपर है कि हम किस मार्गको अपनाकर उनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं। महर्षि

वाल्मीकिके पूर्व जीवनके इस प्रसङ्गने ही उनको घोर पापकर्मसे बचाकर महान संत बना दिया। लूटपाट, हत्या, डकैती, चोरी आदि करके अपने परिकरजनोंका पालन पोषण करना ही रत्नाकर डाकूका कार्य था। परन्तु, नारदजी द्वारा सही मार्ग दिखलानेपर उन्हें यथार्थताका बोध हुआ तथा वे मृत्युका अहसास कर राम नामके प्रभावसे महान संत बन गये।

माना कि एक व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवनमें अथक प्रयासकर ६० करोड़ रूपये एकत्रित कर लेता है। किन्तु, यह ध्रुव सत्य है कि उसे मरना है। सम्पूर्ण जीवनमें अर्जित ६० करोड़ रूपये ६० सेकेण्डके लिये भी मृत्युसे छुड़ाकर जीवन (आयु) की वृद्धि नहीं कर सकेंगे। यदि ये ६० करोड़ रूपये ६० सेकेण्डकी आयु भी नहीं बढ़ा सकते, तब इसे अर्जित करनेका लाभ ही क्या हुआ?

यदि भगवान् चाहे तो हमारे ६० सेकेण्डके भजनके बदले हमारी आयुको ६० करोड़ वर्षतक बढ़ा सकते हैं। परन्तु, हमें उनपर तिलके बराबर भी विश्वास नहीं है। मनुष्यको तो ५ रूपयेके ताले पर विश्वास है कि उसे दरवाजेपर लगा देनेके पश्चात् चोरी नहीं होगी; हमें ८०० रूपये वेतन पानेवाले वाहन चालकपर विश्वास है कि वह हमें मंजिल तक पहुँचा देगा, जब कि शराबके नशेमें चूर वह कहीं भी वाहनको टकराकर हमें मृत्युके हवाले कर सकता है, परन्तु भगवान्‌पर हमें विश्वास नहीं है।

मैं यह शपथपूर्वक कहता हूँ कि यदि हम भगवान्‌पर पक्का विश्वासकर ईमानदारीके साथ उनका स्मरण-चिन्तन, उनके नामका जप करते हुए सच्चरित्रताके साथ जीवन निर्वाह करें, तो भोजन, वस्त्र तथा सिर छिपानेके लिये आश्रय अवश्य मिलेगा।

मनुष्य सब कुछ याद रखता है, बड़े-बड़े ग्रन्थोंको याद कर लेता है, परन्तु जब भूलता है तो केवल मृत्यु और भगवान् श्यामसुन्दरको ही भूलता है। उन्हें भूलनेके कारण ही जीवके

सामने सभी प्रकारके कष्ट आते हैं। मूलतत्त्व भगवान्‌को भूल जानेसे ही जीव मायाके वशमें होकर इस देह-गेहमें आसक्ति रखकर स्वयंको पूर्ण स्वतन्त्र तथा कर्त्ता मानकर मनमाने ढंगसे शास्त्र विरुद्ध आचरण एवं कर्म करने लगता है तथा नाना प्रकारके दण्ड भोगनेको विवश हो जाता है।

अतएव मनुष्यमात्रको चाहिए कि वह मृत्युको याद रखकर नित्य भगवान्‌के नाम-रूप-गुण-लीला और धामका चिन्तन, स्मरण और जप करें। संत कवि नारायणने बहुत ही सहज ढंगसे इस सार तत्त्वको निम्न पंक्तियोंमें व्यक्त किया है—

दो बातोंको भूल मत जो चाहे कल्याण।

नारायण एक मौतको दूजे श्रीभगवान्॥

परन्तु, भगवान्‌को सदैव स्मरण करना इतना सहज नहीं है। निष्ठापूर्वक किसी सदगुरुके श्रीचरणोंमें आश्रय लेकर निरन्तर नामापराधसे रहित होकर नाम जप करनेका शुद्ध मनसे अभ्यास करना चाहिए। मन धीरे-धीरे भजनमें लगकर संसारकी आसक्ति छोड़ देगा।

पीलिया (जोण्डीस) के रोगीको मिश्री नीम की भाँति कड़वी लगती है, परन्तु यदि रोगी मिश्रीको निरन्तर चूसता रहे तो उसका पीलिया रोग दूर हो जायेगा। इसी प्रकार मायासे ग्रस्त जीवोंको भवरोग हो गया है। उन्हें पीलिया रोगीकी भाँति भगवान्‌के नामका जप कड़वा लगता है किन्तु संसारके समस्त रस प्रिय लगते हैं। यदि निरन्तर नाम जप किया जाये तो मन धीरे-धीरे शुद्ध होकर संसारके प्रति आसक्ति नष्ट हो जायेगी तथा शुद्ध नामका उदय हो जायेगा। उसकी पवित्र ध्वनि श्वांस प्रश्वास तथा नाड़ीकी गतिमें सुनायी पड़ने लगेगी।

जन्म जन्म मुनि यतन कराहीं।

अंत राम कहि आवत नाहीं॥

अतएव सभी मनुष्योंको मृत्युका स्मरणकर जागतिक व्यवहार करना चाहिए तथा निरन्तर कृष्ण नामका जप करना चाहिए—ये दो बातें ही सार हैं। □



प्रेमप्रदीप

—श्रील भवितव्विनोद ठाकुर

(गताङ्गसे आगे)

सबके निस्तब्ध होनेपर मल्लिक महाशय पुनः कहने लगे—बाबाजी महाशय ! कृपापूर्वक राजयोगकी व्याख्या करें।

तथास्तु कहकर योगी बाबाजीने कहना आरम्भ किया—दाशनिक और पौराणिक पण्डितगण जिस योगका अभ्यास करते हैं, उसका नाम राजयोग है। तान्त्रिक पण्डितोंने जिस योगकी व्यवस्था की है, उसका नाम हठयोग है। हठयोगमें मेरी अधिक रुचि नहीं है, क्योंकि इसके द्वारा वैष्णव धर्मका विशेष आधात होता है। शाकत और शैव तन्त्रसमूह तथा इन तन्त्रसमूहसे जो 'हठयोग-दीपिका' 'योग-चिन्तामणि' आदि ग्रन्थ निकले हैं, उनमें हठयोगका वर्णन है। इनमेंसे 'शिव-संहिता' और 'घेरण्ड-संहिता'—ये दोनों ग्रन्थ मेरे विचारसे सर्वोत्कृष्ट हैं। काशीधाममें रहते समय इन ग्रन्थोंको पढ़कर मैंने भी हठ योगियोंके समान थोड़ा अभ्यास किया था, किन्तु बादमें देखा कि इस योगमार्गसे केवल शारीरिक सामान्य फलका उदय होता है। इसमें समाधि सहज नहीं है।

संक्षेपतः हठयोगका तत्त्व इस प्रकार है— (क) सुकृत-दुकृत कर्मोंके द्वारा जीवका घटरूपी शरीर उत्पन्न हुआ है। कर्मवशतः इस घटमें स्थित जीवका जन्म-मरण होता है। (ख) यह घट आम-कुम्भस्वरूप है अर्थात् दग्धीभूत होकर पक्व नहीं होता। संसारसागर सर्वदा विपद्प्रवण है। हठयोगके द्वारा यह घट दग्ध होकर शोधित होता है। (ग) घट-शोधन सात प्रकारका है (१) शोधन— घट्कर्म द्वारा शोधन (२) दृढ़ीकरण—आसन द्वारा दृढ़ीकरण (३) स्थिरीकरण—मुद्रा द्वारा स्थिरीकरण

(४) धैर्य—प्रत्याहार द्वारा धैर्य (५) लाघव—प्राणायाम द्वारा लाघव (६) प्रत्यक्ष—ध्यान द्वारा प्रत्यक्ष और (७) निर्लिप्तीकरण—समाधि द्वारा निर्लिप्तीकरण साधित होता है।

(ग) (१) घटकर्म द्वारा शोधन— (अ) धौति (आ) वस्ति (इ) नेति (ई) लौलिकी (उ) त्राटक एवं (ऊ) कपालभाति—इनके द्वारा 'घट' शोधित होता है।

(अ) धौतिके चार प्रकार—

(१) अन्तधौति—वातसार, वारिसार, वहिसार एवं बहिष्कृति—ये चार प्रकारके अन्तधौति हैं।

(२) दन्तधौति—दन्तभूत, जिह्वाभूत, दोनों कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र—इन पाँच प्रकारके धौतिका नाम दन्तधौति है।

(३) हृद्धौति—दण्ड द्वारा, वमन द्वारा, वस्त्र द्वारा—ये तीन प्रकारके हृद्धौति हैं।

(४) मलधौति—दण्ड, अंगुली और जल-द्वारा मल शोधन करना चाहिए।

(आ) वस्तिके दो प्रकार—

(१) जलवस्ति—नाभि तक जलमें बैठकर आकुञ्चन-प्रसारण द्वारा जलवस्ति होता है।

(२) शुष्कवस्ति

(इ) नेति—एक वितस्ति (१२ अंगुल लम्बा) परिमाणका सूत्र नाकमें प्रवेश कराकर मुखसे बाहर करनेका नाम नेति है।

(ई) लौकिकी—अमन्द वेगसे मस्तकको दोनों ओर घुमानेका नाम लौकिकी है।

(उ) त्राटक—निर्मीलन और उन्मीलन त्यागकर अश्रुपात जैसे किसी सूक्ष्म लक्ष्यको देखनेका नाम

त्राटक है।

(अ) कपालभाति—यह तीन प्रकारका है—
(१) अव्युत्क्रम (२) व्युत्क्रम एवं (३) शीतक्रम।

(ग) (२) आसन द्वारा दृढ़ीकरण—बत्तीस प्रकारके आसनोंका वर्णन किया गया है। घट शोधित होनेपर उसके दृढ़ीकरणके लिए आसनकी व्यवस्था है। यही हठयोगकी द्वितीय प्रक्रिया है। सिद्धासन, पद्मासन, भद्रासन, मुक्तासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, सिंहासन, गोमुखासन, वीरासन, धनुरासन, मृतासन, गुप्तासन, मत्स्यासन, मत्स्यग्रासन, गोरक्षासन, पश्चिमोत्तासन, उत्कटासन, शकटासन, मयूरासन, कुकुटासन, कूर्मासन, उत्तान कूर्मासन, मण्डुकासन, उत्तान मण्डुकासन, वृक्षासन, गरुडासन, वृषासन, शलभासन, मकरासन, उष्ट्रासन, भुजङ्गासन एवं योगासन। किसी भी एक आसनका अभ्यास करनेसे कार्य सिद्ध होता है।

(ग) (३) मुद्राद्वारा स्थिरीकरण—आसनके अभ्यास द्वारा घटके दृढ़ होनेपर मुद्रासाधन द्वारा वह 'स्थिरीकृत' होता है। अनेक मुद्राओंमें पच्चीस मुद्राओंका उपदेश सर्वदा सर्वत्र दिया गया है। ये हैं—महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जालन्दर, मूलबन्ध, महाबन्ध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरणी, योनिमुद्रा, वज्रनि, शक्तिचालनी, तड़ागी, माण्डुकी, शास्त्री, अधोधारणा, उन्मनी, वैश्वानरी, वायवी, नभोधारणा, अश्वनी, पाशिनी, काकी, मातङ्गी और भुजङ्गिनी। एक एक मुद्राका एक एक विशेष फल है।

(ग) (४) प्रत्याहार द्वारा धैर्य—मुद्रा द्वारा घटके स्थिरीकृत होनेपर प्रत्याहार द्वारा घटका 'धैर्य' साधित होता है। मनको क्रमशः विषयसे खींचकर स्वर्थ करनेका नाम ही प्रत्याहार है।

(ग) (५) प्राणायाम द्वारा लाघव, नाड़ी शुद्धि, कुम्भक आदि तथा ध्यान, धारणा और समाधि—प्रत्याहार द्वारा मनके नियमित होनेपर धैर्य

साधित होता है। इसके बाद प्राणायाम द्वारा शरीरको 'लाघव' करना होता है। प्राणायाम करनेमें देश और कालका नियम है। आहार-सम्बन्धी भी अनेक विधियाँ हैं। कार्य आरम्भ करनेके समय इन सबको जानेंगे। पहले नाड़ीशुद्धि आवश्यक है। नाड़ीशुद्धिके बाद कुम्भक करना होता है। नाड़ीशुद्धिमें करीब तीन महीने लगते हैं। कुम्भक आठ प्रकारका होता है—सहित, सूर्यभेदी, उद्वायी, शीतली, तस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्छा और केवली। रेचक, पूरक और कुम्भक इन तीनों अङ्गोंके नियमितरूपसे साधित होनेपर बादमें केवल कुम्भक हो सकता है।

प्राणायाम द्वारा 'लाघव' होनेपर साधक पहले ध्यान बादमें धारणा और अन्तमें समाधि कर सकते हैं। इन सबका विशेष विवरण कार्यकालमें दृঁग।

इस प्रकार हठयोगकी साधनासे मनुष्य अनेक प्रकारके आश्चर्यकारी कार्य कर सकता है। यह तो फल देखनेसे ही विश्वास किया जाता है। तान्त्रिकोंने योगके अङ्गोंके विषयमें विभिन्न मत व्यक्त किए हैं। यथा—'निरुत्तर-तन्त्र' के चतुर्थ पटलमें कहा गया है—

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।

ध्यानं समाधिरेतानि योगङ्गानि वदन्ति षट्॥

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि योगके ये छः अंग हैं। इस प्रकार दत्तात्रेय आदिका मत भिन्न होनेपर भी प्रायः सभीके मतसे हठयोग मूलतः एकसमान है। विशेषतः धौति, नेति आदि षट्कर्म इतने दुरुह हैं कि सद्गुरुके समीप नहीं रहनेपर अनेक बार तो प्राण जानेकी भी सम्भावना है। जब मैं काशीसे बद्रीनाथ गया, तो किसी राजयोगीने मेरे ऊपर कृपाकर राजयोगकी शिक्षा दी थी। उस समयसे मैंने हठयोगका परित्याग कर दिया।

इतना कहनेके बाद बाबाजीने कहा—आज

इतना ही रहे, और किसी दिन राजयोगके विषयमें उपदेश दृঁगा। अन्तिम प्रहर समाप्त हो रहा है। मेरे मनमें एकबार पूज्यपाद पण्डित बाबाजीके आश्रम जानेकी इच्छा हो रही है।

जब योगी बाबाजी हठयोगकी व्याख्या कर रहे थे, तब उनकी गम्भीरताको देखकर नरेन बाबू बहुत श्रद्धाके साथ मनोयोगपूर्वक उसे श्रवण कर रहे थे। सुनते-सुनते बाबाजीके प्रति उन्हें थोड़ा विश्वास हुआ और अपने क्षुद्र ज्ञानके छिछलेपनका थोड़ा अहसास भी हुआ। दोनोंने ही कहा—आपके साथ तत्त्वकी आलोचना करनेसे हम बहुत आनन्दित हुए। अतएव हमलोगोंने कुछ दिन यहाँ रहनेका विचार किया है। आपकी कथाके प्रति हमारी विशेष श्रद्धा हुई है।

बाबाजीने कहा—भगवान् यदि कृपा करें, तो अतिशीघ्र आपलोग भी शुद्ध कृष्णभक्त होवेंगे, इसमें सन्देह क्या है?

नरेन बाबू बोले—पौत्रिलिक मत स्वीकार करना हमलोगोंके लिए असम्भव है। किन्तु, अभी ऐसा प्रतीत होता है कि वैष्णवलोग नितान्त सारहीन नहीं है, बल्कि ब्राह्मलोगोंकी अपेक्षा अधिक तत्त्वज्ञान विशिष्ट हैं। किन्तु, दुःखका विषय यह है कि तत्त्वज्ञान रहनेपर भी वे लोग मूर्तिपूजाका परित्याग क्यों नहीं करते? मैं यह नहीं समझ पाता हूँ। यदि वैष्णव धर्म अपौत्रिलिक हो जाय, तो यह ब्राह्म-धर्मके साथ एक हो जायेगा। हमलोग भी अनायास ही आपलोगोंको वैष्णव कहनेमें कुण्ठित नहीं होंगे।

बाबाजी अत्यन्त गम्भीर हैं। वे भलीभाँति जानते हैं कि अल्प वयस्कके लोगोंको किस प्रकार भक्ति-पथ दिखाया जाता है। अतएव उस समय

उन्होंने कहा—आज ये सब बातें यहीं रहें।

मल्लिक महाशय बाबाजीके ज्ञान और प्रेमसे मुश्किल होकर निस्तब्ध थे। विशेषतः मन-ही-मन हठयोगके वृत्तान्तको स्मरणकर यह चिन्ता कर रहे थे—अहो! मैं क्या ही मूर्ख हूँ। सामान्य ‘मेस्मेरिज्म’ (वशीकरण), थोड़ा हठयोगका वृत्तान्त और ‘भूत-विद्या’ के लिए मैडम लॉरेन्सके निकट मद्रास गया था। ऐसे महानुभव योगीवरका आज तक दर्शन नहीं किया। नित्यानन्द दासकी कृपासे ही मेरा शुभदिन आया है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

नरेन बाबू और आनन्द बाबू कई दिनों तक बाबाजीके साथ रहकर अनेक तत्त्वोंकी आलोचना करते रहे, इससे वैष्णव धर्मके प्रति उनकी बहुत श्रद्धा हुई तथा शुद्ध भक्तिके तत्त्वको बहुत कुछ समझ सके। वैष्णव धर्ममें इतनी श्रेष्ठ बातें हैं, यह वे पहले नहीं जानते थे। ‘थियोडोर पार्कर’ ने जिस शुद्ध भक्तिका उल्लेख किया है, उसे नरेन बाबूकी तीक्ष्ण बुद्धिने वैष्णव धर्ममें पाया। आनन्द बाबूने भी शुद्ध भक्तिके विषयमें अनेक अंग्रेजी ग्रन्थ पढ़े थे, किन्तु पुरातन वैष्णव धर्ममें उन बातोंकी अधिकांश आलोचना देखकर वे आश्चर्यान्वित हुए। किन्तु, दोनों ही इस विषयमें वितर्क करने लगे कि जो इतनी गहराई तक शुद्ध भक्तिकी आलोचना कर सकते हैं, वे किस प्रकार राम, कृष्ण आदि मानवोंकी पूजा और पौत्रिलिक धर्मका प्रचार करते हैं।

एक दिन योगी बाबाजीने कहा—चलें, आज हमलोग पण्डित बाबाजीका दर्शन करें। दिन ढलते ही सभी पण्डित बाबाजीकी गुफाकी ओर चल पड़े। (क्रमशः) □

तृतीय प्रभा समाप्त

प्रचार-प्रसङ्ग

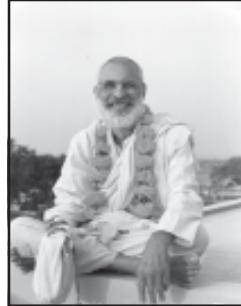
ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका विदेशोंमें प्रचार-संवाद

दिनांक ५ मईकी प्रातः बेलामें श्रील महाराज डच एयरलाइन्सके वायुयानसे हॉलेण्डके लिए रवाना हुए तथा यहाँके समयानुसार करीब २ बजे वहाँकी भूमिको अपने चरणरजसे अभिषिक्त किए। ७ मईको श्रील महाराजजीने एम्सटर्डमके एक स्कूल (PLATO SCHOOL) में वक्तुता दी।

इस सभामें वहाँके उच्चवर्गीय तथा समाजके प्रतिष्ठित लोग उपस्थित थे। पूरा कक्ष खचाखच भरा हुआ था। प्रारम्भमें जगन्नाथ प्रभुने सबका परिचय कराते हुए स्थानीय लोगोंको कार्यक्रममें शामिल होनेके लिए धन्यवाद दिया तत्पश्चात् वहाँके अध्यक्षने श्रील महाराजीसे कुछ बोलनेका आग्रह किया। श्रील महाराजजीके प्रवचनको सुनकर सभी लोग अत्यन्त प्रभावित हुए और कीर्तनके कार्यक्रममें तो सभी लोग झूमते हुए कीर्तन कर रहे थे। उन लोगोंने श्रील महाराजजीसे बारम्बार पुनः आनेका अनुरोध किया।

इस कार्यक्रमसे उस विद्यालयके प्राचार्य इतने प्रभावित हुए कि उस सभा कक्षमें ही श्रील महाराजजीका सुन्दर चित्र लगवा दिया।

दिनांक ८ मईको वहाँके एक विशाल AUDITORIUM में कार्यक्रमका आयोजन किया गया। कार्यक्रमके आरम्भमें वहाँके MAYOR ने श्रील महाराजजीके अभिवादनमें कुछ शब्द कहे।



तत्पश्चात् श्रील महाराजजीने गीताके ऊपर एक घण्टेसे भी अधिक समय तक प्रवचन दिया तथा वहाँके लोगोंका मन मोह लिया। कार्यक्रमके अन्तमें प्रसाद वितरित किया गया।

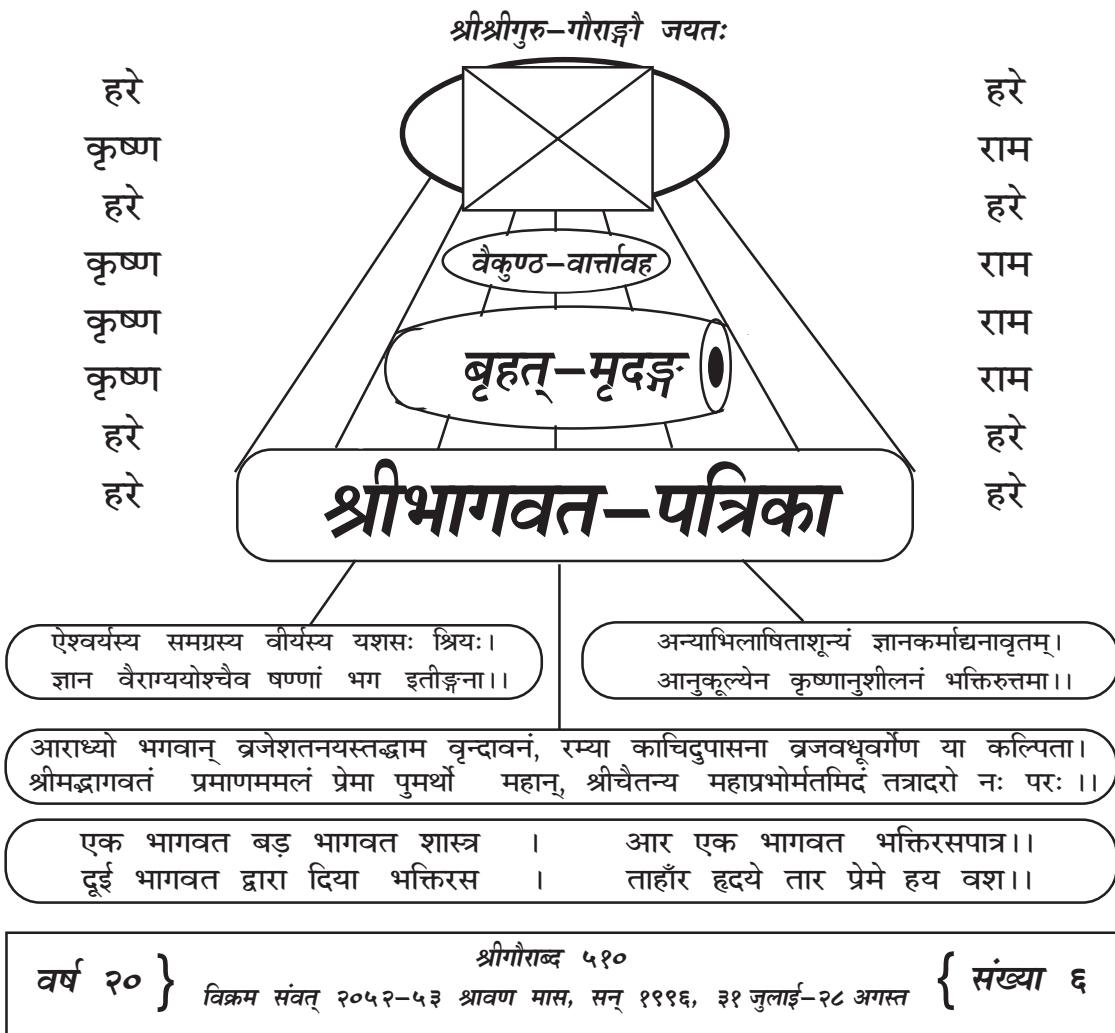
हॉलेण्डका अन्य कार्यक्रम मुख्यरूपसे विभिन्न भक्तोंके घरोंमें सम्पन्न हुआ, जिसमें स्थानीय लोग बहुत ही उत्साहसे कार्यक्रममें सम्मिलित हुए। दीक्षाका कार्यक्रम भी वहाँ सम्पन्न हुआ। दिनांक १५ मईको श्रील महाराजजी एम्सटर्डमसे लंदनके लिए रवाना हुए। वहाँके भक्तोंने अश्रुपूरित नयनोंसे बारम्बार पुनः आगमनका आमन्त्रण देते हुए उन्हें विदाई दी। लंदनमें श्रील महाराज BHAKTIVEDANTA MANOR में गए जो कि श्रील स्वामी महाराजके द्वारा स्थापित मन्दिर है।

वहाँ उन्होंने लगभग एक घंटे जीवतत्त्वके विषयमें पूर्वाचार्योंके विचारको सुनाया, जिससे लोगोंके मनमें इस विषयमें जो भ्रान्ति है, उसका समाधान हो सके। इंग्लेण्डमें भी प्रचार खूब अच्छा रहा। इंग्लेण्डसे पुनः हॉलेण्ड होते हुए श्रील महाराजजी ५ जूनको अमेरिका पहुँचे। संवाद लिखने तक उनका कार्यक्रम HUSTON में हो रहा है। विस्तृत विवरण अभी प्राप्त नहीं हो पाया है। यथासमय आगेके प्रचाराकी जानकारी अवश्य दी जायेगी।

□ हरि बोल !



—अनुभा प्रिन्टर्स, मथुरा



श्रीश्रीमद्गौरकिशोरनमस्कारदशकम्

[त्रिदण्डस्वामि-श्रीमद्भक्तिरक्षक-श्रीधर-महाराज-कृतम्]

गुरोगुरो मे परमो गुरुत्वं वरेण्य! गौराङ्गगणाग्रगण्ये।
प्रसीद भूत्ये दयिताश्रिते ते नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥१॥

हे गुरुके गुरो! मेरे परम गुरुदेव, आप श्रीगौरांगके प्रियजनोंके अग्रगण्य समाजमें
परम वरेण्य हो। अपने दयितदासके आश्रित इस भूत्यके प्रति प्रसन्न होवें। हे गौरकिशोर!
मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥१॥

सरस्वतीनाम-जगतप्रसिद्धं
प्रभुं जगत्यों पतितैकबन्धुम्।
त्वमेव देव! प्रकटीचकार
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥२॥

क्वचिद्द्वजारण्यविविक्तवासी
हृदि व्रजद्वन्द्वरहो-विलासी।
बहिर्विरागी त्ववधतवेषी
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥३॥

क्वचित् पुनर्गारवनान्तचारी
सुरापगातीरजोविहारी।
पवित्रकौपीनकरङ्गधारी
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥४॥

सदा हरेनाम मदा रटनं
गृहे गृहे मधुकरीमटन्तम्।
नमन्ति देवा अपि य महान्
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥५॥

क्वचिद्दुरुदन्तञ्च हसन्नटन्तं
निजेष्टदेवप्रणयाभिभूतम्।
नमन्ति गायन्तमलं जना त्वा
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥६॥

हायशोभक्तिविनोदबन्धो!
महाप्रभुप्रेमसुधैकसिन्धो।
अहो जगन्नाथदयास्यदेन्दो!
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥७॥

समाप्य राधाव्रतमुत्तमं त्व-
मवाप्य दामोदरजागराहम्।
गतोऽसि राधादरसख्यारिद्धं
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥८॥

विहाय सङ्गं कुलियालयानं
प्रगृह्य सेवां दयितानुगस्य।
विभासि मायापुरमन्दिरस्थो
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥९॥

हे देव! इस जगत्में पतितोंके एकमात्र बन्धु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती नामसे संसारभरमें प्रसिद्ध प्रभुको आपने ही प्रकाशित किया है। हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥२॥

आप कभी व्रजधाममें एकान्तमें वासकर व्रजकिशोर युगलके परमगोपनीय विलासपरायण हो, किन्तु बाहरमै कभी तो वैराग्य-विधि पालन करते हो और कभी अवधूत वेष ग्रहण करते हो। हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥३॥

कभी तो आप श्रीगौरसुन्दरकी क्रीडास्थलियोंसे युक्त वनमें विचरण करते हो, गङ्गातटकी सैकत भूमिपर भ्रमण करते हो। पवित्र कौपीन और करङ्ग (जलपात्र) को धारण करनेवाले हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥४॥

सर्वदा परम सुखमें मग्न होकर श्रीहरेनामका गान करनेवाले तथा घर-घरमें मधुकरी (मधुकर जैसे प्रत्येक फूलसे थोड़ा थोड़ा मधु संग्रह करता है, वैसी) भिक्षाको ग्रहण करनेवाले जिस महापुरुषको देवता लोग भी नमस्कार किया करते हैं, हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥५॥

अपनै इष्टदेवताके प्रणयमें मत्त होकर कभी नृत्य करनेवाले, कभी रोनेवाले, कभी हँसनेवाले तथा कभी उच्च स्वरसे गान करनेवाले आपको सभी लोग नमस्कार किया करते हैं। हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥६॥

हे महाशय! हे ठाकुर भक्तिविनोदके बन्धो! हे महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके एकमात्र प्रेमामृतके सिन्धो! हे वैष्णव सार्वभौम श्रीजगन्नाथके कृपापात्र चन्द्र! हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥७॥

परम उत्तम उर्जव्रतका उद्यापनकर श्रीदामोदरके उत्थान (आरम्भ) दिनका अवलम्बनकर आप श्रीराधिकाजीके प्रिय सखीत्वरूपी धनको प्राप्त हो। हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥८॥

कुलिया नगरके (आधुनिक नवद्वीप) निवासियोंका सङ्ग परित्यागकर अपने अनुगत श्रीदयितदासकी (श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरकी) सेवा स्वीकारपूर्वक श्रीधाम मायापुरके मन्दिरमें आप विराजमान हो। हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥९॥

सदा निमग्नोऽप्यराधपङ्क्ते
ह्यहैतुकीमेष कृपाज्व याचे।
दयां समुद्भूत्य विधेहि दीनं
नमो नमो गौरकिशोर तुभ्यम्॥१०॥

सर्वदा अपराध-पंकमें निमज्जित यह दास (रचयता) आपकी अहैतुकी कृपाके लिए प्रार्थना कर रहा है। इस दीन व्यक्तिको उद्धार कर दया करो। हे गौरकिशोर! मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ॥१०॥ □



प्रतिबन्धक

—ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

जीवमात्रकी प्राप्य वस्तु है प्रीति। किन्तु यदि वह प्रीति अनित्य हो तो उसे शुद्ध अखण्ड-प्रीति नहीं कह सकते हैं। प्रीति सभी चाहते हैं। प्रत्येक जीवमें हर समय प्रीति लाभ करनेकी चेष्टा देखी जाती है। पुत्र-शोकसे कातर माता प्रीति पानेकी आशासे शोक करती है, प्रीति पानेकी आशामें विलासप्रिय जीव नृत्य, गीत और वाद्यादिकी ओर दौड़ता है और प्रीतिके उद्देश्यसे इन्द्रिय-सुख प्राप्तिके लिए कितने ही शुभाशुभ कर्मोंमें प्रवृत्त होता है।

प्रीति-लाभ करना ही चेतनका धर्म है

आज भी मानवज्ञानमें प्रीति लाभ करनेके उद्देश्यके सिवा चेतनका कोई दूसरा धर्म लक्षित नहीं होता। प्रीतिको ही केन्द्र कर चेतनकी समस्त चेष्टाएँ होती हैं। अतः ऐसी प्रीति किस प्रकार पाई जाय, उसके अनुसंधानमें समग्र चेतन-जगत् सर्वदा व्यग्र है। जीव सर्वदा प्रीतिकी खोज करते हैं, अतएव नित्य, प्रीति ही जीवोंके लिए प्रार्थनीय वस्तु है।

नित्य-प्रीतिकी प्राप्तिमें बाधा

जहाँ प्रीतिका अनुसंधानकारी देहात्मबुद्धिके कारण अपने अस्तित्वको अनित्य समझता है, वहाँ उसकी लक्ष्य वस्तु भी अनित्य होती है। वद्ध जीवमें नित्य-प्रीतिका अभाव होता ही है। अतः उस अभावको मिटानेके लिए उनमें नित्य प्रीति प्राप्त करनेकी चेष्टा देखी जाती है। किन्तु वह प्रीति मायिक काल और सीमा द्वारा बाधित होनेके कारण बद्ध जीवोंमें अनित्य और विकृत रूपमें प्रतिफलित होती है। जीवोंकी प्रीति जब तक मायिक काल और सीमाके अधीन रहती है तब

तक नित्य-प्रीतिकी आकांक्षा रहनेपर भी उनमें वह (प्रीति) विशुद्धरूपमें प्रकाशित नहीं होती।

हरि-विमुख जगत् काल और सीमाके अधीन है

जगतकी सभी वस्तुएँ काल और सीमाके अधीन हैं, केवलमात्र भगवत्ता इनके अधीन नहीं है। काल और सीमा भगवानसे उत्पन्न होकर प्राकृत जगत्में भगवद्विमुख जीवोंको आच्छादित करते हैं। भगवान्की कथा पढ़नेपर भी हरिविमुख जीव भगवान्को देश और कालके अन्तर्गत खींच लाते हैं।

हरिविमुखता दूर होनेपर

भगवत्-स्वरूपकी अभिव्यक्ति

हरिविमुख जीव अपनेको बाहरी जगत्का भोक्ता समझते हैं। जब उनकी वर्हिमुखता दूर हो जाती है, तो उनका भोक्ता अभिमान दूर हो जाता है तथा वे मायिक काल और सीमाकी शृंखलासे मुक्त हो जाते हैं। हरिविमुख जीव अपना अनित्य और सीमाबद्ध ज्ञान परित्याग करने पर मायातीत भगवान्का स्वरूप अनुभव कर सकते हैं।

प्रीतिका अनुसंधान स्वभावगत है;

प्राकृत और अप्राकृत दो भेद

नित्य और असीम प्रीतिका अनुसंधान जीवमात्र करता है। यह उनकी स्वाभाविक वृत्ति है। इसे वे सब समय अनुभव करें अथवा न करें, उनका यह धर्म कभी भी उनका संग नहीं छोड़ता—उनसे अलग नहीं होता। जो लोग प्रीतिका अनुसंधान करते हैं, वे दो भागोंमें विभक्त हैं। एक अनित्य प्रीतिका अनुसंधान करता है और दूसरा नित्य प्रीतिका अर्थात् एक श्रेणीके लोग प्राकृत और

दूसरी श्रेणीके अप्राकृत होते हैं। अनित्य और सीमायुक्त धर्म प्राकृत होता है; नित्य और वैकुण्ठ (असीम) धर्म अप्राकृत होता है। प्राकृत हरि-विमुख व्यक्ति अनित्य सुखकी लालसामें प्रमत्त रहते हैं, किन्तु अप्राकृत सेवोन्मुख व्यक्ति केवल कृष्ण-सेवा-सुखमें ही सर्वदा निमग्न रहते हैं।

प्राकृत हरिविमुख व्यक्तियोंका स्वभाव—सत् वस्तुमें भोग्य-ज्ञान

प्राकृत व्यक्तिने हरिविमुख होनेके कारण अनित्य और मायिक विषयोंका आदर करना सीखा है। यहाँ तक कि वे अप्राकृत, भगवत्-उन्मुख व्यक्तियोंके सेव्य कृष्णचन्द्र, कृष्ण-भक्त और कृष्ण-भक्तिको भी अपना भोग्य समझते हैं। मुखसे अप्राकृत शब्द बोलकर अपनी अनित्य प्रीतिकी दूकान लगाया करते हैं। फल यह होता है कि नित्य प्रीतिमय विग्रह श्रीकृष्णचन्द्रके साथ उनका साक्षात्कार कभी नहीं होता। वे अप्राकृत कृष्ण, कृष्ण-भक्ति और कृष्ण-भक्तको केवल अनित्य प्राकृत पिण्डविशेष ही नहीं समझते अपितु अपनी भोग्य वस्तु भी समझते हैं।

अप्राकृत भक्तोंका स्वभाव—दुःसंग त्याग

अप्राकृत भक्तोंकी धारणा वैसी नहीं होती। जब प्राकृत व्यक्ति अप्राकृत धारणाको कुलषित करनेके अभिप्रायसे नित्य प्रीतिका ढोंग दिखलाते हैं तो भक्त उसका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करते हैं और वैसे संगको बिलकुल दुःसंग समझते हैं।

भक्त और अभक्तमें भेद

भक्त और हरि-विमुख अभक्तमें आकाश-पातालका अन्तर है। भक्त प्राकृत प्रतिबन्धक अर्थात् दुःसंगको परित्याग करता है। किन्तु अभक्त अनित्य प्रीतिकी (आपात् सुख) आशामें दुःसंग को छोड़ना नहीं चाहता, मादक द्रव्यका सेवन करनेवाला मादक द्रव्यका त्याग नहीं करना चाहता, स्त्रैण कभी भी अपनी सेव्य कामिनियोंका परित्याग नहीं कर सकता। दुःसंग छोड़नेमें असमर्थ होनेसे उनकी अनित्य विषयोंमें अभिनिवेश—अत्यासक्ति हो जाती है।

दुःसंगका परित्याग ही मङ्गलका मूल है

प्राकृत बन्धु-बांधवोंके संगमें रंग जानेसे, कृष्ण या कृष्ण-भक्त हमारे मात्र परम बन्धु हैं—ऐसी भावना नहीं होती। मतवाला व्यक्तिका मादक

द्रव्योंसे तथा स्त्रैण व्यक्तियोंके स्त्रियोंके हाथसे छुटकारा पाना बहुत ही कठिन होता है। किन्तु यह बात बिलकुल सत्य है कि जब तक दुःसंगका परित्याग न किया जाय तब तक कल्याण होनेकी कोई भी संभावना नहीं है।

अभक्तोंकी कुचेष्टासे समाजका अमंगल

प्राकृत अभक्त लोग बहुधा अपनी अपनी आसक्तियोंका परित्याग करना तो दूर रहे, आत्मवज्ज्वनाके उद्देश्यसे विविध प्रकारका कौशल विस्तार करते हैं। इस तरह वे कपटताका आश्रय लेकर समाजको ठगते हैं। भक्तोंका वेश धारणकर निरीह लोगोंको गाँजा-भाँग आदि मादक द्रव्य सेवन करनेकी शिक्षा देते हैं; विलासिता, इन्द्रिय-परायणता आदि दुराचार अप्राकृत भजनके अंग हैं—ऐसा प्रचार करते हैं।

अभक्तोंके प्रति अप्राकृत भक्तसमाजकी उपेक्षा

अप्राकृत भक्त समाज इस श्रेणीके अभक्तोंको कपटी और दुःसंग समझ कर उनकी उपेक्षा करता है। अप्राकृत होनेका अर्थात् अप्राकृत अवस्था प्राप्त करनेका उपाय है—अप्राकृत शास्त्र और अप्राकृत भक्तोंकी वाणी श्रवण करना, किन्तु विषयोंमें आसक्त प्राकृत पाठक या श्रोता प्राकृत दुःसंगपूर्ण बुद्धिसे उसे दूषित कर देते हैं। वे अपना अपना एक दल खड़ा कर निरपेक्ष सत्यको ढककर हरि विमुखता संग्रह करते हैं।

प्राकृत सहजियाकी अनित्य-प्रीति नित्य-

प्रीतिकी प्राप्तिमें बाधक है

नित्य प्रीति, नित्य वैकुण्ठ वस्तु कृष्णचन्द्रमें ही अवस्थित है। नित्य कृष्ण-भक्त निष्कपट होकर उस नित्य प्रीतिमय-विग्रह कृष्णकी सेवा करते हैं। कपट भक्त अपनी अपनी आसक्तियोंका परित्याग नहीं करते वरन् अनित्य वस्तुको कृष्ण-वस्तुकी संज्ञा देकर नित्य प्रीति लाभ करना चाहते हैं—यह उनकी केवल दुराशा है। अप्राकृत विषयोंका अनुसंधान करते हैं और प्राकृत दुःसंग करते हैं—ऐसी चेष्टाको अप्राकृत नहीं कहा जा सकता। काठका सिंह जैसे हिंसा करनेमें असमर्थ होता है, दो गायोंके परस्पर संयोगसे जैसे वत्सकी उत्पत्ति असम्भव है, कृत्रिम सोनेका असली सोनेके साथ जैसे साम्य नहीं होता, वैसे ही प्राकृत सहजिया (कपट वेश धारी अभक्त) चाहे कितना भी न

क्यों भक्तिके अंगोंको अपनी कर्म चेष्टा द्वारा भोग करना चाहे, वे कृष्ण-प्रीति लाभ नहीं कर सकते।

कर्म, ज्ञान और अन्याभिलाष कृष्णप्रेमकी प्राप्तिमें बाधक हैं

प्राकृत कर्मोंके द्वारा फल भोग प्राप्त होता है, प्राकृत ज्ञान द्वारा फल-त्याग होता है और यथेच्छाचारसे अनित्य इन्द्रिय-सुख प्राप्त होता है। किन्तु अपाकृत हरि-भजनके प्रभावसे कृष्णप्रेमका उदय होता है। अभक्तिकी चेष्टा अथवा कृत्रिम हरि-सेवा द्वारा कभी भी कृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नहीं हो सकती। जैसे आँख और कानमें खाद्य द्रव्य देनेसे वह पाचनस्थलीमें नहीं पहुँचता है तथा क्षुधा निवृत्ति नहीं होती है; वैसे ही अप्राकृत सेवोन्मुखताके सिवा भगवान्की सेवा होनेकी संभावना नहीं है। प्राकृत प्रतिबंधक रहनेसे जीव कभी भी कृष्ण की सेवा नहीं कर सकता। यहाँ प्रतिबंधकके सम्बन्धमें श्रीमद्भगवत्के निम्नलिखित श्लोककी आलोचना करना अप्रासंगिक न होगा।

*यस्यात्मबुद्धिः कुण्ठे प्रिधातुके,
स्वधीः कलत्रादिषु भौम इन्द्र्य धीः।*

*यत्तीर्थ बुद्धिः सलिले च कर्हिचति-
जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः॥*

(श्रीमद्भा० १०/८४/१३)

अर्थात्, जो मनुष्य इस स्थूल शरीरमें आत्म-बुद्धि अर्थात् वात, पित्त और कफ इन तीन धातुओंसे बने हुए शवतुल्य शरीरको आत्मा, स्त्री-पुत्र और परिवार आदिको ही अपना, मिट्टी, पत्थर, काष्ठादि पार्थिव विकारोंको ही इष्टदेव (ईश्वर) मानता है एवं जलको ही तीर्थ समझता है, भगवद्ब्रह्मोंको नहीं, वह मनुष्य होनेपर भी पुश्यओंमें भी नीच गदहा ही है।

प्राकृत सहजिया कृष्ण-भक्त नहीं है

गदहा खाद्य-द्रव्योंका बोझ ढोता है, कलछी भोजन परोसती है, किन्तु वे उनका आस्वादन नहीं कर सकते। जैसे काँचके वर्तनमें बन्द मक्खी बार-बार चेष्टा करनेपर भी काँचको पार नहीं कर सकती, वैसे ही प्राकृत सहजिया भी नित्य-प्रीति प्राप्त नहीं कर सकते।

प्राकृत सहजिया बोझ ढोने वाले गदहे हैं, वे लोग वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे

बने इस प्राकृत शरीरको ही अप्राकृत आत्मा मानते हैं; अपने भोग्य स्त्री-पुत्र आदिको अप्राकृत समझते हैं; विष्णु विग्रहको प्राकृत मानते हैं एवं उनका विश्वास है कि जड़ पदार्थ भी जल आदि प्राकृत वस्तुओंके संयोगसे चित् हो जाता है। प्राकृत व्यवधान रहने पर अप्राकृत वस्तुकी उपलब्धि कभी नहीं होती। दह, धन, उच्चकुलमें जन्म ग्रहण करनेका सुख, लोभ, मायाधीश और मायाके अधीन जीवोंको बराबर समझना आदि प्राकृत प्रतिबन्धकसमूह परम प्रीति विग्रह श्रीकृष्णका प्रेम लाभ करनेमें बाधा देते हैं।

सहजियाके प्रति उपदेश

भाई जीव! श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती गोस्वामीने भी तुमको एक दिन कहा था—

दन्ते निधाय तृणकं पदयोनिपत्य

कृत्वाच काकुशतमेतदहं ब्रवीमि।

हे साधवः सकलमेव विहाय दूराद-

गौराङ्गचन्द्रचरणे कुरुतानुरागम्॥

(श्रीचैतन्यचन्द्रमृतम्—८/९०)

हम भी तुम्हें कहते हैं कि समस्त अभिमानोंका परित्याग करो, प्राकृत सम्मानकी आशा छोड़ दो, ऐसा करनेसे तुम नित्य अप्राकृत कृष्णनाम भजन कर सकोगे।

शुद्ध कृष्णनामकी सेवा करनेसे

नित्य प्रीति लाभ होती है

दस प्रकारके नामापराधोंसे दूर रहो, तभी तुम कपटताशून्य शुद्ध स्वरूपतत्त्वज्ञानरहित भगवन्ना-मोच्चारणरूप नामाभास कर सकते हो। इस प्रकार प्राकृत प्रतिबन्धकके हाथसे मुक्त होकर कृष्णनाम-सेवा करते-करते नित्य कृष्णप्रीति लाभ कर सकते हो। कीर्तन प्रतिबन्धकहीन होने पर ही नित्य प्रीति लाभ होती है। उस समय प्राकृत काल और सीमा वैकुण्ठ-वस्तु नामको तुम्हें नित्य प्रीति प्रदान करनेमें बाधा नहीं दे सकते।

भाई जीव! वृथा समय नष्ट न करो। कूप-मण्डूककी तरह अप्राकृत राज्यको प्राकृत न समझो, यदि ऐसा करोगे तो तुम्हीं ठगे जाओगे, अप्राकृत वस्तुकी मर्यादाकी हानि किसी प्रकार न कर सकोगे। □



धर्म और विज्ञान

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

किसी ईसाई विद्वान्‌ने एक अँग्रेजी पत्रिकामें लिखा है—

“वर्तमान वैज्ञानिक गवेषणाके साथ धर्मभावके सामन्यस्य जिस प्रकार उच्च जीवनाभिलाषियोंके निकट गम्भीर चिन्ताका विषय बना हुआ है, वैसे अन्य कोई विषय नहीं। क्या सत् है और क्या असत् है—इसे निर्धारण करने वाली बुद्धिके साथ जड़मूलक सिद्धांतका किस प्रकार सौहार्द स्थापन किया जाय तथा मनुष्यका उच्च जीवन अर्थात् अप्राकृत जीवन जड़ विज्ञान द्वारा निर्द्धारित मानवके जड़मूलक सिद्धांतके साथ किस तरह स्वीकार किया जाय—ये दो प्रश्न तत्त्व-जिज्ञासुओंके हृदयको अवश्य उद्दिग्न करते रहेंगे। पारमार्थिक बुद्धि और जड़ वैज्ञानिक बुद्धि—इन दोनोंके बीच विरोध है, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। जीवन-तत्त्व-निर्णयके अवसरपर यह विवादास्पद भाव नित्य वर्तमान है। प्रेमकी जगह ज्ञानके स्थापन करनेकी इच्छासे विरोधी भावकी उत्पत्ति होती है।

जीव जड़वस्तुसे पृथक् तत्व है तथा वह इच्छाशक्तिको परिचालित करनेमें समर्थ है

मनुष्य जीवनके जड़मूलत्व साधकरूपसे सत्-असत् विचार और धर्म भावके साथ उसका क्या सम्बन्ध है—यह गवेषणा द्वारा स्थिर किये जानेसे कुछ लाभ न होगा, ऐसी बात नहीं। प्रत्युत समस्त मानव जातिके लिए ऐसी गवेषणा नितान्त आवश्यक है। सब कालोंमें एवं सब देशोंमें आज तक जितनी प्रकारकी सामाजिक व्यवस्थाएँ हुई हैं, वे सभी एक-न-एक विश्वासके आधार पर स्थित हैं। वह विश्वास यह है कि मानव एक

आध्यात्मिक पदार्थ है एवं अपनी स्वतंत्र इच्छाके अनुसार मानसिक और शारीरिक शक्ति परिचालित करनेमें समर्थ है।

आधुनिक विज्ञान इस विश्वासको दूर कर उसके स्थानपर विश्वाससे विलक्षण एक दूसरे विश्वास की स्थापना करना चाहता है। उनका विचार यह है कि मानसिक एवं शारीरिक शक्तियोंके समूहसे किसी जड़ यन्त्रकी तरह मनुष्यकी सृष्टि हुई है। इन दो भावोंमें अत्यन्त भेद दिखाई पड़ता है। आधुनिक विज्ञान सम्मत विचार स्वीकार करनेसे धर्म और सत्कार्यका प्राचीन मन्दिर केवल भग्न ही नहीं होता बल्कि एक भित्तिहीन चित्रकी तरह उनकी प्रतीति ही तिरोहित हो जाती है। सत्-असत् चिन्ता, विचार, दया, आशा और क्षमा—जो अभी हमारी सत्ता पर गम्भीर सत्यरूपमें प्रतीत हो रहीं हैं, एक ही समय आकाशकुसुमकी तरह निराधार प्रतिच्छायाके रूपमें पलट जाएँगी। सत् लोक और असत् लोक—इन दोनों के बीच पार्थक्य बुद्धि एकवार ही उठ जाएँगी। नरभक्षी राक्षस और परोपकारी यीशुख्रीष्ट दोनों ही भौतिक पदार्थोंसे उत्पन्न जड़-संतान प्रतीत होते हैं। वे दोनों ही मध्याकर्षण शक्ति द्वारा पर्वत शिखरसे गिरे हुए पत्थरके टुकड़ेकी तरह जड़ वस्तु विशेष हो पड़ते हैं। उनकी प्रसंशा और निन्दा तथा उनके प्रति राग-द्वेष कुछ भी आवश्यक नहीं होता। डार्विन, टिप्पडल, हक्सले प्रभृति आधुनिक वैज्ञानिकोंके ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे प्रतीत होता है कि इनका मत ऐसे विकृत सिद्धांतोंसे डरता नहीं बल्कि इनलोगोंने इन विकृत सिद्धांतोंका यथेष्ट विरोध किया है।

**तर्क क्षेत्रमें विज्ञान और आत्माके परस्पर
अविरोधी होनेपर भी प्रतिद्वन्द्वता**

मानव जीवनके अन्तरंग रहस्यका निर्णय करते समय जड़मूलक मतवादके उपर सम्पूर्णरूपसे निर्भर रहनेसे पूर्वोक्त सिद्धांतसे रक्षा पानेका कोई उपाय नहीं। इस सिद्धांतके अनुसार मनुष्य केवल भौतिक पदार्थोंसे उत्पन्न एक यंत्र विशेष है—यही मान लेना होता है। ऐसा न माननेसे जड़वादियोंका तर्क समाप्त हो जाता है, वे अग्रसर नहीं हो सकते। ऐसे स्थलोंपर सरल जिज्ञासुओंका कर्तव्य होता है कि वे जड़वादियोंको उनके सिद्धांतोंकी समीक्षाके लिए बाध्य करें और उनसे स्पष्ट शब्दोंमें—‘हम सत्य कहते हैं या नहीं’—उत्तर ग्रहण करें।

जड़वैज्ञानिककी अपेक्षा आत्मतात्त्विक श्रद्ध्ये है
कुछ वर्ष पहले लूएलिन डेविससे अपने लेखमें लिखा है—

मान लिया जाए कि विज्ञान और आत्माके तत्त्वोंमें विरोध न होनेपर भी परस्पर प्रतिद्वन्द्वता है। अब विचार करना है—इनमेंसे हमारी श्रद्धापर किनका विशेष अधिकार है। दोनोंका समान सम्मान करनेसे हम विशेष सन्तुष्ट होते, किन्तु हम ऐसा नहीं कर सकते। जब जड़वादियोंने विज्ञानको अधिक सम्मान देना स्वीकार कर लिया है, तब हमारा ऐसा प्रश्न करना अनधिकार चर्चा नहीं। उनका विज्ञान उनके अप्राकृत जीवन सम्बन्धी किसी भावका आभास नहीं देता, केवल क्रमोत्पत्ति, शक्तिकी रूपान्तरता, स्वभावकी गति और सिद्धक्रम—इन्हीं शब्दोंको व्यक्त करता रहता है। इन भावोंके प्रति वे स्वयं ही श्रद्धा प्रकाश करते हैं। वे इन्हीं भावोंको सुन्दर तत्त्व कहकर व्याख्या तो करते हैं, पर खुद ही वे कुछ समझते नहीं। वे इन तत्त्वोंके अनुशीलनकी चेष्टाके अनेकों प्रकारके अनुष्ठान किया करते हैं। ईसाई

धर्मालम्बी हम ऐसे व्यक्ति—विशेषके सिद्धान्त—वाक्योंका अनादर नहीं करते, किन्तु जड़वादियोंका विज्ञान जब सामने आता है, हम उसके प्रति कुछ विशेष श्रद्धा प्रकाश नहीं कर पाते; हम स्पष्टही कह देते हैं कि इन विज्ञान—वादियोंकी वैशारदी—बुद्धिकी अपेक्षा आत्मतत्त्वके प्रति हमारी भक्ति अधिक है।

आत्मतत्त्व पारमार्थिक उद्धर्गति सम्पन्न है

हमारी विवेचनाका मूल प्रश्न तो यह है कि वे वैकुण्ठसे प्रेरित आलोकका अवलम्बन करेंगे अथवा नहीं? बात ऐसी है कि आप विज्ञानके अनुगत होंगे या आत्मज्ञानके? विज्ञान विगत व्यापारों और निम्नगत व्यापारोंको लक्ष्य करता है, किन्तु आत्मतत्त्व जीवोंके भावी व्यापार और उद्धर्गतिके प्रति दृष्टि रखता है। विज्ञान इन्द्रियोंके द्वारा गृहीत कार्योंको अनुसंधानपूर्वक देखता है कि वस्तुओंका क्रम—विवर्त किस प्रकार हुआ है। किन्तु आत्मज्ञानी पारमार्थिक जीवनसे अमृत—पान करता हुआ काव्य और शिल्पकी रचना करनेमें समर्थ होता है।

लू—एलिन डेविसका विचार शुद्ध नहीं

लू—एलिन डेविसकी बातें सुन्दर रूपसे सज्जित होने पर भी इनमें बहुतसे वितर्कोंके स्थल हैं। इसमें सर्वत्र ये ही विचार लक्षित होते हैं। यद्यपि आत्मज्ञान विज्ञानकी अपेक्षा काव्य, शिल्प, तथा सामाजिकभाव और धर्मभावसे उत्पन्न होनेके कारण हमारी श्रद्धाके ऊपर अधिक दावा कर सकता है तथापि जीवनका वैज्ञानिक भाव हमारी श्रद्धाके ऊपर कुछ न कुछ दावा अवश्य रखता है, क्योंकि यह सत्य है।

वैज्ञानिक सिद्धान्त अप्रमाणित है,

अतः वह हेय है

हम ऐसा स्थिर करते हैं कि वैज्ञानिक सिद्धान्त हमारी श्रद्धाका पात्र होना तो दूर रहा, नितान्त

हेय है। क्योंकि वैज्ञानिक जिसे सिद्धान्त कहते हैं, उसमें विज्ञानका कुछ भी लक्षण नहीं। उसमें कुछ ऐसी बातें हैं जो न तो प्रमाणित हैं और न प्रमाणके योग्य ही हैं। देखिये, नव्य वैज्ञानिकोंकी असल बात क्या है? उनका असल विचार यह है कि मनुष्यकी आध्यात्मिक सत्ता नहीं। अतः उनके चरित्र और इतिहासके क्रमोन्ततिके सम्बन्धमें उसका कोई कार्य नहीं। किसी ईसाई विद्वानका कहना है कि यीशु-प्रेमके द्वारा मैं ऐसे कार्योंको किया करता हूँ, किन्तु उन्नीसवीं शताब्दीके क्रमोन्ततिकी साधना करने वाले वैज्ञानिक कहते हैं कि सचमुचमें बात ऐसी नहीं। ऐ ईसाइयों, तुमलोगोंका वैसा विचार केवल शुद्धभ्रम है। तुमलोगोंका यीशु-प्रेम सामाजिक कर्मोंका मुख्य कर्ता नहीं। एक वैद्युतिक संवाददाताकी तरह ईसाइयोंका प्रेम सांसारिक कार्योंका नितान्त गौण कर्त्तामात्र है। सुख-दुःख, अश्रु-हस्य, विश्वास, आशा, उच्चाभिलाष तथा प्रेम—ये ही सामाजिक कार्योंके गौण नियन्ता हैं।

क्रमोन्ततिवादका खण्डन

न्यायानुसार वैज्ञानिकोंका यह विचार सिद्धान्तरूपसे ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु अब हम देखें कि मानव जातिके विश्वासके ऊपर इस प्रकारके दावेका कारण क्या है? आजकल जिसे वैज्ञानिक जगत् कहा गया है, वह डार्विनके क्रम-उत्पत्ति सिद्धान्तके चरणोंमें इतनी दूर तक साष्टांग प्रणत है कि “डार्विनका सिद्धान्त एक मतवादमात्र है,” इसे दिखलानेके लिए एक विशेष साहसकी आवश्यकता है। डार्विनके परम भक्तोंने जिन-जिन विचारोंको स्वीकार किया है, उनके द्वारा ही स्पष्ट

प्रतीत होता है कि आज भी उनके पास प्रमाणोंका अभाव है। केवल यहीं तक नहीं, उन्हें प्रमाणोंका सदैव अभाव रहेगा। एकजातीय वस्तुकी अनेकजातीय आकृति और वर्ण कृत्रिम उत्पत्ति द्वारा हो सकता है,—यह देखकर वे स्थिर करते हैं कि किसी मूल आकारसे आकार वैचित्र्यकी उत्पत्ति होती है। प्रकृति कभी भी सर्व प्रकारसे समान दो वस्तुओंको उत्पन्न नहीं करती। एकही वृक्षके अगणित पत्तोंमें एक पत्तेके समान दूसरा एक भी पत्ता नहीं दीख पड़ता। कोई भी जन्तु सर्व प्रकारसे अपने माता या पिता के समान नहीं होता। ऐसे अतात्त्विक क्रमको देखकर माली, पशु-पालक या उनकी तरह बहुतेरे लोगोंने परिश्रम और यत्नके साथ एक जातीय वस्तुसे अनेक प्रकारकी आकृतिशाली वस्तु अर्थात् उद्घिज और जन्तुओंको उत्पन्न किया है। किन्तु अभी तक दो जातीय वस्तुओंको एकत्रकर पृथक् एक तृतीय जातीय वस्तुका निर्माण करनेमें समर्थ नहीं हो सके हैं। मानव-सृष्टिके बाद क्रम-उत्पत्तिका कोई कार्य-लक्ष्य नहीं किया जाता, इसे क्रम-उत्पत्तिवादी भी अस्वीकार नहीं कर सकते। वे कहते हैं कि बहत दिन व्यतीत हुए बिना एक नयी जातिकी उत्पत्ति नहीं होती, अतएव एक नयी जातिके दर्शनकी अभिलाषा इतना शीघ्र करना उचित नहीं। अब बात ऐसी हुई कि प्रति-दिन, प्रति-घन्टा और प्रति मुहूर्तकी घटनाओंमें विश्वास परित्यागकर एक अदृष्ट-फलरूपी मतवादको स्वीकार किया जाय, जिसका स्वभाव विचार करनेसे उसे प्रमेय (जो प्रमाण द्वारा प्रमाणित हो) नहीं कहा जा सकता।

□ (क्रमशः)



गुरु-सेवा

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भवित्वेदान्त नागयण महाराज

श्रुति, स्मृति पुराणादि शास्त्रोंमें सर्वत्र ही आचार्यकी सेवाका माहात्म्य बतलाया गया है। सद्गुरुकी सेवाके अतिरिक्त बद्धजीवकी अनर्थ-निवृत्ति तथा भगवत्-सेवाकी प्राप्तिके लिए दूसरा मार्ग नहीं है। शास्त्रोंमें आचार्यको भगवत्-प्रकाश या आश्रय-जातीय भगवत्-विग्रहके नामसे वर्णन किया गया है। गुरुदेव भगवान्‌से अभिन्न हैं। वे जीवोंको नित्य-सेवाकी शिक्षा देनेके लिए संसारमें सेवक-विग्रहके रूपमें प्रकट होते हैं। उनका आश्रय करनेसे जीव विषयस्वरूप भगवान्‌को पा सकता है। सद्गुरुकी सेवा करते-करते बद्ध-जीवके हृदयकी अविद्या-राशि दूर हो जाती है, चित्त-दर्पण निर्मल हो जाता है और तब गुरुकी कृपासे जीवके निर्मल हृदयमें परमश्रेयः करनेवाली ब्रह्मविद्याका उदय होता है। जब तक जीवके हृदयमें विषयकी कामना रहती है, तब तक वह सद्गुरुके पास पहुँच ही नहीं सकता। मुण्डक श्रुतिका वचन है—

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो
निर्वद्मायान्नास्त्यकृतः कृतेन्।
तिद्वज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्
समित्याणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्॥

अर्थात्—कर्म द्वारा अर्जित स्वर्गादि लोकोंको असार समझकर तथा यह समझकर कि नित्य भगवद्भाम अनित्य कर्मोंके द्वारा प्राप्त नहीं होता, ब्राह्मण कर्मफलसे मनको हटायें। इस प्रकार भोगकी कामनासे वैराग्य-प्राप्त पुरुष भगवद्विज्ञान (प्रेमभक्तिके साथ ज्ञान) प्राप्त करनेके लिए वेदका तात्पर्य जानने वाले, भगवत्-सेवापरायण सद्गुरुके चरणोंमें विनीतभावसे शरण ले। श्वेताश्वतर श्रुतिका भी कहना है—

यस्य देवे पराभक्तिर्था देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

अर्थात्—जिस साधककी भगवान्‌में पराभक्ति होती है तथा जिस प्रकार भगवान्‌में भक्ति है, उसी प्रकार अपने श्रीगुरुदेवमें भी शुद्धाभक्ति होती है, उस महात्माके हृदयमें ही ये बतलाए हुए विषय अर्थात् श्रुतियोंके रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतके मध्य २२ वें परिच्छेदमें कहा है,—

ताते कृष्ण भजे करे गुरुर सेवन।
माया जाल छूटे, पाय श्रीकृष्ण चरण॥

अर्थात्—त्रिगुणात्मिका अपार-मायाके हाथसे उद्धार पाकर नित्य भगवत्-सेवा प्राप्त करनेके लिए गुरुकी सेवा और उनके आनुगत्यमें भगवत्-भजन करनेके अतिरिक्त और कोई दूसरा उपाय नहीं है। सद्गुरु शिष्यकी भुक्तिकी और मुक्तिकी कामनाओंका विनाशकर एकमात्र अहैतुकी सेवाकी शिक्षा देते हैं। जहाँ गुरु शिष्यको अपने सुखकी सामग्री समझते हैं और शिष्य भी अपनी इन्द्रियोंके सुखके लिए गुरुके पास जाते हैं, वहाँ गुरुकी सेवा है ही नहीं। ऐसे गुरु और शिष्यका सम्बन्ध नरकके द्वारके समान है। किन्तु सद्गुरुकी सेवा वैकुण्ठ-द्वारके समान है। गुरु नित्य भगवत्-सेवामें संलग्न रहते हैं अतएव वे शिष्यको भी भगवान्‌की सेवामें ही नियुक्त करते हैं। भगवत्-सेवाके अतिरिक्त सद्गुरुके लिए और कोई कार्य नहीं। अतः एकमात्र सद्गुरुकी सेवा करनेसे ही गुरुसेवा और भगवत्-सेवा दोनों ही एक साथ हो जाती है। प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य श्रीरामानुजका नाम

सभी जानते हैं। उन्होंने मायावादरूप अन्धकार और कर्मियोंके स्मार्तवादके बवण्डरसे जीवोंका उद्धार कर जगत्‌में भक्त और भगवान्‌के सेवामार्थुर्यका प्रचार किया था।

एक बार वे अपने शिष्योंको साथ ले श्रीशैलपर गये। सब लोग ऊँचे स्वरसे हरिनामका कीर्तन करते हुए आगे बढ़े। दो-तीन दिनके बाद ये लोग एक ग्राममें आ पहुँचे। उस गाँवमें श्रीरामानुजके दो शिष्य रहते थे। इनमें एक धनशाली था और दूसरा दरिंद्र। धनशाली शिष्यका नाम यज्ञेश और दूसरेका नाम वरदाचार्य था। श्रीरामानुजने उस धनाढ्य शिष्यके यहाँ शिष्योंको साथ अपने आनेका समाचार देनेके लिए अपने दो शिष्योंको भेज दिया। यज्ञेश श्रीगुरुदेवके आनेका समाचार सुनकर आनन्दके मारे विह्वल हो उठे। वे घरमें जाकर घबरा उठे कि गुरुका स्वागत कैसे करें। वे यह भी भूल गये कि गुरुदेवके दो शिष्य बाहर दरवाजे पर उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीरामानुजके दोनों शिष्य यज्ञेशके ऐसे व्यवहारसे बड़े दुःखी हुए और लौटकर गुरुके निकट सब हाल कहा। श्रीरामानुज भी धनाढ्य शिष्यके व्यवहारसे बहुत ही दुःखी होकर अपने शिष्योंके साथ गरीब वरदाचार्यके घर चले गये।

वरदाचार्य नित्य सबेरे भिक्षाके लिए बाहर निकलते और सारे दिन भिक्षा कर जो कुछ पाते, उसे गुरु और नारायणको निवेदितकर बाकी आप ग्रहण करते थे। उनकी लक्ष्मी नामकी एक बड़ी ही सती और रूप-लावण्यवती सहधर्मिणी थी। वे सचमुच ही स्वामी के धर्ममें सहायता देने वाली थी। जिस समय रामानुज वरदाचार्यकी कुटीमें शिष्यके साथ पथारे, उस समय वरदाचार्य भिक्षाके लिए गये हुए थे। लक्ष्मी घरमें थी क्योंकि उसके पास एक ही अच्छा वस्त्र था, जिसे वह स्नानके बाद धूपमें सूखनेके लिए दिया था तथा स्वयं

अनगिनत छिद्रोंवाले एक पुराणे कपड़ेसे अपनी लज्जाका निवारण कर रही थीं। श्रीरामानुजने उसी समय अपना दुपट्ठा बाहरसे घरमें फेंक दिया। लक्ष्मी उससे अपने शरीरको ढँककर सामने आई और गुरुदेवको बार-बार साष्टाङ्ग प्रणाम कर कहने लगीं—“प्रभो! आप सबके साथ बैठें, मेरे स्वामी भिक्षाके लिए बाहर गये हैं, मैं शीघ्र ही विष्णुनैवेद्य तैयार करके ले आती हूँ।”

इधर घरमें चावलका दाना भी नहीं। उसकी समझमें कुछ भी न आया कि अब मैं क्या करूँ। किन्तु प्राण देकर भी गुरु और वैष्णवोंकी सेवा करनी चाहिए, ऐसा विचार करती हुई वे श्रीनारायणको याद करने लगीं। अन्तमें लक्ष्मीदेवीको एक उपाय सूझा। समीप ही एक धनी बनिया रहता था। उस बनिएकी चाल-चलन अच्छी न थी, उसने लक्ष्मीदेवीके रूपलावण्य पर मुग्ध हो कितनी ही बार अपनी विलासिनी बननेका अनुरोध करते हुए कहा था कि यदि लक्ष्मीदेवी उसकी इच्छा पूरी करें तो क्षण भरमें उनकी और उनके स्वामीकी दरिद्रता दूर हो जायगी, उनके लिए फिर किसी तरहका अभाव न रहेगा। किन्तु सती-साध्वी लक्ष्मीदेवी बनियेकी इस बात पर कभी ख्याल भी नहीं करती थीं। आज उन्होंने देखा कि श्रीगुरुदेव और वैष्णव लोग हमारे घरपर पधारे हैं। यदि इस तुच्छ नश्वर देहको, लौकिक या नैतिक धर्मको जलाज्जलि देकर भी उनकी सेवा हो सके तभी उसका देह धारण करना सार्थक है। वे इतने दिन अपने भोगके लिए उस बनियेके बुरे प्रस्ताव पर राजी नहीं हुई। किन्तु आज श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके लिए ऐसे बुरे कामके करनेसे भी नहीं हिचकिचाई चाहे नरक ही क्यों न हो, हरि-गुरु-वैष्णव प्रसन्न तो होंगे। अपनी इन्द्रियोंको सुख देनेकी इच्छाका नाम ही ‘काम’ है, किन्तु कृष्णकी इन्द्रियोंको सुखी करनेकी इच्छाको ‘प्रेम’ कहते हैं।

कलिधन नामक एक महाभागवतने चोरी करके भगवान्‌की सेवाकी थी। तिरुमङ्गाई अलवरने डकैती द्वारा रुपये छीन कर भी अपने इष्टदेव श्रीरङ्गनाथका श्रीमन्दिर बनवाया था। अतएव मैं भी गुरु और वैष्णवोंकी सेवा न छोड़ूँगी, भले ही नरक क्यों न जाऊँ। ऐसा सोचकर लक्ष्मीदेवी उस धनी बनियेके पास गई और आनेवाली रातमें उसकी मनोवासना पूर्ण करनेका वचन दिया।

मेरे बहुत अनुरोध करने और तरह-तरहके लोभ दिखाने पर भी जिसने इस बुरे कामको स्वीकार नहीं किया, आज वही अपने आप उसके पास आई है—यह देखकर बनिया आनन्दसे अधीर हो उठा। लक्ष्मीदेवीने जैसे ही अपने गुरु और वैष्णवोंके सत्कारके लिए सामानकी बात मुँह से निकाली, वरदाचार्यकी कुटीके दरवाजेपर ढेर-के-ढेर चावल, दाल, दूध, दही, घी, चीनी आदि तरह-तरहकी चीजें पहुँचने लगीं। लक्ष्मीदेवीने जल्दीसे रसोई बनाकर भगवान्‌को नैवेद्य लगाया और गुरु तथा वैष्णवोंके सामने प्रेमपूर्वक परोसा। सबने प्रसन्न होकर प्रसादका सम्मान किया और साथ ही साथ दरिद्रके घर प्रसादका इतना बड़ा आयोजन देख वे विस्मित भी हुए। इधर लक्ष्मीदेवीके पति भिक्षासे लौटे। वे अपने गुरुदेव और गुरुभाइयोंको अपनी कुटीमें देख बड़े ही आनन्दित हुए साथ ही उनकी सेवा करनेके लिए घबरा भी उठे। वैष्णवोंने कहा कि वे सभी लोग बड़े सन्तोषके साथ प्रसाद सेवन कर चुके हैं। यह सुनकर वरदाचार्य बहुत ही विस्मित हुए और घरमें जाकर सहधर्मिणीसे पूछने लगे। लक्ष्मीदेवीने विनीत भावसे किन्तु डरते-डरते बनियेके आगे अपने वचनकी बात कह दी।

“लक्ष्मी, तू ही यथार्थ सहधर्मिणी है।” —वरदाचार्य आनन्दसे नाच उठे—“आज मैं धन्य हुआ। मैं इतने दिनसे समझता था कि शायद तुम

मेरे इस हाड़-मांसके थेलेको ही पति समझती हो, किन्तु आज समझा कि तुम्हारे ऊपर गुरु-कृपा पूर्णरूपसे बरस चुकी है, तुम्हारा सम्बन्ध-ज्ञान उदित हुआ है, तुम यह समझ गई हो कि एक मात्र नारायण ही पति हैं और बाकी सभी जीव प्रकृति। अतएव आज तुमने कुत्तों और सियारोंकी खुराक बननेवाली इस देहके बदले जिस परम-पतिकी सेवा की है, उसे याद कर बार-बार आनन्दित हो रहा हूँ।” धीरे-धीरे श्रीरामानुज और वैष्णवोंको भी लक्ष्मीदेवीके इस सेवाकी बातें सुनाई दीं, वे भी बड़े विस्मित हुए।

श्रीरामानुजने उस दम्पत्तिसे कहा कि तुम दोनों उस बनियेके घर जाकर उसे कुछ महाप्रसाद दे आओ। वे दोनों बनियेके यहाँ महाप्रसाद लेकर गये। वरदाचार्य बाहर खड़े रहे। लक्ष्मीने बनियेके पास जाकर महाप्रसाद दिया। लक्ष्मीदेवीके अनुरोधसे बनिया श्रीरामानुजका उच्छिष्ट खाने लगा। न जाने वैष्णव उच्छिष्टका क्या प्रभाव है, जिससे प्रसाद खाते ही बनियेका मन पलट गया। उसे पश्चात्ताप होने लगा कि हाय, उसने किस पर ऐसी बुरी निगाह की है। उसने अत्यन्त दीनतासे कहा—“देवी! आप परम वैष्णवी हैं, आपके नारायण-अर्पित शरीरको मैंने भोग करनेकी कामना की थी। मैंने बहुत बड़ा अपराध किया है। मुझे क्षमा करो। मैं भी तुम्हारे गुरुदेवकी शरण लेना चाहता हूँ। वैष्णवलोग तो अदोषदर्शी होते हैं, क्या वे मुझपर कृपा न करेंगे?”

सतीने स्वामीके पास लौटकर सारी बातें कहीं और फिर दोनोंने घर लौटकर श्रीगुरुदेवके चरणोंमें भी सब निवेदन किया। पतित-पावन श्रीरामानुजाचार्यने बनियेको बहुत ही लज्जित देखकर दीक्षा प्रदान की। बनियेने श्रीगुरुदेवके आगे उस वैष्णव-दम्पतीको कुछ धन देनेकी इच्छा प्रकटकी। यह सुनकर वरदाचार्यने गुरुदेवसे बहुत ही विनीत भावसे कहा—“प्रभो! ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मैं

अधम हरि-गुरु-वैष्णवकी सेवाके अधिकारसे विच्छुत न हो जाऊँ। प्रभो! धन, जन या प्रतिष्ठा आदिसे मेरा चित्त आपके चरणयुगलकी सेवासे हट न जाये।”

श्रीरामानुजने वरदाचार्यका ऐसा भाव समझकर बनियेसे कहा—“तुम जिसे दुःखी समझ रहे हो, वे भगवान्‌के अतिप्रिय भक्त हैं। भजनपरायण भक्तोंको दरिद्र, रोगी तथा दीन-हीन देखकर साधारण विचारसे लोग उन्हें दुःखी समझते हैं, किन्तु भगवान्‌की इच्छासे आया हुआ जानकर उन दुःखोंको भी वे परमानन्द सुख मानते हैं। विषयी लोग विद्या धन और उच्च कुलके मिथ्या अहंकारसे इस तथ्यको समझ नहीं पाते। इस तरह वे वैष्णवोंको पहचाननेमें भी असमर्थ होते हैं। भक्त भक्ति-धनसे धनी होता है। जागतिक धन-सम्पत्ति उसको सुख नहीं दे सकते।”

इधर श्रीरामानुजके धनाढ्य शिष्य यज्ञेश श्रीगुरुकी सेवा न कर पानेसे वडे दुःखी हुए। उन्होंने वरदाचार्यके घर आकर गुरुदेवसे अपने हृदयका सारा दुःख निवेदन किया। श्रीरामानुजने यज्ञेशसे कहा,—“तुमने वैष्णव-अपराध किया है, इसीसे मैं तुम्हारे घर अतिथि नहीं हुआ। तुम अपने गुरु-भाइयोंका स्वागत किये बिना ही अन्तःपुरमें चले गये।”

यज्ञेशने आँखोंमें आँसू भरकर कहा—“प्रभो! आपके शुभागमन का समाचार सुनकर मैं आनन्दसे अधीर हो आपके स्वागतकी तैयारी करने लगा

था, इसीलिए बाहर बैठे गुरु भाइयोंका ध्यान मुझे तनिक भी न रहा।”

रामानुजाचार्यने गम्भीर होकर कहा—“आनन्दसे विह्वल हो जाना कोई सेवा नहीं है। जहाँ अपने सुख की लेशमात्र भी इच्छा होती है, वहाँ सेवा नहीं, भोगकी कामना होती है। सेवामें सिफ अपने इष्टदेवके सुखकी कामना रहती है और वैष्णवोंको अलग करके कभी भी गुरुसेवा नहीं होती। वैष्णव या गुरु-सेवक श्रीगुरुदेवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग हैं। अतएव तुमने जो “अर्द्धकुक्कुटी न्याय” का अवलम्बनकर वैष्णवोंका सम्मान नहीं किया, केवल मेरी चिन्तासे विह्वल हो उठे, इसीसे तुमसे वैष्णव अपराध हुआ है। अतः मैं तुम्हारे घर नहीं गया।”

यज्ञेश श्रीगुरुदेव और वैष्णवोंके चरणोंमें गिर पड़े और बार-बार अपने अपराधको स्वीकार कर रोने और क्षमा माँगने लगे। श्रीरामानुजाचार्यने कृपाकर यज्ञेशके घर भी आतिथ्य ग्रहण करना स्वीकार कर लिया। सद्गुरु और शरणागत शिष्यका व्यवहार ऐसा ही होता है। सद्गुरु धन, कुल और विद्या नहीं देखते, सेवाकी प्रवृत्ति देखते हैं। वे सद्गुरु सेवा, भोग और मोक्षका पार्थक्य बताते हैं। सद्गुरु शिष्यको पतित बनाकर पतित-पावन नाम धारण नहीं करते, वरन् शिष्यको सचमुच ही पावन करते हैं। सद्गुरु निष्कञ्चन और निरपेक्ष होते हैं, वे शिष्यके अन्याय आचरणपर ध्यान नहीं देते। □



मायावादकी जीवनी

— ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भवितप्रज्ञान केशव गोस्वामी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ५, पृष्ठ ११० से आगे]

बौद्धमतमें शून्य और ब्रह्म

अब ब्रह्म और शून्यमें क्या भेद है, अथवा इनमें कुछ भेद है या नहीं—इसकी विवेचनस की जा रही है। प्रज्ञापारमिता सूत्रके १९ वें श्लोकमें शून्य-तत्त्वरूप परम निर्वाणके सम्बन्धमें लिखा गया है—

**शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुं निर्णिमित्तां निरञ्जनाम्।
सर्ववाग् विषयातीतां या त्वं क्वचिदनिश्चिताऽ।।**

उक्त श्लोकसे जाना जाता है कि शून्य तत्त्व निर्णिमित्त, निरञ्जन, अनिश्चित और वाणीसे अगोचर होनेसे कोई उसकी स्तुति भी करनेमें समर्थ नहीं है। मैंने पहले ही ‘बौद्धोंका शून्यवाद’ प्रसङ्गमें पाठकोंको शून्यवादका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

‘आकाशाम् निर्लेपाम् निष्प्रपञ्चाम् निरक्षराम्’

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता के १८ वें परिवर्तमें शाक्य सिंह बुद्धने सुभूतिके प्रति शून्यके जो लक्षण बतलाये हैं वे इस प्रकार हैं—

ये च सभूते शून्या अक्षयाऽपि ते।

या च शून्यता अप्रमेयता अपि सा॥

अर्थात् हे सुभूति, शून्य ही अक्षर है। जिसे शून्य कहा जाता है वही अप्रमेय है। फिर उसी ग्रन्थ में कहते हैं—

“अप्रमेयमिति वा असङ्घेयमिति वा अक्षयमिति वा शून्यमिति वा अनिमित्तमिति वा अप्रनिहितमिति वा अनभिसंस्कार इति वा अनुत्पाद इति वा अज्ञातिरिक्त वा अभाव इति विराग इति वा निरोध इति वा निर्वाणमिति।”

देवपुत्रोंके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए उक्त ग्रन्थके द्वादश परिवर्तमें शून्यका लक्षण बतलाते हैं—

“शून्यमिति देवपुत्रा अत्र लक्षणानि स्थाप्यन्ते अनभिसंस्कार इत्युनुत्पाद इत्यनिरोध इत्यसंक्लेश इत्यव्यवदानमित्यभाव इति निर्वाणमिति धर्म धातुरिति तथातेति देवपुत्रा अत्रलक्षणानि स्थाप्यन्ते नैतानि लक्षणानि रूपनिश्चितानि।”

उक्त वचनोंसे विदित होता है कि अप्रमेय,

असंघेय, अक्षय, अनिमित्त, अपनिहित, अनभिसंस्कार, अज, अजाति, अभाव, अनिश्चित, अनुत्पाद, अनिरोध, असंक्लेश, अव्यवदान, निर्णिमित्त, निरञ्जन, निरोध, निर्वाण, निरवद्य, विराग और राग-विषयातीत—ये सब शून्य तत्त्वके लक्षण हैं। इन लक्षणोंको विशेषरूपसे ठीक-ठीक विचार करनेसे शङ्करके ब्रह्मतत्त्वका शून्यतत्त्वसे कुछभी भेद प्रतीत नहीं होता है। यहाँ तक कि आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मको शून्य बतलाया है। नीचे हम इसका प्रमाण दे रहे हैं।

शङ्करके मतमें ब्रह्म और शून्य

श्रीशङ्करके ‘विवेक-चूडामणि,’ ‘अपरोक्षानुभूति,’ ‘ब्रह्मनामावलीमाला’ आदि ग्रन्थोंको आद्योपान्त पढ़नेसे मालम होता है कि उनमें उक्त शून्यके लक्षणोंको ही ब्रह्मका लक्षण माना गया है। इस प्रसङ्गमें श्रीशङ्कराचार्य द्वारा लिखे गये अधिक प्रमाणोंको उद्धृत करना लेख विस्तारके भयसे बेकार समझता हूँ। फिर भी सिद्धान्तकी सत्यताका प्रतिपादन करनेके लिये दो एक श्लोकोंको लिपिबद्ध किया जा रहा है—

द्रष्टदर्शनदृश्यादिभावशन्तैक वस्तुनि।

निर्विकारे निराकारे निर्विशेषे भिदा कुतः॥

(विवेकचूडामणि—४०२)

वाचो यस्मान्विवर्तन्ते तद्वक्तुं कन शक्यते।

प्रपञ्चो यदि वक्तव्यः सोऽपि शब्दविवर्जितः॥

(अपरोक्षानुभूति—१०८)

नित्योऽहं निरवद्योऽहं निराकारोऽहमक्षरः।

परमानन्दरूपोऽहमहमेवाहमव्ययः ॥

(ब्रह्मनामावलीमाला—४)

ऊपर के श्लोकोंमें निर्विकार, निराकार, निर्विशेष, निरवद्य, अव्यय, अक्षय आदि ब्रह्मके जो स्वरूपलक्षण बतलाये गये हैं, वे शून्यके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं अर्थात् ये सभी शून्यके लक्षण हैं। शून्यके लक्षणोंमें अभाव भी एक लक्षण है, वह द्रष्टा, दृश्य और दर्शन आदि भावोंसे शून्य अभावको ही लक्षण करता है। इसके

अलावा प्रातःस्मरणस्तोषके द्वितीय श्लोकमें 'यत्रेति नेति वचनैः' इत्यादि वचनोंसे उक्त शून्य लक्षणात्मक अभावको ही लक्ष्य किया जाता है। जो शून्य, "सर्ववाक्-विषयातीत" है, वही ब्रह्म "शब्दविर्वित्त" है। जिस ब्रह्मको लक्ष्यकर—"तदवक्तुं केन शक्यते"—कहा जाता है, उस शून्यको ही बौद्धलोग भी "शक्तः कस्त्वामिहस्तोतुम्"—कहते हैं। बौद्ध जिसे "निरञ्जनाम्, निर्लेपाम्"। कहते हैं, शङ्कर भी उसीको "निरञ्जनो निर्लेपो विगतक्लेशः" इत्यादि कहते हैं (मुण्डकोपनिषद्का तृतीय मुण्डक ४७ श्लोकका भाष्य द्रष्टव्य)। अब पाठकवर्ग स्वयं विचार करें कि शङ्करका ब्रह्मवाद और बुद्धका शून्यवाद दोनों एक है या नहीं?

अद्वयवादी और अद्वैतवादी

पूर्वोक्त आलोचनासे पता चलता है कि मायावादका जीवन बौद्ध-चिन्ता-धारामें पुष्ट हुआ है। अमरकोशमें बुद्धदेवको अद्वयवादीकी संज्ञा दी गई है, एवं आचार्य शङ्कर भी अद्वैतवादी थे—यह सर्वमान्य है। निरपेक्ष होकर विचार करनेसे स्पष्ट बोध होता है कि अद्वयवाद और अद्वैतवादमें कुछ भी पार्थक्य नहीं हैं। फिर भी दोनों मतवादोंके विचारोंमें कुछ भेद प्रतीत होता है, उसकी कुछ आलोचना करनी आवश्यक है। परिणाम-विचारसे बुद्धने शून्यको असत्स्वरूप कहा है। उन्होंने और भी कहा है—"शून्यको शून्य ही समझो, अभाव समझो, निर्वाण समझो। और श्रावक तथा वोधि-सत्त्व श्रेणी यदि उक्त शून्यको शून्यरूप न माने अथवा निर्वाणको एक गुणात्मक-विशेष अवस्था समझे, तो वह भी 'भायोपम स्वप्नोपम' है।"

परिणाम-विचारसे आचार्य शंकरने ब्रह्मको सत्-स्वरूप बतलाया है और दूसरी जगह आनन्द-स्वरूप तथा निर्वाण-स्वरूप भी कहा है। साधारण विचारसे दोनों मतोंकी परिभाषामें भेद देखें जाने पर भी वास्तवमें उनके भावों और विचारोंमें तनिक भी भेद नहीं—तनिक विचार करनेसे ही यह समझा जा सकता है। 'निर्वाण' शब्दसे शुष्कताशून्य-रसपूर्णताका बोध होनेसे 'निर्वाण' शब्दसे किसीको भी आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु, दोनोंने ही उनके अपने-अपने तत्त्वको अर्थात् शून्यको और ब्रह्मको 'निर्वाण'-स्वरूप बतलाया है। आचार्य शंकरने मुक्तिके बाद ब्रह्मके जिस

आनन्दस्वरूप लक्षणको बतलाया है, विचारपूर्वक देखनेसे उक्त लक्षण निरर्थक प्रतीत होता है। क्योंकि उनके मतसे उसका प्रापक (पानेवाला) कोई नहीं है। अतएव प्राप्य और प्रापकके अभावमें यदि उसे 'निरानन्द-स्वरूप' ही कहा जाय तो इसमें दोष ही क्या है?

श्रीपाद शंकर कहते हैं—

भाववृत्त्याहि भावत्वं शून्यवृत्त्याहि शून्यता।
ब्रह्मवृत्त्याहि ब्रह्मत्वं तथा पूर्णत्वमध्यसेत्॥

(अपरोक्षानुभूति—१२९)

अर्थात् भाववृत्ति द्वारा भाववस्तु (वह वस्तु जिसकी सत्ता है) तथा शून्यवृत्ति द्वारा शून्यस्तु (जिसकी सत्ता नहीं है) प्राप्त होती है और ब्रह्मवृत्तिका अवलम्बन करनेसे ब्रह्मत्व प्राप्त किया जा सकता है।

उपर्युक्त वचनोंसे आचार्य शंकरने शून्यवादकी अपेक्षा ब्रह्मवादका वैशिष्ट्य स्थापन करनेकी चेष्टा की है, किन्तु विचारपूर्वक देखनेसे उपर कहे गये वैशिष्ट्यकी रक्षा नहीं होती। वह केवल कहनेकी बात है। उक्तश्लोकमें इस बातका इंगित पाया जाता है कि भावरूप ब्रह्म-वृत्तिका अभ्यास करनेसे सत्-स्वरूप और भावस्वरूप ब्रह्मत्वकी प्राप्ति होती है तथा अभावरूप शून्यही प्राप्त होता है। अब सत्-वस्तु ब्रह्म और असत्-वस्तु शून्यमें भेद क्या है, उस पर विचार करना आवश्यक है। यथार्थमें दोनोंमें भेद होने या न होनेमें लाभ या हानि किसकी है? द्रष्टा-दृश्य-दर्शन—इन भावोंसे शून्य एक वस्तुको भाव या सत् बोलने अथवा अभाव या असत् कहनेमें भेद क्या है, इसका अनुसंधान करने पर भी क्या कुछ मिलेगा? बहुतसे ऐसे पदार्थ जिनका अभी तक आविष्कार नहीं हुआ है, उनकी सत्ता स्वीकार करनेसे जिस प्रकार जीवोंका उनसे कुछ भी उपकार या अपकार नहीं होता, उसी प्रकार बहुतसे ऐसे पदार्थोंका आविष्कार किया जाय जिनका काई अस्तित्व ही न हो, तो उससे भी कुछ लाभ नहीं है—यह वैज्ञानिकोंका विचार है। जिस वस्तुका पारमार्थिक दृश्यत्व नहीं है और उसका कोई दर्शक भी नहीं है तो ऐसे स्थलपर उस वस्तुको सत् कहा जाय अथवा असत्-बात एक ही है। □



प्रेमप्रदीप

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(गताङ्कसे आगे)

(चतुर्थ प्रभा)

दिन प्रायः ढल चुका है। सूर्यकी प्रचण्ड किरणें नर्म पड़ गई हैं। मन्द-मन्द पछुआ हवा बह रही है। अनेक लोग तीर्थमें धूमनेके लिए बाहर आ गए हैं। बहुतसे यात्री-रमणी उच्च स्वरसे यह गीत गाते हुए चल रहे हैं—

त्यज रे मन हरि-विमुख लोक-सङ्ग।
जाक सङ्ग हि, कुमति उपजतहि,
भजन हि पड़त विभङ्ग॥
सतत असत् पथ, लेई जो जायत,
उपजात कामिनी-सङ्ग।
शमन दूत, परमायु परखत,
दूर हि नेहारत रङ्ग॥
अतएव से हरिनाम सार परम मध्य।
पान करह छोड़ि ढङ्ग कह माथ-हरि-चरण—
सेवोरुह माति बहु जनु-भृङ्ग॥

गीतको सुनते-सुनते मल्लिक महाशयने नरेन बाबू और आनन्द बाबूके प्रति कटाक्षपात किया, जिससे दोनोंके मनमें थोड़ा विकार उत्पन्न हुआ। नरेन बाबू रहस्यपूर्वक बोले—“नहीं, आजके बाद हम वैष्णव धर्म की और निन्दा नहीं करेंगे। मैं तो देखता हूँ कि वैष्णव धर्म और ब्राह्म धर्ममें तनिक भी भेद नहीं है, केवल पौत्रलिकताका तात्पर्य नहीं समझ पाता हूँ।” इसे सुनकर किसीने कुछ उत्तर नहीं दिया। सभी धीरे-धीरे अग्रसर होने लगे। योगी बाबाजीने कहा—“हमलोग भी एक गीत गाते हुए चलें।” बाबाजीने सुर पकड़कर गान आरम्भ किया और सभी साथ-साथ गाने लगे—

हरि हरि! कबे हब वृन्दावनवासी।
निरखिब नयने युगल-रूपराशि॥।
त्यजिया शयन-सुख विचित्र पालङ्ग॥।
कबे व्रजेर धूलाते धूसर हबे अङ्ग॥।
षड़-रस भैजन दूरे परहरि’॥।
कबे यमुनार जल खाब कर पुरि’॥।

नरोत्तम दासे कहे करि परिहार।
कबे वा एमन दशा हइबे आमार॥।

यह प्रार्थना गाते-गाते प्रायः सबकी नृत्य करनेकी इच्छा हुई। नरेन बाबू और आनन्द बाबू ब्राह्म लोगोंके ‘नगर-कीर्तनमें अनेक बार नृत्य किए थे, अतएव योगी बाबाजीके साथ ब्राह्म-रसमें नृत्य करनेमें उन्होंने कोई आपत्ति नहीं देखी। केवल जब बाबाजी ‘युगल-रूपराशि’ बोलते, तब वे ‘अपरूप-रूपराशि’ शब्द गाने लगे। इससे एक अपूर्व शोभा हुई। एक प्रकृत (वास्तविक) बाबाजी, एक व्यक्ति संसारी वैष्णव जिसे शिखा नहीं है, और दो लोगोंके पाँवोंमें जूते, नाकपर चश्मा; जब ये लोग अग्रसर हो रहे थे, तब अनेक व्यक्ति सतुष्ण नयनोंसे इनलोगोंका निरीक्षण कर रहे थे। वे सोच रहे थे—“क्या बाबाजी जगई-मधाई का उद्धार कर रहे हैं।”

कीर्तनके आनन्दसागरमें सन्तरण करते-करते वे लोग पण्डित बाबाजीके आश्रममें उपस्थित हुए। कीर्तनकी ध्वनि सुनकर पण्डित बाबाजी समस्त बाबाजी-मण्डलीके साथ अग्रसर होकर कीर्तनके सम्मुख दण्डवत प्रणाम करते हुए कीर्तनमें मत्त हो गए। जब कीर्तन समाप्त हुआ तो दो दण्ड रात बीत चुका था।

जब सब लोक बैठ गए, तब मल्लिक महाशय बाबाजी लोगोंके चरणरेणुको अपने समस्त अङ्गोंमें लेप करते-करते अपने दोनों हाथोंको अन्य दो साथियोंके देहमें मलते हुए कहने लगे—“समस्त संशय दूर होवे।” उनलोगोंने उत्तर दिया—“सभी मनुष्य सबके चरणरेणुको ले सकते हैं, किन्तु आज हमलोगोंके हृदयमें एक नवीन भावका उदय हुआ, मानो हमलोग प्रातःस्नानके द्वारा पवित्र हुए। किन्तु, भय होता है कि इस प्रकार विश्वास करते-करते बादमें कहीं पौत्रलिक न हो जाऊँ। तथापि, सत्य बोलनेमें क्या है, अनेक ब्राह्म-कीर्तन किया और

देखा, किन्तु वैष्णव-कीर्तनमें जैसा प्रेम है, वैसा प्रेम और कहीं नहीं देखता हूँ। देखें, निराकार हरि अन्तमें हमलोगोंका क्या करते हैं?"

उनलोगोंकी बातें सुनकर प्रेमदास बाबाजी और हरिदास बाबाजी कुछ आश्चर्यान्वित होकर जिज्ञासा किए—"ये लोग कहाँसे आए हैं?" योगी बाबाजीने उनलोगोंके विषयमें समस्त बातें बताई, जिसे सुननेके बाद प्रेमदास बाबाजीने कहा—"श्रीगौरचन्द्रने आपके द्वारा इन दो महात्माओंको आकर्षित किया, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।"

सबलोग मण्डपमें सुखपूर्वक बैठे हुए हैं। एक कोनेमें एक प्रदीप टिम-टिम करता हुआ जल रहा है। अनेक लोग पवित्र झोलीके अन्दर तुलसी-मालापर हरिनाम-संख्या कर रहे हैं। योगी बाबाजीने पण्डित बाबाजीसे कहा—"बाबाजी! आपके उपदेशने मेरे हृदयके अन्धकारको प्रायः दूर कर दिया, किन्तु एक संशय यह है कि यदि हमलोग योगके अङ्ग प्राणायाम, ध्यान और धारणाको स्वीकार न करें तथा उनका अभ्यास न करें, तो हमलोग किस प्रकार 'रस-समाधि' प्राप्त कर पायेंगे? 'सिद्ध-विषय' को भी हृदयमें जागरित करनेके लिए साधना का प्रयोजन होता है। 'राग' उत्पन्न करनेका साधन क्या है?"

प्रश्नको सुनकर सभीने सतृष्ण नेत्रोंसे पण्डित बाबाजीके गम्भीर श्रीमुखपर दृष्टिपात किया। मल्लिक महाशय थोड़ा आश्चर्यचकित हुए। ऐसा लगता है कि उन्होंने योगी बाबाजीको ही सर्वश्रेष्ठ वैष्णव मान लिया था। उनके प्रश्नसे वे समझ गए कि योगी बाबाजी पण्डित बाबाजीके प्रति गुरुकी भाँति श्रद्धा रखते हैं। उस समय पण्डित बाबाजीके प्रति भी वे श्रद्धान्वित हुए।

पण्डित बाबाजी कहने लगे—"बद्ध जीवात्माके लिए उसका स्वर्थरूप विशुद्ध वैकुण्ठ-राग कुछ दुःसाध्य अर्थात् कष्टसाध्य है। विशुद्ध वैकुण्ठ-राग ही विकृत होकर जड़ीय विषयरागके रूपमें परिणत हुआ है। विषय-राग जितना ही वर्द्धित होता है, वैकुण्ठ-राग उतना ही कम हो जाता है। वैकुण्ठ-राग ही जीवका नैसर्गिक धर्म है विषय-रागके दमनसे ही वैकुण्ठ-राग होता हो, ऐसी बात नहीं है। अनेक लोग केवल वैराग्यका

आश्रयकर विषय-रागके दमनकी चेष्टा करते हैं, किन्तु वैकुण्ठ-रागके सम्बद्धनकी चेष्टा नहीं करते हैं। इससे अन्तमें अमङ्गल ही घटित होता है।

"ध्यान, प्रत्याहार, धारणा आदि चिन्ता और कार्यसमूह यद्यपि बहुत लोगोंके द्वारा साधित भी होते हैं, किन्तु इनमें यथेष्ट रागकी आलोचना नहीं है। इसलिए योगिगण प्रायः ही विभूतिप्रिय हो जाते हैं तथा अन्तमें 'राग' को नहीं प्राप्त कर पाते हैं। पक्षान्तरमें वैष्णव साधन ही श्रेष्ठ है।

"देखिए, साधन मात्र ही कर्मविशेष है। मनुष्य जीवनमें जो समस्त कर्म आवश्यक हैं, उनमें रागका कार्य हो एवं परमार्थके लिए समस्त कार्य केवल चिन्ता और परिश्रम हो, जिनकी ऐसी चेष्टा है, क्या वे वैकुण्ठ-रागोदय करनेमें शीघ्र समर्थ हो सकते हैं? वैकुण्ठरागके चेष्टासमूहको जीवनसे पृथक करनेपर साधकको एक ओर विषय-राग खींचेगा एवं दूसरी ओर वैकुण्ठ चिन्ता। इस स्थितिमें जिस ओर रागकी अधिकता होगी, उसी ओर जीवकी गति होगी। चप्पूके जोरसे नौका चलती है, किन्तु जहाँ जलका रागरूपी स्रोत उसे आकर्षित करता है, वहाँ स्रोतके प्रवाहके सम्मुख चप्पूका जोर पराभूत हो जाता है। इसी प्रकार साधक समय-समय ध्यान, प्रत्याहार और धारणारूप अनेक चप्पूओंके द्वारा मनरूपी नौकाको नदीके तटपर लानेकी चेष्टा तो करता है, किन्तु विषय-रागरूपी स्रोत अविलम्ब ही उसे विषयमें निश्चिप्त कर देता है।

"वैष्णव-साधन रागमार्ग द्वारा साधित होता है। रागकी सहायतासे साधक निश्चय ही अविलम्ब वैकुण्ठ-राग प्राप्त करता है। रागका स्रोत किसे कहते हैं, यह जानता चाहिए। बद्धजीवका चित्त स्वाभाविकरूपसे जिससे प्रेम करता है और शरीर-पोषणके लिए जो जो प्रियके रूपमें वृत्त हुआ है—वह समुदाय ही मानव जीवनका विषय है। इनमें विचारकर देखा गया है कि पाँच इन्द्रियोंके सम्बन्धमें पाँच राग हैं। चित्त इन्द्रियोंके द्वारा विषय-रागसे धावित होता है। ये हैं—जिह्वाके द्वारा आहार, नासिका द्वारा ध्वाण, कान द्वारा श्रवण, त्वचा द्वारा स्पर्श और चक्षुके द्वारा दर्शन। बद्धजीवका चित्त अनवरत किसी-न-किसी

विषयमें संलग्न है। किसकी शक्तिसे चित्तको विषयसे हटाया जा सकता है? यद्यपि शुष्क ब्रह्मचिन्ता द्वारा इस विषयमें कुछ सहायता हो सकती है, तथापि ब्रह्मके निष्क्रियता-प्रयुक्त साधकको इसके द्वारा सम्यक् बल नहीं प्राप्त होता है। अतएव योगियों और ब्रह्मज्ञानियोंको अत्यधिक कलेश होता है। भक्तिमार्गमें कलेश नहीं है। कृष्णभक्तका जीवन ब्रह्मसे पृथक् नहीं है। विषय-राग और वैकुण्ठ-राग इस साधनमें पृथक् नहीं है। मन चक्षु द्वारा विषय-दर्शन करना चाहता है, तो उत्तम श्रीमूर्तिका अनिर्वचनीय सौन्दर्य दर्शन करे। वहाँ विषयभोग और ब्रह्म सम्भोग एक ही कार्य है। श्रवण करना चाहता है, तो कृष्ण-गुण-गाण और कृष्णकथा श्रवण करे। उपादेय द्रव्य आहार करना चाहता है, तो सब प्रकारसे सुस्वादु द्रव्य श्रीकृष्णको अर्पणकर प्रसाद पावे। घ्राणके लिए अर्पित तुलसी-चन्दन आदि हैं। इस प्रकार समस्त विषय ही कृष्णसाधकके लिए ब्रह्ममिश्रित हैं। कृष्णसाधक सर्वत्र ब्रह्ममय है। उसके समस्त कार्य ही वैकुण्ठ-रागके अनुशीलन हैं। इन्द्रियपरता उनके लिए बाधक नहीं, प्रत्युत प्रेमफल-साधक है। संक्षेपमें रागमार्ग तथा अन्य साधन-मार्गका सम्बन्ध दिखाया। आप महानुभव वैष्णव हैं। मैं और कुछ नहीं कहूँगा। यदि कुछ भूल हुई हो, तो क्षमा करेंगे।”

पण्डित बाबाजीकी वक्तुता सुनकर सभी चमत्कृत हुए। भिन्न-भिन्न लोगोंके मनमें भिन्न-भिन्न भावोंका उदय हुआ। योगी बाबाजी यद्यपि योग विषयमें पारंगत थे, तथापि वैष्णव-रसमें भी उनका भलीभाँति अधिकार था। वे निःसंशय होकर पण्डित बाबाजीके चरणरेणुका आस्वादन किए। पण्डित बाबाजीने उन्हें प्रेमालिङ्गन प्रदान किया। उस समय मल्लिक महाशयको क्या बोध हुआ, यह नहीं समझ सके।

नरेन बाबू और आनन्द बाबू कई दिनोंसे श्रीमूर्तिकी पूजाका मूलतत्त्व विचार कर रहे थे। योगी बाबाजीने उन्हें ‘श्रीचैतन्य-गीता’ ग्रन्थ पढ़ने

दिया था। उसे पढ़कर तथा विचारकर विग्रहपूजाके अनेक तात्पर्योंको जाना था, किन्तु श्रद्धा नहीं हुई। पण्डित बाबाजीके गम्भीर प्रेमगर्भ उपदेशोंको श्रवणकर परस्पर कहने लगे—“ हाय ! हमलोग केवल विदेशी विद्याके प्रति मुश्य हैं, अपने देशमें क्या-क्या अमूल्य रत्न हैं, यह नहीं जानते हैं।”

नरेन बाबूने कहा—“आनन्द बाबू ! तब राममोहन रायने क्या सोचकर श्रीविग्रहतत्त्वकी अवहेलना की है? मालूम होता है, इस विषयमें उन्हें कुछ भ्रम हुआ था। राजा राममोहनरायको भ्रम ! ऐसा कहनेमें डर लगता है। जिन राममोहन रायकी कथासे हम व्यास-नारद आदिको भी भ्रमात्मक विश्वास करते हैं, आज किस मुखसे उन्हें ही भ्रान्त कहूँ?”

आनन्द बाबूने कहा—“भय क्यों ? सत्यके लिए हमलोग राममोहन रायका भी त्याग कर सकते हैं।”

बहुत रात हो गई। योगी बाबाजी अपने तीनों सङ्गीको लेकर वापस चले। रास्तेमें यह गान गाते-गाते कुञ्जमें पहुँचे—

केन आर कर द्वेष, विदेशी-जन-भजने।
भजनेर लिङ्ग नाना, नाना देशे नाना जने॥
केह मुक्तकच्छे भजे, केह हाँटू गाड़ि पूजे।
केह वा नयन मूंदि, थाके ब्रह्म-आराधने॥
केह योगासने पूजे, केह सङ्कीर्तने भजे।
सकले भजिष्ठे सई, एकमात्र कृष्णधने॥
अतएव श्रातृभावे थाक सबे सुसङ्घावे।
हरिभक्ति साध सदा, ए-जीवने वा मरणे॥

गानके समय आनन्द बाबू और नरेन बाबू ‘कृष्णधने’ बोलनेमें लज्जा बोध कर ‘भगवान्-ने’ शब्द व्यवहारकर सुर दे रहे थे। योगी बाबाजीने यह तत्क्षणात् लक्ष्य किया, किन्तु उस रात कुछ कहा नहीं।

सभी भक्तिभावसे थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पाकर शयन किए। □

चतुर्थ प्रभा समाप्त

(क्रमशः)



याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-संवाद

प्राचीन कालकी घटना है। एक वेदज्ञ महर्षि थे। उनका नाम था याज्ञवल्क्य। मैत्रेयी और कात्यायनी—ये उनकी दो पत्नियाँ थीं। मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी विदुषी और कात्यायनी साधारण महिला थी। महर्षि याज्ञवल्क्य बहुत दिन गृहस्थ आश्रममें ही रह कर ब्रह्म-तत्त्वका अनुशीलन करते रहे। एक दिन उन्होंने घर-बार, धन-सम्पत्ति और अपनी प्रियाओं तकका परित्यागकर संन्यास लेनेका विचार किया। उन्होंने मैत्रेयीसे कहा—“अरी मैत्रेयि! मैंने गृहस्थ आश्रमका परित्यागकर, संन्यास लेनेका सङ्कल्प कर लिया है। इसमें मैं तेरी अनुमति चाहता हूँ, और चाहता हूँ कि जानेसे पहले यह सारी सम्पत्ति तुम दोनोंमें बाँट दूँ।”

इसे सुनकर मैत्रेयीने महर्षि याज्ञवल्क्यसे जिज्ञासाकी—“भगवन्! यदि धनसे सम्पन्न यह सारी वसुन्धरा मेरी हो जाय तो क्या मैं अमृतत्व लाभ कर सकती हूँ?”

याज्ञवल्क्यने कहा—“नहीं, इनके द्वारा तुम अमृतत्व लाभ नहीं कर सकती। पर भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न मनुष्यका जैसा जीवन होता है, वैसा ही तेरा भी जीवन हो जायगा। धनसे अमृतत्व लाभकी तो तनिक भी आशा नहीं।”

मैत्रेयीने कहा—“जिससे मैं अमृतत्व लाभ नहीं कर सकती, उन धन सम्पत्ति आदि भोगोंको लेकर क्या करूँगी? अतएव हे भगवन्, आप जो कुछ अमृतत्वका साधन जानते हों, वही मुझे बतलावें।”

आनन्दसे गद्गद होकर याज्ञवल्क्यजीने कहा—“मैत्रेयि, तू पहले भी मेरी प्रिया थी और अब भी तू मुझे प्रिय लगने वाली ही बात कह रही है। आ, निकट बैठ जा। मैं तेरे निकट आत्म-तत्त्वकी व्याख्या करूँगा। तू खुब सावधानीसे विचारपूर्वक मेरी बातों को सुनना। मैत्रेयि! पतिको सुख देनेके लिए पत्नि पतिके प्रिय कार्योंको नहीं करती बल्कि अपने सुखके लिए ही वह पतिको प्यार करती है। स्त्रीके सुखके लिए स्त्री पतिकी प्रिया नहीं होती, किन्तु पतिके सुखके लिए ही

स्त्री पतिकी प्रिया होती है। पिता पुत्रके सुखके लिए पुत्रको स्नेह नहीं करते, अपने सुखके लिये ही पिता पुत्रको स्नेह करते हैं। धनके प्रयोजनके लिए अथवा धनके सुखके लिये धन प्रिय नहीं होता है, अपने प्रयोजनके लिए ही धन लोगोंका प्रिय होता है। ब्राह्मणोंके सुखके लिये लोग ब्राह्मणोंकी भक्ति नहीं करते, अपने प्रयोजन-सिद्धिके लिये लोग ब्राह्मणोंकी भक्ति करते हैं। राजाके प्रयोजनके लिए राजा प्रजाके प्रिय नहीं होते, बल्कि स्वार्थके लिए ही राजा प्रजाके प्रिय होते हैं। स्वर्गके प्रयोजनके लिए लोग स्वर्गकी आकांक्षा नहीं करते, किन्तु अपने सुख-भोगके लिये ही लोग स्वर्गकी आकांक्षा किया करते हैं। देवताओं के प्रयोजनके लिए लोग देवताओंकी पूजा नहीं करते, स्वार्थ-सिद्धिके लिए ही लोग इनकी पूजा करते हैं। प्राणियोंके प्रयोजनके लिये प्राणी प्रिय नहीं होते, अपने-अपने प्रयोजनके लिये ही लोग उनका आदर यत्न करते हैं—वे लोगोंके प्रिय होते हैं। गायके सुखके लिए गाय प्रिय नहीं होती; बल्कि दूधके लिए ही गाय लोगोंको प्रिय होती है। माता स्नेहसे ओतप्रोत होकर संतानका चुम्बन करती है, संतानके क्रन्दन करने पर भी वह उसका चुम्बन करना नहीं छोड़ती, क्योंकि माता अपने सुखके लिए चुम्बन करती है, न कि संतानके लिए। अरी मैत्रेयि! अधिक क्या कहूँ? सभी अपने-अपने प्रयोजनके लिये ही सब कुछ करते हैं। अतएव पति, पुत्र, धन आदिके प्रति जो प्रीति होती है वह केवल कपटता होती है। तू इस कपटताका परित्यागकर और जो सबके नित्य प्रिय वस्तु हैं, जो आत्माके आत्मा हैं, एकमात्र उन भगवान्‌की प्रीतिके लिए उनकी आराधना कर, उनके दर्शन कर, उनकी कथाएँ श्रवण कर, उनका स्मरण कर, और उनका ही ध्यान कर। मैत्रेयि! उनको जाननेसे सभी कुछ जानना हो जाता है—सबका ज्ञान हो जाता है, उनसे प्रीति करनेसे सबसे प्रीति करना हो जाता है, एकमात्र उन भगवान्‌की सेवा द्वारा ही तू अमृतत्व लाभ कर सकती है।” □



(वृहदा० चतुर्थ ब्राह्मणके आधारपर)

चातुर्मास्य

शास्त्रोंमें उल्लेख

वेदोंमें जगह-जगह चातुर्मास्य-ब्रतका उल्लेख पाया जाता है। इनमें अनेक स्थलों पर इसे कर्मका अङ्ग माना गया है। धर्मशास्त्रोंमें भी चातुर्मास्य-ब्रतकी व्यवस्थाका अभाव नहीं है। पुराणोंमें तो इसकी बड़ी महिमा बतलाई गई है।

आधुनिक स्मृति-सम्बन्धी पुस्तकों और निबन्धोंमें भी चातुर्मास्य-ब्रतका अनेक रूपोंमें विधान पाया जाता है। 'हरिभक्तिविलास' नामक परमार्थ स्मृतिशास्त्र और रघुनन्दन द्वारा रचित 'कृत्य-तत्त्व' ग्रन्थमें भी हम इस ब्रतका विधान देखते हैं।

कर्मी, ज्ञानी और भक्त सबके लिये चातुर्मास्यका विधान

क्या कर्मी, क्या ज्ञानी और क्या भक्त सभीको चातुर्मास्य ब्रतका पालन करना चाहिए। कोई-कोई इसे केवल कर्मकाण्डीय व्यापार मानते हैं। किन्तु उनका ऐसा समझना पूर्णतः निराधार है। काठक सूत्रोंमें यति-धर्मका निरूपण करते हुए कहते हैं—

एकात्रां वसेद् ग्रामे नगरे पैचात्रकम्।
वषष्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्॥

एकदण्डी ज्ञानीजन और त्रिदण्डी भक्तजन दोनों ही चातुर्मास्यका पालन करते हैं। श्रीशङ्कर मतावलम्बियोंमें भी चातुर्मास्य-ब्रतकी व्यवस्था है।

चातुर्मास्य-ब्रत और श्रीचैतन्यमहाप्रभु

भगवान् श्रीचैतन्यदेवने भी कावेरीके तटपर स्थित श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरमें चातुर्मास्यके चार महीने बिताये थे। श्रीगौड़ीय भक्तजन प्रति वर्ष चातुर्मास्यके दिनोंमें श्रीपुरीधाममें श्रीमन्प्रभुपद्मके साथ रह कर नियमित रूपमें हरिसंकीर्तन, हरि-चर्चा, वैष्णव-सेवा और भगवत्-पूजनमें बिताया करते थे।

चारों आश्रमोंके प्रत्येक हिन्दूके लिये चातुर्मास्यका विधान है

शास्त्रोंमें चारों आश्रमोंके हिन्दूमात्रके लिये चातुर्मास्य-पालनकी व्यवस्था दी गई है। किन्तु बहुत ही कष्टसाध्य होनेके कारण ये प्राचीन रीतियाँ

समाजके क्षेत्रसे क्रमशः दूर होती चली जा रही हैं। यद्यपि कर्मी और भक्त-सम्प्रदायोंमें ब्रतोंके पालन करनेकी विधियाँ कुछ-कुछ भिन्न हैं, तथापि प्रत्येक हिन्दू इन ब्रतोंके प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा और आदरका भाव रखता है।

चातुर्मास्यमें भोगोंका त्याग ही आदर्श है

इस ब्रतमें समस्त प्रकारके भोगोंका सर्वथा त्याग करना ही विधि है। कर्मी, ज्ञानी और भक्त—इन सभी समाजोंके लोग त्यागको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं। किन्तु किसी समाजमें यह श्रद्धाका भाव कुछ अधिक होता है और किसीमें कुछ कम। अतः इन तीनों पथोंमें विचरण करनेवाले आर्यगण अपने चारों आश्रमोंमें चातुर्मास्य-ब्रतका सम्मान करते हैं। जो नितान्त असमर्थ होते हैं, वे इतने दीर्घकाल तक इन कठोर नियमोंके अधीन रहना लाभदायक नहीं मानते। इसलिए वे इन ब्रतोंके पालनमें शिथिलता प्रदर्शन करते हैं।

गृहस्थोंके भोगोंके विधानका उद्देश्य त्यागसे है

ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमोंमें भोगका तनिक भी आदर नहीं है। केवल गृहस्थोंके लिये शास्त्रोंमें किञ्चिन्मात्र भोगोंका विधान देखा जाता है। किन्तु वास्तवमें इन लोगोंके लिये निर्दिष्ट भोगोंका उद्देश्य भी त्याग ही होता है। जिन लोगोंके लिये बारह महीनोंसे आठ महीने तक गृहस्थधर्मके पालन करनेकी विधि दी गई है, उन्हें चार महीने तक भोगोंसे सर्वथा दूर रह कर अन्य तीन आश्रमवासियोंके सङ्गमें ही समय बिताना उचित है।

जो चार महीनों तक नियम-सेवा पालन करनेमें असमर्थ हैं, उन्हें उर्जाविधि अर्थात् कार्त्तिक-ब्रतका अवश्य ही पालन करना चाहिए। कोई-कोई भक्त चातुर्मास्यके चार महीनोंतक नियमितरूपमें विधियोंके पालनमें अपनेको असमर्थ पाकर केवलमात्र दामोदर ब्रतका ही पालन करते हैं। उनको ऐसा देखकर कोई ऐसा न समझें कि उनके लिए चातुर्मास्य-ब्रत पालन करनेकी कोई

आवश्यकता ही नहीं है। वैसा आचरण केवल असमर्थ व्यक्तियोंके लिए अनुकल्प विधिमात्र समझना चाहिए। चार मास तक नियमसेवाके अधीन रह कर भगवत्सेवा करनेसे मनकी निःर्गतः धर्मके प्रति (हरिसेवाके प्रति) प्रवृत्ति उदित होती है।

चातुर्मास्यका समय निरूपण

चातुर्मास्यका समय निरूपण करते हुए वाराह-पुराणमें लिखते हैं—

आषाढ़-शुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा।

चातुर्मास्य-व्रतारम्भं कुर्यात् कर्कट-संक्रमे॥

अभावे तु तुलार्केऽपि मन्त्रेण नियमं व्रती।

कार्तिके शुक्लद्वादश्यां विधिवत्त भावयेत्॥

चातुर्मास्यकी गणना तीन प्रकारसे की जाती है—(१) आषाढ़ मासकी शुक्लद्वादशीसे कार्तिक मासकी शुक्लद्वादशी तक चार चान्द्रमास, (२) आषाढ़की पूर्णिमासे कार्तिककी पूर्णिमा तक चार चान्द्रमास और (३) कर्कट संक्रान्ति अर्थात् सौर श्रावण माससे सौर कार्तिक मास तक चार मास। इन तीनोंमें से किसी एकके अनुसार चार महीनोंतक चातुर्मास्य-व्रतके नियमोंका विधिवत् पालन करना चाहिए। जो लोग चार महीनों तक इसके नियमोंका विधिवत् पालन करनेमें असमर्थ हों, उन्हें कार्तिक मासमें एक महीने भर अपने इष्टमन्त्रके जाप आदि नियमोंका विधिवत् पालन करना उचित है। विशेषतः उर्जव्रतका पालन करना अवश्य कर्तव्य है, क्योंकि उर्जव्रतको ६४ प्रकारकी भक्तिमें एक अङ्ग माना गया है। कार्तिक शुक्लद्वादशीको उर्जव्रतकी समाप्ति कर देनी चाहिये। अर्थात् २५ दिनोंतक तो अवश्य ही इस व्रतका पालन करना चाहिये।

हरिश्वयन कालमें चातुर्मास्य-व्रतका

पालन न करनेका परिणाम

श्रीभगवान् वर्षाके चार महीने शयन करते हैं। इस शयन कालमें कृष्ण-सेवाकी प्रवृत्तिको क्रमशः वर्द्धित करनेके लिये चातुर्मास्य-व्रतका पालन करना चाहिये। यह एक नित्य-व्रत है। इस व्रतका पालन नहीं करनेसे पाप लगता है।

इत्याश्वास्य प्रभोस्त्रे गृह्णनीयान्तियमं व्रती।

चतुर्मासेषु कर्तव्यं कृष्णभक्तिविवृद्धये॥

(हरिभक्तिविलास १५/५९)

अर्थात् व्रती व्यक्तिको “हे जगन्नाथ ! आपके शयन करने पर यह सारा जगत् सोता है एवं आपके जगने पर जगता है। हे अच्युत ! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों।”—भगवान्के आगे इस प्रकार प्रार्थना कर कृष्णभक्तिकी वृद्धिके लिये इन चार महीनों तक नियम-सेवाका व्रत ग्रहण चाहिए।

जो विना नियमं मत्त्ये व्रतं वा जप्यमेव वा।

चातुर्मास्यं नवन्मूर्खो जीवन्पि मृतो हि सः॥

(हरिभक्तिविलास १५/६०)

अर्थात् जो व्यक्ति कोई नियम या व्रत धारण किये बिना अथवा जपादिसे रहित होकर चातुर्मास्यका समय यों ही बिता देता है, वह मूर्ख व्यक्ति जीवित रह कर भी मृतके समान है।

व्रतमें ग्रहणीय और वर्जनीय बातें

व्रतके पालनीय विधियोंके सम्बन्धमें स्कन्दपुराणमें इस प्रकार कहा गया है—

जप-होमाद्यनुष्ठानं नाम-संकीर्तनस्तथा।

स्वीकृत्य प्रथयेद्वें गृहीतनियमो बुधः॥

(हरिभक्तिविलास १५/६५)

अर्थात् व्रतको धारण करनेवाले बुद्धिमान व्यक्ति होम आदिका अनुष्ठान और श्रीनाम संकीर्तन करेंगे। उन्हें भगवान्के निकट ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हे देव ! मैं आपके सामने यह व्रत धारण कर रहा हूँ। हे केशव ! आप ऐसी कृपा करें, जिससे मेरा यह व्रत बिना किसी विघ्न-बाधाके सिद्ध हो जाय ।

अब इस व्रतकी वर्जनीय बातोंका उल्लेख करते हैं—

श्रावणे वर्जयेत शाकं दधि भाद्रपदे तथा।

दुग्धमाश्वयुजे मासि कार्तिके चामिषं त्यजेत्॥

(ह० भ० वि० १५/६१ संख्याधृत स्कन्दपुराण)

—चातुर्मास्यके प्रथम भागमें अर्थात् श्रावण मासमें शाक, भाद्रमें दधि, आश्विनमें दुग्ध और कार्तिकमें आमिष अर्थात् मांस जातीय वस्तुओंका परित्याग करना चाहिए। कोई-कोई शाकसे पकाये हुए व्यञ्जन मानते हैं। सारांश यह है कि समस्त प्रकारके भोगोंको त्यागकर निरन्तर हरि-संकीर्तन करना चाहिए।

“रुच्यं तत्त्वाल-लभ्यं फल-मूलादि वर्जयेत्।”

समयोचित फल-मूल कन्द आदि खानेसे जीवन धारण तो होता है, किन्तु अधिक मात्रामें

इनका सेवन करनेसे भगवत्-स्मृति मन्द हो जाती है तथा जड़ विषयोंमें अतिशय आसक्ति बढ़ जाती है। इसलिये चातुर्मास्यमें इन सबका परित्याग कर संयत होकर हरि-कीर्तन करना चाहिये।

एक ही साथ नाना प्रकारके त्याग संभव नहीं हैं। अतः सामर्थ्यवानोंके लिये अधिक-से-अधिक जितना त्याग संभव हो, उतना ही अच्छा है। कर्मीलोगोंमें विषय-भोगकी लालसा अधिक होती है। इसीलिये विषय-भोगकी लालसाके त्यागका शास्त्रोंमें बड़ा महात्म्य बतलाया गया है। सारांश यह कि त्याग द्वारा विषयोंके प्रति आसक्ति कुछ संकुचित होनेपर भगवदनुकम्पाका सुयोग उपस्थित होता है। आत्म-धर्म या नित्य भगवत्-सेवन धर्मको प्रस्फुटित करानेके लिये अपनी-अपनी रुचिके अनुकूल शरीर और मनका धर्म जितना ही अधिक संकुचित किया जा सके, उतना ही मङ्गलजनक है। क्योंकि शरीर और मनका धर्म जितना ही संकुचित होगा, साधकका हरिसेवामें उतना ही अधिक उत्साह बढ़ता जायेगा।

विधि

चातुर्मास्यके दिनोंमें जमीनपर सोना चाहिए, पत्तलमें भोजन करना चाहिए। हो सके तो प्रतिदिन शामको एक वक्त भोजन करना चाहिए। प्रतिदिन स्नान अवश्य करना चाहिए तथा नियमसे रह कर भगवान्‌की प्रतिदिन विधिवत् पूजा करनी चाहिए।

ब्रतीको योगका अभ्यास करना चाहिए। समस्त प्रकारके योगोंमें भक्तियोग श्रेष्ठ है, क्योंकि भक्ति आत्माकी नित्य वृत्ति है। राजयोग अर्थात् ज्ञानयोग—मनकी एक अनित्य वृत्ति है तथा कर्मयोग या हठयोग—शरीर और मनकी मिश्रित एक दूसरी अनित्य वृत्ति है। अतः भक्तियोगका अभ्यास ही श्रेयस्कर है।

इन चार महीनों तक मौन-ब्रत अवलम्बन करनेसे विशेषरूपमें हरिकर्तनका सुयोग पाया जाता है। जमीन पर सोने और बिना पात्रके भोजन करनेसे हृदयमें एक प्रकारका स्वाभाविक दैन्य उत्पन्न होता है, जो हरिसेवाके लिए बड़ा ही उपयोगी और अनुकूल होता है। चातुर्मास्यकी समस्त विधियोंको अनुकूल कर लेने पर भजनमें

अत्यधिक सहायता मिलती है।

इन सब नियमोंके अतिरिक्त नक्त भोजन (रातमें तारोंको देख कर जो भोजन किया जाता है), पौच गव्य (गायसे प्राप्त होनेवाले पौच द्रव्य—दूध, दही, घृत, गोबर और गोमूत्र) का भोजन, तीर्थ-स्नान, अयाचित भोजन, भगवान्‌के मन्दिरमें संकीर्तन, वहाँ शास्त्रोंका पठन-पाठन या श्रवण, बिना तेल लगाये स्नान आदि विधियोंका नियम पूर्वक पालन करना चाहिए।

निषेध

ब्रतके दिनोंमें सेम, बरवटी, परवल, बैंगन तथा वासी और दूषित अन्नका परित्याग करना चाहिए। सामर्थ्यवान ब्रतीको नमक, तेल, मधु, पुष्पोंका उपभोग तथा कटु, अम्ल, तिक्क, मधुर, क्षार काषाय आदि रसोंको त्याग देना चाहिए। प्याज, लहसुन, नागरमोथा, छत्री, गाजर, मूली, लौकी, उरद, मसूर, मद्य, मैंस और ताम्बूलका वर्जन करना चाहिए। हो सके तो पकाए हुए द्रव्योंका भोजन और मिठीके वर्तनमें पकाये हुए पदार्थोंका भोजन न करना चाहिये तथा दही, दूध और मक्खनका भी परित्याग कर देना चाहिए। एक दिन अन्तर एक दिन उपवास करना उत्तम है। नख और केश आदि कटवाना नहीं चाहिए। क्योंकि इनसे विलासिता बढ़ती है।

शास्त्रोंमें चातुर्मास्यका बड़ा महात्म्य बतलाया गया है। किन्तु ये समस्त फल उन कर्मियोंको भक्तिकी ओर प्रवृत्त करनेके लिये ही कहे गये हैं, जो सर्वदा कर्मफलमें आसक्त रहा करते हैं तथा भगवद्भक्तिके प्रति उदासीन रहते हैं। जिस प्रकार एक रोगी बालकको लड्डूका लोभ दिखला कर दवा दी जाती है, तीक उसी प्रकार कर्मकाण्डमें आसक्त व्यक्तियोंको बड़े-बड़े फलोंका लोभ दिखलाकर भक्तिमार्गमें क्रमशः प्रवेश कराया जाता है। ज्ञानी और भक्तोंको लौकिक और पारत्रिक (स्वर्ग) किसी भी फलकी कामना नहीं होती। भक्तोंको तो ज्ञानियोंके काम्य—मुक्तिफलकी भी कामना नहीं करनी चाहिये। भगवद्भक्ति होने पर मोक्षकी वासना भी अत्यन्त घृणित प्रतीत होने लगती है। सम्पूर्णरूपसे विशुद्ध कृष्णसेवाकी प्राप्ति ही चातुर्मास्यका चरम फल है। □

—३० विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती



मेढ़ककी अठन्नी

किसी तालाबमें एक मेढ़क रहता था। दैववश उसने एक दिन एक अठन्नी पाया। अठन्नी पाकर बड़े अहङ्कारसे वह कहने लगा—“मेरे जैसा धनी और कौन है? इसबार जब राजाका हाथी पानी पीनेके लिए यहाँ आयेगा, तो मैं उसे बाँध दूँगा, किसी कीमतपर पानी नहीं पीने दूँगा।” ऐसा कहकर वह मेढ़क घाटके किनारे उसी अठन्नीपर बैठ गया। इसी समय महावत राजाके हाथीको लेकर तालाबमें उतरा। यह देखकर हाथीको बाँधनेके लिए मेढ़क अठन्नीपर से उठकर आनन-फाननमें कूदते हुए हाथीके पाँवके निकट जा पड़ा और तत्क्षणात् हाथीके पाँव तले दबकर उसने अपने प्राण गँवा दिए।

इस जगतमें जो अपनेको कर्मवीर मानकर अहङ्कार करते हैं, उनका सम्बल भी ‘मेढ़ककी अठन्नी’ की भाँति ही तुच्छ है। कर्मियोंका कर्मवीरत्व किसी भी क्षण संसारचक्रमें चकनाचूर हो जाता है, क्योंकि यह प्रकृतिसे उत्पन्न एक क्षुद्र ऐश्वर्यमात्र है। इसीलिए श्रीगीतामें कहा गया है—

प्रकृते: क्रियमाणानि गुणैः कर्मणि सर्वशः।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥

(गी० ३-२६)

जो समस्त कार्य प्रकृतिके गुणोंके द्वारा सम्पादित होते हैं, अहङ्कारवश जीव उन समस्त कर्मोंको अपने द्वारा किया हुआ मान लेता है अर्थात् यह अभिमान करता है कि मैं कर्ता हूँ। इसी प्रकार अहङ्कारी व्यक्ति यह कल्पना कर लेता है कि मैं जगतके भोगोंका मालिक हूँ और वह पृथ्वीपर अपना आधिपत्य विस्तार करना चाहता है। वह यह नहीं समझ पाता है कि मायादेवी उसके अहङ्कारका विपुल राजभवन किसी भी मुहूर्त मिट्टीमें मिला सकती है। सांसारिक स्वाधीनता और अधीनताके अहङ्कारका कोई मूल्य नहीं है। जो आज राजा है, वह कल सड़कका भिखारी हो सकता है; जो आज भिखारी है, वह भी कल इस नश्वर संसारके अहङ्कारका अहङ्कारी हो सकता है। इसीलिए किसी महाजनने गाया है—

राजार जे राज्यपाट, जेन नाट्यार नाट,
देखिते देखिते किछु नय।
हेन माया करे जेझ, परम ईश्वर सेझ,
ताँ मन सदा कर भय॥

□

प्रचार-प्रसङ्ग

अपनी विदेश-यात्राके क्रममें अमेरिकाके विभिन्न नगरोंसे होते हुए श्रील महाराजजी कनाडामें उपस्थित हुए हैं। कनाडासे जर्मनी होते हुए, वे २२ जुलाई, ग्रन्ट्रि १०.५० बजे मुम्बई हवाई अड्डेपर उतरेंगे। वहाँसे २४ जुलाईको दिल्ली आयेंगे तथा २५ जुलाईको मथुरा आयेंगे। अमेरिकामें उनका कार्यक्रम Houston, Badger C.A., San Francisco, Eugene, Vancouver,

Seattle, New York आदि प्रमुख नगरोंमें हुआ। बहुत अधिक संख्यामें लोगोंने कार्यक्रममें भाग लिया। श्रील महाराजजीके विदेश प्रचारके सम्बन्धमें वहाँके एक दैनिकने जो प्रकाशित किया उसका कुछ अंश नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

His Primary mission is to spread the message of Srimad Bhagvatam and devotion to Lord Sri Krishna. His

presentations emphasize love and respect for all living beings. Since they are all parts and parcels of Sri Krishna. "Offering respects to others will gradually help us to develop our devotion to the Lord which is so special", says the swami. He encourages family and social guidance of the parampara, or sacred disciplic succession. He has spoken at length on the beautiful Vrindavan-Lila of Lord Sri Krishna. And as one western member of his audience has commented, "Everyone's heart has been captivated by the poetic and authoritative presentation that bring the beauty of Sri Sri Radha Krishna and Braja Dham easily within the minds and hearts of his listeners".

The success of Srila Narayan Maharaja's tour to Europe and America makes a new chapter in the development

of the on-going Chaitanya world mission. The stature and character of the saint, the authority of his disciplic lineage, and the level of his realized knowledge gives him a pedigree that no one in the West can resist. Many devotees, eager for his sanga and siksha, travel long distances to hear him speak and to take his darshan. One independent observer remarked, "Indeed he has brought genuine devotion and is showing the power for self-development via the back path, by his character and example". As the Swami makes

his gentle way in the West, the interest of a growing audience give him a chance to continue to spread the message of peace and love through devotion to Lord Sri Krishna.



PLATO SCHOOL, HOLLAND में
सङ्कीर्तन कराते हुए श्रीलमहाराज



विकासवादोऽथ विनाशवादः

—डा. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

**एकतो विकास राज्यमन्तिके
हसति वै विनाशकोऽस्यमस्तके
शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु**
एक और विकासका राज्य है उसके मस्तकपर ही विनाश बैठा है, कविकी उक्ति है कि शान्ति होवे शान्ति होवे शान्ति होवे।

विकास—

तैलमद्य लभ्यतेऽत्र वारिथो
दर देशो दूरभाष सन्निधौ
चित्रमिदं चित्रमयं दर्शनम्
चित्रेऽपि चारुचित्रमजर्नम्
किमपि नास्ति जगति चाद्य दूरके
एकतो विकास राज्यमन्तिके
हसति वै विनाशकोऽस्य मस्तके
शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु॥१॥

विकासने कहा—विनाश देखो! पेटोल अब समझ टटसे भी प्राप्त होने लगा है, दूरभाषके कारण देशोंकी दूरी समाप्त हो गई है, कभी भी संपर्क सम्भव है। आज टी. बी. आ गई है जिसमें चित्रोंका दर्शन होता है और चित्रमें भी मनमें क्या है? इसका पता लगानेवाले यन्त्र आ गए हैं, आज तो कुछ दूर है ही नहीं।

एक और विकास है और समीप बैठा है विनाश, कविकी प्रार्थना है कि शान्ति होवे।

विनाशः—

तिष्ठरे! विकास पश्य मेवलम्
अग्निसात्-क्रियते तेत्-केवलम्
दूर-भाषकं हि मे सहायकम्
क्षणनैव वायुयान्-वृन्दकम्
सङ्केत-क्षणे याति दूरके
एकतो-विकास-राज्यमन्तिके
हसति वै विनाशकोऽस्य मस्तके
शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु॥२॥

विनाशने कहा—अरे विकास! सुनो, ठहरो क्या कहा—मेरा बल देखो, जो पेटोल आदि पदार्थ तुमने प्रकट किए हैं उन्होंसे विश्वमें मैं विनाश लौला करूँगा, यही पेटोल जगह-जगह आग लगानेके कार्यमें आवेगा। और दूरभाष भी मेरा ही सहायक होगा इसीके द्वारा सर्वत्र विनाशके पग बढ़ेंगे, क्षण भरमें ही वायुयानके समूह विनाश सामग्री लेकर उड़ जायेंगे।

एक और विकास है दूसरी ओर बैठा है विनाश कवि कहता है शान्ति होवे॥

विकास—
रजतमयी-चन्द्र भूमिकल्पना
प्रत्यक्षी-क्रियते नैव जल्पना
मानवं-विनापि वायुयानकं
वृष्टेरप्यभावे मेघयानकं—
वीक्ष्य लगति दैवमद्य दूरके
एकतो विकास-राज्यमन्तिके
हसति वैविनाशकोऽस्य मस्तके
शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु॥३॥

विकासने कहा—अरे विनाश! सुनो, पहले चन्द्रमाकी भूमि कैसी है चांदी कौं है, या चांदनीमयी, एक कल्पना थी, आज चन्द्रलोकमें पायी गयी और सब कछु प्रत्यक्ष कर लिया गया, कोई कोरी कल्पना नहीं रही। मानवके विना रॉकेट उड़ाये जा रहे हैं, बिना वर्षा ऋतुके मेघ बनाये जा रहे हैं, जो आवश्यकतानुसार वर्षा करते हैं, इन्हें देखकर अब तो यह लगता है कि देव, दैव शब्द भी दूरकी वस्तु हो गए हैं।

एक और विकास है दूसरी ओर बैठा है विनाश कविकी प्रार्थना है शान्ति होवे॥

विनाशः—
चन्द्रलोक-दृष्णं हि भूषणं
वृष्टि-वात-वान्तकं हि पूषणम्
अणु-प्रसार-कर्मणापियानकं
भीतिकरं-चिन्तायुतं-घातकं
भवित रे तिष्ठ यमस्यान्तिके
एकतो विकास राज्यमन्तिके
हसति वै विनाशकोऽस्यमस्तके
शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु शान्तिरस्तु॥४॥

विनाश बोला—देखो! जिस चन्द्रलोक यात्रापर तम प्रसन्न हो उसीको मैं दूषित करूँगा यही मेरे लिए अलङ्कारके समान मिला है। वहाँसे वर्षा—आँधीकी उल्ट्याँ जब चाहें कराऊँगा यही तो पूजन होगा उस लोकका, अणु अस्त्रोंसे भरे शस्त्र यानोंमें जायेंगे जिनसे सारा संसार काँप उठेगा, डरेगा, चिन्ता होगी और होगा मानवताका विनाश, ठहरो! थोड़े दिनमें श्रीमान विकासजी आप यमराजके अतिथि अवश्य बनोगे।

एक और विकास है दूसरी ओर बैठा है विनाश कविकी प्रार्थना है हे प्रभो! शान्ति होवे। □

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या कच्चिदुपासना ब्रजवधूवर्णेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्रं । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दूर्व भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष २० } श्रीगौराब्द ५१० { संख्या ७
विक्रम संवत् २०५२-५३ भाद्रपद मास, सन् १९९६, २९ अगस्त- २८ सितम्बर }

श्रीश्रीमद्भक्तिविनोददशकम्

अमन्दकारुण्यगुणाकरश्रीचैतन्यदेवस्य दयावतारः।
स गौरशक्तिर्भविता पुनः किं पदं दृशोर्भक्तिविनोददेवः ॥१॥
श्रीमज्जगन्नाथप्रभुप्रियो य एकात्मको गौरकिशोरकेन।
श्रीगौरकारुण्यमयो भवेत् किं नित्यं सृतौ भक्तिविनोददेवः ॥२॥

जो परम करुणाके आगार श्रीचैतन्यदेवकी दयाके अवतार हैं, वे गौरशक्ति श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या पुनः हमारे नयनगोचर होंगे? ॥१॥

जो श्रीजगन्नाथ प्रभुके परम प्रिय अनुगामी (शिष्य) हैं और श्रीमद्गौरकिशोरदेवके अभिन्न आत्मस्वरूप हैं, वे श्रीगौर-करुणाशक्ति श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या नित्यकाल हमारे स्मृतिगोचर रहेंगे? ॥२॥

श्रीनामचिन्तामणि-सम्प्रचारे-

रादर्शमाचारविधौ दथौ यः।
स जागरुकः स्मृतिमन्दिरे किं
नित्यं भवेद् भक्तिविनोददेवः॥३॥

नामापराधै रहितस्य नामो
माहात्म्यजातं प्रकटं विधाय।
जीवे दयालुभविता स्मृतो किं
कृतासनो भक्तिविनोददेवः॥४॥

गौरस्य गूढप्रकटालयस्य
सतोऽसतो हर्षकुनाट्ययोश्च।
प्रकाशको गौरजनो भवेत् किं
स्मृत्याप्यदं भक्तिविनोददेवः॥५॥

निरस्य विज्ञानिह भक्तिगङ्गा
प्रवाहनेनोद्भूतसर्वलोकः।
भगीरथो नित्यधियां पदं किं
भवेदसौ भक्तिविनोददेवः॥६॥

विश्वेषु चैतन्यकथाप्रचारी
माहात्म्यशंसी गुरुवैष्णवानाम्।
नामग्रहादर्शं इह स्मृतं किं
चित्ते भवेद् भक्तिविनोददेवः॥७॥

प्रयोजनं सन्नभिधेयभक्ति-
सिद्धान्तवाण्या सममत्र गौर-
किशोर सम्बन्धयुतो भवेत् किं
चित्तं गतो भक्तिविनोददेवः॥८॥

शिक्षामृतं सज्जनतोषणीज्ञ
चिन्तामणिज्ञात्र सज्जैवधर्मम्।
प्रकाशय चैतन्यप्रदो भवेत् किं
चित्ते धृतो भक्तिविनोददेवः॥९॥

आषाढ़दर्शेऽहनि गौरशक्ति-
गदाधराभिन्नतनुर्जहो यः।
प्रपञ्चलीलामिह नो भवेत् किं
दृश्यः पुनर्भक्तिविनोददेवः॥१०॥

जिन्होंने श्रीनाम चिन्तामणिके प्रचारके साथ-ही साथ आचारके विधियोंका आदर्श स्थापन किया है, वे श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या हमारे स्मृति-मन्दिरमें सदा-सर्वदा जागरुक रहेंगे? ॥३॥

जिन्होंने नामापराधोंसे रहित श्रीनामके माहात्म्यसमूहको प्रकाशितकर परम जीव-दयालुताका परिचय दिया है, वे श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या हमारे स्मृतिरूप सिंहासनपर विराजमान होंगे? ॥४॥

जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेवके निगूढ जन्म-स्थानको प्रकाशित कर सज्जनोंका हर्ष एवं दुष्टोंकी कुटिलताको एक साथ जगत्‌में प्रकाशित किया है, वे गौरजन श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या हमारी स्मृतिके विषयीभूत होंगे? ॥५॥

जिन्होंने भक्तिमार्गके कण्टकसमूहको दूरकर भक्तिरूपी गङ्गाकी धारासे निखिल लोगोंका उद्धार किया है, वे भक्ति-भागीरथीको लानेवाले भगीरथस्वरूप श्रीमद्भक्तिविनोद क्या हमारी धारणाके विषय हो सकेंगे? ॥६॥

जिन्होंने जगत्‌में सर्वत्र श्रीचैतन्यदेवकी कथाओंका प्रचार किया है, गुरु और वैष्णवोंकी महिमाको प्रकाशित किया है तथा श्रीनाम ग्रहण करनेका आदर्श दिखलाया है, वे श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या हमारे हृदयमें स्मृत (स्मरण) रहेंगे? ॥७॥

जो स्वयं प्रयोजनतत्त्वस्वरूप हैं, क्या वे श्रीमद्भक्तिविनोददेव, गौरकिशोररूप सम्बन्धतत्त्वके साथ मिलकर अभिधेय-तत्त्व श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीके साथ हमारे चित्तमें उदित होंगे? ॥८॥

जिन्होंने सज्जनतोषणी (पत्रिका), चैतन्यशिक्षामृत, श्रीहरिनाम चिन्तामणि और जैवधर्म आदि ग्रन्थोंकी रचनाकर उनके द्वारा जीवोंको चेतनाका दान किया है, वे श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या हमारे हृदयमें पकड़े जा सकेंगे? ॥९॥

जिन्होंने आषाढ़की अमावस्या तिथिमें गौरशक्ति गदाधर पण्डित गोस्वामीके अभिन्नरूपमें (उन्होंके तिरोभावके दिन) अपने प्रपञ्चलीलाको गोपन किया है, वे श्रीमद्भक्तिविनोददेव क्या पुनः हमारे दृष्टिगोचर होंगे? ॥१०॥ □



विदेश प्रचार-प्रसङ्ग

भगवान् श्रीकृष्णके लीला-सङ्गोपनके कुछ ही समय बाद कलियुगने अपने प्रभावका विस्तार किया। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया शुद्ध वैष्णव विचारधारा लुप्त होती गई। बौद्धवाद, मायावाद आदि विभिन्न मत कलियुगकी कोखसे उत्पन्न हुए।

कलियुगकी बंजर भूमिमें
शुद्ध वैष्णव विचारधाराका
बीज सङ्गर्षणावतार
श्रीरामानुजाचार्यने बोया।
विभिन्न मतान्तरोंको परास्त
करते हुए भक्तिलताका
वह बीज अंकुरित हुआ।
श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी
आदि प्रमुख वैष्णवाचार्योंकी
छत्रछायामें पौधा बढ़कर
सुन्दर, विशाल पेड़का रूप
धारण किया। उसमें फल
लगे। किन्तु, वह फल तब
तक मधुरताकी चरम सीमाको
स्पर्श नहीं किया, जब तक
परम औदार्यमय विग्रह
श्रीकृष्णाभिन्न श्रीचैतन्य
महाप्रभु इस धरणीपर
अवतरित नहीं हुए। उस
समय समस्त भारत वर्षके
लोगोंने इस सुपक्व, सुगन्धि-

भौतिकतासे पूर्ण ऊषर भूमिमें बीजारोपण किया। उन्हींके सुयोग्य एवं सर्वप्रमुख शिष्य जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद'ने उस ऊषर भूमिको उर्वर बनाकर जल सिज्जन आदिके द्वारा पौधको अंकुरित कराकर वृक्षका रूप दिया।

परवर्ती कालमें उन्हीं श्रीलप्रभुपादके विभिन्न शिष्यों विशेषांगतः पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके प्रयाससे फल भी लगे। किन्तु, वह फल रसपूर्ण नहीं हो पाया। इस फलको भी श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा वितरित उस सुपक्व, सुमधुर और सुगन्धित फलके सदृश बनानेके लिए उन्हीं जगद्गुरु श्रीलप्रभुपादके अन्तरङ्ग जगद्गुरु श्रीश्रीमद् भक्तिप्रशान केशव गोस्वामीके अनुकम्पित गौडीय वेदान्त समितिके वर्तमान उपाध्यक्ष श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी, समितिके वर्तमान सभापति श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी शुभकामनाओंके

पृष्ठ

हॉलेण्डसे विदाइके समय हवाई अड्डेपर उपस्थित भक्तगण

त फलका आस्वादन किया। उस फलको समग्र विश्वमें वितरित करनेका आदेश भी श्रीशचीनन्दन श्रीगौरहरिने दिया। इसी शृङ्खलामें आधुनिक समयमें भक्ति-भागीरथीको पुनः प्रवाहित करानेवाले गौरशक्तिस्वरूप श्रीसच्चिदानन्द ठाकुर भक्तिविनोदने कलिहत पाश्चात्य देशोंकी जनताको वह सुपक्व फल प्रदान करनेका प्रथम प्रयास करते हुए

साथ अपनी प्रथम विदेश यात्रापर गये। श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे उनका यह प्रचार अभियान अत्यन्त सफल रहा। प्रायः तीन महीने तक पाश्चात्य देशवासियोंके ऊपर प्रचुर कृपा वर्षणकर वे पुनः ब्रजभूमिमें लौट आये हैं। विदेशोंमें उनके प्रचारके मुख्य-मुख्य विवरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

| | | |
|------------|--|---|
| ७/५/९६ | प्लेटो स्कूल ऑफ फिलोसॉफि (एम्स्टर्डम) में कीर्तन एवं प्रवचन। | १२-१५/६/९६ सायं. ह्युस्टनस्थित प्रसिद्ध महात्मा गांधी हॉलमें श्रीभागवतपर प्रवचन। |
| ८/५/९६ | पातञ्जल योग सेन्टर (रोटरडॅम) में कीर्तन एवं प्रवचन। | १८/६/९६ दक्षिण कोलिफोर्नियास्थित लॉस एजिनल्स शहरमें आगमन। |
| ९/५/९६ | हरिनाम एवं दीक्षा समारोह (बोवन लियोवन) | १९-२३/६/९६ सायं. लॉस एजिनल्स राधारमण वैदिक मन्दिरमें कीर्तन एवं प्रवचन। |
| ११/५/९६ | राईजस्वीक स्थित सेवाधाम मन्दिरमें कीर्तन एवं प्रवचन | २४/६/९६ प्रातः बेकर्सफील्डमें आगमन। |
| १५/५/९६ | इलैंडके हीथ्रो हवाई अड्डेपर भव्य स्वागत | २५/६/९६ बेजरमें आगमन। |
| १७/५/९६ | राडलेटस्थित इस्कॉनके भक्तिवेदान्त मेनॉरमें विग्रह दर्शन राडलेट | २६-२९/६/९६ बेजरस्थित श्रीश्रीगौर-निताई मन्दिरमें कीर्तनप्रवचन। |
| १७/५/९६ | सायं. राडलेटस्थित कम्युनिटी सेन्टरमें प्रवचन | ३०/६/९६ सायं. उत्तरी कोलिफोर्नियास्थित बर्कले शहरमें आगमन। |
| १८/५/९६ | एल्डनहेम वॉर मेमोरिअलमें प्रवचन | १-५/७/९६ उत्तरी कोलिफोर्नियास्थित प्लेजेण्ट हिल्समें कीर्तन एवं प्रवचन। |
| २०/५/९६ | लण्डनस्थित श्रीवासुदेव गौड़ीय मठमें विग्रह दर्शन एवं प्रवचन। | ६-७/७/९६ ऑर्गनस्थित यूजिन शहरके इस्कॉन मन्दिरमें कीर्तन एवं प्रवचन। |
| २०/५/९६ | सायं. राडलेटस्थित एल्डनहेम वॉर मेमोरिअलमें प्रवचन। | ८/७/९६ कनाडाके वैंकुवर शहरमें आगमन। |
| २२/५/९६ | राडलेटमें हरिनाम एवं दीक्षा समारोह। | ९-११/७/९६ कनाडाके ब्रिटिश कोलम्बियास्थित वेनेबल्सवेलिक शरणागति ग्राममें कीर्तन एवं प्रवचन। |
| २३/५/९६ | सायं. रेडिंगमें आगमन एवं प्रवचन | १२/७/९६ प्रातः वैंकुवर शहरमें प्रवचन। |
| २४/५/९६ | प्रातः बाथमें आगमन एवं प्रवचन | १२/७/९६ सायं. अमेरिकाके सियाटल शहरमें आगमन। |
| २६/५/९६ | प्रातः ग्लास्टनबेरीस्थित आगमन | १४/७/९६ प्रातः न्यूयॉर्क शहरमें आगमन। |
| २६/५/९६ | सायं. ग्लास्टनबेरीस्थित असेम्बलि हॉलमें कीर्तन एवं प्रवचन। | १४/७/९६ सायं. न्यूयॉर्कस्थित आत्मानन्द योग संस्थानमें कीर्तन एवं प्रवचन। |
| २९/५/९६ | प्रातः लेस्टरमें आगमन | १५/७/९६ न्यूयॉर्कस्थित २६ सेकेण्ड एवेन्यु, इस्कानका जन्मस्थान एवं थॉमकीन्स स्क्वायर पार्कमें दर्शन। |
| २९-३०/५/९६ | सायं. लेस्टरस्थित श्रीसनातन मन्दिरमें कीर्तन एवं प्रवचन। | १६/७/९६ न्यूजर्सीस्थित टोवाको इस्कॉन मन्दिरमें कीर्तन एवं प्रवचन। |
| १/६/९६ | लेस्टरस्थित रसहे मेड स्कूलमें प्रवचन। | २०/७/९६ हालेण्डके एम्स्टर्डम शहरमें आगमन। |
| २/६/९६ | लण्डनमें आगमन। | २२/७/९६ पुनः मुम्बई शहरमें आगमन। |
| ५/६/९६ | हॉलेन्डस्थित एम्स्टर्डम हवाई अड्डेपर भव्य स्वागत। | २५/७/९६ दिल्लीमें आगमन। |
| ६/६/९६ | अमेरिकाके ह्युस्टन शहरमें आगमन। | २६/७/९६ दिल्लीस्थित मानसरोवर गार्डनके सनातन धर्म मन्दिरमें स्वागत समारोह। |
| ८/६/९६ | ह्युस्टन शहरके स्थानीय रेडियोमें प्रसारण। (हिन्दी एवं अंग्रेजीमें) | २७/७/९६ पुनः मथुरामें आगमन। |
| ९/६/९६ | ह्युस्टनस्थित हिन्दू मन्दिरमें कीर्तन एवं प्रवचन। | |
| १२/६/९६ | प्रातः हरिनाम एवं दीक्षा समारोह। | |



जीव तत्त्व एवं रसाभास

श्रीश्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी जिस समय इंग्लैण्ड महानगरीके राडलेट नामक उपनगरीमें शुद्धभक्तिका प्रचारकर रहे थे उस समय इस्कॉनके कुछ वरिष्ठ भक्त उनके निकट प्रस्तुत हुए और उनसे पूछा कि आप श्रीश्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजके मित्र और सहयोगी हैं तथा एक ही गुरुसे संन्यास ग्रहण किया है, एक ही श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके वैष्णव हैं। किन्तु, कुछ लोग ऐसा कह रहे हैं कि आपके सिद्धान्त और विचार श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीसे पृथक् हैं। इस विषयमें हमलोग आपसे कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

श्रीलनारायण महाराजजीने स्वभाव सुलभ नप्रतापूर्वक उत्तर दिया—हम दोनों एक ही श्रीगौड़ीय वैष्णव परम्परामें दीक्षित एवं शिक्षित हैं। हम दोनों बहुत वर्षोंसे एकसाथ रहे हैं। अतः हमारे विचारों और सिद्धान्तोंमें अन्तर नहीं हो सकता। किसी विशेष कारणके लिए ऐसा कुप्रचार किया जा रहा है। हम लोगोंके विचारोंमें क्या अन्तर है आप लोग इस विषयमें पूछ सकते हैं।

सीतादेवी दासी—स्वामीजी श्रीमद्भगवत् एवं श्रीचैतन्य चरितामृत आदि ग्रन्थोंमें जीवतत्त्वके सम्बन्धमें ऐसा बतलाया है कि इस जगत्के सारे बद्ध जीव श्रीकृष्णसे विमुख होनेके कारण गोलोक वृद्धावनसे इस मायिक जगत्में दुःख भोगनेके लिए आये हैं। फिर भक्ति द्वारा शुद्ध होनेपर वे पुनः वैकुण्ठ या गोलोक वृद्धावनमें श्रीकृष्णकी सेवाको प्राप्त करते हैं। किन्तु, आप इसके विपरीत यह कहते हैं कि कोई भी जीव वैकुण्ठ या गोलोक वृद्धावनसे पतित नहीं होता। इस विषयमें आपके क्या विचार हैं?

श्रील महाराजजीने उत्तर दिया—मैं अपनी तरफ से कोई भी विचार नहीं बतला रहा हूँ। मैं श्रील जीव गोस्वामि द्वारा रचित षट्सदन्धर्म, श्रील सनातन गोस्वामि, श्रील जीव गोस्वामि और श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर द्वारा रचित श्रीमद्भगवत्की टीकाओं,

श्रीचैतन्य चरितामृत, श्रील भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा रचित जैवधर्म आदि प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधारपर यह दृढ़ताके साथ कह रहा हूँ कि मायिक जगत्के बद्धजीव वैकुण्ठ या गोलोक वृद्धावन धामसे श्रीकृष्णसे विमुख होकर नहीं गिरे हैं। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामीजीने भी ऐसा कदापि किसी ग्रन्थमें नहीं लिखा है। साधारण एवं अपरिपक्व लोगोंके लिये ऐसा प्रतीत हो सकता है। किन्तु, गूढ़रूपसे विचार करनेपर हम देख सकते हैं कि उनके विचार भी मेरे जैसे ही हैं। पहले मैं श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीमद्भगवत् तथा श्रील जीव गोस्वामी आदि श्रीगौड़ीय परम्पराके आचार्योंके विचारोंको उद्धृत करूँगा। इसके द्वारा आप लोग स्वयं ही अनुभव कर सकेंगे कि हम लोगोंके विचारमें कोई भी अन्तर नहीं है। सर्वप्रथम मैं श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीमद्भगवत्के कतिपय प्रमाणोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ—

**जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेति तत्त्वतः
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽजुनः॥१॥**

(गीता ४/९)

मेरे जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अप्राकृत एवं अलौकिक हैं—इस प्रकार जो मनुष्य तत्त्वसे जान लेता है, वह शरीरको त्यागकर फिर जन्मको प्राप्त नहीं होता। किन्तु, मेरे धाममें मुझे ही प्राप्त होता है।

**मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम्।
नामुवन्ति महात्मानः सप्तिष्ठिं परमां गताः॥२॥**

(गीता ८/१५)

परम सिद्धिको अर्थात् कृष्ण प्रेमको प्राप्त महात्माजन मुझको प्राप्त होकर दुःखोंके घर और क्षणभंगुर पुनर्जन्मको प्राप्त नहीं होते।

**आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्त्तिनोऽजुनः।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥३॥**

(गीता ८/१६)

अर्थात् हे अर्जुन ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोकोंसे पुनरागमन होता है। किन्तु, मुझको प्राप्त होकर पुनर्जन्म नहीं होता। क्योंकि मैं कालातीत हूँ। ये सब ब्रह्मादिके लोक अनित्य हैं, किन्तु मेरा धाम नित्य और शाश्वत है।

य एवं वेति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह।
सर्वथा वर्तमानाऽपि न स भूयोऽभिजायते॥४॥

(गीता१/२४)

इस प्रकार पुरुषको और गुणोंके सहित प्रकृतिको जो तत्त्वसे जान लेता है वह अपने कर्तव्य कर्मोंको करता हुआ भी फिर जन्म नहीं लेता।

न तद्वासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निर्वतन्ते तद्वाम परमं मम॥५॥

(गीता१५/६)

जिस परम पदको प्राप्त होकर जीव इस संसारमें कभी नहीं लौटते हैं, उस मेरे स्वयं प्रकाश परम धामको न तो सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्र और न अग्नि ही, वही मेरा परम धाम है।

एतां गतिं भागवतीं गतो यः,
स वै पुनर्नहं विषज्जतेऽङ्गं॥६॥

(श्रीमद्भागवत २/२/३१)

अर्थात् जिसे यह भागवती गति प्राप्त हो जाती है, उसे फिर इस संसारमें कभी नहीं आना पड़ता है।

तासामविरतं कृष्णो कुर्वतीनां सुतेक्षणम्।
न पुनः कल्पते राजनसंसारोऽज्ञानसम्भवः॥७॥

(श्रीमद्भागवत १०/६/४०)

जो लोग ब्रजके गोप-गोपियोंका अनुसरणकर श्रीकृष्णको अपना सखा, पुत्र और प्रियतम मानकर प्रेमाभक्तिके द्वारा ब्रजधामको प्राप्त हो जाते हैं, वे जन्म-मृत्युके प्रवाहमें कभी नहीं पड़ सकते।

श्रील जीव गोस्वामि भगवत्-सन्दर्भमें श्रीमद्भागवतके “न कर्हिचिन्मतपराः शान्तरूपे नद्व्यन्ति नोऽनिमिषो लेद्धि हेतिः” इस श्लोकको उद्भूतकर तथा वेदान्तके सूत्रोंका उल्लेखकर इस सिद्धान्तकी स्थापना करते हैं कि गोलोक या वैकुण्ठसे जीवोंका पतन नहीं होता है। वे कहते

हैं कि पुण्यादिके द्वारा प्राप्त स्वर्गादि लोकोंसे जिस प्रकार पत्तन होता है, उस प्रकार भगवत्-कृपासे प्राप्त वैकुण्ठादि लोकोंसे पत्तनकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि वहाँ महामाया या कालका कोई प्रभाव नहीं।

श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने जैवधर्मके सोलहवें अध्यायमें यह स्पष्ट रूपसे लिखा है—कि जीव स्वरूपतः कृष्णके नित्य दास हैं। गोलोक वृन्दावनमें वृन्दावनविहारी श्रीकृष्णकी सेवाके लिये श्रीबलदेव प्रभु द्वारा एवं परब्योम वैकुण्ठमें वैकुण्ठाधिपति नारायणकी सेवाके लिये श्रीसङ्खर्षण द्वारा प्रकटित नित्य पार्षद अनन्त जीव हैं, वे लोग यह भी नहीं जानते कि माया द्वारा रचित कोई मायिक दुःखपूर्ण जगत् है। वे कभी भी उस लोकसे पतित नहीं होते। इन जीवोंके अतिरिक्त कारणाद्विशायी महाविष्णुके मायाके प्रति ईक्षणरूप किरणगत, अणुचैतन्य जीव भी अनन्त हैं। इस तटस्थ अवस्थामें जीव बहुत ही दुर्बल होते हैं। इस दुर्बलताके कारण ही जीव जागतिक भोगोंसे आकृष्ट होकर कृष्ण विमुख हो जाते हैं। ये विमुख जीव श्रीभगवान्‌की कृपासे भगवद्भक्तिका आश्रयकर भगवद्धाममें भगवत्-सेवाको प्राप्त करते हैं। भगवद्धाम प्राप्त जीवोंके पतनकी कभी भी सम्भावना नहीं है।

मैंने ऊपरमें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत, भगवत्-सन्दर्भसे कुछ अकाट्य प्रमाणोंके आधारपर यह दिखलाया कि गोलोक वैकुण्ठसे जीवोंका पतन असम्भव है।

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि वैकुण्ठ या गोलोक वृन्दावनमें प्राकृत-मायाका प्रभाव नहीं है। वहाँ किसी प्रकारकी कृष्ण-विमुखता या अज्ञानताका भी अस्तित्व नहीं है। वहाँ तो केवल विशुद्ध प्रेम एवं योगमायाका प्रभाव है, जो वहाँके तृण-गुल्मसे लेकर गो-गोप-गोपियों सभीको उत्तरोत्तर कृष्ण-प्रेममें सर्वदा निमग्न रखती हैं तथा उनके प्रेमकी तरंगे तरंगायित करती रहती हैं। अतः कोई भी कृष्ण-परिकर चाहे वह नित्य-मुक्त अथवा साधन-सिद्ध हो, कदापि भगवद्विमुख नहीं

हो सकता। यदि जीवोंका वहाँसे पतन मानते हैं, तो वेद, उपनिषद्, गीता और श्रीमद्भागवतके वचन असत्य प्रमाणित होते हैं, किन्तु ये शास्त्र समूह अभ्रान्त एवं एकमात्र प्रमाण माने गए हैं।

यदि जीव गोलोकसे पतित होते हैं, तो हजारों जन्मोंकी आराधनाके पश्चात् दुर्लभतम् कृष्णप्रेमको पाकर भी, गोलोक वृन्दावनमें कृष्णकी सेवा प्राप्तकर भी उसके पुनः पतनका प्रसङ्ग उपस्थित होता है। इस स्थितिमें गोलोक वृन्दावनमें

कृष्णकी सेवा नित्य, शाश्वत कहाँ रही? दूसरी बात यह कि यदि कोई कहे कि जय-विजय एवं महाराज चित्रकेतु आदि मुक्त पुरुषोंका वैकुण्ठसे पतन देखा जाता है, अतः वैकुण्ठ-गोलोकसे भी जीवोंका पतन सिद्ध होता है। इसका उत्तर हमारे श्रील जीव गोस्वामी, श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर आदि सिद्धान्तविद् वैष्णवाचायाँने पहले ही दे दिया है, वह यह कि जय-विजय और चित्रकेतु महाराज आदि केवल मुक्त जीव ही नहीं थे, ये भगवान्‌के परिकर थे। ये लोग अपने आराध्यदेव श्रीभगवान्‌की इच्छामें उनके मनोऽभिष्ट पूर्ण करनेके लिए तथा मायाबद्ध जीवोंको कृपाकर शिक्षा देनेके लिए अपने एक स्वरूपमें वैकुण्ठमें रहते हुए भी अपने प्रकाश-स्वरूपसे भूतलपर अवतरित होकर बद्धजीवों जैसा अभिनयमात्र कर रहे थे। श्रीभगवान्‌की भाँति ये परिकर भी अपने विभिन्न स्वरूपोंमें प्रकटित होकर विभिन्न स्वरूपोंमें प्रकटित

अपने प्रभुकी सेवा करते हैं। सिद्धान्तविद् महापुरुषगण उन्हें कदापि बद्धजीवोंके रूपमें नहीं देखते। उन्हें बद्धजीव समझना अपराधजनक है।

इनकी तो बात ही क्या, श्रीनारदजीका मोह, श्रीनारदजीका जन्म एवं साधन-भजन, महात्मा भरतजीका हिरण्यके प्रति मोह एवं

आसक्ति भी बद्धजीवोंकी शिक्षाके लिए है। इनका भी पतन असम्भव है।

अब हम पृज्य श्रौतक्रियान्त स्वामीजीके द्वारा लिखित उन अंशोंको उद्धृतकर रहे हैं, जिनमें उन्होंने भी

यह बिल्कुल स्पष्टरूपमें लिखा है कि वैकुण्ठसे जीवका पतन नहीं होता है—

(1) From Vedic scriptures it is understood that sometimes even Brahma and Indra fall down, but a devotee in the transcendental abode of the Lord never falls.

(Srimad Bhagavatam 3.15.48 Purport)

वैदिक शास्त्रोंके द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि किसी-न-किसी समय ब्रह्मा और इन्द्रका पतन होता है, किन्तु भगवान्‌के नित्यधाममें निवास करनेवाले भक्तका पतन कभी नहीं होता है।

(श्रीमद्भा. ३/१५/४८)

(2) The conclusion is that no one falls from the spiritual world or Vaikuntha, for it is the enternal abode.

(Srimad Bhagavatam 3.16.48 Purport)

निष्कर्ष यह है कि चिन्मय जगत् अर्थात् वैकुण्ठ लोकसे किसीका पतन नहीं होता क्योंकि वह शाश्वत निवास है।

(श्रीमद्भा. ३/१६/४८)

(3) This ordinary living being is of two kinds—nitya-baddha or nitya mukta. One is eternally conditioned and the other is eternally liberated. The eternally liberated living being are in Vaikunthajagat, the spiritual world and they never fall into the material world.

(Srimad Bhagavatam 5.11.12 Purport)

यह सामान्य जीव दो प्रकारका होता है—नित्य बद्ध तथा नित्य मुक्त। इनमेंसे पहला शाश्वत बद्ध रहनेवाला और दूसरा शाश्वत मुक्त रहता है। शाश्वत मुक्त जीव वैकुण्ठ जगत् में रहता है और वह इस जगत् में नहीं आता है।

(श्रीमद्भा. ५/११/१२)

(4) Sometimes it is asked how the living entity falls down from the spiritual world to the material world. Here is the answer. Unless one is elevated to the Vaikuntha planets, directly in touch with Supreme Personality of Godhead, he is prone to fall down, either from the impersonal Brahman realization or from an escatic trance meditation.

(Srimad Bhagavatam 3.25.29 Purport)

कभी-कभी लोग पूछते हैं कि जीवात्मा स्वर्गसे इस लोकमें कैसे गिर जाता है? इसका उत्तर यहाँ मिलता है। जब तक मनुष्य भगवान्‌के प्रत्यक्ष

सम्पर्कमें वैकुण्ठलोकमें नहीं पहुँच जाता तब तक उसके नीचे गिरनेका भय बना रहता है, चाहे वह निर्गुण ब्रह्म साक्षात्कारसे हो या ध्यानकी समाधि अवस्थासे हो।

(श्रीमद्भा. ३/२५/२९)

(5) The bodies of the inhabitants of Vaikuntha are completely spiritual, having nothing to do with the material body, senses or life air. Therefore kindly explain how associates of the Personality of Godhead were cursed to descend in material bodies like persons.

(Srimad Bhagavatam 7.1.35)

Purport:—Therefore it is to be understood that when Jaya and Vijaya descended to this material world, they came because there was some thing to be done for the Supreme Personality of Godhead. Otherwise it is a fact that no one falls from Vaikuntha.

वैकुण्ठवासियोंके शरीर पूर्णतया आध्यात्मिक होते हैं, उनको भौतिक शरीरसे, इन्द्रियों या प्राणसे कुछ लेना-देना नहीं रहता। अतएव कृपा करके बताइये कि किस तरह भगवान्‌के पार्षदोंको सामान्य व्यक्तियोंकी तरह भौतिक शरीरमें अवतरित होनेका श्राप दिया गया?

(श्रीमद्भा. ७/१/३५)

व्याख्या—अतएव यह समझना चाहिए कि जब जय तथा विजय इस भौतिक जगत् में अवतरित हुए तो वे इसलिए आये क्योंकि उन्हें भगवान्‌के लिए कुछ करना था। अन्यथा यह तथ्य है कि कोई वैकुण्ठसे नीचे पतित नहीं होता।

यदि उनके ग्रन्थोंमें यदा कदा ऐसा विचार पाया भी जाता है, तो वह एकमात्र प्रचारके उद्देश्यसे ही है, क्योंकि उन्होंने जहाँसे अपने प्रचारकी

शुरुआत की, वहाँ इसाईयोंकी बहुलता थी। इसाई धर्ममें यह माना जाता है कि 'हम स्वर्गसे गिरे हैं' या 'Paradise Lost'. अपने विचारोंको इसाई विचारधारावाले लोगोंको बतानेके लिए तथा उन्हें आकर्षित करनेके लिए प्रारम्भिक अवस्था में उन्होंने ऐसा कहा। किन्तु उन्होंने इस बात पर भी अत्यधिक बल दिया है कि किसी सिद्धान्त का निर्णय तात्कालिक कारणों से परिवर्तित विचारों के अनुसार नहीं किया जा सकता, अपितु आगे-पीछेके विचारोंके साथ सामज्जस्य करते हुए परम्पराके विचारोंके अनुसार किया जाएगा।

श्रीलजीव गोस्वामिने भी कहा है—

स्वेच्छया लिखितं किञ्चित्
किञ्चिदत्र परेच्छया।
यत् पूर्वापर सम्बन्धं
तत्पूर्वमपरं परं॥

अर्थात् इस विचारमें मैंने कुछ अपनी इच्छासे और कुछ दूसरोंकी इच्छासे लिखा है। इसमें से आगे और पीछेके सम्बन्धसे युक्त अंश अपनी इच्छासे तथा ऐसे सम्बन्धसे रहित अंश दूसरोंकी इच्छासे लिखे गए हैं।

अतः स्वामीजीके विचारोंको भी इसी दृष्टिकोणसे समझना होगा।

सीतादेवी दासी—हमारे गुरुदेव श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीने अपने लिखित पुस्तकोंको वितरण करनेके लिए, केवल हरिनाम करनेके लिए अथवा इस्कॉन मन्दिरोंकी विभिन्न सेवाओंमें नियुक्त रहनेकी शिक्षा दी थी। साथ ही उन्होंने जुआ खेलना, मदिरा-धूमप्रपान आदिका सेवन, अवैध स्त्रीसंग और हिंसा—इनका त्यागकर हरिनाम

करनेका आदेश दिया था। किन्तु, आप इन उपदेशोंकी कोई चर्चा नहीं कर प्रेमा-भक्तिकी बात करते हैं, गोस्वामी-ग्रन्थोंसे अथवा श्रीमद्भागवत और चैतन्यचरितामृतसे गोप-गोपियों और श्रीकृष्ण की ब्रज-लीलाओं का वर्णन कर लोगोंको हमारे

गुरुदेवके विचारों से विचलित करते हैं। हम इस विषय में स्पष्टीकरण चाहते हैं।

श्रीलम्हाराज—सर्वशक्तिमान अखिल रसामृत सिन्धु अहैतुकी करुणा-वरुणालय स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण, हादिनी शक्तिसर्वस्व श्रीमती राधिकाजीके भाव एवं कान्तिसे दैदीप्यमान होकर श्रीशचीनन्दन गौरहरिके रूप में इस कलियुग में अवतरित हुए। उन से पूर्व श्रीरामानुज-आचार्य, श्रीमध्वाचार्य आदि भक्ति-सम्प्रदाय के आचार्योंने विश्व में वैकुण्ठीय भक्ति का प्रचार-प्रसार किया है, किन्तु श्रीगौरहरिने इस जगत्‌में भक्तिरसका स्वयं

आस्वादनकर श्रीहरिनामके माध्यमसे भक्तिरसका प्रचार किया है। यह परम चमत्कारिक कार्य श्रीशचीनन्दन गौरहरि और उनके परिकरोंके अतिरिक्त दूसरोंसे कदापि सम्भव नहीं है। श्रीचैतन्य मनोउभीष्ट पूर्णकारी, श्रीचैतन्य महाप्रभुके परिकर भक्ति-रसाचार्य श्रील रूपगोस्वामिने श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु और श्रीउज्ज्वल नीलमणि आदि ग्रन्थोंमें इस विषयका पूर्णरूपसे विवेचन किया है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अभिन्न कलेवर श्रीस्वरूप-दामोदरसे लेकर आधुनिक युगके भक्ति-भगीरथ सप्तम गोस्वामि श्रील भक्तिविनोद ठाकुर और सारे विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित

शुद्धा-भक्तिका प्रचार-प्रसार करनेवाले जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामि 'प्रभुपाद' तक सभी गौड़ीय वैष्णवाचार्यगण उसी रागानुगा भक्तिके आचार्य हैं। विशेषतः श्रीलस्तु गोस्वामिके परवर्ती आचार्यगण रूपानुगाचार्य कहलाते हैं। अतएव इन्हीं रूपानुग आचार्योंका अनुगमन करनेवाले श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामि महाराज एवं उनका वेशाश्रय ग्रहण करनेवाले श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज भी रूपानुग वैष्णव हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

प्रारम्भिक अवस्थामें कर्म, निर्विशेष ज्ञान, मायावाद, सहजिया आदि वन-जङ्गलस्तु अपसिद्धान्त निरसन करनेपर भी इनका मूल उद्देश्य विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित विशुद्ध प्रेमाभक्तिका दान करना ही था। अतः इन लोगोंने भी श्रीहरिनामके माध्यमसे कृष्ण-प्रेमका ही प्रचार किया है।

जगद्गुरु श्रील सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' ने श्रीचैतन्य चरितामृत (आदि.४/२१) के अनुभाष्यमें लिखा है—“श्रीचैतन्य चरितामृतमें हम ‘भक्ति’ और ‘शुद्धा भक्ति’ के साथ-साथ ‘विद्वा भक्ति’ का भी उल्लेख देखते हैं। इसके द्वारा हम भक्तिके तीन विभाग लक्ष्य करते हैं। अन्याभिलाषसे युक्त ज्ञान-कर्म आदिके द्वारा आच्छादित नाना प्रकारके सांसारिक कामनाओंके साथ हरिसेवाकी छलना को ‘विद्वा भक्ति’ कहते हैं। कर्ममिश्रा, ज्ञानमिश्रा, योगमिश्रा, भोगमय-ब्रतमिश्रा आदि द्वारा आच्छादित सेवा-चेष्टाएँ ‘विद्वा-भक्ति’ के ही अन्तर्गत हैं। इसमें शुद्धाभक्तिके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी चेष्टाएँ होती हैं। केवला अर्थात् विशुद्ध सेवामयी विधियोंका अनुगमन करनेपर ही ‘भक्ति’ होती है। यह भक्ति विद्वा या मिश्रा भक्तिसे सम्पूर्ण स्वतन्त्र, श्रीकृष्णकी अनुकूल चेष्टामयी होती है। रागात्मिकजनों (कृष्णके नित्य परिकर ब्रजवासियों) की अहैतुकी नित्य हरिसेवाके अनुगमनसे लोभके द्वारा उद्दित जो प्रेममयी सेवा होती है, वही शुद्ध भक्ति कहलाती है। वह केवल विधिचालित नहीं

है। ‘वैधी भक्ति’ या ‘भक्ति’ अथवा ‘अविद्वा भक्ति’ ‘शुद्धा भक्ति’ की सहायिका होनेपर भी ‘शुद्धा भक्ति’ शब्दसे एकमात्र रागानुगा सेवा ही लक्षित होती है। शुद्धा भक्तिको भक्ति पर्यायमें पराकाष्ठा कह सकते हैं। यह गोलोक वृन्दावनस्थित रागमयी भक्ति है और वैधी भक्ति वैकुण्ठस्थित गौरवमयी भक्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिश्रा भक्ति, कर्म-ज्ञान द्वारा आच्छादित भक्ति तथा अन्यान्य अशुद्ध भक्तियाँ शुद्धाभक्ति नहीं हैं। क्या यह साधारण भक्तिका विचार भी जगत्को नहीं दिया जा सकता। हम वैष्णवाचार्योंके ग्रन्थोंमें यहाँ तक कि श्रीभक्तिवेदान्त स्वामीजीके ग्रन्थोंमें भी इन सबका उल्लेख और वैशिष्ट्य देख पाते हैं। इन शुद्धा भक्तिके विचारोंके प्रचारसे साधारण लोग शुद्धा भक्तिमें प्रवेश कर सकते हैं, अन्यथा विशुद्ध भक्ति-तत्त्वके ज्ञानके अभावमें सरल कनिष्ठाधिकारी केवल उनके द्वारा लिखित पुस्तकोंका वितरण करने, सेवा करने, वृक्ष आदि रोपण करने और अनर्थ तथा अपराधमय हरिनाम उच्चारण आदिके द्वारा शुद्धा-भक्तिमें कदापि प्रवेश नहीं कर सकते। विशेषतः जो लोग २५-३० वर्षोंसे इन नियमोंका पालन कर रहे हैं, उन लोगोंके लिए इन विचारोंकी विशेष आवश्यकता है।

यदि कोई यह कहे कि इन साधारण नियमोंके पालन करनेसे ही हमें गोलोक-वृन्दावनमें कृष्णकी सेवा प्राप्त हो जायेगी, तो यह असम्भव है। क्योंकि, हम सुस्पष्ट रूपसे देखते हैं, कि आज इन नियमोंका २५-३० वर्षोंतक पालन करनेपर भी बड़े-बड़े तथाकथित संन्यासी, ब्रह्मचारी, पुजारी और प्रचारक हजारोंकी संख्यामें इस मार्गसे च्युत होकर भोगोंमें लिप्त हो रहे हैं। इसका सीधा-सा उत्तर है कि वे अपनेसे उच्च भक्ति-तत्त्वज्ञ वैष्णवोंका निरादरकर, उनके प्रति अपराधकर केवल इन्हीं नियमोंमें आबद्ध रहना चाहते हैं, वे क्रमोत्तिका मार्ग नहीं अपनाते। इसीलिए ऐसे कनिष्ठाधिकारियोंके लिए साधुसंगकी परम आवश्यकता है, जो इन शुद्ध भक्ति-तत्त्वोंको

बताकर उन्हें उत्रत कर सकें। श्रील भक्तिविनोद ठाकुर रचित जैवधर्म एवं अन्यान्य भक्ति-आचार्योंके रचित ग्रन्थोंका अनादर करनेका यह अनिवार्य फल होगा। कनष्ठिाधिकारी भी उच्चतर साधुसंगके अभावमें फिसलकर भक्ति-राज्यसे सदाके लिए च्युत हो जायेंगे। इसलिए पूज्य स्वामी महाराजके कथनोंसे हमारा विरोध नहीं, बल्कि मेरा विचार उनके उपदेशोंका ही पुष्टिकारक है। भक्ति-तत्त्वको नहीं समझनेवाले अविवेकी लोग ही संकीर्ण विचाराधाराके कारण गलत प्रचार करते हैं, हम दोनोंका विचार एक तात्पर्यमय है।

सीतादेवी दासी—मैं इस विषयको स्पष्ट रूपमें समझ गई, इस विषयमें अब मेरा कोई सन्देह नहीं है। किन्तु, मेरा एक और प्रश्न है कि विभिन्न स्थानोंमें हमारे गुरुदेवने, श्रीश्रीरुक्मणी-द्वारकाधीश, श्रीश्रीराधा-पार्थसारथी, श्रीश्रीराधा-लंडनेश्वर, श्रीश्रीराधा-पेरिसेश्वर आदि श्रीविग्रहोंकी स्थापना की है, आप इन नामोंको रसाभास दोषयुक्त कहते हैं, क्या यह सत्य है।

श्रील महाराज—श्रीभक्तिरसामृत सिन्धुमें रस-विषयका पूर्ण विवेचन हुआ है। हमारे पूर्ववर्ती आचार्योंने उनका सम्पूर्णरूपसे अनुसरण किया है। उक्त ग्रन्थमें भक्ति रस-तत्त्व, रसाभाष और छाया-रसाभास, प्रतिबिम्ब रसाभास इत्यादिका वर्णन किया गया है। शुद्ध साधुसंगमें इन विषयोंसे अवगत हुआ जा सकता है। जिन्होंने इन ग्रन्थोंको देखने, सुनने या स्पर्श न करनेकी कसम खा ली है, भला वे कैसे इन्हें जान सकते हैं। श्रील रूपगोस्वामिके ग्रन्थोंकी तो बात ही क्या, श्रीचैतन्य चरितामृत भी खोलकर नहीं देखते, यहाँ तक कि स्वामीजीके ग्रन्थोंका वितरण तो करते हैं, किन्तु खोलकर देखनेका सौभाग्य नहीं पाते। जगद्गुरु श्रील सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' ने चैतन्य चरितामृत (मध्य ८/९०) के अनुभाष्यमें लिखा है—“गोपियाँ कृष्णको कभी भी रुक्मणीरमण सम्बोधित नहीं करती हैं, 'रुक्मणीरमण' और 'श्रीकृष्ण' साधारण शब्दकोशमें पर्यायवाची शब्द होनेपर भी एकके

बदले दूसरेका प्रयोग नहीं किया जा सकता। यदि कोई मूर्खतावशातः ऐसा करता है, तो उसमें रसाभाषका दोष लगता है। रुक्मणीरमण और राधारमण एक नहीं हैं। जिन्होंने भगवत्स्वरूपकी उपलब्धि की है, वे मूर्खोंकी भाँति रसाभास या सिद्धान्त विरोध नहीं करते। किन्तु, कलियुगके प्राबल्य हेतु सर्वत्र उच्छृंखलताका नंगा नाच चल रहा है। रस-तत्त्वका विचार नहीं जाननेवाले मूर्ख लोग ऐसे कुसिद्धान्तको ही उदारता या महासमन्वयवादके नामपर प्रचार करते हैं, साथ-ही वे सत्-सिद्धान्तकी सङ्कीर्णता या शुद्धा-भक्तिके विरुद्ध प्रचार करते हैं।”

श्रीभक्तिवेदान्त स्वामीजीने लॉस एजिल्समें या अन्य कहीं भी रुक्मणी-द्वारकाधीश, राधा-लण्डनेश्वर, राधा पेरिसेश्वर आदि विग्रहोंकी स्थापना नहीं की। हमें यह विषय स्पष्टरूपसे ज्ञात है कि श्रीस्वामीजीने लॉस एजिल्समें श्रीश्रीराधा-गोविन्दकी मूर्ति प्रतिष्ठित की थी, किन्तु यह नाम बदल दिया गया। भारत लौटनेके बाद पुनः वहाँ जानेपर उक्त नाम-परिवर्तनको जानकर वे बड़े दुःखी और अनुत्प्त हुए। इसी प्रकार लण्डनमें भी अपने जीवनके अन्तिम कालमें G.B.C.सदस्यों द्वारा दिये गये नामको बाध्य होकर स्वीकारना पड़ा। श्रीस्वामीजी उस समय इन कार्योंसे पूर्णरूपसे निवृत्त हो गए थे। इन्हीं सब कारणोंसे अन्त समयमें कुछ खिन्न भी थे।

पूज्य श्रीस्वामीजीने भी चैतन्य चरितामृत (मध्य लीला ८/९०) की व्याख्यामें अपने गुरुदेवके सिद्धान्तोंका अनुसरण करते हुए जो लिखा है, वह पाठकोंके समक्ष यथायथ प्रस्तुत किया जा रहा है—

A devotee of the Personality of Godhead Narayana cannot actually understand the transcendental attractive features of Krsna. On the other hand, the devotee of krsna who is attached

to the sublime attractive feature of the Lord does not consider Narayana very important. When gopies sometimes saw Krsna in the form of Narayana, they were not very attracted to Him. The gopis never addressed Krsna as Rukmini-raman. Krsna's deevotees in Vrindavana address Him as Radha-ramana, Nanda-nandan and Yasoda-nandan, but not as Vasudeva-nandan or Devaki-nandan. Although according to the material conception, Narayan, Rukmini-ramana and Krsna are one and the same, in the spiritual world one connot use the name of krsna in the place of Rukmini-raman or Narayana. If one does so out of a poor fund of knowldge, his mellow with the Lord becomes spiritually faulty and is called **rasabhasa**, an overlapping of transcendental

mellows. The advance devotee who has actually realized the tanscendental features of the Lord will not commit the mistake of creating a radabhasa situation by using one name for another. Because of the influenccce of Kali-yuga, there is much rasabhasa in the name of extravagance and liberal-mindedness. Such fanaticism is not very much appreciated by pure devotees.

इसके अतिरिक्त पाठक The Golden Avatar Chapter 30 (pages 312-313) में भी देख सकते हैं, जहाँ इसीकी पुष्टि की गई है।

इस प्रकार पुनः पुनः रसाभास आदिका खण्डन करनेवाले स्वामीजी इन नामोंका समर्थन नहीं कर सकते।

सीतादेवी दासी—आपके श्रीमुखसे सुसिद्धान्तपूर्ण विचारोंको सुनकर मेरे सभी संशय दूर हो गये और मैंने यह अच्छी तरह समझ लिया कि आप दोनोंके विचारोंमें कोई मतभेद नहीं है। आप हमलोगोंको हमारे गुरुदेवके बताए पथसे विचलित नहीं कर रहे हैं, बल्कि उसी पथपर अग्रसर करा रहे हैं।



प।
नृत्य करते हुए श्रील महाराज

क्या श्रीतुलसीदासजी मायावादी संत थे?

—त्रिदण्ड स्वामी श्रीश्रीद्विक्तिवेदान्त नारायण महाराज

[त्रिदण्ड स्वामी श्रीश्रीद्विक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने अभी विश्वमें शुद्धाभक्तिका प्रचार करनेके लिए इग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा और हॉलोण्ड आदि देशोंकी यात्रा की है। अमेरिकाके लॉसएंजिल्स नामक महानगरके प्रवासी भारतीय नागरिकोंने बड़े दुःखसे निवेदन किया कि, इस्कॉनके भक्तजन श्रीतुलसीदास गोस्वामीको केवलाद्वैतवादी या मायावादी संत और उनके द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस' ग्रन्थको मायावादी पुस्तक मानते हैं। यही नहीं, वे साधारण जनताको तुलसीकृत रामायणको पढ़नेसे निषेध करते हैं। भरी सभामें श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजने अकाट्य युक्तियों और शास्त्रीय प्रमाणोंके आधारपर उपरोक्त विचारका खण्डन करते हूए श्रीतुलसीदास गोस्वामीजीको वैष्णव संत एवं उनके श्रीरामचरितमानसको शुद्धभक्तिका अनुपम ग्रन्थ बतलाया। इस्कॉन जी. बी. सी. के प्रौढ़ सदस्योंने अपने मतके समर्थनमें श्रीनारायण महाराजजीको दो-तीन पृष्ठोंका एक प्रतिवाद पत्र भेजा जिसमें पुनः श्रीतुलसीदास गोस्वामीको अद्वैतवादी और उनके ग्रन्थको मायावादी पुस्तक लिखा गया था। उन्होंने अपने गुरुदेव श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (इस्कॉनके संस्थापक) के कुछ पत्रोंके कतिपय वक्तव्योंको तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया था। श्रीनारायण महाराजजीने अपने व्यस्त कार्यक्रमसे समय निकालकर उन लोगोंको एक पत्र भेजा था, जिसका सारांश पाठकोंके जानकारीके लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।]

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः

वैजर,

कैलिफोर्निया (अमेरिका)

२६ जून १९९६

श्रीश्रीवैष्णव चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम
प्रिय भक्तिवैदुर्य माधव महाराज !

आपका २१ जून ९६ का पत्र मिला। प्रचारमें व्यस्त रहनेके कारण उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ। इसके लिए क्षमा करेंगे। आपका पत्र पढ़ा, मेरे प्रत्युत्तरको सद्भावनाकी दृष्टिसे पढ़कर गम्भीरतासे विचार करेंगे। पिछले पचास वर्षोंसे मुझे जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' के वरिष्ठ विद्वान्, तत्त्वविद् और शास्त्र सिद्धान्तके मर्मज्ञ शिष्योंके साथ सत्संग करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। विश्वविख्यात गौड़ीय वेदान्ताचार्य अस्मदीय श्रीगुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज एवं पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजका संग और उनकी सेवा करनेका सुअवसर भी प्राप्त हुआ है। दूसरी बात, इस्कॉनके किसी सदस्यने स्वयं किसी वैष्णवसिद्धान्तविद् संतोंसे भक्तिग्रन्थोंका अध्ययन नहीं किया है। विशेषतः उन्होंने स्वयं तुलसीकृत रामायणका अध्ययन नहीं किया है। अतः भक्तिसिद्धान्तमें उनका प्रवेश नहीं है। केवल किसी अतत्वज्ञ व्यक्तिके विचारोंको सुनकर कोई सिद्धान्त ग्रहण करना अयुक्तपूर्ण है। पूज्य (ए. सी.) भक्तिवेदान्त स्वामीने कहीं भी श्रीतुलसीदास गोस्वामीको मायावादी तथा उनके 'श्रीरामचरितमानस' को मायावादी ग्रन्थ नहीं बतलाया है; बल्कि उसे श्रीमद्भागवत् एवं श्रीमद्भगवद्गीता पर आधारित प्रामाणिक 'वैष्णव-ग्रन्थ' कहा है। आप लोगोंने उनके लिखित पंक्तियोंको तोड़-मरोड़कर और

कहीं आवश्यक अंशको छोड़कर आशिक पंक्तियोंको ही उद्भूत किया है। मैं इस विषयपर सुसिद्धान्तपूर्ण विचारोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ। साथ ही स्वामीजीके लिखित वाक्योंको भी पूर्णरूपमें उद्भूत कर रहा हूँ, जिससे सारी शंकाएँ दूर हो जायें।

वेद-वेदान्तकी आलोचनाकर पूर्वाचार्योंने दो प्रकारके सिद्धान्तोंको ग्रहण किया है। दत्तात्रेय, अष्टावक्र आदि ऋषियोंके अनुगत सिद्धान्तका अनुसरणकर श्रीमत्शंकराचार्यने केवलद्वैत मतका प्रचार किया है। दूसरी ओर नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, मनु आदि महात्माओंके अनुगत सिद्धान्तको ग्रहणकर वैष्णवाचार्योंने शुद्धभक्तिका प्रचार किया है। भक्तिसिद्धान्त चार प्रकारके हैं—(१) श्रीरामानुजाचार्यने विशिष्टाद्वैतके मतानुसार भक्तिका प्रचार किया है। (२) श्रीमध्वाचार्यने शुद्धद्वैतमतके अनुसार भक्तिका प्रचार किया है। (३) श्रीनिम्बादित्याचार्यने द्वैताद्वैतके मतानुसार भक्तिका प्रचार किया है। (४) श्रीविष्णुस्वामीने शुद्धद्वैतके अनुसार भक्तिका प्रचार किया है। ये चारों ही आचार्य शुद्धभक्तिके प्रचारक हैं। इन आचार्योंके परवर्तीकालमें उक्त चारों वैष्णव अथवा भक्ति सम्प्रदायोंका एक-एक शाखा-सम्प्रदाय भी स्थापित हुआ, जो मूल सम्प्रदायसे कुछ वैशिष्ट्य स्थापन करते हुए भी अपने-अपने मूल सम्प्रदायमें ही परिणित होते हैं। जैसे श्री सम्प्रदायमें श्रीरामानन्दी सम्प्रदाय, श्रीमध्व सम्प्रदायमें श्रीगौड़ीय सम्प्रदाय, श्रीनिम्बादित्य सम्प्रदायमें निम्बार्क सम्प्रदाय और विष्णुस्वामी सम्प्रदायमें वल्लभ सम्प्रदाय (पुष्टि सम्प्रदाय)—ये चारों शाखा सम्प्रदाय भी वैष्णव सम्प्रदायके अन्तर्गत ही माने गए हैं। इन चारों सम्प्रदायोंमें परस्पर दार्शनिक विचारों एवं उपासनामें कुछ-कुछ भेद रहने पर भी सबमें भक्तिका नित्यत्व, भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला, परिकरका नित्यत्व, जीवका नित्यदासत्व, भगवान्‌की शक्तिका नित्यत्व तथा चरमावस्थामें जीवकी प्रेमगतिको स्वीकार किया गया है। इसलिए उनके विचारोंमें कुछ वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होनेपर भी ये सभी भक्ति सम्प्रदाय हैं।

श्रीतुलसीदास गोस्वामी श्रीसम्प्रदायके अन्तर्गत शाखा-सम्प्रदायके एक परमवैष्णव सन्त हैं। श्रीगुरुप्रदत्त उनका नाम ‘श्रीतुलसीदास’ है। यह वैष्णवनाम है। ये वैष्णवोचित उद्धर्षपूण्ड्र तिलक धारण करते थे, उनके गलेमें तुलसीकी माला सर्वदा विराजित रहती थी, वे सिद्ध श्रीराम मन्त्रमें दीक्षित थे। श्रीतुलसीदासके आराध्यदेव श्रीसीता-रामचन्द्रजी थे, जो श्रीराधा-कृष्णके अवतार हैं। अतः वे केवलाद्वैतवादी या मायावादी संन्यासी नहीं हैं।

निःसन्देह श्रीवाल्मीकि कृत रामायण प्रामाणिक ग्रन्थ है। श्रीतुलसीदासजीने श्रीवाल्मीकि मुनिको प्रामाणिक मानते हुए कुछ विशेषताओंके साथ वाल्मीकी रामायणको ही अपनी मानस रामायणका आधार माना है। इन्होंने वेद, उपनिषद्, पुराणोंका सार विशेषतः श्रीमद्भागवत और गीताके श्लोकोंका अनुसरणकर दोहे और चौपाइयोंके रूपमें अपने मानस रामायणमें समावेश किया है। विशेषतः श्रीभगवत्तत्त्व, शक्तितत्त्व, जीवतत्त्व, मायातत्त्व, भक्तितत्त्वके विषयमें सर्वत्र ही उन्होंने श्रीमद्भागवतका आश्रय लिया है तथा अनुरूप सिद्धान्त व्यक्त किया है। वैष्णव आचार्योंके विचारोंमें जिन प्रधान सिद्धान्तोंमें एकता है, वे निम्नलिखित हैं—

१. पारमार्थिक विषयमें वेद, उपनिषद्, पुराण और उनके अनुगत शास्त्र आदि प्रमाण हैं।

२. हरि ही परमतत्त्व है।
३. उनके नाम, रूप, गुण, लीला एवं परिकर आदि सभी अप्राकृतिक एवं नित्य हैं।

४. श्रीभगवान्‌का अप्राकृतिक सच्चिदानन्दमय आकार है, वे निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष नहीं हैं।

५. जीव भगवान्‌का अंश एवं नित्य सेवक है।

६. जीवसमूह और जगत् भगवान्‌से प्रकटित हैं।

७. जगत् मिथ्या नहीं, किन्तु परिवर्तनशील एवं नश्वर है।

८. बद्धजीवोंके लिए भगवत्प्राप्तिका एकमात्र साधन भगवद्भक्ति ही है। अन्यान्य साधन भक्तिके अधीन हैं।

९. साधन भक्तिका लक्ष्य एकमात्र भगवत्-प्रेमकी प्राप्ति है।

इसके विपरीत केवलाद्वैतवादियोंके विचार इस प्रकार हैं—

१. परतत्त्व या ब्रह्म निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष है।

२. वे नाम, रूप, गुण, लीला आदिसे रहित हैं।

३. जगत् मिथ्या है। जो कुछ दीख पड़ता है, वह ब्रह्म ही है।

४. जीव ब्रह्म ही है। रज्जुमें सर्प एवं सीपमें रजतके जैसा ब्रह्ममें जीव-जगत्का भ्रम हो रहा है।

५. जीवोंके लिए सायुज्य मुक्ति ही अन्तिम लक्ष्य है।

६. ज्ञानसे ही मुक्ति सम्भव है।

साधारण रूपमें उपर्युक्त सिद्धान्तोंका विवेचनकर हम यह विचार करेंगे कि तुलसीदासजी तथा उनके द्वारा रचित श्रीरामचरितमानस वैष्णव सिद्धान्तके अनुरूप है अथवा मायावाद या केवलाद्वैतवादका पोषक है? मैं पहले यह कहना चाहता हूँ कि तुलसीकृत रामायणमें कहीं भी मायावाद पोषक विचार परिलक्षित नहीं होता। यदि कहीं बाह्यतः ऐसा कुछ दृष्टिगोचर होता है, जिसकी व्याख्या केवलाद्वैतवादी या मायावादी विद्वान् खींचातानी कर अपने पक्षमें कहते हैं, तो ऐसा करना सर्वथा अनुचित एवं श्रीगोस्वामीजीके सिद्धान्तोंके सर्वथा विपरीत है। कहीं-कहीं पर श्रीतुलसीदासजीने अद्वैतवादके विचारोंको पूर्वपक्षमें रखकर उक्त मतका खण्डन किया है। साधारण पाठक इस विषयको समझ नहीं पाता, उसे भ्रम हो जाता है। हम इस विषयको भी आगे स्पष्ट करेंगे। मैं पहले उनके अपने विचारोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ—

१. वेद शास्त्र ही अभ्यान्त प्रमाण हैं।

(क) नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्
रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा—
भाषानिबन्धमातिमञ्जुलमातनोति॥

(बालकाण्ड श्लोक ७)

अर्थात् वेद, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रोंसे सम्मत तथा जो वाल्मीकि रामायणमें वर्णित है तथा कुछ अन्यत्रसे भी उपलब्ध श्रीरघुनाथजीकी कथाको

तुलसीदास अपनी अन्तरात्माकी प्रसन्नताके लिए अत्यन्त मनोहर भाषा रचनामें विस्तृत करता है।

यहाँपर वेद, पुराण, उपनिषद्, तन्त्र आदिके सम्मत और वाल्मीकि रामायणके अनुरूप ही तुलसीदासजीने रामचरितमानसकी रचना की है।

(ख) श्रुति सिद्धान्त यहै उरगारी।

भजिय राम सब काज बिसारी॥

(ग) आगम निगम पुराण अनेका।

पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥

(घ) श्रुति पुराण सब ग्रन्थ कहाहीं।

रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

अतः सर्वत्र हि तुलसीदासजीने वेद, उपनिषद्, पुराण और उनके अनुगत शास्त्रोंको प्रामाणिक माना है।

श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजी इन्हीं तथ्योंको स्वीकार करते हुए लिखते हैं—

"According to Srila Rupa Goswami, any book which gives enlightenment in the matter of advancing in devotional service is considered to be revealed scripture. Srila Madhvacarya has also defined revealed scriptures as referring to books such as the Ramayan, Mahabharata, Puranas, Upnisads, Vedanta- and any other literature written in pursuance of such revealed scriptures." (NOD Chapter 12)

"Therefore we have to gather knowledge from the right source. Indeed, in reality we can get knowledge only from the Vedic sources. The four Vedas, with their supplementary Puranas, the Mahabharata, the Ramayana and their corollaries, which are

known as smritis, are all authorized sources of knowledge. If we are at all to gather knowledge, we must gather it from these sources without hesitation." (CC Adi 5.14 – Purport)

"The Rg Veda, Yajur Veda, Sama Veda, Mahabharata, Pancaratra and the original Valmiki Ramayana are all Vedic literature. Any literature following the conclusive statements of this Vedic literature is also to be considered Vedic literature. That literature which does not conform to Vedic literature is simply misleading." (CC Madhya 6.147 – Purport)

उपरोक्त उद्घृत अंशोंमें श्रीचैतन्यचरितामृत (मध्य-६/१४७) के अंशका जो आपने अपने पत्रमें उल्लेख किया है, उसमें किसी विशेष कारणसे उसकी एक पंक्तिको हटा दिया, जो कि आपके तर्कको निराधार साबित कर सकती थी। वह पंक्ति इस प्रकार है—

"Any literature following the conclusive statements of this Vedic literature is also to be considered Vedic literature."

अर्थात्, ऐसा कोई भी ग्रन्थ जो वैदिक ग्रन्थोंके सार-सिद्धान्तोंका अनुसरण करता है, उसे भी वैदिक शास्त्र ही मानना पड़ेगा।

यदि यह प्रश्न किया जाय कि हमलोग इसे गौड़ीय वैष्णवोंके ग्रन्थोंके समान क्यों नहीं आदर करते हैं, तो उत्तर स्पष्ट है कि वैष्णव सिद्धान्तके अनुसार यह भक्ति ग्रन्थ तो माना जाता है, किन्तु, इसमें रागानुगा (रूपानुगा) भक्तिका सम्पूर्ण विवरण नहीं प्राप्त होता है, अतः दोनों एक स्तरके नहीं हैं। इसी प्रकार विष्णु पुराण आदि शास्त्र यद्यपि

कृष्ण भक्ति रसकी चर्चा नहीं करते, तथापि निश्चय ही वे भक्ति-शास्त्र हैं। अतः श्रीमद्भागवत और षड् गोस्वामियोंके ग्रन्थ सर्वाधिक प्रामाणिक और उपादेय हैं।

इसी प्रकार आपके पत्रमें श्रीस्वामी महाराजके और भी कुछ उद्घृत वक्तव्य हैं, किन्तु मेरे पास जो एकत्रित अंश हैं, वे कुछ और ही वित्र प्रस्तुत करते हैं। पहला उद्घृत अंश आपके द्वारा दिए गए प्रमाणसे बहुत पहलेका है—

"So he became a great devotee of Rama, Tulsi. His book, Rama-carita-Manasa 'Thinking always of Rama', that is his book. It is very famous book and that is the only important literature in Hindi language, Rama-carita-manasa."

(Room conversation with Brahmananda, April 12, 1969)

अर्थात्, वे तुलसीदास श्रीरामचन्द्रके महान भक्त हुए। रामचरितमानस उनका ग्रन्थ है। इसका अर्थ है—'निरन्तर रामका चिन्तन।' यह बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है और हिन्दी भाषाका एकमात्र महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

अन्यत्र भी उन्होंने रामचरितमानसको वैदिक सिद्धान्तके अनुरूप तथा श्रीभगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवतपर आधारित बताया है—

"And Tulasi dasa, he has also said..... Tulasi dasa is big poet in Hindi language. He has written the Rama-carita-manasa. His opinion... Not only his opinion, that is the Vedic opinion that... He says, dhol, gamar, sudra, pasu, nari, ei ei sab sasana ke adhikari (?). So this statement will not be very palatable to the Western girls." (Lecture SB 5.6.4 Nov 26, 1976 Vrindavana, India)

अर्थात्, तुलसीदास हिन्दीके महान कवि हैं। उन्होंने रामचरितमानस लिखा है। उनका विचार, उनका ही विचार नहीं, बल्कि वैदिक विचार भी यही है—‘ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,

राम कृष्णा जय श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु

एই एই सब शासनके अधिकारी। अतः यह कथन विदेशी युवतियोंको प्रिय नहीं लगेगा।

"The Tulasi dasa's Ramayana means Rama-caritaabcdeggjijklknopqrstuvwxyz.a It is not Ramayana. Rama-carita-manasa. He was devotee of Lord Ramacandra. So as he was thinking of Lord Ramchandra he has written. So he was learned scholar, brahmana, he must have read Bhagavad-gita, Bhagavatam. So all his translation is there on the basis of the sastra, especially Bhagavata and Bhagavad-gita. You'll find many parallel passages. But Gita is the summary of all Vedic literature, and it is spoken by the supreme Personality of Godhead." (Evening Darshna July 8, 1976 Washington DC)

तुलसीदासका रामायण अर्थात् रामचरित। यह रामायण नहीं, रामचरितमानस है। वे रामचन्द्रके भक्त थे। अतः वे रामचन्द्रके विषयमें जैसा सोचते थे, वैसा उन्होंने लिखा है। वे विद्वान् तथा ब्राह्मण थे। उन्होंने अवश्य भगवद्गीता और भागवतम् पढ़ा होगा। अतः उनके सारे अनुवाद शास्त्रोंपर, विशेषतः भागवत और भगवद्गीता पर आधारित हैं। तुम बहुतसे अंश एक-ही-समान पाओगे। किन्तु गीता सभी शास्त्रोंका सार है और स्वयं श्रीभगवान् द्वारा कहा गया है।

२. श्रीहरि ही परमतत्त्व हैं—

(क) वन्देऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्।
(बालकाण्ड श्लोक ६)

सर्वकारण-कारण श्रीराम कहानेवाले भगवान् श्रीहरिकी वन्दना करता हूँ।

(ख) ग्यान अखण्ड एक सीतावर।

माया वस्य जीव सचराचर॥

ब्यापक ब्याप्य अखण्ड अनन्ता॥

अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता॥

सोहं सच्चिदानन्द घन रामा॥

अज विज्ञान रूप बलधामा॥

परब्रह्म जीव स्वब्रह्म भगवन्ता॥

जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥

मायावस्य जीव अभिमानी॥

ईशबस्य माया गुणखानी॥

दोहा—

मायावश परिछिन्न जड़ जीव कि ईश समान?

उपरोक्त चौपाईयों और दोहोंके अनुसार श्रीतुलसीदासजीका वैष्णवोचित सिद्धान्त सुस्पष्ट है—सीतावर श्रीरामचन्द्र ही अखण्ड ज्ञानस्वरूप परतत्त्व है। जीव उनका शाश्वत, सनातन अंश है। वह स्वरूपतः चेतन, निर्मल एवं सुखस्वरूप है। जीव मायावस्य है, परन्तु सच्चिदानन्दघनस्वरूप सर्वशक्तिमान् श्रीरामचन्द्र मायाके अधिपति हैं। अतः ईश्वर और जीवमें अवश्य ही भेद है। ईश्वर जगत्के स्रष्टा, नियन्ता और पालक हैं। जीव मायाके अधीन होनेपर परिछिन्न एवं अज्ञ हो जाता है। अविनाशी पदका तात्पर्य यह है कि जीव साधनके द्वारा निर्मल और भगवान्‌का परिकर हो सकता है, किन्तु वह किसी भी स्थितिमें परब्रह्म नहीं हो सकता। सच्चिदानन्दका तात्पर्य है—उनके नाम, रूप, गुण, लीला सभी अप्राकृत एवं नित्य हैं।

४. श्रीहरि या श्रीभगवान्‌का अप्राकृत सच्चिदानन्द आकार है, वे निराकार, निःशक्तिक, निर्विशेष नहीं है—

सोहं सच्चिदानन्द घन रामा।

अज्ञ विज्ञान रूप बलधामा॥

(उत्तरकाण्ड)

जय सगुण निर्गुण रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
अवतार नर संसार भार विभंजि दारुण दुःख दहे॥

उपरोक्त चौपाइयों एवं छन्दोंमें भगवान् श्रीरामका नाम, रूप अपाकृत, नित्य एवं सच्चिदानन्द बताया गया है। श्रीरामचन्द्रजी अप्राकृत असंख्य निर्दोष गुणोंके भण्डार हानेसे सगुण साकार हैं तथा उनके सभी गुण प्रकृतिसे अतीत होनेके कारण वे निर्गुण भी हैं। अतएव वे एक ही साथ सगुण एवं निर्गुण दोनों हैं।

(ख) अखिल अमोघ शक्ति भगवन्ता।

(ग) वाम भाग सोभति अनुकूला।

आदि शक्ति छबि निधि जगमूला॥

जासु अंश उपजहि गुणखानी॥

अगनित लच्छ उमा ब्रह्माणी॥

भृकुटि विलास जासु जग होई॥

राम वाम दिशि सीता सोई॥

श्रीतुलसीदासजीने उपरोक्त चौपाइयोंमें श्रीरामचन्द्रजीको निखिल अमोघ शक्तियोंसे युक्त अर्थात् सर्वशक्तिमान बतलाया है। सीताजी स्वरूपशक्ति—अन्तरङ्गा शक्ति हैं, जिनसे अगणित लक्ष्मी, उमा, ब्रह्माणी प्रकटित होती हैं। उन्होंकी छायाशक्तिका नाम महामाया शक्ति हैं, जो अखिल चराचर विश्वको प्रकाश करती हैं।

मम माया सम्भव संसारा।

जीव चराचर विविध प्रकारा॥

५. जीव श्रीभगवान् का सनातन अंश एवं नित्य सेवक है।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।

चेतन अमल सहज सुखराशी॥

परवश जीव स्वबश भगवन्ता।

जीव अनेक एक श्रीकन्ता॥

उपरोक्त चौपाइयोंसे यह सुस्पष्ट है कि जीव ईश्वरका अविनाशी अंश है। श्रीकन्ता अर्थात् ईश्वर एक हैं, किन्तु जीव अनन्त हैं। जीव मायाके अधीन है तथा ईश्वर मायाके पति हैं। जीव कभी भी ब्रह्म नहीं हो सकता। ईश्वर श्रीराम सेव्य हैं, जीव सेवक है—

(क) सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त बिचारि॥

(ख) अस अभिमान जाई जनि मारे।

मैं सेवक रघुपति पति मारे॥

६. भगवान् सत्यसङ्कल्प हैं, उनकी इच्छा एवं शक्तिसे ही इस जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय होता है। अतएव जगत् सत्य है, किन्तु परिवर्तशील एवं ध्वंसशील है। जगत् कभी भी मिथ्या नहीं है। शरीरमें 'मैं' और शरीर-सम्बन्धी जागतिक वस्तुओंमें 'मेरा' का अभिमान ही मिथ्या या स्वप्नके समान है। साथ ही रञ्जुमें सर्प-भ्रम तथा सीपमें रजत-भ्रम इसीके उदाहरण हैं। वह ब्रह्म जीवके भ्रमका उदाहरण नहीं है।

७. शक्ति और शक्तिमानमें भेद और अभेद दोनों है। इसी प्रकार शक्तिमानका शक्तिसे प्रकटित जीव और जगत् से भी भेद और अभेद दोनों ही सिद्ध है।

दोहा—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।

वंदउं सीता राम पद जिन्हाहि परम प्रिय खिन्न॥

(बालकाण्ड १८)

अर्थात् जो वाणी और उसके अर्थ तथा जल और जलकी लहरके समान कहनेमें अलग-अलग हैं, किन्तु वास्तवमें अभिन्न (एक) हैं, उन श्रीसीतारामजीके चरणोंमें मैं वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन-दुःखी बहुत ही प्रिय हैं।

वेदान्तमें भी ऐसा ही कहा गया है—‘शक्ति-शक्तिमतोरभेदः’। श्रीगौड़ीय वैष्णवोंका भी ऐसा ही सिद्धान्त है कि शक्ति एवं शक्तिमानमें तथा शक्ति परिणत जीव और जगत् एवं शक्तिमानमें परस्पर अचिन्त्यभेदभेद सम्बन्ध है।

८. भक्ति ही भगवत् प्राप्तिका एकमात्र साधन है—

(क) श्रुति सिद्धान्त यहै उरगारि।

भजिय राम सब काज बिसारी॥

(ख) श्रुति पुराण सब ग्रन्थ कहाहि।

रघुपति भगति बिना सुख नाहि॥

(ग) सुलभ सुखद मारग यह भाई।

भगति मारे पुराण श्रुति गाई॥

(घ) लक्ष्मणजीका उपदेश—

जातें वेगि द्रवउं मैं भाई।

सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतन्त्र अवलम्ब न आना।
तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

यहाँ भक्तिको सरल सहज एवं सर्वश्रेष्ठ साधन बतलाया गया है। यही नहीं, भक्तिको स्वतन्त्र साधन तथा ज्ञान और विज्ञान आदिको भक्तिके अधीन बतलाया गया है अर्थात् भक्तिके आश्रयके बिना कोई भी साधन फल प्रदान करनेमें समर्थ नहीं है। साधन भक्तिका चरम लक्ष्य एकमात्र भगवत्प्रेमकी प्राप्ति है—

आगम निगम पुराण अनेका।
पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तब पद पंकज प्रीति निरन्तर।
सब साधन कर यह फल सुन्दर॥
श्रुति पुराण सब ग्रन्थ कहाही।
रघुपति भगति बिना सुख नाही॥

अतः श्रीतुलसीदासके सिद्धान्तके अनुसार भक्तिका चरम-लक्ष्य भगवत्-प्रेम ही है, जो सभी वैष्णव सम्प्रदायोंका चरमलक्ष्य है।

श्रीतुलसीदासजीने सर्वत्र ही श्रीरामचन्द्रके चरणकमलोंमें अनपायनी भक्तिकी कामना की है। अनपायनीका अर्थ है—तैलधारावत् अविछिन्न भगवत्प्रेम।

(क)

बार-बार वर मागऊँ हरषि देहु श्रीरंग।
पदसरोज अनपायनी भगति सदा सत्संग॥

(ख)

परमानन्द कृपयातन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

श्रीतुलसीदासजीने श्रीमद्भगवत्की नवधा भक्तिको भी ग्रहण किया है—

श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़हि।
मम लीला रति अति मन माही।

अतएव श्रीतुलसीदास कृत रामायण भक्तिग्रन्थ है, मायावादी पुस्तक नहीं। कहीं-कहीं अज्ञ लोग श्रीरामचरितमानसकी कुछ पंक्तियोंका विपरीत अर्थ कर साधारण लोगोंको भ्रमित करते हैं। जैसे—

(क) सीय राममय सब जग जानी।

(ख) निज प्रभुमय देखहि जगत।

(ग) सोइ जानइ जेहि देहु जनाइ।

जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥

यहाँ जगत्के सभी जड़-चेतनको सीयाराम बतलाया गया है। थोड़ीसी विवेक बुद्धिका प्रयोग करनेसे यह सहज ही बोध होता है कि तुलसीदासजीने जड़-चेतन सभी वस्तुओंको सीता-राम नहीं कहा है, बल्कि सीयराममय कहा है। जिसका अर्थ यह है कि जड़-चेतन सारी वस्तुएँ सीता-रामसे प्रकट सीयरामकी स्फूर्ति करती हैं। जब श्रीहनुमान, श्रीकाकुभुषंडी, श्रीशंकरजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीभरतजी जैसे भगवान्‌के परमप्रिय परमतत्त्ववेत्ता मुक्तपुरुष एवं भगवद् अंश भी भगवान्‌में मिलकर परब्रह्म नहीं बन सके, तो साधारण जीवोंकी बात ही क्या है। वेद-वेदान्त और श्रीमद्भागवतमें भी कृष्णमय, भगवत्मय, ब्रह्ममय आदि शब्दोंका उल्लेख देखा जाता है। उसी प्रकारसे—‘जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई’ का तात्पर्य यह नहीं है कि तुम्हें जानकर तुम ही बन जाते हैं, बल्कि उसका सीधा-सरल अर्थ यह है कि जो आपको तत्त्वतः जान लते हैं, वे आपके नित्य प्रिय-सेवक बन जाते हैं। यहाँ ‘तुम्हइ’ पदका अर्थ है—आपका प्रिय सेवक बन जाता है। अतएव कहीं भी श्रीरामचरितमानसमें केवलाद्वैतवाद या मायावादकी गन्ध भी नहीं है। उन्होंने तो डंकेकी चोटपर शुद्धभक्तिकी ही घोषणा की है—
जे ब्रह्मअजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावही॥
ते कहहुँ जानहुँ नाथ तब सगुन जस नित गावही॥
मन बचन कर्म बिकार तजि तब चरण हम अनुरागही॥

अर्थात् ब्रह्म अजन्मा है, अद्वैत है, केवल अनुभवसे ही जाना जाता है और मनसे परे है—जो [इस प्रकार कहकर उस] ब्रह्मका ध्यान करते हैं, वे ऐसा कहा करें और जाना करें, किन्तु हे नाथ ! हम तो नित्य आपका सगुण यश ही गाते हैं। हे करुणाके धाम प्रभो ! हम यह वर मांगते हैं कि मन, वचन और कर्मसे विकारोंको त्यागकर आपके चरणोंमें ही प्रेम करें।

वारि मथे धृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धान्त अपेल॥

जलके मथनेसे भले ही घी निकल आवे,
मिठीको पीसनेसे भले ही तेल निकल आवे अर्थात्
असंभव भी संभव हो जाय; परन्तु हरि भजनके
बिना संसारसे निस्तार पाना संभव नहीं है।

 ऐसे वैष्णव विचार सम्पन्न श्रीतुलसीदास गास्वामीको और श्रीरामचरितमानस ग्रन्थको मायावादी ग्रन्थ मानना निःसन्देह अज्ञताका परिचय है। □

आकाशवाणीपर प्रचार

(दिनांक ८/६/९६ को अमेरिकाके ह्यूस्टन शहरमें KFCC रेडियोपर प्रसारित प्रवचन)

अमेरिकाके टेक्सास राज्यमें भारतीय प्रवासियोंकी संख्या अत्यधिक है। वहाँके स्थानीय आकाशवाणी केन्द्रसे हिन्दी भाषी जनताके लिए विशेषरूप में श्रीलमहाराजजीका इण्टरव्यू प्रसारित हुआ, जिसका विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

प्रश्नः— आपके अनुभवमें मनुष्यको आध्यात्मिक उन्नतिके लिये क्या करना चाहिए?

उत्तरः— मैं अपने गुरुजी नित्यलीला प्रविष्ट ३० विष्णुपाद श्री श्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके चरणोंमें दण्डवत् प्रणामकर मनुष्योंको क्या करना चाहिए, इसके विषयमें अपनी वैदिक संस्कृति और आध्यात्मिक ज्ञानके आधारपर आप लोगोंको कुछ बतलाने जा

रहा हूँ। वेदका अर्थ होता है—जानना। यह संस्कृत शब्द है। क्या जानना? मैं कौन हूँ? विश्व ब्रह्माण्डका सृजन किसने किया? हम क्यों इस जगतमें आये हैं? क्या हम शरीर हैं? साधारण रूपमें सभी लोग यह कहते हैं कि मैं यह शरीर हूँ। किन्तु, वेदोंमें तीन प्रकारके दर्शन बतलाये गये हैं। एक 'स्थूल दर्शन' जिसका ज्ञान आँखोंसे या अन्य शारिरीक अङ्गोंके द्वारा किया जाता है। हम स्थूल रूपमें विश्वको देखते हैं। किन्तु, यह शरीर मैं नहीं हूँ। मैं हूँ शरीरमें रहने वाला

प६

भाषण देते हुए

जीवात्मा। कानसे सुनता हूँ, किन्तु कान नहीं हूँ। मनसे विचार करता हूँ, किन्तु मन नहीं हूँ। पैरसे

चलता हूँ, किन्तु पैर नहीं हूँ। मैं भगवानका अंश हूँ—इश्वर अंश जीव अविनाशी, गीतामें भी यही बतलाया गया है—‘ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः’। यदि हमने अपनेको शरीर समझ लिया तो आत्माको नहीं समझ सकते। इसलिये वेद जो भगवानके द्वारा बनाये गये हैं, हमें उपदेश देते हैं कि शरीरका ज्ञान सनातन नहीं है। भगवान्‌के द्वारा प्रदत्त ज्ञान ही सनातन है। आत्मा अजर, अमर है। परमात्मा विश्वका सृजन, संहार और पालन-पोषण करनेवाले हैं। हम परमात्माके अशं हैं, इस शरीरका जन्म है, वृद्धि है और अन्तमें न जाने हम

इस शरीरको छोड़कर कहाँ चले जायेंगे। वेद इन्ही चीजोंको बतलाता है। वेदका भाष्य या वेद का यथार्थ ज्ञान वेदान्तसूत्र कहलाता है, इसकी रचना श्रीलव्यासदेवने की है। इसमें साढे पाँचसौ सूत्र हैं। ‘अथातो ब्रह्म जिज्ञासा’—ब्रह्म क्या है? ‘जन्माद्यस्य यतः’—जिनसे जगत्‌का सृजन, पालन और संहार होता है।

‘GOD’ शब्दमें भी यही है। ‘G’—जनरेटर, ‘O’—आपरेटर, ‘D’—डेस्ट्रॉयर। वही जगत्‌का सृजन करता है। संहार करनेका मतलब यह नहीं है

कि आत्मका भी संहार कर देता है। आत्माका संहार नहीं होता, परमात्माकी भाँति वह भी अजर, अमर, नित्य, शाश्वत है। जब तक कि यह जीव परमात्माको नहीं जान लेता, तब तक वह—यह जगत् क्या है? कहाँ जाना है? कुछ भी नहीं जान सकता। जो लोग इस जगत्को देखते हैं, शरीरको 'मैं' समझते हैं—उनके इस दर्शनको स्थूल दर्शन कहते हैं। मनके द्वारा जो सुख दुःखकी अनुभूति होती है, वह भी जड़ ही है। इसको चेतनाभास कहते हैं। यह है मानस (सूक्ष्म) दर्शन, इसके द्वारा भी हमारा हित साधित नहीं होगा। आत्मासे जो भगवान्‌का दर्शन होता है, वही यथार्थ दर्शन है। वेद उसीका ज्ञान हमें प्रदान करते हैं। श्रीमद्भागवत् उसी वेदका अन्तिम तात्पर्य है। इसलिये यदि वेदोंको, श्रीमद्भगवद्गीता एवं हमारे समस्त शास्त्रोंको समझना है, तो श्रीमद्भागवत्का आश्रय लेना आवश्यक है। श्रीमद्भागवत्में बहुतसे आख्यानोंके द्वारा यह प्रमाणित किया गया है। वेद, उपनिषद्, रामायण, पुराण, गीता हमारे प्रमाण हैं। ये जो कहते हैं, हमें उनपर चलना चाहिये, नहीं तो विश्वमें कभी भी हमें सुख और शान्ति नहीं मिल सकती। यदि कोई सुख और शान्ति चाहता है तो उसे जरूर ही आत्माका ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा, और उसके लिए श्रीभगवद्गीता, श्रीमद्भागवत् तथा इनको जानेवाले तत्त्वविद् एवं आत्मविद् सन्त-वैष्णवोंके शरणमें जाना पड़ेगा। इसीका नाम सनातन धर्म है। सनातन अर्थात् आज और कलका नहीं है, हमारा मनुष्यका बनाया हुआ नहीं है। आत्मा और परमात्माके ज्ञानको और उनके सम्बन्धको सनातन धर्म कहते हैं। सनातन धर्म आत्माका ही दर्शन है और भगवान्‌के प्रति विशुद्ध प्रेम ही सनातन है। यही सनातन धर्म समस्त प्राणियोंका धर्म है। लता, गुल्म, वृक्ष, जानवर, मनुष्य, ब्रह्मा, शंकर सभीका यही सनातन धर्म हैं। इसीको वेदोंमें, उपनिषदोंमें बतलाया है। ३५ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिविवा चक्षुराततम्। जो नित्य मुक्त हैं, जिन्हें आत्माका ज्ञान मिल चुका है, जो उसमें प्रतिष्ठित हो चुके

हैं, उनको नित्य सूरी या मुक्त कहते हैं। वे लोग भगवान्‌के चरणकमलोंको एवं उनके धामको नित्य दर्शन करते हैं। यह कोई काल्पनिक चीज नहीं है, यह नित्य सत्य है। वृन्दावन धाम है, अयोध्या धाम है, मथुरा धाम है। यह भगवान्‌की क्रीड़ा- भूमि है। जैसे इस जगत्‌में है, वैसे उस जगत्‌में भी गोलोक वृन्दावन, वैकुण्ठमें इन सबकी स्थितियाँ नित्य हैं। जीवके साथमें परमात्माका सम्बन्ध पाँच रूपोंमें बतलाया गया है। ये पाँचों ही नित्य हैं। इनमेंसे प्रत्येक जीवका किसी-न-किसी रूपमें भगवान्‌के साथमें अवश्य सम्बन्ध है। इनमेंसे एक शांत कहलाता है। जो विश्वका भरन-पोषण करनेवाले ब्रह्म है, हम उनके दास हैं। बस इतना ही तक सम्बन्ध। शान्त भाव—सब समय उनका चिन्तन करना, ध्यान करना यह शान्त रस है। यह भी एक सम्बन्ध है। सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आदिका ब्रह्मके साथ यही सम्बन्ध है। इससे ऊपर हनुमानजीका दास्य है। वे भगवान्‌की नित्य सेवा करते हैं। भगवान्‌की लीलाएँ नरके समान अर्थात् नरवत् होती हैं। भगवान्‌का रूप है; कोई वस्तु निराकार नहीं है। यथार्थमें भगवान्‌का रूप है, किन्तु उसे व्यक्त नहीं कर सकते इसलिए उसे निराकार कह दिया गया। जैसे हवाका रूप है, गुण है, वैसे ब्रह्मका अपना रूप है। God created man after His own image भगवान्, परमात्माने, ईश्वरने अपने रूपके समान मनुष्योंको बनाया। 'सदेव सौम्य इदमग्रमासीत्' ब्रह्मने अपने रूपके समान दूसरोंको बनाया। 'अल्लाह खुदाने अपने रूपके समान मनुष्योंको बनाया।' यह वाक्य कुरानका है, पहला वाक्य बाइबिलका है। अतः सर्वत्र ही ब्रह्मका रूप देखा जाता है। जिसका रूप ही नहीं है, वह इस रूपवान जगत्‌की कभी भी सृष्टि नहीं कर सकता। ऐसा कभी नहीं हो सकता। ब्रह्मका रूप है। वह कृष्ण रूप है, राम रूप है। परम सुन्दर रूप है। उनको प्रभु मानकर उनकी सेवा करना, यह एक सम्बन्ध है। तीसरा सम्बन्ध है—कृष्णसे मित्रकी भाँति प्रीति करना, जैसा अर्जुनने किया, श्रीदाम,

सुबल, मधुमङ्गलने किया। चौथा सम्बन्ध है—कृष्ण या रामको अपना बेटा मानकर, पुत्र मानकर पुत्रवत् वात्सल्यभावसे उनकी सेवा करना। सबसे अन्तिम है—ब्रजका मधुर भाव, जो गोपियोंका कृष्णके प्रति था। जीवोंका यही सबसे श्रेष्ठ कर्तव्य और परम धर्म है। यही सनातन धर्म है। इसीलिए प्रेमको जगत्‌का परमधर्म बतलाया गया है। प्रेमका ही नाम इस जगत्‌में भक्ति है। भक्तिके लिए कहा गया ‘३० तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः……’ इस भक्तिके द्वारा ही जीव भगवान्‌का दर्शन कर सकता है, कृष्णका दर्शन कर सकता है, परब्रह्मका दर्शन कर सकता है। ‘भक्तिरैवं नयति’ भक्ति ही जीवोंको भगवान्‌के पास ले जाती है। भक्ति जब तक जीवोंके साथमें भगवान्‌का मिलन नहीं करा देती, तब तक इस जगत्‌में रहकर भक्तिका साधन करते-करते चित्त शुद्ध करना होगा। जब ये शरीर और सूक्ष्म शरीर—मन, बुद्धि, अहङ्कार दूर हो जायेंगे तो प्रभुके साथमें हमारा मिलन होगा। किस रूपमें? जैसे गोपियोंके साथमें कृष्णका मिलन हुआ। जैसे वैकुण्ठमें भक्तोंका नारायणके साथमें मिलन होता है। अयोध्यामें रामका हनुमान इत्यादिके साथमें मिलन और प्रेम होता है। यह प्रेम ही जगत्‌का परम धर्म है। यही गीता, भागवत इत्यादि शास्त्रोंमें सर्वत्र बतलाया गया है—इसीका नाम भारतीय संस्कृति भी है। भारतीय संस्कृतिका तात्पर्य इसीसे है। उत्तरमें हिमालयसे लेकर दक्षिणमें बिन्दु सरोवर तक के बीचमें रहनेवाले जो लोग गीताको, भागवतको, वेदोंको, उपनिषदोंको मानकर भगवान्‌की भक्ति करते हैं, भगवान्‌के प्रति अपनी निष्ठा करते हैं, श्रद्धा और प्रेम रखते हैं, वे सभी हिन्दू हैं। हिन्दू एक व्यापक चीज है। यह राष्ट्रीयता या संकुचित धर्म नहीं है। विश्वमें जितने भी जीव हैं, चाहे वे कीट-पतंग हों, वृक्ष हो, चाहे पर्वत हो, चाहे मनुष्य हो, गन्धर्व हो सबके अन्दरमें जीवात्मा है। सभी सुख चाहते हैं। किन्तु, यह सुख शान्ति कब मिलेगी? जब अपने मूल, जो प्रभु हैं, उनसे इनका मिलन होगा। इससे सारे दुःख-कष्ट, जन्म-मरणका

आवागमन, सब कुछ बंद हो जाते हैं और वे भगवान्‌की सेवामें सुख लाभ करते हैं। जैसा सुख भगवानको प्राप्त होता है, उसी तरहका सुख उसे भी प्राप्त होता है। इसीलिए गीतामें कहा—समझो कि मैं जीवात्मा हूँ, भगवानका अशं हूँ। गाय, गदहे, सूअर, पेड़-पौधोंमें हमारे समान ही जीवात्माएँ हैं। इसीको कहा जाता है, समदर्शी। हमलोगोंको समदर्शी होना चाहिए। सुख, दुःख, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सबको बराबर समझ करके भगवानके साथमें तुम प्रेम करो। सब जीवोंके साथमें प्रीति रखो। सबका कल्याण चाहो। ‘तमसो मा ज्योतिर्गमय’ अन्धकारमें मत जाओ। यह ‘मैं’ हूँ। यह ‘मेरा’ है। ‘मैं और मेरा तू और तेरा’—इसमें मत फँसो। सबके प्रति समान दृष्टिकोण रखते हुये सबको भगवानकी तरफमें ले चलो। यही भारतकी प्राचीन वैदिक संस्कृति और वैदिक ज्ञान है। आज हम भारतवासियोंको उस भावनाको जगाना है। यह ज्ञान देकर समस्त लोगोंके प्रति प्रीति रखो। यहाँ तक कि कीड़े, मकौड़ोंको भी मारनेकी, हिंसाकी प्रवृत्ति न हो। ‘अहिंसा परमो धर्मः’। आप लोग याद रखेंगे, हम कश्यपकी सन्तान हैं। कश्यप गोत्र, गर्ग गोत्र, शाणिडल्य गोत्र हमारे गोत्र हैं। हमारा सम्बन्ध सूर्य और चन्द्र इत्यादिसे है। भगवान कृष्णका अच्युत गोत्र ही हमारा गोत्र है। हम गर्वके साथ कह सकते हैं कि हम प्राचीन भारतीय आर्योंकी संतान हैं, आज विश्वमें ऐसा कहने वाला कोई भी दूसरा राष्ट्र नहीं है। किन्तु, हम इस संस्कृतिको भूलते जा रहे हैं। हमें चाहिए, जैसे मुसलमानोंमें आज भी अपने बच्चोंको कुरानका मंत्र या कलमा पढ़ाते हैं, इसाईयोंमें भी बाईबिल पढ़ाते हैं, रविवारका दिन रखते हैं, वैसे ही हिन्दुओंको भी करना चाहिए। भारतीयोंको भी चाहिए कि वे सभी भारतीयोंको एक समझें। अलग न समझें। सामाजिक धर्मकी बजहसे हमारा आत्मधर्म बदल नहीं जायेगा। इसीलिए शुद्धोंको भी अपना ही समझो। वे भी जीव हैं। यदि सूअर इत्यादि नीच जानवरोंमें भी हम आत्माको स्वीकार करते हैं, तो सबके प्रति प्रेम करना चाहिए और

इस भारतीय ज्ञानके प्रचार-प्रसारके लिए, इसे जाननेके लिए, घंटे-दो घंटेका समय निकालना चाहिए। बच्चोंको भी गायत्रीका मंत्र दिलाना चाहिए, इसका अर्थ उनको समझाना चाहिए। उनको श्रीगीता और श्रीमद्भागवत बचपनसे ही जरूर पढ़ाना चाहिए। माता-पिताके लिये आदर होना चाहिए। अतिथि देवो भव, पितृ देवो भव, मातृ देवो भव, इस तरहसे सब बतलाया गया है। माता-पिता पहले गुरु हैं। उनका आदर होना चाहिए। यह नहीं हो सकता है, तो भगवान्को हम नहीं जान सकते हैं। उनके प्रति हम आदर नहीं कर सकते।

उन्हें सिखलाना चाहिए—‘अहिंसा परमो धर्मः’ किसी भी प्राणिको दुःख नहीं देना चाहिए। किसीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये। ये तो बचपनसे हमारी शिक्षाएँ होनी चाहिए। यदि हम अपने बच्चोंमें

सनातन धर्मका विकास करते हैं, तो इसका विश्व पर असर पड़ेगा। विश्वमें अहिंसा धर्म होगा और सभी लोग सभीको प्यार करेंगे। इसीको कहते हैं—‘विश्व प्रेम’। इसीलिए हमको इस तरफ आकर अपनी संस्कृतिको अपनाना है। संस्कृति अर्थात् संस्कार, संस्कार अर्थात् शुद्ध होना। शुद्ध माने क्या? मैं शरीर नहीं, मैं मन नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, भगवानका नित्य दास हूँ, भगवानके साथमें हमारा प्रेमका सम्बन्ध है। यही सम्बन्ध जीवमात्रके प्रति है। वहाँ हिन्दू, मुसलमान, इसाईका कोई भी सम्बन्ध नहीं है। वह सुधरा हुआ स्वभाव है। इस धर्ममें हमको आना चाहिए। इसलिए सनातन धर्ममें नहीं आनेसे आप जीवोंको प्यार नहीं कर

सकते। इसके लिए पहले हमें याद रखना होगा कि हम शिविकी संतान हैं, जिन्होंने अतिथिके लिये अपने प्राण दान कर दिये, बोटी-बोटी काटकर वजन करके अतिथिका सत्कार किया। हम दधीचिकी संतान है, जिन्होंने देवताओं या विश्वके कल्याणके लिए अपने चमड़ेको गायसे चटवा दिया तथा जीवित अवस्थामें अपनी हड्डी दान कर दी। हम हरिश्चन्द्रकी संतान हैं, जिन्होंने सत्यके लिए अपना सर्वस्व दे दिया, किन्तु सत्यको नहीं छोड़ा। हम सीताजीकी संतान हैं, जिन्होंने अपने पतिके त्याग देनेपर भी पतिको नहीं छोड़ा।

श्री रामचन्द्र जीने भी सीताको नहीं छोड़ा, केवल शिक्षाके लिये ऐसा करना था। हम गोपियोंकी संतान हैं, हम राधाजी के उपासक हैं, वे हमारी उपास्य हैं, कृष्ण हमारे उपास्य हैं।

श्रीरामचन्द्रजी मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। मर्यादाकी स्थापना करनेके लिये कृष्ण ही रामके रूपमें आये हैं, राधाजी सीताके रूपमें आईं। ये कोई अलग तत्त्व नहीं है। जितने अवतार हैं, सब एक तत्त्व हैं। जगत्के कल्याणके लिये विभिन्न समयमें अवतरित होनके कारण उनको अवतार कहते हैं। इन चीजोंको समझना चाहिए। हम बहुत देवताओंके उपासक नहीं हैं। हम एकके उपासक हैं। वे एक कौन हैं? वे ही भगवान् हैं—‘एते चांश कला पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयं’ अर्थात् कृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं। जितने अवतार हैं, उन कृष्णसे ही जगत्के कल्याणके लिये बीच-बीचमें आते हैं, कभी नित्य शक्तियाँ, कभी उनके सेवक लोग

भक्तोंके रूपमें, आचार्योंके रूपमें आते हैं। वे ही श्रीनिष्ठादित्याचार्य, श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य आदि हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु स्वयं कृष्ण हैं, वे जगतमें प्रेमका प्रचार करनेके लिए आये थे। अन्तमें यही है, यदि भगवान्‌को प्रसन्न करना है, तो भगवान्‌की भक्ति करना आवश्यक है। भगवान्‌की भक्ति करना अधिक कठिन नहीं। मैं आपका हूँ, आप मेरे हैं; आप कैसे प्रसन्न होंगे—इस भावनाको जगाना है। कलियुगमें हमारा चित्त दूषित रहता है, श्रीमद्भगवत्का ज्ञान भी नहीं है, अतः केवल श्रीभगवान्‌का नाम ही एकमात्र आश्रय है। स्वयं भगवान्‌में जितनी शक्ति है, नाममें भी वही शक्ति है। बल्कि भगवान् सबको दर्शन नहीं दे

सकते, किन्तु नामप्रभु सबके सामने आकर भगवान्‌का दर्शन करा देंगे। इसलिये भगवान्‌के स्वरूपसे, कृष्णसे, रामसे भी बढ़कर उनके नाम 'राम' और 'कृष्ण' अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिये नामका हम आश्रय करें। चलते-फिरते, उठते-बैठते, रातमें-दिनमें, टहलते हुए भी, यहाँ तककी सोते हुए भी, टट्टी-पेशाब करते समय भी भगवानका नाम स्मरण करें, तो उसके द्वारा भगवत्-तत्त्वका ज्ञान हो जाता है और अन्तमें भगवान् प्राप्त हो जाते हैं। जीव जीवन-मरणसे ऊपर चला जाता है। यही हमारा वैदिक ज्ञान है। इसके द्वारा हमारा और विश्वका कल्याण होगा। □

झूलनोत्सव

—डॉ मधु खण्डेलवाल

सावन सुहावन की आई हरियाली तीज,
गावत मल्हार ब्रज बाल तन गोरे की।
लाल बलवीर प्राण प्रीतमके अंग संग,
झूलत उमंग भरी मदन मरारे की॥

झूलन-झूलन ब्रज मण्डलका एक निराला पर्व है—रिमझिम बरसती फुहारें, कल्लोल करती यमुना, कूकती कोयलें, टेरते पपीहे, गुनगुनाते भँवरे, मदमाती मञ्जरी, खिलती दुर्वा, हरे-भरे कदम्ब-तमाल, उमड़ती घटाएँ, उद्धीप्त दामिनी, लजाती लताएँ, नाचते-थिरकते मयूर, महकते पुष्प, सुरभित गन्धवाह, कुदन-सी बेल, लरजती चम्पा-चमेली, झूमती इठलाती कुसुंभी, उमगते कूल-कगार, हँसता-विंहसता-महकता-मदमाता निकुञ्ज, तप्त कांचन-तन, रति-रस भीना मन, मन्मथमन्मथ मदनमोहन—और इन सबका संयोजन है दोलनोत्सव या झूलनोत्सव।

प्रकृति श्याम-श्यामाको बहुत लाड-लड़ाती है या किशोर-किशोरी प्रकृतिको इतना सौंभाग्य प्रदान करते हैं, यह उसी तरह अतकर्य है, जैसे चीर हरण प्रसङ्गमें सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है। प्राकृतिक सुषमा जिस तरह सम्पूर्ण

ब्रह्माण्डसे अपना सकल सौन्दर्य-लावण्यका आहरण कर ब्रज वसुधापर अवतरित हुई है, वह वर्णनातीत अवश्य है, लेकिन अनुभवगम्य है। प्रिया-प्रियतमकी क्रीड़ा-स्थलीमें उनके कोलि-कल्लोलमें कोई अभाव न रह जाय, उनकी सेवा किञ्चित्मात्र भी अपूर्ण न रह जाय, इसका सम्पूर्ण ध्यान रखा है प्रकृतिने। प्रकृति अर्थात् स्वभाव—निर्मल सुन्दर स्वभाव, चित्तकी स्वाभाविकता (श्रीकृष्णकी नित्य दासता) में ही श्यामा-श्याम विराजते हैं, विहार करते हैं—इसी पावनताके स्रोतसे मन प्रेमसे परिपूर्ण हो झूमता है, हिलते लेता है, हिंडोलोंका आस्वादन करता है और पड़ते हैं झूलें।

नाना रस रेल खेल ही को सुख झूल झूल।
दोऊ मुसिक्यावें दोऊ दोऊ कूँ रिजावें हैं॥

झूला मनकी तरंग है, तनकी उमंग है, चित्तकी क्रीड़ा है, स्वभावका आमोद-प्रमोद है, हृदयका आनन्द है, अहंकारका आन्दोलन है। उन्नत, पुष्पित, पल्लवित सघन-सद्गुण किसी पुष्ट डालीमें ही झूले डाले जाते हैं। झूलनोत्सव हमें प्रेरणा देता है, प्रतीति कराता है कि भक्तकी भक्ति जब सम्पूर्ण ऐहिक-पारन्त्रिक अभिलाषाओंका

भेदनकर प्रेमाभिक्ति-भावकी अवस्था तक उन्नत होती है जब उसकी भावनारूपी डालियाँ कृष्णसुखके रससे पुष्ट होती हैं, जब उसका हृदय निर्मल-पवित्र वातावरणका सृजन करता है तब पड़ते हैं झूले। झूलेकी दोनों रसिस्याँ हैं राधा-कृष्ण, और आसन है उन दोनोंका पारस्पारिक अनुराग—झूलेकी दोनों रसिस्याँ हैं राधा-कृष्ण, और आसन है उन दोनोंका पारस्पारिक अनुराग—यह तो भक्तपर निर्भर है कि उसकी पैरें कहां तक पहुँचती हैं—भावकी कौनसी अवस्था तक पहुँचती हैं।

वनराज श्रीवृन्दावन भक्तके द्वारा उपास्य है, प्राकृतिक रूपसे मनोरम तो है ही, प्रेममें भी सिरमौर है, जहाँके वृक्ष-तरु-निकुञ्जकी वृक्षावली ब्रजकी रजको झुक-झुककर बन्दन करती हैं—ऐसे ही वृक्षोंपर झूलनोत्सव होता है। नित्य निरन्तर प्रियाजूका-प्रियतमके प्रेममें झूलना, उन्हींके भावोंमें हिलोरे लेना, उन्हींके आनन्दमें आस्वादन करना झूलनोत्सव है।

श्रावण-शुक्ला तृतीयाको यह दोलनोत्सव प्रारम्भ होता है। ब्रजमण्डलके घर-घरमें झूले पड़ जाते हैं और पूर्णमासी तक यह उत्सव चलता है, पूर्णता आने तक इस प्रेममें परिपुष्ट होता है। प्रेमकी पूर्णताके पश्चात् ही उत्सवका आनन्द प्रारम्भ होता है—

**अति सुकुमार छबिसार श्रीलडैति लाल
प्रेम उरमाल रति पति कौ लजावै हैं**

पूर्ण होने पर जीव और भगवान्का प्रगाढ़ बन्धन हो जाता है और फिर द्रवीभूत हृदयमें अलौकिक रस छलछलाता है—यह रस सिमटता नहीं ऊँची-ऊँची हिलोरे लेता है जहाँ न गिरनेका डर है, न आघात लगनेका, बस झूमना है और झूमना है—एक ही मनुहार है, एक ही पुकार है—

कंकी जो बनावे तो वनयो वनराज जू कौ
कूक-कूक नाच नाच सुजस सुनाऊँ मैं
लता-दुम बेली रंगरेली जो करौ तो करौ
रावरे ही आंगन पै पुष्य झार लाऊँ मैं

पुष्योंसे सुसज्जित सूतकी बनी रसिस्योंमें जब सुकुमारी, नित्यकिशोरी, शक्त्याहादिनी, दामोदरेश्वरी श्रीराधिका विराजमान होती हैं और चपलारे-

अनियारे-भारे-कजरारे-सुखदायी कटाक्षोंसे अपने अलबेले-छैलछबीले-रसीले-गुणगर्वोंले श्रीकृष्णका अवलोकन करती हैं, तो प्राणप्यारे श्रीकृष्ण अपने प्रियाके वशमें हुए उन्हें झोंके देने लगते हैं—

**श्याम राधिका कौ वनराज की निकुञ्जन में
छिन छिन नए नए चोज साँ लड़ावै हैं**

निकुञ्ज रस और आनन्दका स्थल है, जहाँ राग गाये जाते हैं, प्रेमको गेयता प्राप्त होती है, मल्हार गायी जाती है—ऐजी कोई..... अम्बाकी डार पै जी..... उन बिन कछु न सुहाय। आम्रवृक्ष प्रेमका उद्दीपक है। लता वल्लरियोंको, नवांकुरोंको अपने आलिङ्गनपाशमें बद्ध कर लेती है। श्रीकृष्ण अपनी प्रियाको प्रेमाब्धि हिंडोलेमें झूलाते हैं। झुलैं राधिका प्यारी झूलावे नन्दकुमार। गोरोचन सम तन प्रभा-मोरपच्छ वसना-ललिता सखी युगल-विहारीको पान रुचिपूर्वक आस्वादन कराती हैं। दामिनी-द्युति-देह विसाखाजी उन्हें वस्त्र पहनाती हैं। कमल केशरी आभामयी, जपा कुसुम वसना रंगदेवी उन्हें आभूषणोंसे अलंकृत करती हैं। कुंकुम-बरना, कनक वसना चित्रा उन्हें सुगन्धित जलका पान कराती हैं। गौर-बरना पंडुप वसना तुङ्गविद्या राग-मल्हार गाती हैं। हरताल रंगमयी, दाढ़ीमी फूल वसना इन्दुलेखा उन्हें सरसतापूर्वक काम-कथाएँ सुनाती हैं, चंपक बरना, नीलाम्बर वसना चम्पकलता उन्हें विजन डुलाती हैं। प्रवीन अंगा, सुही रंग वसना सुदेवी उनके सब प्रकारके सिंगार करती हैं। युगल माधुर्यके रसिक रिङ्गावर, श्रीरूपादि षड्गोस्वामी चकोर बन उनकी लीलाका रसपान करते हैं। वैष्णव भक्तोंमें इस दोलनोत्सवका बड़ा महत्त्व है। इसमें प्रेम ही झूला है, जिसमें रसिक झूलते हैं, भाव ही मल्हार है, जो इन्द्रधनुषके सात रंगोंमें सातों राग, सातों स्वर बनकर गाया जाता है। हम इस परम शुद्ध-उज्ज्वल प्रेमके शिखरपर चढ़ जायें और भावोंके हिंडोलेमें झूलते रहें—

यह सुख सदा रहै डर मेरे
श्यामा श्याम सहज रंगभीने, को सखी साङ्ग सबरे
कुञ्ज धाम सखियन सभा, प्रजा हंस मृगमारे
बसत निरन्तर चैन साँ, कीन्हें नैन चकार

□

विदेश यात्राके बाद मुम्बई हवाई अड्डे पर श्रील महाराजजीका अभिनन्दन

दिनांक- २२-७-१९९६

भारतकी शास्य श्यामला वसुधा पर आज जैसे ही महाराज दर्शनार्थियोंके समक्ष प्रकट हुए, वातावरण भावपूर्ण हो उठा, भारत-भूमि उनके बिना कितनी विरह विदग्धा हो गयी थी, रह-रहकर सिसक रही थी, सुबहसे ही वर्षा थमनेका नाम न ले रही थी। जैसे ही उनके चरण-कमलोंका स्पर्श प्राप्त हुआ, कहाँ गए उसके आँसू, उनका आलिंगन प्राप्तकर वह मुस्करा रही थी, उमड़ती घुमड़ती घटाएँ अपने प्राणप्रियको हृदय थामकर निहार रही थीं। दिव्य-उज्ज्वल-लालिमामय मुखकमलपर कैसी अद्भुत स्मित थी-नील कुवलय सदृश उनके अक्षिद्वय आगन्तुकोंको प्रेम रससे सींच रहे थे। कहाँ गया था मैं, यहीं तो था, तुम्हरे हृदयोंमें, उनके हृत्कमलका भाव आज कहाँ रुक पा रहा था। पावन-प्रेमपूरित अश्रु उनके चक्षुओंमें छलछला रहे थे; वे अमृत बिन्दु-उनके पैरों पर नमित-अनुनमित भक्तोंको उन्मुक्त भावसे प्रेम-दान-प्रदानकर कृत्कृत्य कर रहे थे। सम्पूर्ण विश्वको अपना लेनेका भाव उनके हस्तकमल प्रकट कर रहे थे। शुभाशीर्वादोंके लिए उठे कर-कमल भावनाओंका प्रणयन और आत्माका उन्नयन कर रहे थे। महामंत्रकी ध्वनिसे वातावरण

गूँज रहा था। मध्यरात्रि स्तम्भित हो गयी थी। आकाशके सूर्यको उसने अपने अगोशमें छिपा लिया था। पर यह कौन सूर्य दिव्य आभा बिखरे रहा है—अदृश्य तारे नील सरोवरमें खिल उठे। कैसी अनुपम छटा थी, कैसा अद्भुत भाव था, कैसा अद्भुत प्रभाव था। परिचित-अपरिचित सभीमें श्रद्धाका ज्वार उमड़ रहा था। १७ घटेंकी

यात्रा, पर मनकी तरंग ऐसी तरंगायित थी कि मुखपर थकानका नाम ही न था। एक महान् विलक्षण, अद्भुत व्यक्तित्व—न भूतो न भविष्यति। कालकी स्वर लहरियाँ गा रही थीं, जब महापुरुष भावोंके प्लावनके अवरोधके असफल प्रयासके लिए कुछ देर आसीन हुए, तो ‘उज्ज्ञकि पद कंजन पर’ भक्त भावातिरेकसे ओतप्रोत हो रहे थे। अहा! आज उस महामानवकी कैसी अद्भूत छवि थी। अधरोंपर मुस्कान, निश्छल हँसी, श्वेत उज्ज्वल दंत-पंक्ति, टूगोंसे छलछलाते अश्रु, मानो प्रतिशाकर रहे हैं। “मैं अब तुम लोगोंको छोड़कर कभी नहीं जाऊँगा-सच कभी नहीं।” मंत्रोच्चार ध्वनिके साथ कालजयी श्रीमहाराजजीको उत्तरायण हाउसिंग सोसायटी, अंधेरी, में ले जाया गया—गुलदस्तोंकी महक वातावरणको मधुरिम बना रही थी और रात्रिको और अधिक मदिर। असंघ्य पुष्पोंके हार उनके वक्षस्थलकी शोभा बने थे—गुलाब, मोगरा, चमली, रजनीगंधा अपने सौभाग्यपर इठला रहे थे। एक आशीर्वादात्मक वक्तव्यसे महाराजजी मानो अपने मनकी कह-सुन लेना चाहते थे। श्रीनवीन प्रभु बड़े उत्साहित हो अपनी यात्राकी संक्षिप्त जानकारी शहरोंके नाम गिना रहे थे।

महाराजजीने बताया जैसे श्रीकृष्णने गोपियोंसे कहा कि मैं मथुरा गया, द्वारिका रहा, विवाह आदि किए—सब कुछ एक स्वप्न की तरह हो गया। इसी प्रकार मेरी ७७ दिनोंकी यात्रा भी एक ‘स्वप्न’ की भाँति हो गयी। उनकी अनुपस्थितिमें भक्तोंको ‘त्रुटिर्युगायते’की पीड़ा होती है, लेकिन वेदनाओंकी

कसकको स्व-हास्यसे आहत करनेमें वे पारंगत हैं। महाराजजीके श्रीमुखकी शोभाने सबको चातक बना दिया था। निगोड़ी पलकोंका गिरना कैसा कष्ट दे जाता था। यही अवसर मिलते ही महाराजजीने सोचा—अब समय आ गया है, नवनीतवत् हृदयसे कठोर वाणी निकली—“रात्रि बहुत हो चुकी है, तुम लोग अपने—अपने घर जाओ।” रात्रि तो वहाँ हैं जहाँ श्रीलमहाराजजीका सानिध्य नहीं है—हमारे जीवनकी रात्रि भी बहुत व्यतीत हो चुकी है, महाराजजीका दर्शन ही इस रात्रिका विनशन है, उन गुरुदेवकी वाणी ही रात्रि (अराजकता,

अव्यवस्था, विसंगतियाँ—अन्याय) की कल्पषताका अपहरण कर सकती है, गुरुदेव प्रदत्त मंत्रोंसे ही जीवनरूपी रात्रिकी वीरानगी और सत्राटेका दमन किया जा सकता है, गुरुदेवके ज्ञानसे ही इस रात्रिका अज्ञान आलोकित किया जा सकता है, गुरुदेवके दिव्य प्रेमके प्रकाशसे ही कुंठारूपी रात्रिको उद्दीप्त किया जा सकता है, गुरुदेवने संकेत दिया—‘अपने—अपने घर’ अपने—अपने प्रेयों, श्रेयोंको प्राप्त करो। हे गुरुदेव! सचमुच ही रात्रि बहुत हो चुकी है अब इस रात्रिका एक पल भी न रहे—अब यह रात्रि कभी न आए।
प्रस्तुति—डॉ मधु खण्डेलवाल

दिल्लीके भक्तों द्वारा श्रील महाराजीके प्रति श्रद्धा सुमन

सुबह आजकी है निराली।
सबके मुखपर छायी है लाली॥
बोलो, इसका राज है क्या?
ऐसी आज बात है क्या?
चलो हम ही तुम्हें बतलाएँ।
अपने गुरुदेवसे तुम्हें मिलवाएँ॥
ये हैं, H.D.G. NARAYAN MAHARAJA।
U.S.A. से बापस आए हैं आज॥
तीन महीने पहले लगाके गए थे, जो आग।
बुझाने आए हैं उसे, करके प्रेमकी बरसात॥
क्यों न करें आखिर ये ऐसा।
कृष्ण भक्त नहीं, कोई इनके जैसा॥
मिलनका आनन्द बढाना था विरहके तापसे।
इसलिए बहलाया था ब्रजबालाओंको कान्हाने वाग्जालसे॥
लेकिन, हमारी बात है और कुछ।
वो था द्वापर, यह है कलियुग॥

अब Style बदल गया है।
विरह सहनेका दम निकल गया है॥
नहीं चलेगी अब यह लीला।
क्योंकि, साधन है हमारा बहुत ढीला॥
नहीं चाहिए हमें विरहका दुःख।
दीजिए सिर्फ मिलनका सुख॥
अब सुनें इसकी Solution।
जिसकी हैं दो Division॥
या तो करो आप Expansion।
या दो हमें कृपाकी Extension॥
माननी पड़ेगी आपको यह बात।
देनी ही पड़ेगी यह सौगात॥
मत करना हमें अपनेसे दूर।
बना लो हमें अपने चरणोंकी धूल॥
क्योंकि कूनको चाहिए न पासपेर्ट न टिकट।
जिससे हम Fool रहें सदा आपके निकट॥

wd प्रस्तुति—कमल एवं वृन्दा

श्रीब्रह्म-माध्वगौड़ीय सम्प्रदायस्य प्रसिद्ध सन्त प्रवराणां—

१०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायणजी
 महाराजानां, विदेश यात्रातः समागतानां
 श्रीकेशवजी गौड़ीयमठे मथुरायां स्वागतसमिति
 सदस्यैः

श्रीमथुरा
 नगर-
 पालिकाध्यक्ष
 वीरेन्द्रजी
 अग्रवाल,
 उद्योगपतिः
 श्रीसोमनाथ
 हरजई,
 श्रीबाँकेबिहारी
 माहेश्वरी,
 श्रीजगदीश
 प्रसादजी

प७

अभिनन्दन समारोहमें मुख्य अतिथि डॉ. वासुदेव
 कृष्ण चतुर्वेदीजी स्वागत गान पढते हुए।

एम. साहा, श्रीबलवीर सिंह बंसल प्रभृति महोदय
 द्वारा समायोजित नागरिक अभिनन्दन समारोहमें
 मुख्यातिथि डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी

तथा
 उद्योगपति श्री
 फतेहलाल
 गोयलकी
 अध्यक्षतामें
 डॉ. वासुदेव
 चतुर्वेदी द्वारा
 रचित
 स्वागताभिनन्दन
 शुभाशंसन—
 श्रीकृष्णाधिक
 प्रचारक—१०८
 श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त

नारायण महाराजजीको प्रणाम करता हूँ।

हॉलेण्ड देश—

श्रीश्रीकृष्ण प्रभुः समस्त जगतः सर्वश्वरो नाऽपरः
 हॉलेण्डे विशद प्रमाण सहितं व्याख्यान वार्तादिभिः।
 नाना प्रान्त निवासिनां च हृदये शान्तिं सु संकीर्तनैः
 संस्थाप्यात्र विराजिता मुनिनिभाः श्रीभक्तिनारायणाः ॥१॥

इंजीनियर, डॉ. आर. एम. साहा, श्रीबलवीर
 सिंह बंसल प्रभृति महोदयैः समायोजिते
 नागरिकाभिनन्दनोत्सवे, उद्योगपति श्रीफतेहलाल
 गोयल महोदयाध्यक्षे स्वागताभिनन्दनम्— शुभाशंसनञ्च
 [रचयिता— डॉ. वासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी]
श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महोदयम्।
त्रिदण्डस्वामिनं वन्दे कृष्ण भक्तिप्रचारकम्॥

हिन्दी अर्थ—श्री ब्रह्म-माध्व गौड़ीय सम्प्रदायके
 प्रसिद्ध सन्त प्रवर १०८ श्री श्रीमद्भक्तिवेदान्तनारायण
 जी महाराजके विदेश यात्रासे पधारनेपर श्रीकेशवजी
 गौड़ीय मन्दिर मथुरामें स्वागत समितिके
 सदस्य—मथुरा नगरपालिकाके अध्यक्ष श्रीवीरेन्द्र
 अग्रवाल, उद्योगपति श्रीसोमनाथ हरजई, श्रीबाँकेबिहारी
 माहेश्वरी, श्रीजगदीश प्रसाद इंजीनियर, डॉ.आर.

अर्थः—केवल श्रीकृष्णचन्द्र ही समस्त जगत्‌के
 ईश्वर हैं कोई दूसरा नहीं—इस तथ्यको हॉलेण्ड
 देशमें अकाट्य प्रमाण युक्त व्याख्यान एवं
 वार्ता-द्वारा अनेक प्रान्त निवासियोंके हृदयमें
 भगवन्नाम द्वारा शान्तिकी स्थापनाकर आज यहाँ
 माननीय श्रीभक्तिवेदान्त नारायणजी महाराज
 मुनिवेषशमें विराजमान हैं।

इंगलैंड देश—

इंगलैंडेपितथैव भक्तिलितिकां चारोप्य प्रान्तेष्वपि
श्रीचैतन्य महाप्रभोरमृतवद्वाक् कुल्यकाभिस्ततः।
शास्त्राणां पदवर्मभिश्च सुदृढां रक्षां विधायाशु वै
श्रीनारायण भक्त भक्ति रसिका सन्त्यत्र नारायणः॥२॥

अर्थ—इंगलैंडके अनेक नगरोंमें भक्तिकी लता आरोपित कर श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुकी अमृतवत् वाक्यरूपी लघु नदियोंके जलसे और शास्त्रोंके प्रमाणरूपी कवचवत् आलवालोंसे भक्तिलितिकाको सूटूढकर-श्रीभगवन्नारायणके भक्तकी भक्तिके रसिक श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायणजी महाराज यहाँ विराजमान हैं।

अमेरिका देश—

पाताले च अमेरिकेतिविदिते प्रान्तेषु सौभाग्यतः
धन्येयं नरमोहनी व्रजधरा धन्या व्रजेसंस्थिताः।
व्याख्यानैश्च व्रजस्य भारत धरायाश्चापि सद् गौरवं
सवंध्यत्रि विराजिता बुधवराः श्रीभक्तिनारायणः॥३॥

अर्थ—भूमिमें पातालके समान अमेरिका राष्ट्रके विभिन्न प्रान्तोंमें “नरमोहनी व्रजधरा धन्य है, धन्य व्रजवासी हैं” इसका प्रतिपादन प्रवचनों द्वारा करके व्रजका और भारत राष्ट्रका गौरव बढ़ाकर यहाँ आज श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायणजी महाराज विराजमान है, यह सबके सौभाग्यकी बात है।

कनाडा देश—

शिखरिणीच्छन्दः

कनाडायां गत्वा भरतकुलरत्नैः परिवृतः
सुभक्त्या सन्मार्ग सरसवचनैः सन्तप्रवराः।
प्रदशयां हो युक्त्या मधुपुरिमहत्वं बहुविधं
समायाता धन्या वयमपि सुधन्या विधिवशात्॥

अर्थ—कनाडा देशमें अनेक प्रवासी भारतीयोंके द्वारा सम्मानित सन्त श्रीमहाराजजीने अपने सरस

वचनों, उपदेशोंसे भक्तिका सन्मार्ग दिखाया और हमारे जनपद मथुराका महत्व प्रतिपादनकर यहाँ पथाकर हम सबको धन्य बनाया, आप तो स्वयं धन्य हैं ही।

गीतिः

भक्तिवेदान्त नारायण! त्वदीयं स्वागतं कुर्मः।

(हे भक्तिवेदान्तनारायणजी महाराज, हम सब आपका स्वागतभिनन्दन करते हैं)

हे गौडिय वैष्णवप्रवर! त्वदीयं स्वागतं कुर्मः।

[हे गौडिय वैष्णवोंमें श्रेष्ठ, हम सब आपका स्वागत करते हैं]

विदेशे भक्तिसंवाहक!—त्वदीयं स्वागतं कुर्मः।

[हे विदेशोंमें भक्तिकी गंगा बहानेवाले ! आपका स्वागत करते हैं]

विलक्षण पण्डितप्रवर! त्वदीयं स्वागतं कुर्मः।

[हे विलक्षण विद्वानोंमें श्रेष्ठ ! हम सब आपका स्वागत करते हैं]

हे भागवतशास्त्रमर्ज! त्वदीयं स्वागतं कुर्मः।

[हे श्रीमद्भागवत-शास्त्रके मर्मज्ञ, हम सब आपका स्वागत करते हैं]

[इस गीतिकी विशेषता रही कि इसे उपस्थित जन समुदायने भी वक्ताके स्वरके साथ स्वर मिलाकर गाया]

रामेषु खाक्षिके वर्षे—वैक्रमे श्रावणेऽसिते

अष्टम्यां मौमसायाहे स्वागतं कुरुते मुदा॥

२०५३ वैक्रमवर्षके श्रावणकृष्णा अष्टमी, मंगलवारके दिन सायंकालमें श्रीभक्तिवेदान्त नारायणजीका स्वागत किया।

भवदीय,

हम हैं आपके स्नेहभाजन
मथुराके नागरिक

महान सन्त श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीके स्वदेश आगमन पर हार्दिक अभिनन्दन

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें तीन महीनेकी विदेश यात्राके बाद लौटे श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराज जी का मथुरा नगरवासियोंने हार्दिक अभिनन्दन किया। अभिनन्दन समारोहके मुख्य अतिथि भारत वर्षके प्रख्यात विद्वान श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी जी थे। नगरके सुप्रसिद्ध उद्योगपति तथा समाजसेवी श्रीफतेहलाल गोयल ने सभाकी अध्यक्षता की। इस समारोहमें श्री मनोहरलाल शास्त्री, श्री बरसाने लाल चतुर्वेदी आदि मथुराके प्रमुख व्यक्ति उपस्थित थे। सभाके आरम्भमें मथुरा नगरपालिकाके भूतपूर्व अध्यक्ष श्री बाँकेबिहारी माहेश्वरीने अध्यक्ष महोदयको माल्यार्पण किया। तत्पश्चात् श्रील महाराज जी ने मुख्य अतिथिको चन्दन तथा माल्यार्पण किया। पुनः श्रील महाराज जी ने वहाँ उपस्थित गणमान्य लोगोंको माल्यार्पण किया एवं वहाँ उपस्थित लोगोंने भी श्रील महाराज जीको माल्यार्पण किया। श्रील महाराज जी की इस सफल विदेश-यात्राके सम्बन्धमें अपने हृदयके भावोंको व्यक्त करते हुए सर्वप्रथम पद्मश्री विभूषित श्री बरसाने लाल चतुर्वेदी जी ने अपने हृदयके उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि शरीरकी इस अवस्थाके बावजूद आपने जो यह कार्य किया है, उससे भारत तथा मथुराका गौरव बढ़ा है। तत्पश्चात् श्रीबाँके बिहारी माहेश्वरीजी ने उनकी सफलता पर बधाई दी तथा कहा कि आपने भारत की गरिमा बढ़ाई है। पुनः अमेरिकामें महाराज जीके प्रचारमें विशेष सहयोग देनेवाले श्रीविष्णुदासजी ने बताया कि किस प्रकार अमेरिकाके उस भागमें जहाँ महीने भरसे वर्षा नहीं हो रही थी, लोग वर्षाके लिए व्याकुल थे, और महाराज जी ने जब वहाँ

श्रीमद्भागवतके ब्रजका प्रसंग वर्णन किया तो उसी दिन वहाँ मूसलाधार बारिश हुई। उसके बाद इस्कॉनके संस्थापक श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराज की प्रमुख शिष्या श्यामरानी ने अंग्रेजीमें श्रीमहाराज जी के विदेश यात्राके महत्व पर प्रकाश डाला। उसके बाद सभाके मुख्य अतिथि श्रीवासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी जीने संस्कृतके श्लोकों द्वारा श्रील महाराज जी को पुष्टाब्जलि अर्पण किया। पुनः पुष्टि मार्गके प्रख्यात सन्त श्री मनोहरलाल शास्त्रीजीने अभिनन्दन शब्दकी व्याख्याकी और कहा कि भक्ति, भक्त तथा भगवान एक दूसरेकी महिमा बताते हैं। तत्पश्चात् श्रीरमांशकर पाण्डेय ने कविताके द्वारा समझाया कि जब भौतिक ज्ञान तथा आनन्दसे लोगोंकी व्यास नहीं बुझती हैं, तब वे आध्यात्मिक ज्ञानसे अपनी व्यास बुझाने अग्रसर होते हैं। पुनः सभाके अध्यक्ष श्रीफतेहलाल गोयल ने कहा कि जब श्री महाराज जी के विदाई समारोहका आयोजन किया गया था, तो मैंने कहा था कि उनके आनेके बाद भी इसी धूमधामसे उनके अभिनन्दन समारोहका आयोजन किया जायेगा। उन्होंने कहा कि जब श्रीहनुमानजी समुद्र लाँघकर सीतादेवीके पास गए तो सीताजीने पूछा कि इस असम्भव काम को कैसे किया। श्रीहनुमान जीने उत्तर दिया कि यह तो श्रीरामजीके नाम और आशीर्वादका फल है।

लोगोंके अनुरोधपर श्रील महाराजजीने विदेशके अपने अनुभवोंको सुनाया। अपने वक्तव्यमें उन्होंने कहा कि जब मैं इंग्लैण्ड की धरतीपर गया तो मुझे वहाँके लोगों द्वारा भारतपर किये गये अत्याचार एवं संस्कृतिको नष्ट करनेकी

चेष्टाओंका स्मरण हो आया, किन्तु जब मैंने वहाँके बहुतसे लोगोंको भारतीय ऋषियों और मनीषियोंके प्रति श्रद्धान्वित देखा तो मेरा भाव परिवर्तित हो गया। उन्होंने और भी कहा, आज हमारे देशके राजनेतागण देशको दरिद्र बनाकर दूसरोंके सामने हाथ पसार रहे हैं, किन्तु मैं दरिद्र भारतसे नहीं आया हूँ, मैं समृद्ध भारत से आया हूँ। वेद ही वहाँका धन है और श्रीमद्भागवत परम धन है।

मैं इस धनको यहाँ लुटाने आया हूँ। यदि आप लोग इसके एक मणि को भी ग्रहण कर सकें, तो आपका यह जीवन और बादका जीवन धन्य हो जायेगा।” श्रील महाराज जी ने अपने और भी अनुभव सुनाये, जिसे उपस्थित लोगोंने बहुत ही रुचिके साथ श्रवण किया। अन्तमें उनके विदेश यात्राके कुछ अंश वीडियोपर भी दिखाये गए। □ साभार—(दैनिक जागरण ८/८/९६)

विदेश-यात्रासे आनेके बाद श्रील महाराजजीका समितिके वर्तमान आचार्य एवं सभापति श्रीश्रीमद्भवितवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीको लिखा पत्र

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गजी जयतः

**श्रीश्रीभागवत-चरणोंमें दण्डवत् प्रणति निवेदन !
प्रपूज्यचरण महाराज !**

मेरी प्रथना है कि इस दासाधमका दण्डवत् प्रणाम स्वीकार करें। आशा है कि परमकरुणामय श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गकी कृपासे आपका शरीर एवं भजन सर्वाङ्गीन कुशल है।

श्रीश्रीगुरुपादपद्म, परमकरुणामय श्रीश्रीगौर-नित्यानन्द प्रभु और श्रीश्रीराधाविनोद-विहारीजीकी अहैतुकी कृपासे मैं गत २७-७-९६ को प्रायः तीन महीनेके बाद विदेश यात्रासे लौटा हूँ।

आपलोगोंकी विशेष कृपासे हॉलेण्ड, इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा आदि देशोंके प्रधान-प्रधान शहरोंमें व्यापकरूपसे श्रीमन्महाप्रभु और श्रीगुरुवर्गोंकी वाणी प्रचारित हुई है। हॉलेण्डकी राजधानी एम्स्टर्डम, विश्वके सबसे बड़े बन्दरगाह रॉटर्डम, विश्व अदालत स्थान हेगमें प्रचार हुआ। इन सब स्थानोंमें नगर सङ्कीर्तनमें प्रायः ४००/५०० भक्तगण सम्मिलित हुए थे। यहाँ बड़ी-बड़ी सभाओं, स्कूलों,

कॉलेजोंमें व्यापकरूपसे प्रचार हुआ है। वहाँ जर्मनी, स्पेन, इटली, पॉलैण्ड, स्वीटीजरलैण्ड आदि अनेक देशोंके बहुत-से भक्त मेरे साथ साक्षात्कार एवं श्रीहरिकथा श्रवण करनेके लिए आये थे।

इंग्लैण्डमें लण्डनस्थित श्रील प्रभुपाद द्वारा स्थापित श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ, मेनॉर (इस्कॉनका मन्दिर) राडलेट आदि बड़े-बड़े शहरोंमें प्रचार हुआ। हमलोगोंके साथ दस-बारह कार एवं मिनी बसोंमें प्रायः ५०/६० भक्तगण चलते थे। कहीं-कहीं ५००/६०० भक्तोंने उद्घटरूपसे नृत्य-कीर्तन किया एवं विराट सभाओंमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार किया गया। इसके अलावा मेनचेस्टर एवं ब्रिस्टल आदि शहरोंमें भी विपुलरूपसे प्रचार हुआ।

तत्पश्चात् अमेरिकामें ह्यूस्टन, लॉस एजिल्स, वेकरफील्ड, केलिफोर्निया, सेनफ्रान्सिस्को, ऑक्लेण्ड, वारशील, यूजिन, ऑरगन, पोर्टलैण्ड आदि बड़े-बड़े शहरोंमें प्रचुररूपसे श्रीगौरवाणीका प्रचार और कीर्तन हुआ।

तत्पश्चात् कनाडाके वेंकुवर, मेगन पहाड़ और

जंगलोंके बीच फ्रेजर नदीके तटपर लोफरके निकट शरणागति नामक गाँव (इस्कॉन सेण्टर) में एवं वहाँसे पुनः अमेरिकामें मियामी, वाशिंगटन, न्यूयॉर्क, न्यूजर्सी आदि बड़े-बड़े शहरोंमें विराटरूपसे प्रचार हुआ। पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजने सर्वप्रथम अमेरिकामें अवतरण करनेपर जहाँसे प्रचार आरम्भ किया उस बोस्टन शहर और न्यूयॉर्कमें टॉम्प्किंस पार्क और २६, सेकण्ड एवेन्युमें, जहाँ पर स्वामीजीने इस्कॉनकी स्थापना की, उन स्थानोंपर बड़ी-बड़ी सभाओंमें वक्तृता हुई।

अमेरिकामें प्रायः एक महीनेसे अधिक काल तक प्रचारकर १४/७/९६ को न्यूयॉर्कके केनेडी हवाई अड्डेसे यात्रा करके हॉलेण्ड तथा वहाँसे २२/७/९६ को मुम्बई और वहाँसे २५/७/९६ को यात्रा करके दिल्ली एवं दिल्लीसे २७/७/९६ तारीखको मथुरा वापस लौटा। देश और विदेशमें सर्वत्र ही हवाई अड्डेपर सैकड़ों भक्तोंने विराट संकीर्तनके सहित स्वागत किया। दिल्ली और मुम्बईमें विराटरूपमें नागरिक अभिनन्दन हुआ। विदेशोंकी पत्रिकाओंमें संवाद प्रकाशित हुए। प्रवासी हिन्दू मन्दिरोंमें भागवत पाठ एवं वक्तृता हुई। उन लोगोंने प्रत्येक वर्ष वहाँ जानेके लिए उत्साहके साथ निमन्त्रण दिया है।

इसके अलावा विदेशोंमें विशेषरूपसे दक्षिण अमेरिकाके ब्राजील तथा अर्जेन्टिना, साउथ आफ्रिका, आस्ट्रेलिया, इन्डोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया, फिजी, वाली इत्यादि बहुत देशोंके भक्तोंने इन इन देशोंमें प्रचार करनेके लिए आग्रह किया है। उनका आग्रह अस्वीकार करनेका उपाय नहीं था। उन लोगोंने यह बताया है कि वे समस्त यातायातका व्यय, पासपोर्ट, बीसा आदि समस्त व्यवस्था करेंगे। सम्भवतः आगामी दिसम्बर-जनवरी महीनेमें जानेकी व्यवस्था कर रहे हैं।

इस विदेश प्रचारमें खासकर इंग्लैण्ड, अमेरिका और कनाडामें इस्कॉनके प्रमुख G. B. C. सदस्योंने मेरी यात्रामें अनेक विघ्न उपस्थित किए, जिससे मैं विदेशमें कहीं भी पैर नहीं रख सकूँ, कहीं भी रह न सकूँ, मेरी सभामें इस्कॉनका कोई भी भक्त योगदान न कर सके, मेरी कोई भी किसी भी विषयमें सहायता नहीं कर सके, इसके लिए उन लोगोंने प्राणपर चेष्टा की थी।

परे विरुद्ध पर्वोंके द्वारा प्रचार किया था। किन्तु इससे मेरा विशेष रूपसे प्रचार हुआ। इससे सबसे अधिक मात्रामें लोगोंने सभाओंमें योगदान किया (वहाँके भक्तोंने उनकी किसी भी बातपर कर्णपात नहीं किया, अपितु उनके विपरीत मेरे प्रचारमें सभी प्रकारसे सहायता की।)

उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मुम्बई, गुजरात, महाराष्ट्र, मद्रास, बंगाल आदि समस्त प्रदेशोंके प्रवासी भारतीय लोगोंने मेरे भाषणोंको श्रवणकर अनेक मन्दिरों और प्रतिष्ठानोंमें निमन्त्रण देकर पाठ-वक्तृताकी व्यवस्था की। इस विदेश यात्रामें अनेक श्रद्धालुओंने हरिनाम ग्रहण किया। अधिक क्या, मैं सम्पूर्णरूपसे अयोग्य हूँ, फिर भी इस प्रकार प्रबलरूपसे प्रचार हुआ। इसकी मैंने बीच-बीचमें उपलब्धि की कि यह एकमात्र परम करुणामय श्रीशचीनन्दन गौरहरि एवं परम करुणामय श्रीगुरुर्वाङ्की अहैतुकी कृपासे सम्भव हुआ है। मैं इसमें काष्ठपुतली मात्र था।

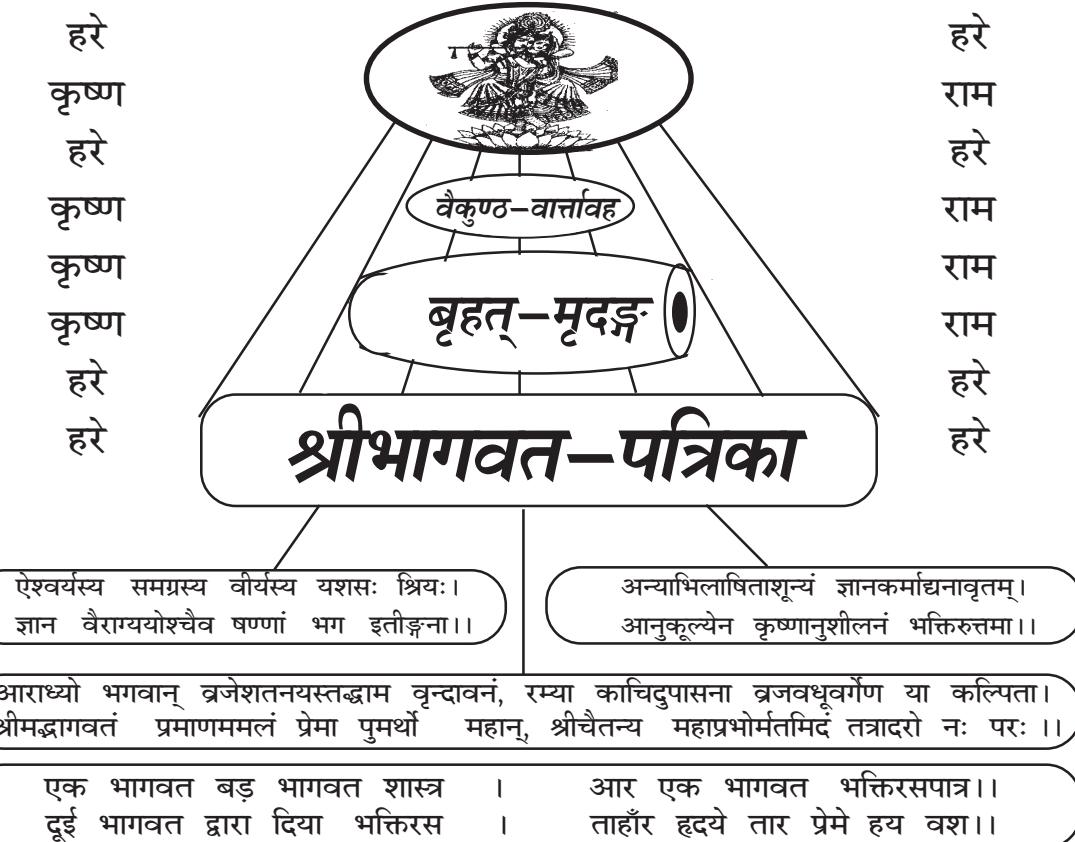
विशेषरूपसे आपकी अहैतुकी कृपा, प्रेरणा और उत्साहके द्वारा उत्साहित होकर मैंने विदेश यात्रा की थी। नहीं तो यह सम्भवपर नहीं था। इसके लिए मैं आपका चिरकाल त्रहणी रहूँगा। आपने कलकत्तामें रहते समय जो भविष्यवाणी की थी श्रील गुरुपादपद्म अचिर भविष्यतमें अनेकों कार्य साधन करोवेंगे, वह सफल हुई। इति

प्रणत-दासाधम

नारायण



श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः



वर्ष २० } श्रीगौराब्द ५१० { संख्या ८
विक्रम संवत् २०५२-५३ आश्विन मास, सन् १९९६, २८ सितम्बर-२६ अक्टूबर }

श्रीश्रीलजगन्नाथाष्टकम्

रूपानुगानां प्रवरं सुदान्तं श्रीगौरचन्द्रं-प्रियभक्तराजम् ।
श्रीगाधिकामाधवचित्तरामं वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम् ॥१॥
श्रीसूर्यकुण्डाश्रयिणः कृपालोर्विद्वद्वरं श्रीमधुसूदनस्य ।
प्रेष्ठस्वरूपेण विराजमानं वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम् ॥२॥

श्रीरूपानुगवरोंके प्रवर, विजेतोन्द्रिय, श्रीगौरप्रिय भक्तगणोंके राजा अर्थात् श्रेष्ठ, श्रीराधामाधवके चित्तको विनोद प्रदान करनेवाले, समस्त व्यक्तियोंके पूजनीय उन श्रीजगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ ॥१॥

श्रीसूर्यकुण्डके तटपर निवास करनेवाले श्रीमधुसूदन, जो कि परम कृपालु एवं विद्वानोंमें श्रेष्ठ हैं, उनके प्रेष्ठरूपमें जो विराजमान हैं, समस्त व्यक्तियोंके पूजनीय उन श्रीजगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ ॥२॥

श्रीधामवृन्दावनवासि भक्त
नक्षत्रराजिस्थित-सोमतुल्यम्
एकान्तनामाश्रित सङ्घपालं
वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम्॥३॥

वैराग्य-विद्या-हरिभक्तिदीपं
दौर्जन्य-कपट्यविभेदवज्रम्।
श्रद्धायुतेष्वादर-वृत्तिमन्तं
वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम्॥४॥

संप्रेरितो गौरसुधांशुनाय
श्चक्रे हि तज्जन्मगृहप्रकाशम्।
देवैर्नुतं वैष्णवसार्वभौमं
वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम्॥५॥

सञ्चार्य सर्वं निजशक्तिराशिं
यो भक्तिपूर्वं च विनोददेवे।
तेने जगत्यां हरिनामवन्यां
वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम्॥६॥
श्रीनामधान्मोः प्रबलप्रचार-
इहापरं प्रेमरसाङ्क्लिमगनम्।
श्रीयोगपीठे कृतनृत्यभङ्गं
वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम्॥७॥
मायापुरे धाम्नी सक्तचित्तं
गौरप्रकाशेन च मोदयुक्तम्।
श्रीनामगानैर्गर्लादश्रुनेत्रं
वन्दे जगन्नाथविभुं वरेण्यम्॥८॥
हे देव! हे वैष्णवासौवभौम!
भक्त्या पराभूतमहेन्द्रधिष्य
त्वदेगत्र विस्तारवर्तीं सुपुण्यां
वन्दे मुहुभक्तिविनोदधाराम्॥९॥

जो श्रीधाम वृन्दावनमें निवास करनेवाले भक्तरूपी नक्षत्रोंके मध्यमें चन्द्रमाके समान अवस्थित हैं, ऐकान्तिक नामाश्रित भक्तगणोंके पालक एवं सभीके पूजनीय उन जगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥३॥

जिनका चरित्र वैराग्य-विद्या एवं हरिभक्तिसे उज्ज्वल है, जो पाषण्डतारूपी दौर्जन्य और कपटताको विनाश करनेमें वज्रके समान हैं, जो श्रद्धालुओंके प्रति आदरयुक्त हैं, सभीके पूजनीय उन जगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥४॥

श्रीगौरचन्द्रके द्वारा सम्यकरूपसे प्रेरित हैं अर्थात् जिन्होंने श्रीगौरचन्द्रकी प्रेरणासे उनके जन्मस्थानको ढूढ़ताके साथ प्रकाशित किया, उन देववन्दित वैष्णवसार्वभौम, सभीके पूजनीय जगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥५॥

जिन्होंने श्रीभक्तिविनोदमें अपनी समस्त शक्तिराशिको सञ्चारितकर जगत्‌में हरिनामकी बाढ़ प्रवाहित की, सभीके वरेण्य उन जगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥६॥

जो हरिनाम और श्रीधामके प्रचारमें प्रबल चेष्टापर हैं, प्रेमरससमुद्रमें निमग्न हैं, श्रीमायापुर श्रीयोगपीठमें जो नृत्य परायण हैं, सभीके वन्दनीय उन जगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥७॥

जिनका चित्त श्रीधाम मायापुरमें आसक्त है एवं श्रीगौरहरिके विग्रहको प्रकाश करनेसे अतिशय आनन्दयुक्त है, सभीके वरेण्य उन जगन्नाथ विभुकी मैं वन्दना करता हूँ॥८॥

हे देव! हे वैष्णव सार्वभौम! भक्तिके द्वारा महेन्द्रलोकको भी पराभूत करनेवाले आपके गोत्रको निरन्तर विस्तार करनेवाली अतिशय पवित्र भक्तिविनोद धाराकी मैं बारम्बार वन्दना करता हूँ॥९॥



वैष्णव-वंश

—३५ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती

कनिष्ठाधिकारी वैष्णव प्राकृत होते हैं

इस प्राकृत जगत्में हमलोग वैष्णवोंके तीन अधिकार देख पाते हैं—(१) कनिष्ठ, (२) मध्यम और (३) उत्तम। वस्तुतः समस्त चेतनमय पदार्थ ही कृष्णके दास हैं। जिन लोगोंमें कृष्ण-उन्मुखताका कोई भी लक्षण नहीं पाया जाता, साधारण लोग तथा कनिष्ठ और मध्यमाधिकारी वैष्णव उन्हें हरि-विमुख कहते हैं। किन्तु अवैष्णव होनेपर भी वे लोग विष्णुके दास हैं। वासुदेव सभी भूतोंमें अधिष्ठित हैं। प्राकृत जगत्की छोटी-बड़ी सभी वस्तुओंमें विष्णुका अधिष्ठान नहीं रहनेसे उनका अस्तित्व ही सिद्ध नहीं हो सकता।

वैष्णवोंके कनिष्ठ अधिकारमें हम देखते हैं कि वैष्णव लोग विश्वासके साथ विष्णुके श्रीविग्रहकी पूजा तो आरम्भ कर देते हैं, परन्तु विष्णुके सेवक अर्थात् वैष्णवोंके स्वरूपकी उपलब्धिका उनमें अभाव रहता है। इसीलिये इस अधिकारमें स्थित रहनेवाले वैष्णवको श्रीमद्भागवतमें अप्राकृतकी संज्ञा देनेके बदले 'प्राकृत' कहा गया है।

कनिष्ठ अधिकारियोंकी क्रमोन्नति

कनिष्ठ वैष्णवोंकी श्रद्धा अत्यन्त कोमल होती है। साथ-ही-साथ उनकी बुद्धि भी प्राकृत होती है। वे परम श्रद्धाके साथ भगवान्की सेवा करते-करते उनकी कृपा लाभकर अपनी प्राकृत बुद्धिको धीरे-धीरे परित्याग करनेका अवसर प्राप्त करते हैं तथा उनकी श्रद्धा भी क्रमशः दृढ़तर होती जाती है। अन्याभिलाषा (भगवत् सेवाके अतिरिक्त अन्य कामना), सत्कर्मोंका अनुशीलन और यहाँ तक कि निर्विशेष प्राकृत ज्ञानियोंके विचारोंको भी तुच्छ जानकर प्राकृत विषयोंसे उनका विराग उपस्थित हो जाता है। तब प्राकृत इन्द्रियों द्वारा की जानेवाली सारी चेष्टाएँ, उच्च कुलमें जन्म ग्रहण करनेका अभिमान तथा प्राकृत धनका अहंकार—ये सभी क्रमशः क्षय होने लगते हैं। जिस प्रकार घासमें रहनेवाली जोंक अपने अगले भागसे

एक तृणको पकड़ती है, फिर पिछले भागसे पकड़े हुए स्थान या तृणको छोड़कर अगले भागसे पकड़े हुए तृणके सहरे अगले भागको आगे बढ़ाती हुई आगे बढ़ती जाती है, उसी प्रकार प्राकृत वैष्णव अप्राकृत राज्यका अनुसन्धान करते हुए अपना पिछला अधिकार बदल लेता है और उन्नत अधिकार-पथ पर अग्रसर होता है।

वैष्णवका मध्यम अधिकार

प्राकृत अर्थात् कनिष्ठ वैष्णव श्रीमूर्तिका दर्शन करता है, पर उस समय उसका दर्शन जड़मय होता है। क्रमशः जब वह अप्राकृत अवस्थानका अनुसन्धान करते करते अपने अधिकारमें उन्नतिकर मध्यम अधिकारोंमें पहुँच जाता है, तब हम देखते हैं कि कनिष्ठ अधिकारमें देखी जानेवाली श्रीमूर्ति उसके लिये उन्नत-दर्शनका विषय हो जाती है। उस समय वे श्रीमूर्तिको एक जड़मय वस्तु नहीं देखते, किन्तु उसी समय वे अपने अस्तित्वमें अप्राकृतकी एक तरल अवस्था (वह अवस्था जो दृढ़ नहीं हुई हो) लक्ष्य करते हैं और विभिन्न अधिकारोंमें स्थित भागवतोंका तारतम्य दर्शन करनेकी दृष्टि प्राप्त करते हैं। वैसी दृष्टि प्राप्तकर वे भगवत्-अधिष्ठानोंमें प्रेम, कृष्ण भक्तोंसे मित्रता स्थापन करते हैं तथा कृष्णभक्तिका प्रचारकर वे अज्ञ लोगोंका उपकार करते हैं एवं जो अप्राकृत वस्तुका विरोध करते हैं, उनका संग परित्याग करते हैं। इस समय उनके मार्गमें बहुत-सी बाधाएँ उपस्थित होती हैं। वे कभी या तो मायावादी अहंग्रहोपासकोंके (अपनेको भगवान् कल्पनाकर उपासना करनेवाले) द्वारा कुचले जाते हैं अथवा कभी मूर्ख सत्कर्मवादियोंके निन्दाका पात्र बनते हैं और कभी आहार-विहारमें मत्त रहनेवाले यथेच्छाचारी व्यक्तियोंके आक्रमणका विषय होते हैं।

मध्यम अधिकारीकी क्रमोन्नति

इन उपद्रवोंको वे धैर्यपूर्वक सहन करते हैं तथा भगवान्की कृपासे भगवत्-सेवासे विमुख नहीं

होते। जैसे कोमल श्रद्धायुक्त कनिष्ठ अधिकारियोंके पतनकी संभावना सर्वदा बनी रहती है, मध्यम अधिकारियोंका स्थान उनकी अपेक्षा अधिक दृढ़ होनेके कारण हरिविमुख लोग उनका कुछ भी बिगड़ नहीं सकते। मध्यम अधिकारीके हृदय-क्षेत्रमें भगवान् बहुधा अधिष्ठित रहते हैं—इसे वे अनुभव कर सकते हैं। भगवान् कृष्णचन्द्र (जीवोंके चित्तमें भक्तिकी प्रेरणा करनेवाले) चैत्यगुरुके रूपमें भक्तोंके हृदयमें प्रकाशित होकर उन्हें निज-जन जानकर आकर्षित करते हैं। मध्यम भागवत हरि-गुरु-वैष्णवकी कृपासे सम्पूर्ण अप्राकृत अनुभूति प्राप्त करते हैं। साधारण भाषामें इसको ही स्वरूप-सिद्धि कहते हैं।

वैष्णवोंका उन्नत अधिकार

ज्ञानी व्यक्ति जिसे जीवन-मुक्तकी संज्ञा देते हैं, उस शुद्ध अधिकारको वैष्णवोंकी भाषामें स्वरूप-सिद्धि अर्थात् अमिश्रित अप्राकृत अवस्था कहते हैं। इस अवस्थामें कृष्णकी सेवाके अतिरिक्त कोई भी दूसरी चेष्टा नहीं होती। सेवाके उपकरणोंको लेकर जो वाद-विवाद करते हैं, वे उन्नत अधिकारकी धारणा नहीं कर सकते। ३५ विष्णुपाद श्रीमद् गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज सम्पूर्ण ब्रजमण्डल और गोडमण्डलमें एक प्रधान भक्त थे। इनके तीव्र वैराग्यकी सीमा न थी। वे सर्वदा युगल-सेवा और नाम-संकीर्तनमें मत्त रहा करते थे। वे महीनों तक एक ही मिट्टीके बर्तनमें खाते, भिक्षामें जो कच्चे चावल पाते, खा लेते। उन्हें पकानेके लिये समय कहाँ? वे सहजिया लोगोंको उत्साह प्रदान किया करते थे। अब, यदि कोई व्यक्ति महाभागवतके उस उन्नत अधिकारमें पहुँचे बिना ही उक्त बाबाजीके बाहरी आचारोंका अनुकरण करे तो उसका मङ्गल होना तो दूर रहे, अमंगल होनेकी ही अधिक संभावना है। वह सार वस्तुको छोड़कर असारके लिये दौड़ता है। इस तरह जो अप्राकृतको छोड़कर प्राकृत विषयोंमें प्रमत्त होते हैं, वे किसी दिन भी महाभागवतोंके क्रिया-कलाप समझने में समर्थ न हो सकेंगे। सेवाके उपकरणोंको अपने प्राकृत भोगोंके समान समझनेसे उन्हें अप्राकृतकी उपलब्धि नहीं हो सकती।

वैष्णव-वंश और उसका व्यतिक्रम

उल्लिखित तीन प्रकारके वैष्णवोंका वंश इस जगत्में देखा जाता है। वंश कहनेसे केवल शौक्र-संतानोंका अर्थात् शुक्र द्वारा उत्पन्न वंश-परम्पराका ही बोध नहीं होता। वर्णाश्रम धर्म ग्रहणकर वैथ स्त्री-संग द्वारा पृथ्वीपर वंशकी उत्पत्ति होती है। किन्तु, उसको ही केवल वंश निर्णय करनेके लिये एकमात्र धारावाहिक और विशुद्ध पद्धति नहीं कहा जा सकता। माता और पिताके संयोगसे संतानकी उत्पत्ति होती है। प्रत्येक पुरुषसे ही भिन्न-भिन्न स्त्रियोंके सहयोगसे संतान पैदा हो सकती है। अतएव शुद्ध पितृ-सत्ता पुत्र अथवा स्थूल शौक्र-वंशमें आरोप करना युक्ति-युक्त नहीं मालम पड़ता है।

शौक्र-जन्म और माता-पिताके प्रति कर्तव्य

माता-पिता पुत्रके सर्व-प्रधान हैं। वे तरह-तरहके अनुष्ठानों द्वारा तन-मन-वचनसे संतानकी सेवा स्वेच्छापूर्वक किया करते हैं। इस ऋणसे मुक्त होनेके लिये कृतज्ञ पुत्रका प्रधान कर्तव्य है—माता-पिताकी सेवा करना। पुत्र जन्म लेनेके साथ-ही-साथ माता-पिताकी सेवा करनेके योग्य नहीं होता। बहुत दिनोंके बाद पुत्रके निजत्वकी उपलब्धि होनेपर सेवा-धर्म प्रकाशित होता है। उस समय वे माता-पिताके उत्तराधिकारी-स्वरूप उनकी सेवाको अपना प्रधान कर्तव्य समझते हैं। इसे ही शौक्र-वंश कहते हैं। इसमें माता-पिता द्वारा दिखलाये गये आचरणोंका ही असर पुत्रके चित्तपर प्रबल होता है।

सावित्री जन्म और आचार्यके प्रति कर्तव्य

हम जानते हैं कि शौक्र-जन्मके अतिरिक्त आचार्यके कुलमें जीवोंका द्वितीय जन्म भी होता है। द्वितीय जन्म होनेसे जीव “जन्म एक ही बार होता है”, इस भ्रान्त धारणाके हाथसे मुक्त होता है। इस समय आचार्य-कुलमें जीवका दूसरा जन्म होनेके कारण वे पहलेकी अपेक्षा सेवा-धर्मकी उपलब्धि अधिक मात्रामें करते हैं। माता-पिता सन्तानके जन्मसे लेकर आचार्यके घर जानेके पहले तक उसकी सेवा किया करते हैं। ज्ञान विकसित होनेके पहले ही पुत्रको आचार्य-कुलमें भेज दिया जाता है। अतः माता-पिता के प्रति वह अपना

कर्तव्य-ज्ञान आचार्य-कुलमें सीखता है। आचार्य माता-पिताकी तरह संतानका सेवक नहीं होता। द्विज-संस्कार-प्राप्त संतान आचार्यके घरमें रहकर उनकी (आचार्यकी) बहुत कुछ सेवा करनेका सुयोग पाता है। आचार्यका सेवक, वह द्विज आचार्यके घरको अपना घर समझता है और उनके सभी द्रव्योंका सेवा-भार ग्रहण करता है।

वेदोंके दो उपदेश

द्विज आचार्यके निकट वेदांगोंके साथ समस्त वेदशास्त्रोंका अध्ययन करते हैं। वेदोंमें दो तरहके उपदेश मिलते हैं। प्राकृत जगत्‌में शृङ्खुला-पूर्वक सांसारिक अनित्य सुखादिके साथ जीवन निर्वाह एक तरहका उपदेश है। और, नित्य परमार्थ-विद्यामें अधिकार प्राप्त करना दूसरा उपदेश है।

आचार्य अनित्य धर्मका याजक होनेसे शिष्यको कर्म या ज्ञानका उपदेश देते हैं और आचार्य स्मार्त न होकर परमार्थी होनेसे शिष्यको परम रहस्ययुक्त परमार्थ तत्त्वकी शिक्षा देते हैं। जो शिष्य प्राकृत रुचि-सम्पन्न होते हैं अर्थात् जड धर्ममें अनुरागी होते हैं, वे आचार्यके पास वैदिक अधिकारसे संसार-धर्मको ही मानव जीवनका फल समझते हैं। किन्तु, परमार्थ-धर्मके ज्ञाता वेदके सुपक्व फल भागवतधर्मकी शिक्षा देकर जीवको अनन्त जीवनके पथपर अग्रसर कराते हैं। वे नित्य जीवनका नैमित्तिक जीवनसे भेद समझा देते हैं। शिष्य क्षुद्र अर्थोंके लोभसे अथवा भोगोंकी लालसासे आचार्य-कुलसे समावर्त्तन★ करता है तथा गृह-प्रवेश कर कर्मकाण्डके अनुष्ठानोंमें तत्पर हो जाता है। जो लोग प्राकृत अर्थको परमार्थकी तुलनामें अत्यन्त तुच्छ और अकिञ्चित्कर जानकर परमार्थकी ओर आकृष्ट होते हैं, वे समावर्त्तनके बदले वृहद्-व्रत अथवा यति-धर्मको स्वीकारकर पारमार्थिक दीक्षा प्राप्त करते हैं।

दैक्ष्यजन्म और श्रीगुरुदेवके प्रति कर्तव्य पारमार्थिक आचार्यका नाम गुरु है। वे जीवोंको

अप्राकृत दिव्यज्ञान प्रदान करते हैं। दिव्य ज्ञान देनेकी प्रणालीको दीक्षा कहते हैं। यही जीवोंका तृतीय जन्म अर्थात् दैक्ष्यजन्म है। इस तृतीय जन्ममें वे अप्राकृत भगवत् उपासनामें प्रवृत्त होते हैं एवं जडदर्शनसे मुक्त हो जाते हैं। हमने पहले ही कहा है कि शौक्रजन्मके विस्तारको ही केवल वंश नहीं कहा जाता है, बल्कि सावित्री और दैक्ष्य जन्मके विस्तारको ही वास्तविक वंशकी संज्ञा दी जाती है।

शौक्र-जन्मके साथ सावित्री और

दैक्ष्य-जन्मका भेद

आचार्य कुलमें स्थिति (सावित्री जन्म) या अप्राकृत गुरुके घर (दैक्ष्य) जन्मका शौक्र जन्मके साथ भेद रहने पर भी पूर्वोक्त दोनों जन्मोंको परम्पराक्रमसे वंश कहा गया है और सर्वत्र ही इसका दृढ़तासे प्रतिपादन किया गया है। शौक्र जन्ममें संतानका पिताके प्रति दासत्व बहुत ही कम रहता है, किन्तु सावित्री और दैक्ष्य जन्ममें आचार्य या गुरुके प्रति उसका दास्यभाव क्रमशः अधिक होता है। भक्ति मार्गमें सेवाके तारतम्यसे ही उत्तराधिकारका तारतम्य निर्णय किया जाता है। जैसे किसी वैद्यका पुत्र जन्मसे ही वैद्य नहीं होता, परन्तु चिकित्सा-शास्त्रका ज्ञान अर्जन करनेके बाद चिकित्सक बन सकता है। उसी प्रकार वैष्णव गुरुके (शौक्र) पुत्र होनेके कारण ही वह आचार्य या गुरु होनेका दावा नहीं कर सकता। शौक्र-वंशमें ही केवल पारमार्थिक अधिकार सीमित होता है, यह बात किसी भी शास्त्र या सदाचारमें दिखलायी नहीं पड़ती है। केवल गृहस्थ अवैष्णव सम्प्रदायमें कुछ स्वार्थान्ध लेखकोंकी कपटताके कारण कहीं-कहीं ऐसा देखा जाता है।

सत् सम्प्रदायोंमें तुर्याश्रमी-गुरुओंकी (चतुर्थाश्रमी या संन्यासी गुरुओंकी) वंशावली शिष्य-परम्परासे चलती है। सत् सम्प्रदाय-जात अर्थात् सत् सम्प्रदायके गुरुपरम्पराके अलावा दूसरोंसे मंत्र लेनेसे वह मंत्र निष्फल होता है—यह बात पद्म पुराणमें लिखी गयी है।

(शेष भाग पृष्ठ २०० पर)



(★आचार्य कुलमें विद्या अध्ययन समाप्त करनेके बाद घर लौटनेका जो संस्कार होता है उसे समावर्त्तन कहा जाता है।)

धर्म और विज्ञान

—ॐ विष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ६, पृष्ठ १२८ से आगे]

जड़वाद स्वीकृतिमें मुख्य बाधा

जड़वाद स्वीकार करनेके पक्षमें इन प्रतिबन्धोंके रहते हुए भी उनकी अपेक्षा अधिक बड़ी एक दूसरी बाधा है। क्रम-उत्पत्तिवादकी सत्यता स्वीकार करनेपर भी इसके अधिकार क्षेत्रमें इसे एक साधारण प्रक्रियारूपसे स्वीकार किया जा सकता है। जिस शक्तिसे यह प्रक्रिया आरम्भ हुई है, उस शक्तिके मूल और स्वभावके सम्बन्धमें यह बाद एकदम चुपचाप है। जहाँतक भूमिके ऊँचे-नीचे स्तरसमूहमें उद्भिद और जन्तुओंकी आकृति और निर्माणके सम्बन्धमें इस मतवादकी क्रिया चलती रहती है, वहाँतक इस क्रियाके मूल अनुसन्धानकी तरफ प्रवृत्ति नहीं होती। इस मतवादमें तन्त्रवादी यथेष्ट हैं। किन्तु बुद्धिमान् मनुष्य यह देखता है कि अनुसन्धानकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति आत्मविश्वासके साथ जीवनके सम्बन्धमें जिस समय अनुसंधान करने लगता है, तब उसके सामने अनेक प्रकारकी सत्ताएँ प्रतीत होती हैं। किन्तु आत्मविश्वासका सम्बन्ध-ज्ञान प्राप्त होने पर विभिन्न प्रकारकी सभी सत्ताएँ इसी एक वस्तु—आत्मविश्वासकी सीमाके भीतर ही दिखलाई पड़ती हैं।

क्रमोत्पत्तिवादकी हेयता और धृष्टता

जब हम आनन्द और विषाद, दुःख और सुख, वाक्य और क्रियाके विषयमें चिन्ता करते हैं, तब उनकी उत्पत्तिके मूल स्थानको नहीं जान पाते हैं, जान पाते हैं केवल उस समय, जिस समय हम सृष्टि-शक्तिके तत्त्वका विचार करते हैं। क्रमोत्पत्तिवादी साहसपूर्वक किन्तु प्रमाणशून्य होकर कहा करते हैं कि यह शक्ति भौतिक पदार्थोंके

सम्मिश्रणसे जड़-यंत्रकी शक्तिकी तरह उत्पन्न होती है तथा वह आत्मविश्वासमें सम्बन्धशून्य है। किस प्रकार जड़-यंत्रसे उत्पन्न और आत्मविश्वाससे सम्बन्ध-शून्य कोई शक्ति आध्यात्मिक स्वतंत्रता-युक्त जीवों की उत्पत्तिका कारण हो सकती है, इस विषयमें क्रमोत्पत्तिवादी कोई सिद्धान्त नहीं रखना चाहते। दूसरी तरफ, वे स्वीकार करते हैं कि यह तत्त्व अज्ञात और अचिन्त्य है। तथापि अपने जड़वादकी अकर्मण्यता स्वीकार करनेके साथ-ही-साथ अतिशय अन्यायपूर्वक कहते हैं कि जो क्रमोत्पत्तिवादकी सत्यतामें सदेह करते हैं वे अतत्त्वज्ञ हैं, तथा उनके सिद्धान्त दोषपूर्ण हैं। जड़ीय मतवाद सीमा और भ्रम-प्रमाद आदि दोषोंसे युक्त होते हैं।

हार्वर्ट, स्पेन्सर, हाक्सले आदि दार्शनिकोंके द्वारा आविष्कार किया हुआ विज्ञान इन्ड्रियोंकी अपटुतासे उत्पन्न एक प्रमाद-विशेष है। जिस प्रकार एक अनाड़ी चिकित्सक अनुचित औषधके प्रयोग द्वारा समस्त रोग दूर करनेकी प्रतिज्ञा करता है, उसी प्रकार हमारे नव्य पाण्डित्याभिमानी जडविद् व्यक्ति जैव-जीवनके समस्त रहस्यपूर्ण तत्वोंका सिद्धान्त चिन्तन करनेके अभिप्रायसे अपने नगण्य जड़वादके अन्तर्गत विधियोंका प्रयोग करते हैं। वे प्रमादसे उत्पन्न कष्टोंका विचार न कर अपने भित्तिहीन स्वप्नवत् विद्याके ऊपर विश्वास कर समस्त विषयोंका तथ्य अनुसंधान करते हैं। जड़ीय मतवाद एक नितान्त सीमाविशिष्ट और भ्रम, प्रमाद, करणापाटव तथा विप्रलिप्सा★ आदि दोषोंसे परिपूर्ण है—इसे प्रमाणित करने पर भी आध्यात्मिक जीवनके विरोधी भ्रान्त मतवादियोंको कुछ भी शिक्षा नहीं मिलती।

* (१) भ्रम—एक वस्तुको दूसरी वस्तु समझना। (२) प्रमाद—अन्यमनस्कता।
 (३) करणापाटव—इन्द्रियोंकी अपटुता। (४) विप्रलिप्सा—दूसरोंको ठगनेकी इच्छा।

ईसाईयोंका Soul और वेदोंकी आत्मा एक नहीं

यह लेख किसी ईसाईकी लेखनीसे निकला हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेखकने जड़वादको अस्वीकार करते हुए जितना भी अध्यात्मवादका स्थापन किया है, वह ईसाई-धर्मका संकुचित मतवाद मात्र है। ईसाई-धर्ममें जो एक (Soul) शब्द है, उसे स्थापित करनेके लिए नितान्त जड़वादियोंके मतका खण्डन करना आवश्यक है। क्योंकि उनका (Soul) जड़शक्तिके अन्तर्गत समस्त विधियोंको अतिक्रमकर विद्यमान रहता है। परन्तु ईसाई जिसे (Soul) कहते हैं, वह शुद्ध आत्मा नहीं है। वेदोंमें “आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो मन्तव्यः” आदि मन्त्रोंमें जिस आत्माका निर्देश दिया गया है, वह आत्मा नितान्त जड़वाद और मिश्र जड़वादसे भिन्न है। ईसाईयोंका Soul मिश्र जड़वादके अन्तर्गत है। मन और मनका धर्म ही उनका Soul है। किन्तु विशुद्ध आत्मा मनसे श्रेष्ठ और शुद्ध होता है।

जड़वादकी अपेक्षा ईसाईयोंका आत्मवाद भी श्रेष्ठ है।

ईसाई लोग लिंग देहको ही आत्मा समझते हैं। इस धारणाके अनुसार उन्होंने एक स्वर्ग और एक नरककी कल्पना की है और उसी विश्वासके आधारपर एक ईश्वर और एक शैतानके विश्वासको भी मानते हैं। खैर, ईसाई लोग विशुद्ध आत्मतत्त्वका ठीक ठीक अनुभव नहीं करने पर भी समस्त जड़वादियोंसे श्रेष्ठ हैं। क्योंकि जड़वादियोंके जितने भी भेद हैं उनमें किसीमें भी आत्मतत्त्वकी कोई चर्चा तक नहीं है। स्थूल और जड़ीय बन्धनोंसे मुक्तिमूलक आत्म-पथमें ईसाईयोंकी श्रद्धा देखी जाती है—यही उनके मंगलका बीजस्वरूप है। यह जड़-श्रद्धा जन्म-जन्मान्तरोंमें सत्संगरूप सुकृतिके बलसे अनन्य भक्तिमें परिणत हो जायेगी। जड़वादी अत्यन्त दुर्भागी होते हैं। मरनेके बाद वे जड़-धर्म प्राप्त करते हैं। “भूतानि

यान्ति भूतेज्या” गीताका यह वचन ही इसका प्रमाण है। “यान्ति देवता देवान्” इस वचनके अनुसार ईसाई धर्मावलम्बीगण देवताओंका स्वर्गलोक लाभ करेंगे—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। वेदार्थविद् वैष्णव लोग “यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्” इस वचनके अनुसार शुद्ध आत्म-वस्तुका याजन कर परमात्माकी सेवा प्राप्त करते हैं।

जड़वादी ही भूत-पूजक—‘भूतेज्य’ हैं एवं इनकी सभ्यता आधुनिक और आसुरिक है।

जड़वादियोंको भूतेज्या (भूतपूजक) कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने जड़वस्तुओंकी विधि और जड़शक्तिकी विवेचना कर सब प्रकारकी क्रमोत्त्रति और क्रमोत्पत्तिकी विधियोंका निर्णय किया है तथा उन्हीं विधियोंको जगत्-चक्रकी प्रधान विधियोंके रूपमें माना है। वे मरने पर आत्म-तत्त्वसे दूर रहकर जड़-अवस्था प्राप्त करते हैं अर्थात् उनकी आत्मशक्ति प्रायः विलुप्त होकर जड़मय हो जाती है। इनकी अवस्था शोचनीय होती है। वे स्वयं वज्जित होकर जगत्को ठगते हैं। इसी अपराधके कारण वे अन्तमें अधिकतर वंचित ही रहते हैं। इस तरह देखा जाता है कि आर्यपुरुषोंमें बहुतसे अधःपतित जड़भावापत्र और पाण्डित्यका मिथ्या अभिमान रखनेवाले व्यक्तियोंने समय-समयपर क्रमोत्पत्तिवादको स्वीकार किया है। यह कोई नयी बात नहीं है। पाश्चात्य देशोंमें थोड़े समयसे ही मानव-सभ्यता और बुद्धिका परिचय पाया जाता है। अतः उन देशोंमें टिण्डल, हाक्सली, डार्विन आदि व्यक्तियोंकी गिनती पण्डितोंमें की जाती है। पुरानी बातोंको नयी भाषामें रूपान्तरकर बोलनेसे पाण्डित्यका जो दावा किया जा सकता है—वे लोग वही कर सकते हैं। आजसे ५००० वर्ष पहले ही श्रीमद्भगवद्गीताका प्रादुर्भाव हुआ था। उसमें आसुरी प्रवृत्ति वर्णन करनेके प्रसंगमें “जगदाहरनीश्वर”, “अपरस्परसम्भूत” इत्यादि वचनोंके द्वारा स्वभाववाद, क्रमोत्पत्तिवादको अत्यन्त हेय माना गया है कि वे मतवाद आसुरिक प्रवृत्तिसे उत्पन्न हुए हैं।

क्रमोन्नतिवादी और क्रमोत्पत्तिवादियोंके प्रति उपदेश

इन सभी मतवादोंको परित्याग कर आत्मत्त्वमें प्रवेश करना ही प्रत्येक आत्म-साधक जीवका कर्त्तव्य है। जड़ जगत्की समस्त विचित्रताओंको स्वीकार करते हुए और उनमें सृष्टिकर्त्ताकी लीलाओंकी आलोचना करते हुए भगवत्प्रेमका अनुसन्धान करना चाहिये। क्षुद्र मतवादोंमें आबद्ध रहना किसी बुद्धिमान् मनुष्यका कर्त्तव्य नहीं है। प्रक्रियाकी खोज करने वाले शिल्पियोंके पक्षमें विज्ञान बहुत आदरणीय है। शिल्प और विज्ञान-विद्याको उन्नतकर तत्त्वविदोंकी सेवा करना

ही उनका प्रधान कर्त्तव्य होता है। आत्म-तत्त्व अत्यन्त गूढ़ विषय है। जो लोग उसके अनुशीलनमें रत रहते हैं, उन्हें साधारण शिल्प, विज्ञान आदिमें आबद्ध होनेके लिये समय नहीं होता है। इसीलिये उनके जीवन-निर्वाहके साधनोंके लिये प्रयत्न करना दूसरे सभी लोगोंका कर्त्तव्य है। हे क्रमोन्नतिवादी भाइयो! तुमलोग अपना-अपना कार्य करो। इसीसे तुम्हारा और जगत्-दोनोंका कल्याण होगा। तुमलोग अनधिकार चर्चापूर्वक आत्म-तत्त्वके दोष-गुणकी व्याख्या करनेकी चेष्टा न करो। तुमलोगोंके भले मनुष्योंकी तरह कार्य करनेसे हम तुम्हें सर्वदा आशीर्वाद करेंगे। □



मायावादकी जीवनी

—३५ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भवित्प्रज्ञान केशव गोस्वामी

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ६, पृष्ठ १३४ से आगे]

मायावादको बौद्धवादकी संज्ञा न देकर उसे छिपानेका कारण

अद्वयवाद और अद्वैतवादमें कोई विशेष भेद नहीं रहने पर भी आचार्य शङ्करने अपने मतवादका नाम बौद्धवाद नहीं रखा—यद्यपि वे भीतर-ही-भीतर इस बातको पूर्णतया जानते थे कि वे प्रकृत बौद्ध हैं। उनके आत्म-परिचय छिपानेका विशेष कारण था। वह कारण, उनके दार्शनिक विचारोंका भेद होना नहीं, भगवान्का आदेश ही उसका मूल कारण है। आचार्य शिरोमणि श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीने उनके सम्बन्धमें इस विषयपर प्रकाश डाला है—

आचार्यर् दोष नाहि ईश्वर-आज्ञा हैल।
अतएव कल्पना करि नास्तिक शास्त्र कैल॥

(श्रीचैतन्यचरितामृत)

अर्थात् आचार्य शङ्करने काल्पनिक नास्तिक

शास्त्रोंकी रचना कर उनसे मायावादका प्रचार किया है—इसमें आचार्यका तनिकभी दोष नहीं है। उन्होंने भगवान्की आज्ञासे ऐसा किया था। भगवान्की आज्ञा थी—

“माज्च गोपय यन्त स्यात् सृष्टिरेषात्तरा”

अर्थात् कल्पित शास्त्रोंकी रचना कर उनके द्वारा नास्तिक मतवादका प्रचार करो, जिससे मनुष्य हमसे (भगवान्से) विमुख होकर उत्तरोत्तर सृष्टिका विस्तार-कार्य करते रहें।

इस प्रसंगमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरजीने अपने ‘जैव-धर्म’ नामक ग्रन्थमें जो लिखा है, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

“श्रीशंकराचार्यका नाम सुनकर परमहंस बाबाजीने उन्हें दण्डवत्-प्रणाम किया। फिर बोले—महाशय, “शङ्करः शंकरः साक्षात्” इस बातको सदा स्मरण रखिएगा। शङ्करजी वैष्णवोंके

गुरु हैं। इसी कारण महाप्रभुजीने आचार्य कहकर उनका उल्लेख किया है। श्रीशङ्कराचार्य स्वयं वैष्णव थे। जिस समय वे भारतमें उदित हुए थे, उस समय उनके समान एक गुणावतारके आर्विभूत होनेकी बहुत बड़ी जरूरत थी। भारतमें वेद-शास्त्रकी आलोचना और वर्णाश्रम धर्मका क्रिया-कलाप बौद्धोंके शून्यवादके चक्करमें पड़कर शून्य-प्राय हो गए थे। शून्यवाद नितान्त निरीश्वर है। उसमें जीवात्माका तत्त्व कुछ-कुछ स्वीकृत होने पर भी वह धर्म बिलकुल ही अनित्य है। उस समय ब्राह्मण लोग प्रायः बौद्ध-धर्म ग्रहणकर वैदिक धर्मका परित्याग करते जा रहे थे। असाधारण शक्तिसम्पन्न शङ्करके अवतार श्रीशङ्कराचार्यने उदित होकर वेदोंके सम्मानकी स्थापनाकी—शून्यवादको ब्रह्मवादमें परिणत कर दिया। यह कार्य असाधारण था। भारतवर्ष इस महान् कार्यके लिये श्रीशङ्कराचार्यका सदा ऋणी रहेगा। सभी कार्योंका जगत्में दो प्रकारसे विचार होता है। कुछ कार्य तात्कालिक होते हैं और कुछ सार्वकालिक। शङ्कराचार्यका यह कार्य तात्कालिक था। उसके द्वारा अनेक सुफलोंका उदय हुआ है। शङ्कराचार्यने जो भित्ति स्थापन किया उसी भित्ति के ऊपर श्रीरामानुजाचार्य आदि आचार्योंने विशुद्ध वैष्णव-धर्मका महल खड़ा किया है। अतएव शङ्करावतार वैष्णव-धर्मके परम बन्धु और एक प्रागुदित आचार्य हैं।

—(जैव-धर्म द्वितीय अध्याय)

भगवानकी आज्ञा पालन करनेवाले आचार्यके चरण-कमलोंमें मैंनें अपराध नहीं किया है, बल्कि मैंने विद्वानोंके सामने इस बातको उपस्थित करनेकी चेष्टा की है कि आचार्य शङ्करने भगवानकी आज्ञाको पूर्णतया पालन करनेके उद्देश्यसे लुक-छिपकर शून्यवाद या बौद्धवादका ही अवलम्बन किया था।

बुद्धदेवके प्रति आचार्य शङ्करका मनोभाव कैसा था—यह उनके दक्षिणामूर्तिस्तोत्रको पढ़नेसे स्पष्ट हो जाता है। इन्होंने गुप्तरूपसे बुद्धका स्तव किया

है—

चित्रं वटतरोमूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥

उपरोक्त श्लोकसे अनुमान लगाया जा सकता है कि बुद्धदेवके प्रति उन्होंने कितनी श्रद्धा अर्पित की है। ‘चित्र’—शब्दसे अत्यन्त सम्मानसूचक मुआध्यावका बोध होता है। वट-वृक्षके नीचे गुरु-शिष्य मौन होकर बैठे हैं। शिष्य सभी-के-सभी वृद्ध हैं और गुरु युवक। गुरु मौनभावसे धर्मव्याख्या कर रहे हैं, उसीसे शिष्योंका सन्देह दूर हो रहा है।

उपरके श्लोकके पूर्ववर्ती श्लोकोंकी आलोचना करनेसे भी ऐतिहासिक सत्यरूपसे ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त दोनों श्लोक शाक्यसिंह बुद्धके सम्बन्धमें नृसिंहतापनी उपनिषद् के निम्नलिखित वचनको देखकर आचार्यने महानन्दके साथ शून्य तत्त्वको ही ब्रह्मतत्त्व स्वीकार किया है। उक्त वचन इस प्रकार है—

आनन्दधनं शून्यम्, ब्रह्मात्मप्रकाशं शून्यम्।

(नृसिंहतापनी उः ६।२, ४)

अर्थात्, शून्य ही आनन्द-स्वरूप है, शून्य ही ब्रह्म-स्वरूप है। बौद्धोंने भी उक्त मंत्रकी प्रतिध्वनि करके अर्थात् उक्त मंत्रके अनुरूप ‘मिलिन्दपञ्चवह’ ग्रन्थमें शून्यरूप निर्वाणको “एकान्त सुखम्”, “विमुक्त सुखम् पटिसम्बोदि” इत्यादि वचनों द्वारा एकान्त-सुख-स्वरूप कहा है। बौद्ध अमरसिंहने निर्वाणको निःश्रेयस अमृत कहकर वर्णन किया है—“मुक्ति कैवल्य निर्वाणं श्रेयोनिःश्रेयसामृतम्।” उसके टीकाकार कहते हैं—“निर्वातिः आत्यन्तिक-दुःखोच्छेदे भावेत्”। अतएव आनन्दधन शून्यको, आत्म-प्रकाश शून्यको, ब्रह्म-स्वरूप शून्यको बौद्ध लोग भी आत्यन्तिक दुःखोच्छेदरूप, अनन्त सुख-स्वरूप, निःश्रेयस अमृतस्वरूप और विमुक्त सुख-स्वरूप जानते हैं। अतः देखा जाता है कि बौद्धलोग जिसे शून्य कहते हैं, शङ्करने भी उसीको ब्रह्म कहा है। □ (क्रमशः)



बिनु हरि भजन न भव तरहि

—डा० सत्यपाल गोयल

युग प्रभाव कहें या पाश्चात्य संस्कृतिका अन्धानुकरण, धर्म एवं शास्त्रोंके प्रति अधिकांश भारतीयजनोंकी आस्था गिरती जा रही है। नाना पंथ या सम्प्रदाय बनाकर स्वार्थी लोगोंने भी धार्मिक मान्यताओंके प्रति जन विश्वासको गिरानेमें पूरा-पूरा सहयोग किया है।

शास्त्र या सिद्ध सन्तजनोंकी वाणियाँ स्वयं सिद्ध हैं। उनके प्रति आस्था गिरना या संशय करना आत्मघाती प्रयास है। “संशयात्मा विनश्यति” अर्थात् लोक व्यवहार हो या धार्मिक मान्यताएँ संशय संकटोंको ही जन्म देता है। आत्मा ईश्वरका अंश है, जो ईश्वरके समान ही नित्य तत्त्व है, उसके विनाशका कोई कारण नहीं है। यहाँ व्यंजना-वृत्तिसे पतन ही सार्थक अर्थ है।

यदि मुंबईसे दिल्लीकी दूरी मीलका पत्थर १२०० कि.मी. दर्शाता है, तो इसपर विश्वास करना चाहिए, क्योंकि मीलका पत्थर दूरीके माप करनेके पश्चात् ही लगाया गया है। पुनः मापने पर भी वही दूरी निकलेगी। इसी प्रकार आर्य शास्त्रों (सिद्ध-ऋषि-मुनियों द्वारा प्रणीत, स्वार्थी लोगों द्वारा लिखित नहीं) में जो लिखा है, वह अक्षरशः कूट परीक्षित है। शास्त्र हमें ईश्वरकी ओर जानेके अज्ञात मार्गका दिशा निर्देश करते हैं—एक प्रकारसे ज्ञान नेत्र हैं। उनके अभावमें या उन्हें छोड़कर ईश्वरकी ओर बढ़ना, नेत्र बन्द करके चलनेके समान है। तर्कके लिए कोई कुरार्किक अन्धोंके चलनेकी बात कह सकता है, परन्तु सिद्धान्त या नियमोंका निर्माण “बहुजन हिताय बहुजन सुखाय” होता है—किसी एक या कुछ लोगोंके लिए नहीं।

गोस्वामी तुलसीदासजीने शास्त्र सम्मत तथा कूट परीक्षित सत्यका उद्घाटन किया है यथा—
वारि मथे वरु होय घृत सिकता ते वरु तेल
बिनु हरि भजन न भव तरहिं यह सिद्धान्त अपेल॥

(रामचरित मानस)

अर्थात् जलके मन्थनसे धी पैदा हो भी जाय (जो नितान्त असम्भव है फिर भी गोस्वामीजीका कथन है कि यदि जलके मन्थनसे धी निकाला

भी जा सके) तथा सिकता (वालू) के पिटाईसे तेल भी निकल आये, परन्तु बिना भगवान्‌की आराधना किये, निरन्तर जाप किये, हरिसेवा किये इस संसाररूपी सागरसे पार होना कठिन है। संसारसे पार जानेका अर्थ है—मायाको जीतकर जन्म-मरणकी व्याधिसे मुक्त होकर भगवत्सेवामें नियुक्त होना। भगवान् श्रीकृष्णने श्रीगीताजीमें कहा है—

दैवी होषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामव वे प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

अर्थात्, इस त्रिगुणमयी मायासे पार होना कठिन है क्योंकि मेरी माया बड़ी दुरत्यया अर्थात् विकट है। जो प्राणी मेरा भजन करते हैं, वे ही मेरी कृपासे इस मायाका पार पा सकते हैं।

सभी सद्ग्रन्थोंमें इसी तथ्यको प्रकट किया गया है कि हरि भजनके बिना संसार-सागरसे पार होना कठिन है।

यद्यपि श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें भक्ति तत्त्वका विशद विवेचन उपलब्ध है, तथापि संक्षेपमें हरि भजनके लिए पाँच प्राथमिक बातें आवश्यक हैं। (१) गुरु-वैष्णव सेवा व सत्सङ्ग (२) नाम सङ्कीर्तन (३) श्रीमद्भागवत श्रवण व चिन्तन (४) मथुरा वास (५) श्रद्धापूर्वक श्रीमूर्तिका सेवन। निष्ठापूर्वक किसी एक अङ्गका पालन करनेपर श्रीगुरु-वैष्णवोंकी कृपासे पाँचों अङ्गोंका स्वतः पालन होने लगता है।

कलिकालमें नाम जपके तुल्य कोई साधन हरि भजनका नहीं है। प्रारम्भमें नामाभास होता है, क्रमशः कृष्ण नामकी कृपासे शुद्ध नामका उदय होकर कृष्ण नामका मुख्यफल श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त हो जाता है। केवल संसार सागरसे तरना ही उद्देश्य नहीं है—यह तो कृष्ण नामके रसनासे एक बार स्फुरित होने मात्रसे मिल जाता है। मुख्य फल तो कृष्ण तथा उनके प्रेम को पाना है, क्योंकि जीवका विशेष प्रयोजन कृष्णप्रेम ही है। कृष्ण नाम ही स्वयं कृष्ण हैं, यही अभिधेय (साधन) भी है तथा यही प्रयोजन (कृष्ण प्रेम) भी है। इन तीनोंको प्रथक् रूपमें नहीं देखा जा सकता है।

अब मूल विषय पर आ जाएँ। कृष्ण भजनसे

ही कृष्णको पाया जा सकता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

यं यं वापि स्मरन्थावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमवैति कौन्तेय सदा तद्वाव भावितः॥
(गीता ८/६)

अर्थात्, हे अर्जुन जो अपना शरीर छोड़नेके समय जिस भावका चिन्तन करते हुए शरीर छोड़ता है, सर्वदा उसी भावके अनुचिन्तनमें तन्मय वह उसी भाव (शरीर या योनि) को प्राप्त करता है।

कामी पुरुष यदि स्त्रीका चिन्तन करते हुए शरीर छोड़ता है, तो वह स्त्री भावको प्राप्त करेगा। किसी अन्य प्राणीका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है तो उस प्राणीके भाव (या योनि) को प्राप्त करता है। इसलिए बहुत सावधान रहनेकी आवश्यकता है। कितना सहज रास्ता भगवान्ने बना दिया है कि मृत्युके समय बस जिसे चाहते हो उसे याद कर लो, उसे ही प्राप्त कर लोगे।

इस सन्दर्भमें एक लघु कथा याद आ रही है—एक बड़े उच्च अधिकारी थे। उन्होंने एक कुत्ता पाल रखा था (अब कुत्ता पालना संस्कृतिका महत्वपूर्ण अंग बन गया है, जो लोग कुत्ता पालते हैं वे उसकी सेवा पिताकी सेवासे भी ज्यादा करते हैं तथा जंजीर पकड़कर चलते समय स्वयंको उन्नत तथा प्रगतिशील मानकर, सीना तानकर चलते हैं) उसे वे बहुत प्यार करते थे। भोजनके समय भी उसे भोजन कराकर ही स्वयं भोजन करते थे। सम्बन्धित अधिकारीने प्यारसे उसका नाम डब्बू रखा था। अपनी मृत्युसे कुछ क्षण पहले ही अधिकारीने पूछा डब्बू कहाँ है? हाय मेरा डब्बू! डब्बूको बुलाओ। नौकर डब्बूको लाया। कुत्ता अपने अगले दो पंजे उस अधिकारीके सीनेपर रखकर बैठ गया तथा एकटक अपने सेवक (अधिकारी) की ओर देखने लगा। अधिकारीने उसका मुंह चूमा तथा सिरपर हाथ फेरा एवं डब्बू डब्बू कहते हुए शरीर छोड़ दिया।

श्रीगीताजीमें भगवान् श्रीकृष्णकी वाणीके अनुसार उसे कुत्तेकी ही योनी प्राप्त होगी। उसके पश्चात् कर्मके अनुसार अन्य चौरासी लाख योनियाँका भ्रमण प्रारम्भ होगा।

मनुष्य पुनः पुनः मानव इतर योनियोंमें न भटके, इसलिए श्रीभगवान्ने श्रीगीताजीमें एक और सरल प्रावधान दिया—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्वावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(श्रीगीता ८/५)

अर्थात्, जो मनुष्य शरीर छोड़नेके समय मेरा स्मरण करता है, वह मृद्गको ही प्राप्त होता है—इसमें कोई संशय नहीं है।

कितना सहज है; सारा जीवन कहीं भी खटखट करते रहो, अन्त समयमें केवल एकबार कृष्ण नाम ले लो, बस काम बन गया, भव सागरसे तर गये, ऐसा नहीं है कि अन्तमें एक बार कृष्णनाम लेनेसे श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होगी? भगवान् तो सत्यसङ्कल्प हैं, वे जो कहते हैं, वैसा ही होता है। कृष्णनाम तो बहुत बड़ी बात है—केवल 'कृ' उच्चारण होते होते प्राण छूटने पर भी कृष्ण प्राप्तिमें संशय नहीं है क्योंकि अन्त समयका भाव ही प्रधान होता है। परन्तु गोस्वामी तुलसीदासजी क्या कहते हैं—

जन्म जन्म मुनि जतन कराहि।

अन्त राम कहि आवत नाहि॥

जिन मनुष्योंका चित्त निरन्तर भौतिक जगत्के सुखोंकी प्राप्तिमें निमग्न है, उनकी बात छोड़िए, बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अनेक जन्मों तक निरन्तर साधना करते रहते हैं, फिर भी अन्त समयमें रामका नाम नहीं ले पाते क्योंकि कप-वात और पित्तसे निर्मित इस शरीरमें कंठ-अवरोध होनसे वाणी शिथिल हो सकती है।

इसलिए परामर्श यह है कि इस देव दुर्लभ शरीरको स्वस्थ रखिए। अन्त समयमें केवल उसीका स्मरण आता है, जिसे सब समय स्मरण किया है और सबसे ज्यादा चाहा है। अतएव श्रीभगवद्गीताका कथन मानिए—

“तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर”

अर्थात् सभी कालमें, सभी मनुष्योंको केवल मेरा स्मरण करनेसे ही अन्तकालमें मेरा स्मरण होगा। अतएव मृत्युका सदैव विचारकर निष्कपट भावसे वासना रहित होकर, निरन्तर स्वांसकी गतिके साथ, निष्ठापूर्वक कृष्णनाम जपसे ही, भवसागरसे पार होनेके साथ-साथ श्रीकृष्णकी प्राप्ति सम्भव है।

□



मधु और मूर्ख मधुमक्खी

एक बोतलमें मधु भरा था। एक मधुकखीने उसे देखा और उसके आस्वादनकी इच्छा की। वह मधुमक्खी यह नहीं समझ पाई कि मधु एक काँचके आवरणके भीतर है। वह बार-बार मधुको चखनेकी चेष्टा करने लगी। अन्तमें उस बोतलके ऊपर बैठकर ही उसने सोचा कि मैंने वास्तवमें मधुका स्वाद चख लिया। वस्तुतः मधुके मिठासके आस्वादनकी बात तो दूर रहे, वह तो मधुको स्पर्श भी न कर पाई। वह तो केवल बज्जित हुई।

इस जगत्‌के प्रत्यक्षवादी^१ व्यक्ति और प्राकृत सहजियागण^२ मनमें यह सोचते हैं कि मैंने प्रेमरसका आस्वादन किया। वस्तुतः वे अप्राकृत रसका सन्धान ही नहीं पाते। आधुनिक कालमें कोई कोई श्रीकृष्णके लीला-कीर्तन, चण्डीदास, विद्यापति आदि महाजनोंके गान श्रवण-कीर्तन करनेका अभिनयकर यह मानते हैं कि मैं श्रीकृष्णके अप्राकृत प्रेमरसका आस्वादन कर पा रहा हूँ। वे वस्तुतः श्रीकृष्ण-लीला या अप्राकृत रसका गन्ध भी नहीं पाते। काला पहाड़की^३ भाँति कोई-कोई विधर्मी और अत्याचारी व्यक्ति सोच सकता है कि मैंने भगवान्‌के श्रीविग्रह और श्रीमन्दिरका विनाश (?) कर दिया अथवा

काई-कोई आध्यक्षिक^४ तथाकथित धर्मप्रचारक यह मान सकता है कि मैंने श्रीमद्भागवत, श्रीगीता आदि ग्रन्थोंमें अनेक गलत शब्द ढूँढ़ लिए। रावणने भी सीताका हरणकर भोग करनेके लिए सोचा था। वास्तविकता तो यह है कि ये लोग इन वस्तुओंको स्पर्श करनेकी बात दूर ही रहे, दर्शन भी नहीं कर सकते हैं। रावण छाया सीताका अपहरणकर मन-ही-मन लड़ू खा रहा था कि मैंने रामचन्द्रकी लक्ष्मीका हरण किया। कोई यदि इर्ष्यावश क्रोधित होकर भारतवर्षके मानचित्रको ही चीड़-फाड़कर यह सोचे कि मैं समग्र भारतवर्षका ध्वंस करनेमें समर्थ हुआ हूँ, तो यह उसकी मूर्खताके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार जो लोग प्रत्यक्ष ज्ञानके द्वारा प्रताङ्गित होकर हरि-गुरु-वैष्णवके विरुद्ध आचरण करते हैं, तो उनकी यह चेष्टा भी मूर्खताकी ही चरम सीमा है। श्रीचैतन्यदेवने कहा है—

अप्राकृत वस्तु नहे प्राकृत गोचरा

वेद-पुराणेते एड़ कहे निरन्तर॥

(चै. च. म. ९/१९५)

अर्थात्, अप्राकृत वस्तु कभी भी प्राकृत जड़ीय इन्द्रियोंके द्वारा अनुभूत नहीं हो सकती है। वेद-पुराण आदि निरन्तर यही कहते हैं। □



१. प्रत्यक्षवादी—जो यह सोचते हैं कि जागतिक वस्तुओंकी भाँति भगवान्‌को भी इन जड़ीय नेत्र, कर्ण, नाक, जिह्वा, त्वचा आदि इन्द्रियोंके द्वारा मापा जा सकता है।
२. प्राकृत सहजिया—जो यह कल्पना करते हैं कि रक्त-मांससे बने इन्द्रियोंके द्वारा ही इन्द्रियातीत श्रीभगवान्‌के नाम, रूप, गुण, लीला और उनके भक्तोंके विषयको प्रत्यक्ष किया जाता है।
३. काला पहाड़—एक यवन जिसने श्रीजगन्नाथ पुरीके श्रीमन्दिरपर आक्रमण किया था।
४. आध्यक्षिक—जो लोग इन्द्रियोंके द्वारा प्राप्त ज्ञानका अवलम्बनकर अपनेको इन्द्रियोंसे अतीत भगवान्‌को भी जान लेनेमें समर्थ मानते हैं।

प्रेम-प्रदीप

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ६, पृष्ठ १३७ से आगे]

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

पञ्चम प्रभा

नरेन बाबू और आनन्द बाबू एकत्र सोये, किन्तु विभिन्न चिन्ताओंके कारण बहुत देर तक उन्हें नींद नहीं आयी। नरेन बाबूने कहा—“आनन्द बाबू! आप कैसा अनुभव कर रहे हैं? हमलोग चिरकालसे यही जानते थे कि वैष्णव धर्म नितान्त हेय है। अनेक लम्पट लोग लम्पट-चूड़ामणि श्रीकृष्णको देवता मानते हैं। उस दिन भी रेवरेण्ड चार्ट साहबने इस विषयमें एक सुदीर्घ हृदयग्राही वक्तुता दी थी। हमलोगोंके प्रधान आचार्य महोदयने बहुत बार हमलोगोंको कृष्णके विषयमें विशेष सतर्क किया है। उन्होंने एक दिन कहा था कि वैष्णव लोग भक्ति-भक्ति तो चिल्लाते हैं, किन्तु स्त्री-पुरुषके लाम्पट्यको ही वे भक्ति कहते हैं। ‘भक्ति’ नामक जो एक विशेष वृत्ति है, उसका कुछ भी अनुसन्धान नहीं करते हैं। किन्तु, हम वैष्णवोंकी जिन भाव-भङ्गिमाओंको देख रहे हैं एवं हमने जो तत्त्वगर्भ उपदेश श्रवण किए, उनसे उनलोगोंके प्रति मेरी उतनी अश्रद्धा नहीं, इस विषयमें आप क्या कहते हैं।”

आनन्द बाबूने कहा—“न जाने किस कारणसे वैष्णवोंके प्रति मेरी विशेष श्रद्धा हुई है? पण्डित बाबाजी क्या ही पवित्र पुरुष हैं। उनको देखनेसे ईश्वर-भक्ति उदित होती है। उनके वाक्य अमृत-स्वरूप हैं। उनकी नम्रता सर्वदा अनुकरणीय है। उनके पाण्डित्यकी सीमा नहीं है। देखिए, वे योगशास्त्रमें कितने पारदर्शी और पण्डित हैं, तथापि उन्होंने पण्डित बाबाजीके निकट कितनी शिक्षाएँ ग्रहण कीं।”

नरेन बाबूने कहा—“पण्डित बाबाजीकी वक्तृतासे मैंने एक अपूर्व कथा संग्रह की है। वैष्णव लोग जो श्रीविग्रहकी पूजा करते हैं, वह

ईश्वरसे भिन्न कोई पुत्तलिका (बुत) नहीं है, बल्कि ईश्वर-भक्तिके उद्दीपकका उदाहरण-मात्र है। किन्तु, मेरा संशय यह है कि ईश्वर-भावको उस प्रकार निर्दर्शन द्वारा लक्ष्य करना उचित है या नहीं? ईश्वर सर्वव्यापी भूमा पुरुष हैं। उन्हें देश-कालके भावमें वशीभूतकर उनका आकार स्थापित करनेसे उनका गौरव तुच्छ होता है या नहीं? और भी, ‘एक’-वस्तुमें ‘अन्य’—वस्तुकी कल्पना करना क्या बुद्धिमानोंका कार्य है?”

आनन्द बाबूने इस विषयमें थोड़ा अधिक समझा था। वे बोले—“नरेन बाबू! मैं और इस प्रकारका सन्देह नहीं करना चाहता हूँ। परमेश्वर अद्वितीय पुरुष हैं, उनके समान या उनसे बढ़कर कोई नहीं है। सभी उनके अधीन हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो उनकी क्षति उत्पन्न कर सके। उनके प्रति भक्ति अर्जन करनेमें जो कुछ कार्य किया जाय, वे हृदय-निष्ठा लक्ष्यकर उसका फल दान करते हैं। विशेषतः समस्त निराकार तत्त्वोंका ही निर्दर्शन लक्षित वस्तुसे भिन्न होता है, तथापि इसके द्वारा उस वस्तुका भाव उपस्थित होता है। जब घड़ीके द्वारा निराकार काल, प्रबन्ध द्वारा अतिसूक्ष्म ज्ञान एवं प्रकृति द्वारा दया, धर्म आदि निराकार विषय परिज्ञात होते हैं, तब भक्ति-साधनमें आलोच्यगत लिङ्गरूप श्रीविग्रह द्वारा भी उपकार होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीमूर्तिको पौत्रिक व्यवस्था कहकर धृणा करना उचित बोध नहीं होता। बल्कि, विषय-विवेचनाके लिए निर्दर्शनका विशेष आदर किया जा सकता है। यदि घड़ी और पुस्तकको यत्नपूर्वक रखा जाय, तो ईश्वर भावोदीपक श्रीविग्रहकी पूजा करनेमें क्या दोष हैं? ईश्वर जानते हैं कि तुम उन्हें ही उद्देश्य कर रहे हो। इससे वे अवश्य ही तुष्ट होंगे।”

नरेन बाबू और आनन्द बाबूने यह विवेचना की थी कि बाबाजी एवं मल्लिक महाशय सो रहे हैं। इसलिए वे लोग स्पष्टरूपमें इन विषयोंकी आलोचना कर रहे थे। योगी-बाबाजी सर्वदा निद्राहीन हैं, अतएव इन समस्त कथाओंको सुनकर भङ्गी करते हुए बोले—“रात अधिक हो गई है, अब सो जाएँ। कल इन विषयोंकी आलोचना होगी।”

नरेन बाबू और आनन्द बाबू अब बहुत श्रद्धालु हो गए हैं। बाबाजीका अनुग्रह देखकर सम्भ्रमसहित बोले—“बाबाजी! श्रीयुत मल्लिक महाशयकी भाँति हमलोगोंने भी आपके श्रीचरणोंका आश्रय किया। हमलोग आपकी कृपाकी प्रार्थना करते हैं।”

बाबाजी बोले—“कल यथासाध्य यत्न करूँगा।” कुछ ही देरमें सभी सो गए। उनलोगोंको निदित देखकर बाबाजीने किन-किन योगाङ्गोंका साधन किया, यह वे लोग नहीं देख पाये।

प्रातःकाल उठकर सभी लोग प्रातःक्रियासे निवृत्त होकर पञ्चवटीके नीचे बैठे।

मल्लिक महाशयके द्वारा राजयोगके विषयमें जिज्ञासा करनेपर बाबाजी कहने लगे—

समाधि ही राजयोगका मूल अङ्ग है। समाधि प्राप्त होनेके लिए पहले यम बादमें नियम उसके बाद आसन तत्पश्चात् प्राणायाम और प्रत्याहार, फिर ध्यान और धारणा—इन अङ्गोंकी साधना करनी पड़ती है। यदि साधक सच्चरित्र, धार्मिक और शुचिमान् हो, तो प्रारम्भमें ही आसनका अभ्यास करेंगे। यदि उनके चरित्रमें दोष रहे अथवा म्लेच्छ आदिके अपवित्र व्यवहारोंको उनमें देखा जाय, तो यम और नियमका नितान्त प्रयोजन हो जाता है। पातञ्जल दर्शन ही योग-शास्त्र है। मैं पतञ्जलिका अवलम्बनकर राजयोगकी व्याख्या करूँगा। पतञ्जलिने कहा है—

यम-नियमासन-प्राणायाम-प्रत्याहार-
धारणा-ध्यान-समाधयोऽष्टावङ्गानि॥

(पा. द. २/२९)

(१) यम, (२) नियम, (३) आसन, (४)

प्राणायाम, (५) प्रत्याहार, (६) धारणा, (७) ध्यान और (८) समाधि—ये आठ राजयोगके अङ्ग हैं।

(१) यम—

अहिंसा-सत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रह यमाः॥

(पा. द. २/३०)

(क) अहिंसा, (ख) सत्य, (ग) अस्तेय (घ) ब्रह्मचर्य, (ङ) अपरिग्रह—ये पाँच यम हैं। जो हिंसा-वश है, वे हिंसा परित्याग करनेका यत्न करेंगे।

(क) अन्य जीवोंकी हत्या करनेकी इच्छाको हिंसा कहते हैं। यवन लोग तथा तामसिक और राजसिक आर्य लोग भी सर्वप्रथम अहिंसाका अभ्यास करेंगे।

(ख) जो मिथ्यावादी हैं, वे सत्य बोलनेका अभ्यास करेंगे।

(ग) जो दूसरेका धन हरण करते हैं, वे अस्तेयका अभ्यास करेंगे।

(घ) जो मैथुन-प्रिय हैं, वे इससे निरस्त होनेका प्रयास करेंगे।

(ङ) जो दूसरेकी धनकी आशा करते हैं, वे उस आशाका दमन करेंगे।

(२) नियम—

शौच-सन्तोष-तपः स्वाध्यायेश्वर-प्रणिधानानि नियमाः॥

(पा. द. २/३२)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरमें मनोनिवेश—ये पाँच नियम हैं। शरीरको साफ-सुथरा रखेंगे। सन्तुष्ट रहनेका अभ्यास करेंगे। सभी प्रकारके कष्टोंको सहनेका अभ्यास करेंगे। यदि बहुत पाप किए हों, तो उसके लिए अनुतापकी शिक्षा करेंगे। वेद आदि शास्त्रोंका अध्ययनकर ज्ञान-अर्जन करेंगे। ईश्वरमें मनोनिवेश करनेकी शिक्षा करेंगे।

(३) आसन—

(तत्र) स्थिर-सुखमासनम् (पा. द. २/४६)

जिन आसनोंके नाम मैंने हठयोगके विवरणमें बताए हैं, वे सभी आसन राजयोगमें भी ग्रहण करने योग्य हैं। पद्मासन या स्वस्तिकासन राजयोगमें

(शेष भाग पृष्ठ २०० पर)

क्या श्रीतुलसीदास गोस्वामी मायावादी सन्त थे?

[परिव्राजकाचार्य श्रीश्रीमद्भक्तिकुमुद सन्त महाराज, जगद्गुरु नित्यलीला-प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' के शिष्य हैं। ये वर्तमान समयमें सारस्वत गौड़ीय वैष्णवोंमें सिद्धान्त निपुण एवं शुद्ध भक्ति तत्त्वके निर्भीक, कुशल वक्ताओंमें से अन्यतम हैं। वे सूक्ष्म विचारोंके द्वारा इस्कॉन संस्थाके परिचालक सदस्योंके कतिपय भक्तिप्रतिकूल विचारोंका प्रतिवाद कर रहे हैं। अभी कुछ दिन पूर्व ही भागवत पत्रिकाके सम्पादक त्रिदण्ड स्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज पाश्चात्य देशोंमें शुद्ध भक्तिका प्रचार कर रहे थे, उस समय इस्कॉन संस्थाके ऊपरवाले सदस्योंने श्रीतुलसीदास गोस्वामीको तथा उनके द्वारा रचित रामचरितमानसको मायावादी बतलाकर उनका बहिष्कार करनेकी घोषणा की थी। श्रीश्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने उनके विचारोंका खण्डनकर श्रीतुलसीदास गोस्वामीको परम भक्त एवं श्रीरामचरित मानसको प्रामाणिक भक्तिशास्त्र प्रतिपादन किया। उसीके विषयमें उक्त परम पूजनीय महाराजजीने अपने विचारोंको व्यक्त किया है।]

सुधीवृन्द! अभी कुछ दिन पहले कुछ बातें मेरे कानोंमें आईं। आपलोगोंको ज्ञात करानेके लिये कुछ लिखनेके लिए बाध्य हो रहा हूँ। मेरा यह वक्तव्य कि इस्कॉन संस्थाके सदस्य श्रीमान् माधव महाराजने पाश्चात्य देशोंमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके आचरित और प्रचारित शुद्ध भक्तिके प्रचारमें स्नेहभाजन श्रीभक्तिवेदान्त नारायण महाराजको जो पत्र दिया था, उसमें उन्होंने कुछ युक्तियोंके सहारे परमभक्त श्रीतुलसीदासजीको मायावादी व्यक्ति बतलाया है। इसका उत्तर नारायण महाराजजीने उपयुक्त शास्त्रीय प्रमाणों एवं युक्तियोंके साथ प्रदान किया है। कह नहीं सकता वह प्रत्युत्तर इस्कॉनके परिचालक सदस्योंको गोचरीभूत हुआ है या नहीं, किन्तु आज मैंने एक विश्वस्त व्यक्तिके माध्यमसे यह श्रवण किया।

मैंने नारायण महाराज द्वारा लिखित वक्तव्य पढ़ा और उससे सन्तुष्ट हुआ। पूज्यपाद स्वामी महाराज मेरे गुरुभ्राता हैं। जब वे लन्दन आदिसे

लौटकर आये थे तो मैं उनके कलकत्ता स्थित मठमें उनसे मिलने गया था। उस समय मैंने उनसे अपने नामके साथ 'प्रभुपाद' शब्दका प्रयोग करनेके लिए प्रतिवाद किया था। उन्होंने उसको हल्के ढंगसे ग्रहण कर यह उत्तर दिया था:- "मेरे शिष्य लोग ऐसा कहते हैं, मैं इसके लिए क्या कर सकता हूँ?" आज मैं कतिपय बातें कहनेके लिए बाध्य हो रहा हूँ। आप सुधी पाठकगण इसे पढ़कर गम्भीरतासे विचार करेंगे। स्नेहास्पद जयपताका महाराज भक्तिचारु महाराज आदि सभी मेरे प्रति श्रद्धा रखते हैं। मैंने श्रीधाम मायापुर, ढाका, चटकग्राम आदि इस्कॉनके प्रचार केन्द्रोंमें भाषण दिया है। आज इस्कॉनके आडंबरपूर्ण बाह्यप्रभाव और चाकचिक्यके द्वारा श्रीमन्महाप्रभुका जन्मस्थान लुप्त होने जा रहा है। साधारण जनसमाज श्रीमायापुर कहनेसे इस्कॉनको ही समझते हैं। इस्कॉन मंदिरके बाह्य चाकचिक्यको देखकर लौट आते हैं, महाप्रभुका जन्मस्थान नहीं देख पाते।

क्या यही जनकल्प्याण है? क्या यही महाप्रभुके जन्मस्थानकी सेवा है? पुज्यपाद स्वामी महाराजके गुरुदेव नित्यलीला प्रविष्ट ३० विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' एवं स्वामी महाराजके सन्यास गुरु श्रीपाद श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजको क्या वे लोग यथायोग्य सम्मान करते हैं? क्या वे गौड़ीय गुरु परम्पराके आचार्योंका तनिक भी सम्मान करते हैं? गौड़ीय जगत्के प्राणस्वरूप, शुद्ध भक्तिमंदाकिनी धाराके भगीरथस्वरूप, सर्वोपरि श्रीगौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरकी महिमा एवं उपदेशोंका जन-समाजमें प्रचार प्रसार करते हैं? उनके परम पवित्र आदर्श और उनकी शिक्षाओंका पादानुसरण करते हैं? आज लोग पूछते हैं कि श्रीपाद स्वामी महाराजजीके शिष्योंका सन्यास ग्रहण, उनका सन्यास नाम शास्त्र सम्मत है अथवा नहीं? क्योंकि इस्कॉनके सन्यासी शास्रोक्त १०८ सन्यासी नामोंको ग्रहण नहीं करते। क्या स्वामी महाराजजीने उन्हें सन्यासके उपयुक्त न समझकर यथार्थ रूपमें सन्यास ही नहीं दिया? क्या इस्कॉनके मंदिरोंमें श्रीराधाकृष्णके साथ श्रीमच्चैतन्यमहाप्रभुकी मूर्तिका उचितरूपमें अर्चण पूजन होता है? कहीं-कहीं श्रीमन्महाप्रभुकी छोटीसी मूर्ति रख दी जाती है। इस्कॉनके सम्बन्धमें जनसाधारणकी धारणा जो मुझे बतलाई गयी है, वह यह है कि आज कल इस्कॉनके भक्तोंका मूल लक्ष्य केवल ००००००, ०० ०००० ०००००० ०००० ०००००० में एवं अर्थोपार्जन हेतु अनेक प्रकारके बिजनस ही हैं। क्या यही पारमार्थिक चिन्ता स्रोतका लक्षण है? आज जिस बातको लेकर स्नेहास्पद नारायण महाराजके साथ वे लोग पत्रके माध्यमसे वाद-विवाद उपस्थित कर रहे हैं, उनके उक्त विचारोंका मेरे द्वारा लिखित विषय वस्तुके सहित क्या समानता है?

मायावाद किसे कहते हैं? गम्भीर रूपसे विचार

कर इस विषयको देखना होगा

श्लोकाद्वेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः॥

अर्थात् करोड़ों ग्रन्थोंमें जो बात की गयी है उसे आधे श्लोकमें बतला रहा हूँ—“ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है तथा जीव ब्रह्म ही है, दूसरे कुछ नहीं”

स्वयं भगवान् परम वैष्णव शिवको निर्देश दिया था। उन्होंने महादेव शिवको यह कहा था—

स्वागमेः कल्पितस्त्वञ्च जनान् मद्विमुखान् कुरु।

माज्च गोपय येन स्यात् सृष्टिरेपोत्तरोत्तरं॥

वेदको काल्पनिक बतलाकर जीवोंको मुझसे विमुख करो। भगवान् नहीं है ऐसा बतलाकर मुझे ढकनेकी चेष्टा करो, जिससे इस लौकिक जगत्की सृष्टि में उत्तरोत्तर वृद्धि हो। भगवान्के इस निर्देशके अनुसार शंकराचार्यजीने बाह्यतः नास्तिक्य मतका प्रचार किया, किन्तु आंतरिक रूपसे ऐसा नहीं कर सके। मोहमुदगर और मोहकुठार नामक अपने पद रखनामें उनकी लेखनीसे उनके अंदरका भाव स्वतः प्रकाशित हो ही गया—

कास्तव कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।

कस्य त्वं वा कुत आयतस्तत्वं चिन्तय तदिदं भ्रातः॥

और भी—

ज्ञेयं गीतानामः सहस्रम् ध्येयं श्रीपतिस्त्रूपमजस्म्।

नवेयं सज्जनसंगे चित्तं देय दीनजनापय वित्तम्॥

भज गाविन्दं भज गाविन्दं

भज गाविन्दं मूढमते॥”

अरे मूढमते! अरे मूर्ख तुम श्रीगोविन्दजीका भजन करो, उन्होंने ऐसा उपदेश क्यों किया? अपने ही घरमें श्रीकृष्णकी मूर्ति स्थापना कर उनकी पूजा क्यों करते थे? इसलिये कि उस समय अद्वैतवाद प्रचारकी आवश्यकता थी। क्योंकि श्रीबुद्धाचार्य उस समय शून्यवादका प्रचार कर रहे थे, साथ ही अहिंसा धर्मका भी प्रचार कर रहे थे। वेद और ईश्वर दोनोंको ही नकार रहे थे। श्रील

शंकराचार्यजीने उनके नास्तिक्य मतका खण्डन कर दिया, किन्तु काल्पनिक रूपमें किया। इसलिए चैतन्य चरितामृतमें बौद्धोंको वेद अस्वीकार करनेके कारण नास्तिक बतलाया गया है तथा वेदकी प्रतिष्ठा करनेपर भी कुछ काल्पनिक सिद्धान्तोंका प्रचार करनेके कारण श्रीशंकर मतको भी बौद्धोंसे भी अधिक नास्तिक बतलाया—

**वेद ना मानिया बौद्ध हयत नास्तिक।
वेदाश्रय नास्तिक्यवाद बौद्धक अधिक॥**

(चै. चरितामृत-म. ६/१६८)

शंकरका केवलाद्वैतवाद शास्त्र सम्मत नहीं है, काशीमें शिव एवं दुर्गाजीने इसका खण्डन किया था। संन्यास ग्रहणके पश्चात् शंकराचार्य अपने शिष्योंके साथ श्रीकाशी धाममें पहुँचे। वे वहाँ मणिकर्णिकाके घाटपर भगवती गंगामें स्नान करने जा रहे थे। हठात् उन्होंने देखा, घाटको जानेवाले रास्तेपर एक नारी एक मरे हुए पुरुषको अपने गोदमें लेकर बैठी हुई है। वह इस प्रकारसे बैठी हुई थी कि वहाँ निकला नहीं जा सकता था। शंकराचार्यने कहा—तुमने रास्तेको क्यों रोक रखा है? मृतकको यहाँसे हटाओ, ऐसा नहीं करनेसे हम गंगा स्नानको कैसे जा सकते हैं? नारीने स्वाभाविक भावसे उत्तर दिया—यहाँ मृतक कहाँ है? आपके मतानुसार सभी कुछ ब्रह्म है—“सर्व खल्विदं ब्रह्म” एवं “सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्” फिर आपने मृतक कहाँ देखा?

ये नर और नारी कोई दूसरे व्यक्ति नहीं स्वयं शिव तथा दुर्गा देवी थे। पुनः एक दिन शिव चाण्डालके भेषमें कुछ कुत्तोंको साथ लेकर मणिकर्णिका घाटपर उपस्थित हुए। श्रीशंकराचार्य वहाँ स्नान करनेके लिए प्रस्तुत हो रहे थे। उन्होंने चाण्डालसे कहा—तुम क्या कर रहे हो? इस पवित्र घाटपर इन कुत्तोंको साथ लाकर अपवित्र क्यों कर रहे हो? हमलोग यहाँ स्नान करेंगे। चाण्डाल रूपधारीने कहा आप अपवित्र कुत्ते एवं चाण्डाल

कहाँ देख रहे हैं? आपके सिद्धान्तसे—“सर्वं ब्रह्ममिदं जगत्” सबकुछ ब्रह्म है। आपमें यह द्वैत दर्शन कहाँसे आया? ऐसा कहकर चाण्डाल भेषधारीने श्रीशिवके रूपमें अपना दर्शन दिया। शंकराचार्य उनके चरणोंमें गिर पड़े। इसलिए शंकराचार्य द्वारा प्रचारित विचारधारा नास्तिक मायावाद होनेपर भी उन्होंने स्वरचित मोहमुदगरमें श्रीगोविन्द भजनकी जो निगूँढ़ शिक्षा दी है, इसके परिपेक्षमें क्या उन्हें मायावादी आचार्य मानना होगा? गीतामें भी ऐसा देखा जाता है स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

**यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्म फलप्रदाम्।
क्रिया विशेषबहुलां भोगैश्वर्यर्गतिं प्रति॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तथापहतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥**

(गीता २/४२-४४)

अज्ञानी लोग वेदोंके अर्थवादमें अर्थात् बाह्य मधुपुष्पित वचनोंके प्रति आकृष्ट होकर स्वर्गकी प्राप्ति, अच्छे कुलमें जन्म एवं लौकिक भोगोंकी प्राप्तिके लिए विविध प्रकारके सकाम कर्मोंमें तत्पर रहतें हैं। इन्द्रिय-तृप्ति एवं भोगविलासमय जीवनकी अभिलाषाके कारण वे इससे बढ़कर और कुछ नहीं मानते हैं। यहाँ तक वे भगवत्तत्त्व, भक्तितत्त्व, भगवद्वाम आदि कुछ नहीं मानते हैं। वे लोग भोग-ऐश्वर्यके प्रति अत्यधिक आसक्त होनेके कारण इतने मोहग्रस्त हो जाते हैं कि भगवान्‌के प्रति उनके हृदयमें निश्चयात्मिका-बुद्धि-भक्तिका भाव उदित नहीं हो पाता है। तत्पश्चात् भगवान्‌ने और भी कहा है—

**त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निद्र्वन्दो नित्यसत्त्वस्थो निर्यागक्षेम आत्मवान्॥**

अर्थात् हे अर्जुन! तुम वेदोंमें वर्णित तीन गुणोंके विषयोंको परित्यागकर निर्गुण तत्त्वमें

प्रतिष्ठित होकर, गुणमय मान-अपमान आदिसे रहित होकर, नित्य-सत्त्व स्वरूप होकर, मेरे भक्तोंका संग करो। मेरे द्वारा प्रदत्त बुद्धियोगको प्राप्तकर योग और क्षेमके अनुसन्धानसे रहित हो जाओ। इसलिए वेदोंके सम्पूर्ण अंग ग्रहणीय नहीं हैं। तो क्या इसलिए वेदोंका परित्याग कर देना चाहिए? वेदोंके दो भाग हैं—एक भोगसाधक अंश, द्वितीय परमार्थ साधक अंश। जो व्यक्ति परमार्थ मार्गमें प्रवेश करनेकी इच्छा करते हैं, उन्हें त्रिगुणमय वेदार्थवादमें निरत न रहकर, प्रतिपाद्य पारमार्थिक विषयके प्रति तत्पर रहना चाहिए। इसलिए श्रीयुधिष्ठिर महाराज ने कहा है—

वेदा विभिन्नाः सृतयो विभिन्नः

नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्।

धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां

महाजनां येन गतः स पन्था॥

वेदोंमें विभिन्न प्रकारकी बातें की गई हैं, समृतियोंमें भी अनेक तरहकी कथाएँ वर्णित हैं, एवं भिन्न-भिन्न मुनियोंके भिन्न-भिन्न मत हैं अर्थात् वह मुनि ही नहीं है, जिसका अपना एक भिन्न मत नहीं हो। अतएव धर्मके निगूढ़ तत्त्वका निरूपण करना बहुत कठिन है, इसलिए महाजनोंने जिस मतका अनुसरण किया है, वही पथ हमें अनुसरण करना होगा। यहाँ ‘पन्था’ शब्द एकवचन है अर्थात् ‘पथ’ एक ही है। हमलोग यदि ‘बाइबिल’ पढ़ें तो उसमें हम देखेंगे कि यीशुमसीहने भगवान्को परमपिता परमेश्वरके रूपमें निर्देश किया है। उन्होंने अपनेको भगवान् नहीं माना है, वे कहते हैं—“ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ ॐ” फिर कुरान शरीफमें कहा गया है—‘जिल्लाल्लह खिल्लाह मिन् सुराति’ अर्थात् खुदाने अपने रूपके समान मनुष्योंकी सृष्टि की। ये समस्त विचार क्या हमारे लिए ग्रहणीय नहीं हैं? हम अपनी बातोंकी परिपुष्टिके लिए क्या इन उदाहरणोंको ग्रहण नहीं करते हैं? इसलिए विभिन्न शास्त्र विभिन्न बातोंकी

पुष्टि करनेपर भी हमलोगोंको इन समस्त सिद्धान्त-सम्बन्धी तथ्योंको अवश्य ग्रहण करना चाहिए।

श्रीरामायणकी रचना श्रीवाल्मीकिने की है, इसमें कोई संदेह नहीं है। किन्तु अन्य अनेक व्यक्तियोंने श्रीरामचन्द्रके प्रति भक्तिभावसे युक्त होकर जो उनकी समस्त लीला-कथाओंका वर्णन किया है, उनकों भी अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। क्योंकि आज मनुष्योंके समाजमें वाल्मीकि रामायणकी पुष्टि करनेके लिए अन्यान्य रामभक्तोंने जो समस्त विचार प्रदर्शित किये हैं, उनको भी उद्धृत करना होगा, उन वाक्योंको उद्धृत करनेसे मायावादी हो जायेंगे यह विचार युक्तिसम्मत नहीं है। जैसा कि श्रीनारायण महाराजने लिखा है—

ऋग् यजुः सामथर्वाज्ञ्य भारतं पञ्चरात्रकम्।

मूलरामायणञ्चैव शास्त्रमित्यभिधीयते॥

यच्चानुकूलमेतत्स्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्तितम्।

यच्चानुकूलमेतत्स्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्तितम्।

अतोऽन्यग्रन्थविस्तारो नैव शास्त्रं कुवर्त्म तत्॥

ऋग्, यजुः, साम्, अथर्व—ये चारों वेद एवं महाभारत, मूलरामायण और पञ्चरात्र—इन सभीको शास्त्र कहा गया है। इनके अनुकूल जो समस्त ग्रन्थ हैं, उनकी भी शास्त्रोंके मध्य गणना की गयी है। इसके अतिरिक्त इनके विपरीत ग्रन्थोंको शास्त्र नहीं, अपितु उनको शास्त्र बर्हिभूत ग्रन्थ कहा गया है। अनेक व्यक्तियोंने बहुत प्रकारके ग्रन्थोंकी रचना की है या लिखे हैं। उनकी आलोचना करनेसे देखा जाता है कि अधिकांश ग्रन्थोंमें तत्त्वविद् गुरुवर्गोंके सिद्धान्तसे उनका कोई मेल नहीं है। क्या इस प्रकारकी असिद्धान्तपूर्ण रचनाओंको सत्शास्त्रके रूपमें ग्रहण किया जा सकता है? किन्तु यदि दोनोंके विचारमें मेल हो, तो उनको ग्रहण करना चाहिए। जैसे—‘प्रभुपाद’ कहनेसे हमलोग अपने श्रीगुरुदेव श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुरको समझते हैं। श्रीपाद स्वामी महाराजके अतिरिक्त श्रील प्रभुपादके किसी अन्य अनुगतजनने ‘प्रभुपाद’ उपाधि नहीं ग्रहण की।

स्वामी महाराजके विवाहित जीवनके समय मैंने मुम्बई गौड़ीय मठमें रहता था। उस समय वे भी मुम्बई मठमें रहकर निजी रूपसे औषधियोंका व्यवसाय करते थे। मठमें जो प्रसाद सेवा करते थे, उसके लिए अर्थानुकूल्य प्रदान करते थे। उन्होंने संन्यास ग्रहणकर महाप्रभुकी वाणीका पाश्चात्य देशोंमें प्रचार किया है—यह बड़ा ही आनन्दका विषय है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे या उनके अनुगतजन 'प्रभुपाद' अर्थात् 'श्रीश्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती' की अवज्ञा करेंगे—यह सिद्धान्त शास्त्र सम्मत नहीं है।

मैं ग्यारह वर्षकी अवस्थामें मठमें आया था। अभी मेरी उम्र तिरासी वर्ष है। बहुत कुछ मैंने अपने जीवनमें देखा है और बहुत कुछ सुना है। अब मैं आज पहली बार सुन रहा हूँ कि श्रीतुलसीदास गोस्वामी मायावादी हैं। तुलसीदासकी कथा लिखने पर बहुत कुछ लिखना पड़ता, किन्तु मैं संक्षेपमें लिख रहा हूँ—

उनका भी विवाहित जीवन था। वे अपनी स्त्रीके प्रति बड़े ही आसक्त थे। एक दिन किसी कार्यवश वे कहीं गए हुए थे। अवसर देखकर तुलसीदासकी पत्नी अपने पिताजीके घर चली गई थी। लौटकर पत्नीको घरमें नहीं देखकर वे कातर होकर अपने शवसुके घर पहुँचे। उस समय उनकी पत्नीने उनको देखकर बड़े खेदसे कहा—

धिक्-धिक् ऐसे प्रेमको कहाँ कहूँ मरी नाथ।

होती ऐसी प्रीति राममें हो जाता बेड़ा पार॥

मेरे इस अस्थिर्चर्ममय घृणित शरीरमें तुम्हारी जैसी प्रीति है वैसी प्रीति यदि श्रीरामचन्द्रके चरणोंमें होती, तब तुम्हें संसार संसृतिका तनिक भी भय नहीं होता। उनकी पत्नीके इन शब्दोंने उन्हें संसारसे मुक्त कर दिया। वे श्रीकाशी धाममें चले आए और वहाँ उन्होंने अनन्यचित्तसे श्रीरामचन्द्रका भजन करके संसारसे सदाके लिये मुक्त होकर अपने प्रभुके धाममें प्रेमसेवाको प्राप्त किया। यदि कोई

उनके द्वारा रचित 'श्रीरामचरितमानस', 'दोहावली' और दूसरे-दूसरे ग्रन्थोंको सावधानीसे पढ़े, तो उन्हें कदापि अद्वैतवादी या मायावादी नहीं कह सकते। नीचे मैं श्रीरामचरितमानस एवं दोहावलीकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर रहा हूँ।

**ज्ञान अखण्ड एक सीतावर।
मायावस्य जीव सचराचर॥
देह धरे का यह फल भाइ॥
भजिय राम सब काज बिहाइ॥
श्रुति सिद्धान्त यहै उरगारि॥
भजिय राम सब काज विसारी॥
श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाइ॥
स्थुपति भगति बिना सुख नाहि॥
वारि मथे वरु होय वृत्त सिकता ते वरु तेल।
बिनु हरि भजन न भव तरहिं यह सिद्धान्त अपेल॥
सेवक सेव्य भाव विनु, भवन तरिअ उरगारि।
भजहुं रामपद पंकज औस सिद्धान्त विचारि॥**

(श्रीरामचरितमानस)

| | | | |
|-----------|---------------|------------------|---------------------------------|
| भ्राय | कुभाव | अनख | अलस हूँ। |
| नाम | जपत | मंगल | दिसि दसहु॥ |
| बारेक | रामकहत | जग | जेऊ। |
| होत | तरन | तारन | नर तेऊ॥ |
| जन्म-जन्म | मुनि | जतन | कराहि। |
| अंत | राम | कहि | आवत नाहि॥ |
| सब | तीर्थी | सुतीर्थी | है, सब वार सुवार। |
| उसका | लागे | भादरा, | जो विदुडे नन्दकुमार॥ |
| तुलसी | ये संसार में, | पाँच रतन हैं | सारा |
| | | | साधुसंग, |
| | | | हरिकथा, |
| | | | दया-दीन उपकार॥ |
| राम-राम | सब कोई | कहे कि ठग-ठाकुर | और चोर। |
| | | गीजात् नहि, | तुलसी नटवर नन्दकिशोर॥ |
| हरिके | हरिजन | बहुत हैं, | हरिजनके हरि एक। |
| | | कुमदन् | कुमदनको शशि एक॥ |
| विनु | सत्संग | हरिकथा, | तेहि विनु मोहन भाग। |
| | | तेहि विनु रामपद, | मोह गये विनु होई न दृढ़ अनुराग॥ |

(दोहावली)

मैं किसीके प्रति हिंसा-द्वेषसे नहीं लिख रहा हूँ। ये तत्त्व कथा है। यदि ये तत्त्व किसी व्यक्तिको ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो इसको समझनेकी चेष्टा करें। शुद्ध भक्तिभावको अनुभव करनेवाले, समस्त शास्त्रोंका सार समझनेवाले तत्त्वविद् गुरुवैष्णवोंके आनुगत्यमें भगवद्भजन करनेवाले, संसारसे आसक्तिरहित व्यक्ति ही यथार्थ साधु हैं। ऐसे वैष्णव संतोके संग और हरिकथासे हृदय निर्मल होता है तथा हृदयमें तत्त्व ज्ञानकी स्फूर्ति होती है। तत्त्व तीन हैं—भगवत्तत्त्व, जीवत्तत्व और मायातत्त्व। इनमें भगवत्तत्त्व ही परम अदृश्य-ज्ञान परतत्त्व है। उसीके अधीन जीव और माया तत्त्व हैं। 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयं—इस विचारमें हम लोग श्रीगौरसुन्दरके आचरित-प्रचारित भक्तिभावसे श्रीकृष्णकी आराधना करते हैं। यह गौड़ीय वैष्णवोंकी धारा है। तथापि किसी भी अवतारोंकी अवज्ञा नहीं करते हैं, उनको हम यथायोग्य सम्मान प्रदान करते हैं। इसके साथ-साथ उनके भक्तोंकी मर्यादा उल्लंघन करना भी कोई भक्तिका अंग नहीं है। श्रीचैतन्यचरितामृतकी आलोचना करनेसे देखते हैं कि श्रीलरूप-सनातन एवं अनुपम तीनों भाई थे। श्रीलरूप-सनातन श्रीकृष्णके परम भक्त थे, किन्तु अनुपम बाल्यकालसे श्रीरघुनाथजीकी उपासना करते थे। एकदिन उनकी परीक्षाके उद्देश्यसे श्रीलरूप-सनातनने कहा—भैया वल्लभ! श्रीकृष्णका रूप परम मधुर है। उनका सौन्दर्य, माधुर्य, प्रेम विलास अन्य-अन्य अवतारोंकी अपेक्षा अधिक है, इसलिए वे स्वयं भगवान् हैं। इसलिए तुम हम दोनोंके साथ श्रीकृष्णका भजन करो। हम तीनों भाई एकत्र रहकर कृष्ण कथारसका परस्पर रसास्वादन करेंगे। श्रीवल्लभने दोनोंकी बात सुनकर बड़ी नम्रतासे कहा कि आप लोग मुझे श्रीकृष्णकी आराधना करनेके लिए दीक्षा मन्त्र प्रदान करें। मैं अवश्य ही कृष्णका भजन करूँगा। यह कहकर रात्रिकालमें शयनके लिये चले गए। सम्पूर्ण रात्रि

उन्हें नींद नहीं आई। वे रात भर सोचते रहे कि मैंने जीवनभर श्रीरघुनाथजीका भजन किया। अब मैं कैसे इनका परित्याग कर सकूँगा? ऐसा सोचकर रातभर रोते रहे। दूसरे दिन सबरे अपने बड़े भाईयोंके पास पहुँच कर रोते-रोते बोले आप लोग मुझे पर कृपा करें कि मैं जन्म-जन्मान्तरोंमें श्रीरघुनाथजीका भजन कर सकूँ। श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको छोड़नेकी कल्पनासे ही मेरे प्राण निकलनेके लिए छटपट करने लगे। श्रीरूप-सनातनजी उनकी आन्तरिक निष्ठाको लक्ष्यकर बड़े प्रसन्न हुए और ऐसा ही करनेकी आज्ञा दी। इसी प्रकार भक्त हनुमानजीकी यह युक्ति प्रसिद्ध है—

**श्रीनाथे जानकीनाथे च अभेद परमात्मनी।
तथापि मम सर्वस्य राम कमललोचन॥**

उसी प्रकार हमारी श्रीकृष्ण भक्तिके प्रति दृढ़ निष्ठा होनी चाहिए। किन्तु इसके साथ-ही-साथ बंगाल आदिमें प्रचलित कृतिवासी रामायण आदिको स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनमें भक्तिविरुद्ध कुसिद्धान्तोंका समावेश किया गया है। उसके लेखक घोर भक्ति विरोधी शाक्त थे। वे श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा श्रीमहामाया दुर्गाजीकी पूजा कराकर भोली-भाली जनतामें दुर्गा पूजनका प्रचलन कराना चाहते थे। वह उनका काल्पनिक मत था, शास्त्रसम्मत नहीं था। इसलिए तत्त्वविद् व्यक्ति उसे स्वीकार नहीं करते हैं। मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार लिखा है, सभीके निकट मेरा निवेदन है, यदि मेरे लेखमें कुछ सार वस्तु हो, तो उसे ग्रहण करें, मेरा कुछ अपना हो, तो उसे ग्रहण न करें। आगे और लिखनेसे लेखनी विस्तृत होगी इसलिए लेखनी यही रोकता हूँ।

सुधी सज्जनवृन्द! स्नेहभाजन नारायण महाराज और इस्कॉनके स्नेह भाजन माधव महाराजकी लेखनी पढ़कर जो यथार्थ है उसे लिखा, इतने दिनों तक मैंने कुछ नहीं लिखा, किन्तु आज बाध्य होकर लिखना पड़ा है। □

इति वैष्णवदासानुदास
भक्तिकुमुद सन्त



श्रील रूप गोस्वामीजीकी तिरोभाव तिथिपर विरह समारोहका आयोजन

कलियुगपावनावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टपूरक श्रील रूपगोस्वामीके तिरोभाव महोत्सवके उपलक्ष्यमें वृन्दावनस्थित श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें एक विद्वत् सभाका आयोजन किया गया। इस विद्वत् सभामें श्रीवृन्दावनधामके मूर्धन्य विद्वानोंने भाग लिया। जिनमें श्रीअतुलकृष्ण गोस्वामी, श्रीअच्युतलाल भट्ट, श्रीराधारमण मन्दिरके श्रीगौरकृष्ण गोस्वामी, पद्मनाभ गोस्वामी, श्रील लक्ष्मीनारायण पण्डित, श्रीश्यामलाल हकीम इत्यादिके नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। सभी विद्वानोंने श्रीरूप गोस्वामीजीके अप्राकृत जीवन चरित्र, उनकी शिक्षाओं, भजन प्रणाली, एवं उनके वैशिष्ट्यसे सम्बन्धित विभिन्न विशेषोंको अपने अपने विचारोंमें व्यक्त किया।

श्रील रूप गोस्वामीजीके वैशिष्ट्यकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रील महाराजीने 'जन्माद्यस्य' श्लोककी नवीन रूपसे व्याख्याकर उपस्थित विद्वज्जनों एवं श्रोताओंको स्तब्ध कर दिया।

**जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थ्यव्यभिज्ञ स्वराद्
तने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजावारमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धामा स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि॥**

(श्रीमद्भा. १/१/१)

ब्रह्माजीके हृदयमें उन्होंने श्रीमद्भागवतका प्रकाश किया। यदि आदि कवि श्रील शुकदेव गोस्वामीजीको मान लिया जाय तो—“ब्रह्म हृदा य आदिकवये” यहाँ ब्रह्म अर्थात् ‘रस ब्रह्म’ को उनके हृदयमें और जगत्‌में श्रीमद्भागवतके रूपमें प्रकाशित किया। यह चैतन्य महाप्रभुकी इच्छा थी। श्रीचैतन्य महाप्रभु आदि रसके (शृङ्गाररस) उदगम स्रोत हैं। क्योंकि वे स्वयं कृष्ण हैं। इसलिए

कहा—“जन्माद्यस्य यतः”, ‘आदि’—अर्थात् शृङ्गार रस। शृङ्गार रसके दोनों पोषक राधा-कृष्ण स्वयं ही उसके आदि हैं, नहीं तो यह रस ही नहीं होता। ये दोनों सम्मिलित होकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकटित हुए हैं। वे आदि कवि श्रीलरूपगोस्वामी हैं। क्योंकि वे रूपमञ्जरी हैं। प्रयागमें श्रीलचैतन्य महाप्रभुने आदि कवि श्रील रूप गोस्वामीके हृदयमें रस ब्रह्मको प्रकाशित कियां परवर्तीकालमें श्रील रूपगोस्वामीजीने श्रीचैतन्य महाप्रभुकी इसी प्रेरणासे विभावित हो उनके मनोऽभीष्टको जानकर भक्तिरसामृतसिन्धु एवं उज्ज्वलनीलमणि इत्यादि ग्रन्थोंमें इस आदि रसका विस्तृत रूपमें वर्णन किया।

“तने ब्रह्म हृदा” तने अर्थात् श्रीचैतन्यमहाप्रभु, जो राधा और कृष्ण दोनोंके भावोंसे ओतप्रोत हैं। अखिलरसामृतसिन्धु श्रीकृष्ण और महाभाव स्वरूपा श्रीमती राधिका दोनोंका संयोग श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें प्रकटित हैं। इन्होंने आदि कवि श्रील रूप गोस्वामीके हृदयमें रस ब्रह्मको प्रकट किया।

रूपानुगा एवं रागानुगा—इस अत्यन्त महत्वपूर्ण विषयकी विवेचना करते हुए श्रीमहाराजीने रूपानुगत्व एवं रागानुगत्वमें क्या अन्तर है, इस पर प्रकाश डाला। ब्रजवासियोंके हृदयमें कृष्णके प्रति जो स्वाभाविक ‘ममता’ है, उसे अनुराग कहते हैं। यह अनुराग उनकी आत्मामें विद्यमान होनेके कारण उन्हें रागात्मिकजन एवं उनकी भक्तिको रागात्मिका भक्ति कहते हैं। इस रागात्मिका भक्तिको लक्ष्य करके जिस भक्तिका अवलम्बन किया जाता है, उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। इसलिए ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णके परिकरों विशेषकर सख्य, वात्सल्य और मधुर रसके भक्तोंकी सेवा

परिपाटीसे मुग्ध होकर लोभके साथ जिस साधन एवं भाव भक्तिका अनुष्ठान किया जाता है, उसे रागानुगा भक्ति कहते हैं। यहाँ तक की अयोध्यामें हनुमानजीके दास्यसे आकृष्ट होकर, जिस भक्तिका अवलम्बन किया जाता है, उसे भी रागानुगा भक्ति जा सकता है। इसलिए ये सभी रागानुग भक्त तो कहलायेंगे, किन्तु सभी रूपानुग नहीं कहे जा सकते हैं। रूपानुग एक विशेष वस्तु है। श्रीलरूप गोस्वामीजीका अपना व्यक्ति भाव है—यह विचार करना होगा। श्रील रूप गोस्वामीपादने स्वरचित श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें उपरोक्त समस्त रसोंका विशदरूपमें विवेचन किया

है। किन्तु, रूप गोस्वामीजीने तटस्थ होकर समस्त रसोंका वर्णन करते हुए उनका पार्थक्य भी दिखलाया है। इसलिए इस ग्रन्थमें अपने निजी भावको उन्होंने व्यक्त नहीं किया। अपने भावको उन्होंने उज्ज्वलनीलमणि, उत्कल्लिकावल्लरी एवं चाटुपुष्टाङ्गलि इत्यादि ग्रन्थोंमें प्रकाशित किया है। उनके इस अपने भावको लक्ष्य करके जो एकान्तिकरूपसे श्रील रूपगोस्वामीजीका आनुगत्य करते हैं, केवलमात्र वे ही रूपानुग वैष्णव कहे जायेंगे। अतएव यह सिद्ध होता है कि सभी रूपानुग वैष्णव रागानुग तो हैं, किन्तु प्रत्येक रागानुग वैष्णव रूपानुग नहीं हो सकते हैं। □



प्रचार-प्रसङ्ग-

प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें श्रीकृष्णजन्माष्टमी महामहोत्सवका आयोजन अत्याधिक उत्साहके साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर जन्माष्टमी महोत्सवकी पूर्व बेलामें बड़ी धूमधामके साथ शोभायात्राका आयोजन किया गया। मथुरा शहरके होलीगेट, भरतपुर गेट, चौकबाजार, विश्राम घाट इत्यादि प्रमुख मार्गोंसे होते हुए, शोभायात्रामें उदण्ड नृत्य करते हुए विभिन्न देशोंसे आये हुए भक्तोंने समस्त मथुरावासियोंको स्तब्ध कर दिया। भक्तोंका उत्साहवर्धन एवं श्रीविग्रहोंकी कृपाकटाक्ष प्राप्ति हेतु स्थान-स्थानपर नगर वासियोंने जल एवं शरबत इत्यादिके द्वारा शोभायात्राका अभिनन्दन किया। इस प्रकार उन्मत्त एवं भावपूर्ण हरिनामकी ध्वनिसे सम्पूर्ण मथुरा नगरी गुजायमान हो उठी।

जन्माष्टमीकी संध्यापर अत्यन्त मनोहरी सांस्कृतिक कार्यक्रमका आयोजन किया गया। जिसमें मथुराके दूरदर्शन एवं आकाशवाणीके प्रसिद्ध कलाकारों एवं गणमान्य व्यक्तियोंने हिस्सा लिया।

कलाकारोंने शास्त्रीय संगीत एवं संगीतकी विविध शैलियोंमें भावपूर्ण कीर्तन एवं पदोंका मधुर स्वरसे गानकर ठाकुरजी एवं आगन्तुकोंको हादित किया। कई बाल कलाकारोंने भी उत्साहके साथ अपनी कलाका प्रदर्शनकर श्रीलमहाराजजी एवं अन्य भक्तोंसे प्रचुर कृपा-आशिवाद ग्रहण किया। इस प्रकार अर्द्ध रात्रिपर्यन्त रंगारंग सांस्कृतिक कार्यक्रममें उत्साह एवं अन्य भक्तोंने श्रीकृष्ण जन्म एवं उनकी अप्राकृत लीलाओंका गान किया। तत्पश्चात् ठीक बारह बजे श्रीकृष्णका महाभिषेक किया गया। अभिषेकके दौरान भक्तोंने उच्च स्वरसे श्रीकृष्णका जयगान किया। श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके इस पावन अवसर पर श्रील महाराजजीके प्रवचनका संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है—

आजसे लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व श्रीकृष्ण इसी मथुरा धाममें जीवमात्रका उद्धार करनेके लिए प्रकटित हुए। समस्त जीव स्वरूपतः श्रीकृष्णके नित्य दास हैं। किन्तु, श्रीकृष्णको भूलकर अनादि

कालके इस संसारमें विभिन्न योनियोंको प्राप्तकर नाना प्रकारके दुःखों एवं पीड़ाओंसे जर्जरित हो रहे हैं। इस दुःखमय अवस्थासे जीवोंका उद्धार करनेके लिए भगवान् श्रीकृष्णने अपनी परम मनोहरी लीलाओंके द्वारा जीवोंको आकर्षितकर पुनः प्रपञ्चातीत गोलोक-वृन्दावन धाममें गमन किया। उन्हीं लीलाओंका गान कर जीव अनायास ही भवसागरसे तर जाते हैं।

दूसरी बात हमें यह समझनी चाहिए कि, मथुरामें जिन कृष्णका आविर्भाव हुआ, वे कौन हैं? ये मथुरा धन्य है, क्योंकि श्रीकृष्ण यहाँ अवतारित हुए। ये कृष्ण कौन हैं? वे राम, नृसिंह एवं अन्य समस्त अवतारोंके भी मूल हैं। इनके एक-एक अंश कलासे कोटि-कोटि विष्णु, शंकर और ब्रह्मा आदि प्रकटित होते हैं। किन्तु मथुरामें जन्म लेनेवाले वासुदेव जिनके अंश हैं, उन्होंने गोकुलमें यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। तत्त्वतः शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी वासुदेव व्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके अंश हैं। मथुराधीश कृष्ण वंशी, मोरमुकुट धारण, गोपियोंके साथ रासक्रीड़ा इत्यादि नहीं करते हैं। वे कृष्ण कंस, शिशुपाल एवं जरासन्ध जैसे असुरोंका वध करते हैं, इनकी लीलाएँ ऐश्वर्यमण्डित हैं। गोकुलमें यशोदाके गर्भसे जन्म ग्रहण करनेवाले नन्दनन्दन स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। इनकी समस्त परम मनोहरी लीलाएँ माधुर्यमण्डित हैं—अर्थात् नरवत् हैं। व्रजमें श्रीकृष्णका मिट्ठी खाना, गोपियोंकी मटकी फोड़ना, माक्खन चोरी करना, यशोदा महायाकी डॉटसे भयभीत होना एवं प्रेमवश उनसे बाँध जाना, वृन्दावनमें रासक्रीड़ा इत्यादि मधुर लीलाओं द्वारा समस्त व्रजवासियोंको आनन्द प्रदान करना—यह सबके आदि स्वयं अनादि भगवान् श्रीकृष्णने किया। इन कृष्णका शुद्धा भक्तिके द्वारा भजन करना ही जीवोंका एकमात्र प्रयोजन है। लौकिक सद्बन्धुवत्

भावसे—सख्य, वात्सल्य एवं मधुरमें किसी एक भावके द्वारा इन कृष्णकी आराधना की जाती है। निरपेक्ष विचार करनेसे देखा जाता है कि गोपियोंने प्रियतम भावसे जो श्रीकृष्णकी उपासना की है, वही सर्वश्रेष्ठ हैं। भजन भगवान्‌के मधुर नामोंका जप एवं कीर्तन करनेसे आरम्भ होता है। कहा भी गया है—

**हरेनामं हरेनामं हरेनामैव कंवलम्।
कलौ नास्तैव नास्तैव नास्तैव गतिरन्यथा॥**

अर्थात् कलियुगमें केवल भगवन्नामके द्वारा ही जीवोंका कल्याण सम्भव है। श्रीमद्भागवत इस विषयमें प्रमाण है। कलिकालमें समस्त नामोंमें श्रेष्ठ नाम हैं—

**हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥**

श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके अगले दिन ६ सितम्बरको बहुत ही आनन्द एवं उल्लासके साथ नन्दोत्सवका आयोजन हुआ। इसमें समग्र नगरवासियोंने उत्साह एवं आनन्दके साथ हिस्सा लिया। इस अवसर पर श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके द्वारा विशाल भण्डारेका आयोजन किया गया। जिसमें दस हजारसे भी अधिक लोगोंने भगवत्-प्रसादका सेवन किया। संध्याके समय बाल कलाकारोंने कृष्णलीलाके विभिन्न चरित्रोंको गान एवं नृत्यके माध्यमसे प्रस्तुत किया।

इसी दिन नित्यलीला प्रविष्ट ३५ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भायचरणरविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें एक सभाका आयोजन किया गया। जिसमें पूज्यपाद भक्तिवेदान्त नारायण महाराजने उनके दिव्य जीवन चरित्रपर प्रकाश डाला। इसी अवसर पर देश-विदेशसे आये अनेक भक्तोंने अपने श्रद्धा सुमन अर्पित किये। □

(पृष्ठ संख्या १८१ से आगे)

वंचक सम्प्रदायकी कुचेष्टा

मूर्ख व्यक्तियोंको ठगनेके लिए कितने ही प्रकारके नये-नये मतोंकी सृष्टि हुई है। स्वार्थान्ध साधारण लोग प्राकृत विषयोंके मदमें मत होकर उन मतवादोंका खण्डन कर सत्य-वस्तुका अनुसंधान नहीं कर सकते। अतएव वंचक सम्प्रदाय सत्यको ढककर अपना जाल फैलाते हैं। बहुत-से दुर्भाग्य व्यक्ति उनके धोखेमें पड़कर परम सत्यसे वंचित हो जाते हैं एवं परमार्थ तो दूर रहे वे अनर्थके जालमें फँस जाते हैं। यदि डाक्टरका पुत्र डाक्टरी न सीखकर लोगोंकी चिकित्सा करना आरम्भ कर दे, यदि रेलवे ड्राइवरका पुत्र इंजिनके यंत्रोंका कोई ज्ञान प्राप्त न करके भी ट्रेन चलाना शुरू कर दे, यदि तैराक पिताका पुत्र तैरना न जानते हुए भी दूसरे लोगोंको तैरना सिखलानेके लिए अगाध जलमें ले जाय, तो इसका कैसा विषमय न तीजा होगा, यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

उपसंहार

वैष्णवोंके शौक्र वंशमें उत्पन्न होनेका हम जितना भी अहंकार क्यों न करें, हरि-सेवामें हमारी दृढ़ श्रद्धाका अभाव रहनेसे निर्जीव भक्तिके अंगोंकी दिखावटसे अत्मवंचना और समाजके प्रति शत्रुता करना होगा। अच्युत-गोत्र और शौक्र-गोत्र एक नहीं है। अतः वैष्णव वंश कहनेसे केवल वैष्णवोंके शौक्र वंशका बोध नहीं होता। अच्युत गोत्रमें प्रवेश किये हुए परमार्थी वैष्णव लोग उनका अधिकार उनके अनुरागी सेवकोंको ही सौंपते हैं। केवल कुलमें जन्म ग्रहण करनेसे ही अयोग्य संतान कभी भी अपने पूर्वजोंका उत्तराधिकार-स्वत्त्व प्राप्त नहीं कर सकता है और प्राप्त करने पर भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता। ये सारी बातें वैष्णव-वंशकी तरह विष्णुके वंशमें भी कुछ सम-अधिक लागू हैं। विशेषतः भगवान् और भक्तलोग समय-समयपर

विभिन्न वंशोंमें प्रकट होते हैं और फिर उन्हीं वंशोंमें अभक्त तथा असुर लोग भी जन्म ग्रहण कर सकते हैं—इसमें कोई बाधा नहीं। विष्णुके संतान विष्णु नहीं, किन्तु वैष्णव होते हैं। अतः दीक्षा द्वारा प्राप्त जन्मको ही यथार्थमें वंश कहा जाता है। □



(पृष्ठ संख्या १९० से आगे)

प्रसिद्ध है। पद्मासन यथा—

ज्वर्ण-परिविन्यस्य सम्यक् पदातले उभे।

अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयात् हस्ताभ्यां व्युतक्रमात्तथा॥

अर्थात् दोनों पाँवके तलवोंको दोनों जांघोपर सुन्दररूपसे रखकर दोनों पावोंके अंगूठोंको दोनों हाथोंसे पकड़े। पुनः स्वतिकासन यथा—

जानूवर्णन्तरे योगी कृत्वा पदातले उभे।

ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत् प्रचक्षते॥

अर्थात् घुटने और जांघके बीच दोनों तलवोंको रखकर सीधा बैठनेका नाम स्वस्तिकासन है।

(४) प्राणायाम—

तस्मिन् सति श्वास-प्रश्वासयोगति-विच्छेदः प्राणायामः॥

(पा. द. २/४९)

आसन हो जानेके बाद श्वास-प्रश्वासकी गति-विच्छेद-लक्षण प्राणायामका अभ्यास करेंगे। जो वायु नाकके छिद्र द्वारा बाहर निकलती है, वह रेचक या श्वास कहलाती है। जो वायु नाकके छिद्र द्वारा अन्दर गमन करती है, वह पूरक अर्थात् प्रश्वास कहलाती है। जो वायु अन्तःकरणमें स्थिरता होती है अर्थात् ठहरती है, वह कुम्भक कहलाती है। रेचक, पूरक और कुम्भक द्वारा प्राणायाम सिद्ध होता है।

यम-नियम सिद्ध व्यक्ति आसनके पश्चात् प्राणायामका अभ्यास करेंगे। □

(क्रमशः)



श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे



श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या कच्चिदुपासना ब्रजवधूवर्णेण या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्, श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

| | | |
|---------------------------------|---|---------------------------------|
| एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र | । | आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥ |
| दूर्व भागवत द्वारा दिया भक्तिरस | । | ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥ |

वर्ष २० } श्रीगौराब्द ५१० { संख्या ९
विक्रम संवत् २०५२-५३ कार्तिक मास, सन् १९९६, २७अक्टूबर-२५नवम्बर }

श्रीश्रीषड्गोस्वाम्यष्टकम्

(श्रीश्रीनिवासाचार्य प्रभु-विरचितम्)

कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तन-परौ प्रेमामृताभोनिधि
धीराधीरजन-प्रियौ प्रियकरौनिर्मत्सरौ पूजितौ।
श्रीचैतन्य-कृपाभरौ भुवि भुवो भारावहन्तारकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गौपालकौ॥१॥

जो श्रीकृष्णके गुण-कीर्तन और नृत्य-गीतमें सदा-सर्वदा तत्पर हैं, जो श्रीकृष्णप्रेमरूपी अमृतके समुद्र हैं, जो विद्वान् और मूर्ख सबके प्रिय हैं, जो सबको प्रिय लगनेवाले आचरण करते हैं, जो इर्षा-द्वेषसे रहित, सर्वलोक-पूज्य और श्रीचैतन्यदेवके विशेष कृपा-पात्र हैं एवं जो इस लोकमें जीवोंका उद्धार कर पृथ्वीका भार हल्का करते हैं, मैं बारम्बार उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथदास और श्रीजीव गोस्वामीकी वन्दना करता हूँ॥१॥

नानाशास्त्र विचारणेक-निपुणौ सद्धर्म-संस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ।
राधाकृष्ण पदारविन्द-भजनानन्देन मत्तालिकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गौपालकौ॥२॥

श्रीगौराङ्ग गुणानुवर्णन-विधौ श्रद्धा-समृद्ध्यन्वितौ
पापोत्ताप-निकृत्तनौ तनुभृतां गोविन्दगानामृतैः।
आनन्दाम्बुधि-वर्द्धनैक-निपुणौ कैवल्य निस्तारकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गौपालकौ॥३॥

त्यक्त्वा तूर्णमशेष मण्डलपति-श्रेणीं सदा तुच्छवत्
भूत्वा दीनगणेशकौ करुण्या कौपीन-कन्थाश्रितौ।
गोपीभाव रसामृताब्धि-लहरी-कल्लोल-मग्नौ मुहु-
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गौपालकौ॥४॥

कूजत् कोकिल-हंस-सारस-गणाकीर्ण मयूराकुले
नानारत्न-निबद्ध-मूल-विटप श्रीयुक्त वृन्दावने।
राधाकृष्णमहर्निशं प्रभजतौ जीवार्थदौ यौ मुदा
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गौपालकौ॥५॥

संख्यापूर्वक-नामगान-नतिभिः कालावसानीकृतौ
निद्राहारविहारकादि विजितौ चात्यन्त-दीनौ च यौ।
राधाकृष्ण-गुण-सृतमर्थुरिमानन्देन सम्मोहितौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गौपालकौ॥६॥

जो नाना शास्त्रोंके विवेचनमें अति निपुण हैं,
सद्धर्मके संस्थापक हैं, मनुष्योंका परम कल्याण
करनेवाले हैं, तीनों लोकोंके पूज्य और आश्रयदाता
एवं श्रीराधागोविन्दके चरणकमलोंके भजनानन्दके
मत्त मधुप हैं, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ
भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास, और श्रीजीव
गोस्वामीको बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥२॥

श्रीगौराङ्ग महाप्रभुकी गुणावलीका वर्णन करनेमें
जिनका अतिशय आग्रह है, जो श्रीकृष्णगुणगानरूपी
अमृतका सिंचनकर जीवोंके पाप-तापकी शान्ति
करते हैं, जो आनन्द-सागरको बढ़ानेमें अत्यन्त
निपुण हैं एवं जो कैवल्य मुक्तिको धिक्कार देकर
उससे जीवोंकी रक्षा करते हैं, मैं उन श्रीरूप,
सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास,
और श्रीजीव गोस्वामीको बारम्बार प्रणाम करता
हूँ॥३॥

जिह्वेने असंख्य मण्डलपतियों (राजा-महाराजाओं)
के संगको भी अत्यन्त तुच्छ समझकर झट छोड़
दिया तथा दीन-हीन कंगालोंके रक्षक बनकर
कौपीन और गुदड़ी धारण किया एवं जो
गोपी-प्रेम-रसामृत-सिद्धुकी तरङ्गोंमें सर्वदा निमग्न
हैं, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल
भट्ट, रघुनाथ दास, और श्रीजीव गोस्वामीको
बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥४॥

कोयल, हंस, सारस, मयूर आदि पक्षियोंके
मधुर कलरवसे निनादित और नाना-प्रकारके
रत्नोंसे बैंधे हुए जड़वाले वृक्षोंकी पंक्तियोंसे
सुशोभित श्रीवृन्दावनमें जो दिनरात श्रीराधाकृष्णका
भजन करते थे एवं जो प्रसन्न होकर जीवोंकी
मनोकामनाएँ पूर्ण करते थे, मैं उन श्रीरूप, सनातन,
रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास, और श्रीजीव
गोस्वामीको बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥५॥

जो संख्यापूर्वक नाम करने, कीर्तन करने,
प्रणाम करने तथा स्तव करनेमें ही अपना सारा
समय व्यतीत करते, जो आहार-विहार और
निद्राको जीत चुके थे, जो अत्यन्त दीन-हीनकी
भाँति विचरण करते एवं जो श्रीराधा-गोविन्दकी
मधुरातिमधुर गुणावलीका स्मरण कर परमानन्दमें
विभोर रहा करते थे, मैं उन श्रीरूप, सनातन,
रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास, और श्रीजीव
गोस्वामीको बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥६॥

राधाकुण्ड—तटे कलिन्दतनया तरि च वंशीवटे
प्रेमोन्मादवशादशेष—दशया ग्रस्तौ प्रमत्तौ सदा।
गायन्तौ च कदा हरेगुणिवरं भावाभिभूतौ मुदा वन्दे
रूप—सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव—गौपालकौ॥७॥

हे राथे व्रजदेविके! च ललिते! हे नन्दसूनो! कुतः।
श्रीगोवर्द्धन—कल्पपादपतले कालिन्दिवन्ये कुतः।
घोषन्ताविति सर्वतो व्रजपुरे खेदैर्महाविह्वलौ
वन्दे रूप—सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव—गौपालकौ॥८॥

जो श्रीराधाकुण्डके तटपर, यमुनाके तीरपर
और वंशीवटके नीचे प्रेमोन्मत्त होकर अशेष
प्रकारकी दशाओंको प्राप्त होते थे—कभी
उन्मत्त—सा विचरण करते, कभी हरिगुण—गान करते
और कभी आनन्दमें भरकर भावोंसे विभूषित हो
पड़ते, मैं उन श्रीरूप, सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल
भट्ट, रघुनाथ दास, और श्रीजीव गोस्वामीको
बारम्बार प्रणाम करता हूँ॥७॥

हे व्रजश्वरी राधे! तुम कहाँ हो? हे ललिते!
तुम कहाँ हो? हे कृष्ण! तुम कहाँ हो? तुम
लोग श्रीगोवर्द्धनके कल्प—वृक्षोंके नीचे हो अथवा
कालिन्दीतटके सघन वनोंमें हो? इस प्रकार
पुकारते—पुकारते जो अत्यन्त व्याकुल होकर
व्रजभूमिमें सर्वत्र भ्रमण करते थे, मैं उन श्रीरूप,
सनातन, रघुनाथ भट्ट, गोपाल भट्ट, रघुनाथ दास,
और श्रीजीव गोस्वामीको बारम्बार प्रणाम करता
हूँ॥८॥



वैष्णव—दर्शन

—३५ विष्णुपाद श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ‘प्रभुपाद’

दर्शन शब्दका अर्थ

द्रष्टा अर्थात् देखनेवाला। द्रष्टाके दृश्य—वस्तुके साथ सम्बन्ध स्थापनको दर्शन कहते हैं। साधारणतया जिस इन्द्रियकी सहायतासे द्रष्टा किसी वस्तुको देखता है, उसे आँख कहते हैं। आँखें द्वारा वस्तुके बाहरी आकार और रूप आदिकी अनुभूति होती है। किसी भी वस्तुका बाह्य—ज्ञान प्राप्त करनेके लिए आँख नामक ज्ञानेन्द्रियकी सहायता आवश्यक होती है। किन्तु, केवल आँख रहनेसे ही दर्शनका कार्य सम्पन्न नहीं होता। आँखोंके कार्य करनेकी पृष्ठ—भूमिमें, अर्थात् उसके कारण चालक रूपमें एक दूसरी बाह्य—इन्द्रियका अधिष्ठान भी हम लक्ष्य करते हैं। यह द्वितीय इन्द्रिय समस्त इन्द्रियोंका चालक है, इसे मन कहते हैं। आँखें दर्शन क्रियाका कारण होनेपर भी, उनके

भी कारणके रूपमें मनकी सत्ता अवश्य स्वीकार्य है, अथवा यों कहिए—आँखोंके वर्तमान रहनेपर भी जब तक मनकी क्रियाका उन्हें सहयोग प्राप्त नहीं होता, तब तक देखनेकी क्रिया सम्पन्न नहीं होती है।

मन किसे कहते हैं? तथा उसके साथ

अन्यान्य इन्द्रियोंका क्या सम्बन्ध है

आँखोंके सामने दृश्य वर्तमान रहनेपर भी जिसके कर्तृत्वके अभावमें आँखें कार्य नहीं कर सकतीं—देख नहीं सकतीं, उसे मन कहते हैं। मन केवल आँखोंका ही परिचालक नहीं है अपितु आँखोंकी तरह और भी चार ज्ञानेन्द्रियोंका प्रभु है। मन इन्हीं इन्द्रियोंकी सहायतासे वस्तुके विषयमें नाना प्रकारकी अनुभूतियाँ संग्रह करता है। वस्तुका बाह्य आकार और रूप आदि नहीं रहनेसे अथवा

क्षुद्रत्व, वृहत्त्व, आवृत होनेके कारण अथवा सुदूर जन्य सत्ता वर्तमान रहनेपर भी बहुधा बाह्य-वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती।

इन्द्रियोंके द्वारा प्रत्यक्ष-ज्ञान और मानसे-ज्ञान

बाह्य वस्तुकी सत्ता अन्यान्य चार ज्ञान-इन्द्रियोंकी सहायतासे भी उपलब्ध हो सकती है। ज्ञान-संग्रहके लिए उपयोगी इन्द्रियोंकी सहायतासे इन्द्रियोंका अधिपति मन उन वस्तुओंकी भी धारणा करनेमें समर्थ होता है, जिनकी धारण दूसरी इन्द्रियों स्वतन्त्ररूपसे करनेमें असमर्थ होती हैं। विशेषतः ज्ञान-इन्द्रियों भी जिस अनुभवको अनभूत करनेमें असमर्थ होती हैं, उसे भी करण-समिक्षके बलसे मन प्रत्यक्षके मार्गको छोड़ कर अनुमानके जरिये प्राप्त कर लेता है। यद्यपि दर्शन आदि प्रत्यक्ष ज्ञान ही स्वानुभवके पथ हैं, फिर भी अनुमिति (अनुमान) निर्दोष रहनेपर प्रत्यक्षकी सहायता करती है। प्रत्यक्ष सर्वदा ही निर्भर योग्य होता है—ऐसा नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि यह भी कभी-कभी सत्यकी उपेक्षाकर वस्तुकी सत्य अनुभूति प्रदान करनेके बदले भ्रान्त अनुभूति देकर मनको वज्ज्यत करता है। मादक द्रव्योंका सेवन करनेसे इन्द्रियोंके द्वारा लब्ध अनुभूति अनेक समय भ्रन्तिका कारण होती है। दर्शन शब्दसे 'देखना' का बोध होनेपर भी अन्यान्य इंद्रियोंके द्वारा गोचरीभूत या लब्ध प्रतीतिको भी दर्शनकी संज्ञा दी गई है।

जड़-विज्ञान और मनोविज्ञान

जड़ वस्तुकी सत्तामात्रके दर्शनको जड़ विज्ञान कहते हैं और जड़तीत चेतनमय वस्तु-सत्ताके दर्शनको मनोविज्ञान कहा जाता है। भारतीय दर्शन शास्त्रोंमें अहंकारको मनका कारण, बुद्धि या महत्त्वको अंहंकारका कारण और प्रकृति या अव्यक्त तत्त्वको बुद्धिका कारण निर्देश किया है। प्रकृति, बुद्धि, अहंकार और मन, अंश-अंशीरूपमें क्रमशः अवस्थित हैं। द्रव्यमें कर्तृसत्ताका अभाव

होनेपर उसे द्रष्ट-शक्तिसे रहित जड़ और कर्तृसत्ताका अस्तित्व या द्रष्टव्य होनेपर उसे ही बुद्धि, अहंकार या मन कहा जाता है।

प्राचीन छः दर्शन और परवर्ती दस दर्शन

प्राचीनकालमें भारतमें छः दर्शन विशेष रूपसे प्रसिद्ध हुए हैं। वे हैं—(१) कपिलका सांख्य दर्शन, (२) कणादका वैशेषिक दर्शन, (३) पतञ्जलिका योग दर्शन, (४) गौतमका न्याय दर्शन, (५) जैमिनीका मीमांसा दर्शन और (६) व्यासदेवका वेदान्त दर्शन। इनके अतिरिक्त मध्ययुगमें प्रचलित चार्वाक दर्शन, नकुलीश पाशुपत दर्शन, आहंत दर्शन, सुगत (बौद्ध) दर्शन आदि और भी दस प्रकारके दार्शनिक मतोंका उल्लेख सायनाचार्यके ग्रन्थोंमें मिलता है। किन्तु यहाँ प्रत्येक दर्शनोंके द्वारा स्थापित दार्शनिक विचारोंकी तारतम्यमूलक समीक्षा करना वर्तमान लेखका उद्देश्य न होनेके कारण हमने उस विषयकी आलोचना स्थगित रखी है। केवल एक उत्तर मीमांसा या व्यासदेव द्वारा रचित वेदान्तकी प्रारम्भिक आलोचनाकी आवश्यकता है, क्योंकि वेदान्त दर्शन ही हमारे आरम्भ किए हुए विषयका मूल है।

वेदान्त दर्शनका परिचय

वेदोंका शिरोभाग अर्थात् सारभाग उपनिषत् के नामसे परिचित है। उपनिषदोंका यथार्थ तात्पर्य धारावाहिक रूपमें उपलब्ध करना आसान नहीं, अपितु असाध्य है। इन्हीं तात्पर्यों को यथावत् और धारावाहिकरूपमें सहज और बोधगम्य करनेके उद्देश्यसे उपनिषदोंका ही अवलम्बनकर व्यासदेवने 'ब्रह्मसूत्र' नामक एक ग्रन्थकी रचना की है। वह ग्रन्थ उत्तर मीमांसा, शारीरक या वेदान्त दर्शनके नामसे प्रसिद्ध है। अन्यान्य दार्शनिकोंके पूर्व-पक्षका खण्डन कर आप्त वाक्योंको (स्मृति-पुराण और महाजनोंके वाक्योंको) प्रत्यक्ष और अनुमानका सहोदर जानकर उन्हें प्रमाणरूपसे ग्रहणकर इस मीमांसा दर्शनमें सिद्धान्तोंका साङ्गेपाङ्ग वर्णन किया गया है। भारतीय वैदिक धर्मकी रूप-रेखा, उसकी

रीतियोंका गठन, बहुत-कुछ वेदान्त दर्शनके उपर ही अवलम्बित है।

वेदान्त या शारीरक सूत्रके विविध भाष्यकार

हम इस शारीरक मीमांसाकी व्याख्या करनेवाले असंख्य भाष्यकारों, टीकाकारों तथा वार्तिककारोंमें से देखते हैं कि कुछ प्राचीन व्याख्याता—बोधायन, टन्क, भारुचि और द्रमिड आदिने विशेष प्रसिद्ध प्राप्त की है। श्रीशंकराचार्य आदि अनेक प्रतिभाशाली व्यक्ति शारीरक-भाष्य आदिकी रचनाकर वेदान्ताचार्यके नामसे अलंकृत हुए हैं। परमहंस संहिता श्रीमद्भागवतको भी इस ब्रह्मसूत्रका भाष्य कहा गया है। यादवाचार्य, प्रभाकर, और भाष्करभट्ट आदि मनीषियोंने भी वेदान्तके शिक्षकके रूपमें कृतिपय ग्रन्थों और मतवादोंका प्रचार किया है। श्रीशंकराचार्यके अनुगामी सम्प्रदायमें भी आनन्दगिरि, सायनमाधव, आदि द्वारा तथा वाचस्पति मिश्रकी भामती टीका आदिमें हम केवलाद्वैतमतकी पुष्टि देख पाते हैं।

ब्रह्मसूत्रके निर्विशेष और सविशेष भाष्य

ब्रह्मसूत्र या उत्तर मीमांसाका अवलम्बनकर ब्रह्म-वस्तुको निर्विशेष माननेवालोंके द्वारा केवलाद्वैतवादका प्रसार हुआ। इनके अलावा इनसे कुछ शताब्दी पूर्व ब्रह्मके सविशेषवादका विपुल प्रचार करनेवाले अनेक प्रतिभासम्पन्न भगवत् परायण आचार्योंका भी उदय हुआ था। ये सविशेषवादी आचार्यवृन्द केवलमात्र खण्ड-दार्शनिक ही नहीं थे, प्रत्युत् सम्बन्ध-ज्ञानयुक्त सिद्धान्त-पारंगत भी थे। अतएव वस्तु सम्बन्धित अभिधेय—ब्रह्मप्राप्तिके उपाय तथा प्रयोजन—उपेयरूपी ब्रह्मदर्शनसे भी वे विमुख न थे।

जड़-वैज्ञानिकोंकी भ्रान्ति

प्राचीन कालमें ज्योतिष शास्त्रविदोंकी धारणा थी कि यह पृथ्वी जिसपर हम वास करते हैं, इस विश्वका केन्द्र बिन्दु है और इसे ही केन्द्रकर सूर्य, ग्रह और नक्षत्रादि ज्योतिः पुञ्ज घूम रहे हैं। किन्तु कुछ दिनोंके बाद ही ज्ञानका विकास

होनेपर तथा उसकी सूक्ष्मतर आलोचनाके फलस्वरूप उनकी वह धारण बदल गई। फिर उन्होंने ही बतलाया कि वस्तुतः हम लोगोंको अपने वक्षःस्थलपर धारण करने वाली यह पृथ्वी ही, जो पहले विश्व-ब्रह्माण्डका केन्द्र मानी जाती थी, बुध या शुक्र ग्रहकी तरह शुक्र और कुज मंगल ग्रहोंके मध्याकाशमें स्थित होकर सूर्यदेवको प्रत्येक सौर वर्षमें एक बार परिभ्रमण करती है। पृथ्वीपर वास करनेवाले द्रष्टा अपने स्थानको ही (पृथ्वीको) विश्वका केन्द्र स्थापितकर जैसे भ्रममें पतित हुए थे, जड़-वैज्ञानिक भी उसी प्रकार अपने स्थूल शरीरको ही विषय-भोगोंका केन्द्र समझकर अपने स्थूल शरीरके भोक्तृत्वमें या विषयत्वमें विश्वास कर रहे हैं।

जड़-वैज्ञानिके उपर मनोविज्ञानका आधिपत्य

मनोवैज्ञानिक जड़-वैज्ञानिकों भी मनका प्रभुत्व देखकर मनको ही इस शारीरका केन्द्र मानते हैं, तथा मनको द्रष्टा मानकर मनःचक्षुसे जड़को दृश्य स्थानीय जानकर भली-भाँति दर्शन करते हैं। उनकी यह प्रबल धारणा होती है कि जड़ मनको देख नहीं सकता, बल्कि मन ही जड़का द्रष्टा है। मनन शक्तिके अभावमें जड़-द्रव्योंमें चक्षुका केवल जड़-उपादन मात्र वर्तमान होता है, किन्तु दर्शन शक्तिके अभावमें जड़-द्रव्य, मनको या अपनी आँखोंको देखनेमें असमर्थ होता है।

पूर्व और पश्चिमके मनोवैज्ञानिकोंके

विचार भ्रान्तिपूर्ण हैं।

जीवोंके परलोकमें विश्वास न रखने वाले नास्तिक चार्वाक, जड़-रसानन्दी एपिक्युरियस, अज्ञेयवादी एग्नास्टिक हास्कले, पारलौकिक विश्वासमें संदेहवादी स्केप्टिक लोग, दिव्यज्ञानवादी हेगल, शोपेनहावर, काण्ट आदि विख्यात प्राचीन दार्शनिकोंने ही नहीं अपितु अनेक भारतीय दार्शनिक मनीषियोंने भी मनोविज्ञानकी या दर्शनशास्त्रकी सेवामें अपना जीवन बिताया है और जगत्को अपनी-अपनी अभिज्ञता दिखलाकर

अपने-अपने साम्प्रदायिक दृष्टिकोणसे वस्तुका दर्शन करना सिखलाया है। वे लोग अपनी-अपनी मानस अभिज्ञताओंको अपनी विचारधाराका माध्यम बनाकर वस्तुका निर्देश करते हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न स्थानोंमें स्थित, विभिन्न दृष्टिकोण-सम्प्रदाय दर्शकोंको वे केवलमात्र नाना प्रकारके भ्रान्तिपूर्ण चित्रोंका ही प्रदर्शन करा सकते हैं। वस्तुतः वे लोग वस्तुका यथार्थ दर्शन न तो स्वयं ही कर सकते हैं और न औरोंको ही करने में समर्थ हैं।

जीवोंके अधिकारके अनुसार दार्शनिक-दृष्टि

एक दार्शनिक विचारका अन्य दार्शनिक विचारोंसे विरोध होनेके कारण नाना-प्राकारके परस्पर विरोधी दार्शनिक मतवादोंकी सृष्टि हुई है। उनमें से प्रत्येक दर्शन श्रोतृमण्डलीको अपनी ओर खींचने के लिये आप्राण चेष्टा कर रहा है। श्रोतृमण्डलीमें जिस श्रोताकी चित्त-वृत्ति जिस दार्शनिक विचारधाराके सत्रिकट होती है, वह उसी तरफ खिंच जाता है और प्राचिन ज्योतिषियोंकी भ्रान्त धारणाकी तरह अपने भ्रान्त धारणाओंकी ही पुष्टि किया करता है। दार्शनिक मतवादके बाजारमें दर्शक योग्यतानुसार अपनी रुचिके अनुकूल विचाररूप द्रव्यको ही ग्रहण करता है।

निर्विशेष मायावादकी भ्रान्ति

जैसे ज्योतिषी लोग प्राचीनीकालमें हमारी पृथ्वीको ही अन्यान्य ग्रह और नक्षत्रोंका केन्द्र भाग मानते थे, जिस प्रकार प्राचीन कालमें मानव अपने शारीरिक आधारको ही समस्त अनुभवोंका केन्द्र समझते थे, उसी प्रकार दार्शनिकोंने भी ज्ञानकी प्राथमिक उड़ानमें द्रष्टाको ही आत्मा या समस्त वस्तुओंका केन्द्र-स्थल समझना आरम्भ किया। इन्हीं विचारोंके परिणामस्वरूप वेदान्त दर्शन जैसे शुद्ध दर्शनमें भी अहंग्रहोपासना या मायावाद जैसी मिथ्या कल्पनाका भी आरोप करनेका प्रयास होने लगा। वेदान्त कहनेसे केवलाद्वैतवाद, जीव-ईश्वर ऐक्यवाद, जड़-चिद्-ऐक्यवाद, विवर्तवाद,

निःशक्तिकवाद, व्यक्तिरेकवाद, निर्भेद ब्रह्मवाद, निर्विशेषवाद आदि संकीर्ण मतवाद-समूहको ही समझा जाने लगा। इन मतवादों के आपात-मनोरम विचारोंके आवरणसे दर्शन-शास्त्रके जिज्ञासुओंकी आँखें आच्छादित कर दी गईं। इस तरह वे उनके भ्रान्त विचारोंको उदार और विश्वहितकर जानकर उसी तरफ लुढ़क पड़े।

शङ्कर-दर्शन सत्यका आच्छादक है

सविशेष अनुभूति तथा विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि दर्शनसमूह वेदान्तके प्रतिपाद्य नहीं हैं—इसकी प्रतिष्ठाके लिए संकीर्ण मायावादियोंकी ओरसे असंख्य चेष्टाएँ की गईं। श्रीशङ्कराचार्यके अभ्युदय कालसे आरम्भकर विद्यारण्य भारतीकी शेष दशा तकके केवलाद्वैत वेदान्तियोंके साम्प्रदायिक ऐतिह्यकी आलोचना करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जीवात्माको परमात्मा और जगत्को मिथ्या प्रतिपादित करना, आंशिक दर्शन या खण्ड-ज्ञानकी सहायतासे पूर्णत्वकी कल्पना करना, जड़ीय अखण्ड देश, काल आदिको पूर्ण वस्तुके रूपमें प्रतिष्ठापित करना एवं विषय तथा आश्रयके विवेकके अभावमें 'रसो वै सः' वस्तुको नीरस या निर्विशेष स्थापित करना, इनके प्रयासमें जगत्का समय वृथा ही अतिवाहित हुआ है। वस्तु-दर्शनके आंशिक ज्ञानको पूर्ण-ज्ञान और मिथ्याको सत्य प्रमाणित करनेके लिये इतर कार्योंमें व्याप्त रहनेके कारण परम सत्य-वस्तुका दर्शन आच्छादित किया गया था। यद्यपि श्रीशङ्कराचार्य जैसे प्रमुख दार्शनिक मनिषीवृन्दने 'वेदांत' का दर्शनकर जड़ीय भेद-दर्शन-समूहका बड़े समारोहसे खण्डन किया है, फिर भी जीवात्माको द्रष्टृ, भोक्तृ या विषय तथा जगत्को दृश्य, आश्रय तथा भोग्य रूपसे प्रतिष्ठा करनेके कारण उनका दर्शन भी सत्यसे बहुत दूर अवस्थित है।

अपरोक्ष-पथमें वैष्णव दर्शन, और श्रीमद्भागवत दर्शन-शिरोमणि हैं

इसी परम सत्य-दर्शनका प्रदर्शन करनेके लिए ही स्वयं-रूप वस्तु स्वयं प्रकाशित हुए थे। इन्हें प्रकाशित होनेके लिए अन्य शक्तिओंके सहयोगकी आवश्यकता नहीं पड़ती। जड़ द्वारा प्रत्यक्ष-पथका अवलम्बन कर अथवा परोक्ष-पथके द्वारा वस्तु-तत्त्व निर्देश करनेके बदले अपरोक्ष-पथकी महिमा केवल वैष्णव-दर्शनमें ही निहित है। श्रीमद्भागवत ही वैष्णव-दर्शन है। श्रीमद्भागवत ही वेदान्त दर्शनकी यथार्थ व्याख्या-स्वरूप सर्वदर्शन शिरोमणि है। इसमें समस्त दार्शनिक तथ्योंका निरूपण विस्तृतरूपमें किया गया है।

निरपेक्ष सत्य ही वैष्णव दर्शन है

सापेक्ष अस्मिता, सापेक्ष कर्मका आश्रयकर, सापेक्ष इन्द्रियोंकी सहायतासे, सापेक्ष वस्तुको निमित्तकर, सापेक्ष वस्तुसे निरपेक्ष रहकर, सापेक्ष वस्तुके सम्बन्धसे, सापेक्ष आधारसे दर्शन करनेसे परम सत्य-वस्तुका दर्शन नहीं हो सकता। वस्तुका दर्शन करते समय विशेषरूपसे निरपेक्ष नहीं होनेसे द्रष्टा वस्तुसे अभिन्न सच्चिदानन्द दर्शन करनेसे विमुख हो जाएँ। जो माया या खण्ड ज्ञानकी प्रतीतिमें वस्तुका दर्शन करनेमें व्यस्त हैं, वे मायावादी वैदांतिक हैं, और जो मायावादियोंकी दासतासे मुक्त होकर वस्तुका दर्शन करते हैं, वे तत्त्वविद् या वैष्णव हैं। वह तत्त्व केवल माया नहीं है, वह है—परम अखण्ड सत्य, विशुद्ध पूर्ण चिद् और अनुपादेयतारहित पूर्ण उपादेय घनानन्दका अद्वय ज्ञान। (क्रमशः)



ज्ञान

—३५ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

ज्ञान किसे कहते हैं?

ज्ञान किसे कहते हैं?—इस प्रश्नके बहुतसे उत्तर मिलते हैं। कोई कहते हैं कि मानवकी इन्द्रियाँ विषयोंको स्पर्शकर जो अनुभूति लाभ करती हैं, उसे ज्ञान कहते हैं। कोई कहते हैं कि अष्टाङ्ग-योग सिद्धिसे जो अनुभूतियाँ होती हैं, उसे ही ज्ञान कहते हैं। किसी-किसीका कहना है—एकमात्र ब्रह्मकी अनुभूति ही ज्ञान है। किसी पाश्चात्य पण्डितने ज्ञानको दो भागोंमें विभक्त किया है। वे एक भागको **Wisdom** एवं दूसरे भागको **Knowledge** कहते हैं। वास्तवमें इन लोगोंके द्वारा 'ज्ञान' शब्दका प्रकृत और सम्पूर्ण अर्थ प्रकाश नहीं होता। ये खण्ड अर्थ लेकर ही वाद-विवादमें अपना समय बिताते हैं।

ज्ञानके अभावमें ज्ञेयवस्तु निरर्थक है

वस्तुतः ज्ञान ही जगत्में एकमात्र तत्त्व है। ज्ञेय वस्तु ज्ञानसे पृथक होनेपर भी ज्ञानके अभावमें ज्ञेय वस्तु बेकार है। अतः सभी देशोंमें सभी

शास्त्रोंमें ज्ञानका असीम माहात्म्य वर्णन किया गया है।

ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाताका परस्पर सम्बन्ध

'ज्ञान' शब्दका उल्लेख करनेसे ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाताका पृथक्-पृथक् भाव मानस पटलपर उदित हो जाता है। जो अनुभव करते हैं, वे ज्ञाता हैं। जो वस्तु अनुभूत होती है, वह ज्ञेय है। अनुभव करनेके कार्यको ज्ञान कहते हैं। पुनः वही ज्ञाता दूसरोंके द्वारा अनुभव किए जानेपर ज्ञेयकी श्रेणी में आ जाता है। ज्ञान भी दूसरे ज्ञानसे अनुभव हो, तो प्रथम ज्ञान ज्ञेयकी श्रेणीमें आ जाता है। उसी तरह ज्ञेय वस्तु भी जब किसी दूसरी वस्तुका अनुभव करती है, तो उस समय वह ज्ञाता हो जाती है। अतः ज्ञान स्वरूपतः एक और सम्बन्धतः तीन वस्तु है।

सम्बन्धको छोड़कर केवल 'स्वरूप' विचार

ग्रहण करनेसे अनर्थ

स्वरूपका सम्मान करते हैं, किन्तु सम्बन्धको

हेय समझते हैं, यह अन्याय है। क्योंकि स्वरूपमात्रमें उनका सम्बन्ध-भाव नित्य होता है। एक अखण्ड स्वरूप तो स्वीकार करते हैं, पर सम्बन्धोंको अस्वीकार करते हैं। इससे तत्त्वोंकी अपूर्णता रह जाती है। इस विषयको सुंदररूपसे न समझनेके कारण ही जीवों के हृदयमें मायावाद, विवर्तवाद या केवलाद्वैतवादरूप बड़े-बड़े अनर्थोंकी सृष्टि होती है। स्वरूप और सम्बन्ध दानों ही युगपत् नित्य हैं। अतएव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता स्वरूपतः एक अखण्ड तत्त्व होकर भी सर्वदा सभी स्थानोंमें पृथक्-पृथक् रूपसे वर्तमान हैं। ऐसा विपरीत कार्य केवल भगवान्‌की अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे ही संघटित होता है। जीवोंके सर्वीम ज्ञानसे यह विषय उपलब्ध नहीं होता।

जीवों में ज्ञान-ज्ञेय ज्ञातृत्व

परमेश्वर पूर्ण ज्ञानस्वरूप हैं। जीव सीमाविशिष्ट खण्ड-ज्ञानस्वरूप है। परमेश्वरका ज्ञान हमलोगोंके लिए आलोच्य नहीं, किन्तु जीवोंका ज्ञान हमारे लिए आलोच्य है। अतएव हम जीवोंके ज्ञानकी आलोचना कर दिखलाएँगे कि जीवोंमें ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञातृत्व नित्य वर्तमान रहते हैं।

बद्ध और मुक्त जीवोंमें बद्ध जीवका ज्ञान ही आलोच्य है

जीवोंका ज्ञान तीन प्रकारका होता है। जीव जो कुछ अनुभव कर सकते हैं, उसे जीव-ज्ञान कहते हैं। जीव दो प्रकारके हैं—बद्ध और मुक्त। मुक्तजीव परमेश्वर की कृपा लाभकर अपना अनुभव राज्य कितना विस्तृत कर सकते हैं—हम उसका विचार करनेमें समर्थ नहीं हैं। केवल बद्ध जीवोंके अनुभवके सम्बन्धमें हम विचार कर सकते हैं।

स्थूल ज्ञान और लिंग (सूक्ष्म) ज्ञान चिन्मय नहीं हैं

बद्ध जीवों में तीन तरह की पृथक्-पृथक् सत्ताएँ हैं—(१) जीवका स्वरूप (२) लिंग-रूप (३) स्थूल-रूप। स्थूल सत्तामें जीव पञ्च इन्द्रियोंसे—चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वचासे ज्ञान संग्रह करता है। पाँचों इंद्रियों अपने-अपने

विषयोंका स्पर्श कर जो ज्ञान संग्रह करती हैं, वह स्थूल ज्ञान है। वही स्थूल-ज्ञान अंतः इन्द्रिय मनके पास लाए जाने पर, मन उसपर संकल्प-विकल्प, गौरव-लाघव आदि बुद्धिसे कल्पना और विभावना द्वारा अनेक तरहका जो नया-नया ज्ञान संग्रह करता है, उसे लिंगसत्ता का ज्ञान कहते हैं। योगसिद्ध पुरुष सूक्ष्म जगत् का जो रहस्ययुक्त ज्ञान प्राप्त करते हैं, वह भी जीवके लिंग या सूक्ष्म सत्ता का ज्ञान है। स्थूल और लिंग-स्वरूपके सभी ज्ञान प्राकृत होते हैं—चिन्मय नहीं। यही कारण है कि योगी लोग चित्-जगत् का संवाद संग्रह करनेमें असमर्थ होते हैं। इनका ज्योतिर्मय 'विशेष' सूक्ष्म जगत् की ही सम्पत्ति है। Astral-Phenomena और विभूति अर्थात् अणिमा, लघिमा आदि ऐश्वर्य—ये सभी लिंग (सूक्ष्म) जगत् में ही आबद्ध रहते हैं। इसके साथ चित्-जगत् का कोई निकटतम सम्बन्ध नहीं होता।

जीवोंका स्वरूप-भूत ज्ञान ही चिन्मय

और आत्मतत्त्व-ज्ञान है

जीवोंके स्वरूप-सत्तामें जो ज्ञान है एवं वहाँ जो ज्ञान उदित होता है, वही चित्-जगत्-सम्बन्धी ज्ञान है। अष्टाङ्ग योग, ज्ञानयोग आदि योगोंसे उस ज्ञानका कोई उपकार नहीं होता। जीवोंके स्वरूप-सत्ताभूत ज्ञानका नाम ही आत्मतत्त्व-ज्ञान है। वह दो प्रकारका होता है—स्वभावज और प्रसादज। जीव-सत्ताके स्वभावसे जिस ज्ञानका उदय होता है, वही जीवोंका स्वभावज ज्ञान है। लिंगसत्ता या स्थूलसत्तासे वह ज्ञान नहीं होता है।

स्वभावज ज्ञान

ईश्वर और जीव एकजातीय वस्तु हैं, अतः उनका स्वभाव या धर्म भी एकजातीय होता है।

जीव परम चैतन्य वस्तुका एक कणमात्र है। अतः परमचैतन्यके स्वभावका थोड़ा-सा परिचय जीव-स्वभाव में पाया जाता है। स्वभावका ही दूसरा नाम धर्म है। परम चैतन्य और जीवोंके धर्मोंमें एकता है। भेद केवल परिमाणमें है। जो धर्म पूर्ण और असीमरूपसे परमचैतन्यमें (भगवान्‌में) नित्य

वर्तमान रहता है, वही धर्म परमाणु परिमाणमें जीवोंमें भी नित्य वर्तमान रहता है। ईश्वर और जीव एकजातीय वस्तु हैं, अतः उनका धर्म भी एकजातीय होता है। लिंगधर्म या स्थूलधर्म ईश्वरमें नहीं होता, अतः जीवोंमें भी नहीं होता है। स्थूल शरीरभूत धर्म या लिंग शरीरभूत-धर्म बद्धजीवों का केवल औपाधिक धर्म है—स्वभाव नहीं। चित्स्वरूप जीव स्वप्रकाश वस्तु है। लिंगभूत मन, बुद्धि, अहंकार द्वारा वह जीव प्रकाशित नहीं होता। स्थूल शरीरके इन्द्रिय, चन्द्र, सूर्य या अग्निके आलोक द्वारा वह प्रकाशित नहीं होता। अतः स्थूल इन्द्रियोंसे प्राप्त ज्ञान अथवा मन, बुद्धि और अहंकाररूप लिंगशरीरका अनुभूत ज्ञान, भगवान् या जीवको कभी भी प्रकाशित करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। जीवका स्वभावभूत ज्ञान ही जीवके स्वरूपका परिचय देनेमें समर्थ होता है।

स्थूल और लिंग शरीर दूर होनेसे स्वरूप ज्ञानका उदय होता है

राखसे ढकी हुई आग जिस तरह देखी नहीं जाती, किन्तु राख हटते ही अपने उत्ताप और आलोक द्वारा स्वयं प्रकाशित हो पड़ती है, उसी प्रकार जीवोंके स्थूल और लिंग शरीर दूर होनेपर जीव-स्वरूप स्वयं प्रकाशित हो पड़ता है। स्थूल और लिंग आवरणरूप राखकी दो तहें जीवरूप अग्निको आच्छादित कर रखी हैं। जबतक ये दोनों तहें दूर नहीं होतीं, उस समय जीवका कोई परिचय है या नहीं? हाँ, है। राख से ढकी हुई आगके निकट बैठनेसे जिस प्रकार थोड़े परिमाणमें गर्मी पाई जाती है, उसी प्रकार दो तहों द्वारा ढके रहनेपर भी जीव थोड़ा-थोड़ा अपना परिचय दिया करता है।

बद्ध अवस्थामें जीवका अपना शुद्ध परिचय वह परिचय इस प्रकार है—

(१) मैं स्थूल और लिंग जगत्से एक अलग व्यक्ति हूँ।

(२) मेरा सम्बन्ध, मेरी आशा, मेरा स्वास्थ्य और मेरी स्वच्छन्ता इस स्थूल और लिंग जगत्से परे किसी दूसरी अवस्था में है।

(३) मैं एक स्वतन्त्र सत्ता होने पर भी किसी वृहद् स्वतन्त्र सत्ताके अधीन हूँ।

(४) मैं स्वभावतः उस वृहद् स्वतन्त्र सत्ताके द्वारा सर्वदा आकृष्ट हूँ।

(५) मैं किसी अपराधके कारण इस अस्वच्छन्द अवस्थामें लाया गया हूँ।

(६) मुझे उस अपराधका क्षयकर अपनी शुद्ध अवस्था लाभ करना आवश्यक है।

(७) केवल विशुद्ध प्रीति-सुख ही उस अवस्थाकी पहचान है।

(८) मैं स्वयं क्षुद्र हूँ, अतः शक्तिहीन हूँ। मैं अपने परम कान्तके (भगवान्के) आश्रयमें रहकर उनकी सहायतासे बल प्राप्त करूँगा।

(९) मैं अत्यन्त दूर पड़ा हूँ, किन्तु हमारे कान्त अपनी अचिन्त्य शक्तिके कारण सर्वदा ही हमारे निकट हैं।

(१०) हमारी वर्तमान अवस्था—स्थूल और लिंग शरीरसे आच्छादित होनेसे दुःखपूर्ण है।

स्थूल और लिंग शरीरका ज्ञान अपूर्ण और अशुद्ध होता है, अतः पग-पग पर उसमें सन्देह होनेसे तर्क उपस्थित होता है। यह तर्कपूर्ण ज्ञान (अज्ञान) बलपूर्वक आत्माके स्वाभाविक ज्ञानको पराजित कर उसका अनादर करता है। भाग्यवश साधुसंग एवं दूसरी सुकृतियोंका बल पाकर जब आत्मज्ञान बलवान् हो उठता है, तब स्थूल और लिंग शरीरका ज्ञान दुर्बल होकर निश्चेष्ट हो जाता है।

प्रसादज ज्ञान

प्रसादज ज्ञान दो तरह का होता है—(१) भगवत् प्रसादज ज्ञान और (२) भक्त प्रसादज ज्ञान

(१) भगवत् प्रसादज ज्ञान अर्थात् भगवान्की कृपासे उत्पन्न ज्ञान

शुद्ध भक्ति-साधना द्वारा परमेश्वरको प्रसन्न करनेसे वे कृपाकर जीवको अनन्त ज्ञान प्रदान करते हैं। योगबल अथवा अपनी इन्द्रियोंके बलसे अनन्त कालमें जो ज्ञान लाभ होता है, वह भगवान्की कृपा द्वारा प्राप्त ज्ञानके एक कणके

भी बराबर नहीं होता। भगवान्‌की कृपासे भक्त अप्राकृत ज्ञान-भण्डारका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करता है। योगी और प्राकृत पण्डितजन बहुत परिश्रम करके जितना भी ज्ञान अर्जन क्यों न करें, वे सभी ज्ञान प्राकृत होते हैं। योगियोंका चरम प्राप्य—कैवल्य होता है। कैवल्य प्राकृत ज्ञानकी शोष सीमा है, यह निश्चित है, किन्तु फिर भी वह अप्राकृत ज्ञान नहीं। उस कैवल्य अवस्थाको भेदकर उस पार जानेपर जीव चिद् राज्यकी विचित्रता देख पाता है। वहाँ पहुँचने पर जीव अप्राकृत ज्ञानका आस्वादन पाता है। जीव अपनी चेष्टासे कैवल्यको भेद नहीं कर सकता। भगवान्‌की कृपा बिना कैवल्यको पार करना कठिन है।

(२) भक्त-प्रसादज ज्ञान अर्थात् भक्तकी कृपासे प्राप्त ज्ञान

भक्त प्रसादज ज्ञान भी अत्यन्त दुर्लभ होता है। जो भक्त भगवान्‌की कृपासे अपने स्वाभाविक आत्म ज्ञानको समृद्ध कर सम्पूर्ण भगवत्-प्रसादज ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, ऐसे भक्त अपनी शक्ति संचारके द्वारा अपने कृपापात्र जीवको उस अप्राकृत ज्ञान-भण्डारका अधिकारी बना सकते हैं। ऐसे भक्तोंका संग जीवोंके लिए दुर्लभ होता है, अतः भक्त-प्रसादज ज्ञान लाभ करना सभी क्षेत्रोंमें सुगम नहीं होता।

ज्ञानके भेद

उपसंहारमें हमारा वक्तव्य यह है कि ज्ञानके तीन भेद होते हैं—

(१) इन्द्रियोंसे संग्रह किया हुआ स्थूल-ज्ञान।

(२) योग द्वारा प्राप्त लिंग-ज्ञान।

(३) जीवोंके स्वरूप-सत्त्वाका अप्राकृत-ज्ञान।

(१) इन्द्रियोंसे संग्रहीत स्थूल-ज्ञान इस स्थूल शरीरके नष्ट होनेके साथ-ही-साथ नष्ट हो जाता है। पदार्थ-तत्त्व-विद्यासे जो ज्ञान प्राप्त किए जाते हैं, उन सभी ज्ञानोंकी वही गति होती है। स्थूल-ज्ञानी जितना भी अहंकार क्यों न करें, मरनेके साथ ही उनका अहंकार और अहंकारके विषय सभी नष्ट हो जाएँगे। इस क्षुद्र अहंकारके

वशमें होकर वे जो अप्राकृत ज्ञानका तिरस्कार करते हैं, वह केवल उनके यथार्थ ज्ञानके अभावसे उत्पन्न उपद्रव विशेष है।

(२) योगद्वारा प्राप्त लिंग-ज्ञान लिंग-ज्ञानकी सीमातक ही काम आता है कर्मफलके अनुसार जीव जबतक लिंग शरीरके वशमें रहता है, तभीतक इस ज्ञानका बल रहता है। लिंग शरीर नष्ट होनेपर अर्थात् जब मुक्ति उपस्थित होती है, तब योगियोंका ऐश्वर्य ज्ञान उस समय कहाँ चला जाता है? अतः योग द्वारा प्राप्त ज्ञानकी भी असीमता नहीं, उसकी भी एक सीमा होती है।

(३) जीवोंके स्वरूप-सत्त्वाका अप्राकृत-ज्ञान ही नित्य, असीम और अनन्त होता है। उसी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए प्रयत्न करना जीवका कर्तव्य है।

व्यासदेवके प्रति श्रीनारदजीका ज्ञानोपदेश
श्रीनारदजीने श्रीव्यासदेवको उपदेश दिया है—
तत्त्वं व्रतोः प्रयत्नते कोविदो
न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यथः।
तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं
कालेन सर्वत्र गभीरहंसा॥

(श्रीमद्भा. १/५/१८)

अतएव हे व्यास! विचारशील व्यक्ति उस तत्त्व-ज्ञानको प्राप्त करनेके लिए कोशिश करेंगे, जो ज्ञान इस प्राकृत जगत्‌में ऊँच-नीच सभी स्थानोंमें भ्रमणकर ढूढ़नेपर भी नहीं पाया जाता। प्राकृत जगत्‌में जो सुख वर्तमान है, वह अति बलवान् कालके द्वारा परिचालित होकर दुःखकी तरह बिना चेष्टासे भी पाया जाता है।

श्रीमद्भागवत ही अप्राकृत ज्ञानप्रद ग्रन्थ है

श्रीमद्भागवत ग्रन्थ ही उस स्वानुभूत अप्राकृत-ज्ञानको देनेवाला ग्रन्थ है। अतएव श्रीमद्भागवतकी शिक्षा ही समस्त श्रुतियोंकी सार शिक्षा है। जीवोंकी स्वरूप-सत्त्वाका अप्राकृत-ज्ञान लाभ करनेकी यदि इच्छा हो, तो श्रीमद्भागवत ग्रन्थमें जिस अप्राकृत विचित्रताका वर्णन किया गया है, उसमें अप्राकृत ज्ञान-भण्डारकी खोज कीजिए। □



मायावादकी जीवनी

—३५ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ८, पृष्ठ १८५ से आगे)

शंकर अपनी ही युक्तियों द्वारा बौद्ध प्रमाणित होते हैं

हमने शङ्करको प्रच्छन्न बौद्ध कहनेके लिए पहले ही दिखलाया है कि जगत्के विचारमें बौद्धोंका क्षणिकवाद और शङ्करका प्रातिभासिक या तात्कालिकवाद एक ही चीज है, मोक्षके अभिधेय (उपाय) के विचारमें बन्धनके कारणोंको नाश करनेके लिए बौद्धोंकी प्रज्ञापारमिता और शंकरका ब्रह्मज्ञान, और मोक्षरूप प्रयोजन अर्थात् फलके विचारमें बौद्धोंका शून्यत्व तथा शङ्करका ब्रह्मत्व आदि विचार-समूह एक ही हैं। कतिपय पुराणोंमें भी ऐसा देखा जाता है कि शङ्कर मायावादी और प्रच्छन्न बौद्ध हैं। अद्वैतवादी शङ्कर सम्प्रदायके लोग पुराणोंके उन वचनोंको प्रक्षिप्त बतलाते हैं और मनगढ़न्त युक्तियोंके आधारपर यह कहना चाहते हैं कि वे न तो बौद्ध हैं और न मायावादी ही। उनमेंसे कोई-कोई उन वचनोंको प्रक्षिप्त न कह कर सत्य मानकर एक आश्चर्यजनक ऐतिहासिक युक्तिकी वृथा अवतारणा करनेका साहस करते हैं। ये लोग कहना चाहते हैं कि उक्त पुराणसमूह शङ्कराचार्यके आविर्भावके पश्चात् रचित हुए हैं। जो लोग पुराणोंको शङ्करके आविर्भावके बादका लिखा हुआ मानते हैं, वे पुराणोंके उन वचनोंको प्रक्षिप्त नहीं मानते हैं। उन लोगोंका कहना है कि शङ्करका नाम पुराणोंमें आनेके कारण शंकरका समय ईसाके भी जन्मके पूर्व है।

बड़े दुःखकी बात है, उक्त श्रेणीके ज्ञानशून्य मूर्ख ऐतिहासिकोंको यह समझना उचित है कि ऐसा होनेसे पद्मपाद, सुरेश्वर और गोविन्दपाद आदि शङ्करके समसामयिक व्यक्तियोंको भी ईसासे पहलेका मानना होगा। जैसा भी हो, ये युक्तियाँ

असत् उद्देश्य मूलक हैं। उक्त दोनों युक्तियोंके विरुद्ध ऐतिहासिक तत्त्वमूलक अनेक विचार दिये जा सकते हैं। लेख-विस्तारके भयसे ऐसा करनेसे निवृत्त हुआ। अब यहाँ मायावादकी जीवनी प्रकाश करनेके लिए मायावादियोंके वचनोंपर ही प्रधानरूपसे अवलम्बन करना अपना कर्तव्य समझकर यहाँ अपने पक्षकी युक्ति और अन्य पक्ष नहीं दिखलाया गया है। तर्कके लिए, पुराणोंकी रचना शङ्करके बादमें भी मान लिए जानेपर अथवा शङ्कर सम्बन्धी पुराणोंके वचनोंको प्रक्षिप्त मान लिए जानेपर भी यह दिखलाया जा रहा है कि शङ्कर एक प्रधान मायावादी और विशुद्ध बौद्ध थे।

शङ्कर महायानिक बौद्ध थे

शङ्करका आविर्भाव ईसाके जन्मके पूर्व हो अथवा पश्चात् आचार्य भाष्करके साथ शङ्करका विचार-युद्ध हुआ था—इसे कोई भी अद्वैतवादी अस्वीकार नहीं कर सकता; शङ्कराचार्यके साक्षात् शिष्य आनन्दगिरि का “शङ्कर-विजय” ग्रन्थ ही उसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। ऐसा जान पड़ता है कि आचार्य शङ्कर भास्कराचार्यको विचारमें परास्त न कर सके, बल्कि आचार्य भाष्करने ही अपने वेदान्त भाष्यमें शङ्करभाष्यके विचारोंका खण्डनकर उन्हें बौद्ध और मायावादी प्रमाणित किया है। दूसरे परोक्षमें रहकर लेखनी द्वारा नाना प्रकारकी वाग्-वितण्डा न कर आमने-सामने विचार अथवा शास्त्रार्थमें मायावाद कहीं छिन्न-विछिन्न हुआ है, कहीं जान बचाकर भागा है और कहीं अन्यान्य मतोंको ग्रहणकर शान्ति पाई है। इसके सम्बन्धमें मैं अधिक न कहकर केवल ऐतिहासिक घटनाओंको क्रमशः उद्धृतकर अपने उक्त वचनोंकी वास्तविकता प्रमाणित करूँगा। यहाँ आचार्य शङ्करके सम्बन्धमें

भास्करकी उक्तियोंको उद्भूत किया जा रहा है—

“तथाच वाक्यं परिणामस्तु स्याद् दध्यादिवदिति विगीतं विच्छिन्नमूलं महायानिक-बौद्ध-गाथायितं मायावादं व्यवनयन्ता लोकान् व्यामोहयन्ति।”

—(ब्रह्मसूत्रभाष्यम्-श्रीभास्कराचार्य-विरचित, १९१५ साल, चौखम्बा, संस्कृत बुक डिपो द्वारा प्रकाशित—पृष्ठ ८५)

अर्थात् (मायावादी शङ्कर) घृणित मूलहीन (सार रहित) महायानिक बौद्ध गाथाओंको ही (अपने मतके रूपमें) मायावादके नामसे प्रचारकर लोगोंको विशेषरूपसे मोहित कर रहे हैं। और दूसरी जगह भी—

‘ये तु बौद्धमतावलम्बिनो मायावादिनस्तेऽप्यनेन न्यायेन सूत्रकारेणैव निरस्ता वेदितव्याः’।
(ब्रह्मसूत्र भाष्यम्-भास्कराचार्य-विरचितम् सं. १९०३ में; चौखम्बा संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित पृष्ठ—१२४)

अर्थात् इस न्यायका अवलम्बन कर स्वयं सूत्रकारने ही (व्यासदेवने) बौद्ध मतावलम्बी मायावादियोंका खण्डन किया है—ऐसा समझना चाहिये।

भास्कराचार्यने शंकरमतका खण्डन करनेके उद्देश्यसे ही उक्त वचनोंसे युक्त ब्रह्मसूत्रके भाष्यकी रचनाकी है। भाष्यके प्रारम्भमें ही उन्होंने लिखा है—

**सूत्राभिप्रायसंवृत्त्या स्वाभिप्राय प्रकाशनात्।
व्याख्यातं यैरिदं * शास्त्रं व्याख्येयं-तत्रिवृत्तये॥**

—(ब्रह्मसूत्रभाष्यम्-भास्कराचार्य विरचित—सं. १९०३ में चौखम्बा संस्कृत बुकडिपो द्वारा प्रकाशित १ ले पृष्ठमें)

अर्थात् शंकरके मतको खण्डन करनेके लिए ही इस शास्त्र की व्याख्या की जा रही है। पुराण आधुनिक हों अथवा प्राचीन, और उनके वचन प्रक्षिप्त हों अथवा न हों, भास्करके उक्त वचनोंसे शंकर मायावादि और महायानिक बौद्ध प्रमाणित होते हैं या नहीं—इसका विचार पाठकवर्ग ही करेंगे। आचार्यभाष्कर शंकरके समसामयिक प्रतिद्वन्द्वी थे। यह एक सर्वविदित ऐतिहासिक सत्य है। अतः

उनकी उक्तियों से स्पष्ट विदित होता है कि आचार्य शंकरके प्रकट कालमें ही विशेष-विशेष आचार्यवर्ग उनको महायानिक बौद्ध समझते थे। क्योंकि महायानिक बौद्ध गाथाओंको अवलम्बन करके ही मायावादका शरीर, मन और जीवन गठित हुआ है। यहाँ पर कुछ प्रधान-प्रधान अद्वैतवादियोंकी इस विषयमें स्वीकृतियों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा।

अद्वैतवादी शिवनाथ शिरोमणिका मत

अद्वैतवादी माननीय शिवनाथ शिरोमणि महोदयने आचार्य शंकरके मतकी आलोचना करते समय अपना जो मन्तव्य प्रकाशित किया है, उसे नीचे उद्भूत किया जा रहा है—

“महात्मा शंकराचार्यने ईशोपनिषद् आदि दस उपनिषदोंकी टीका, वेदान्त या ब्रह्मसूत्रका भाष्य, और दूसरे-दूसरे बहुतसे ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। वेदान्त भाष्य या शारीरक भाष्य ही उनका अक्षय कीर्ति-स्तंभ है। इस ग्रन्थमें उनकी असाधारण प्रतिभा और गम्भीर ज्ञानका परिचय पाया जाता है। इस ग्रन्थसे यह विदित होता है कि बौद्धमतका खण्डन करने जाकर उन्होंने बौद्धोंकी युक्तियोंका ही अवलम्बन किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती बौद्ध दार्शनिक नागार्जुनके मतको अनेक स्थलोंपर ग्रहण किया है”।

—(१३०८ बंगला सम्बत्में प्रकाशित शब्दार्थमंजरी का परिशिष्ट, पृष्ठ ३५)

शिरोमणि महोदय शंकरकी प्रधानताकी रक्षा करते हुए यह कहना चाहते हैं कि शंकर बौद्धमतका खण्डन करने वाले हैं। वास्तवमें वे बौद्धमतके पोषक हैं, न कि खण्डन कर्ता। उनके समसामयिक साधारण लोगोंमें अपने प्रति श्रद्धा अर्जन करनेके लिए ही कायरतापूर्वक ऐसे वचनोंका प्रचार किया गया है। बौद्ध धर्मको खदेड़नेके सम्बन्धमें भी शंकरके विरोधी अन्यान्य आचार्यवर्गोंकी कीर्तिही सर्वापेक्षा अधिक प्रशंसनीय और आदरणीय है। हम उपयुक्त प्रसंगपर इसकी आलोचना करेंगे। □

प्रेम-प्रदीप

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ८, पृष्ठ २०० से आगे]

—श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(४) प्राणायाम-कार्य

(स तु) बाह्याभ्यान्तर स्तम्भवृत्तिर्देश-काल-
संख्याभिःपरिदृष्टा दीर्घ-सूक्ष्मः ॥६॥

(पा. द. २/५०)

बाह्याभ्यान्तर स्तम्भ-वृत्तिरूप प्राणायाम-कार्यमें
(क) देश-सम्बन्धी (ख) काल-सम्बन्धी और (ग)
संख्या-सम्बन्धी अनेक विधियाँ हैं।

(क) देश सम्बन्धी विधि—यह विधि इस प्रकार साधक पवित्र, समान और निर्विरोधी स्थानमें, जहाँ साधकके शरीर, मन और बुद्धि निश्चल हो सके, चेलाजिन कुशासनपर आसीन होकर प्राणायामका अभ्यास करेंगे। स्थानके निकट स्वच्छ जलाशय होना चाहिए। गृह साफ-सुथरा होना चाहिए और वहाँका वायु स्वास्थप्रद होना चाहिए। लघुपाक आहार आदि, जो साधकको प्रिय है, वहाँ बिना कष्टके प्राप्त हो सकें। अधिक गोलयोग न रहे, सरीसृप, जन्तु इत्यादि और मच्छर आदिका उत्पात न हो। स्वदेशसे दूर भी नहीं हो और अपना घर भी नहीं हो।

(ख) काल-सम्बन्धी विधि—यह विधि इस प्रकार है—शीतका प्रारम्भ अथवा शीतका अन्त प्राणायाम करनेका प्रशस्त काल है। प्रातः, मध्याह, अपराह और अधिक रातमें प्राणायाम ठीक प्रकारसे होता है। अभुक्त-कालमें अथवा भोजनके बाद प्राणायाम नहीं करना चाहिए। विशेष कम भोजन आवश्यक है। मादक द्रव्य एवं मांस-मछली आदि निषिद्ध हैं। अम्ल, रुक्ष, लवण और दाहकर द्रव्य निषिद्ध हैं। थोड़ा मीठा और स्निग्ध द्रव्य विशेषतः खोर बीच-बीचमें सेवन करना चाहिए। प्रातः स्नान आदि एवं अधिक रातमें भोजन आदि अनियमित कार्य निषिद्ध हैं।

(ग) संख्या-सम्बन्धी विधि—सर्वप्रथम आसनपर

आसीन होकर सोलह संख्यक बीज मनन करते हुए इडा वा चन्द्र-नासिका द्वारा वायुका पूरन करना चाहिए। चौंसठ संख्या जप करनेतक उस वायुका कुम्भक करना चाहिए। उसके बाद बत्तीस संख्या जप करनेतक उसका रेचन करना चाहिए। उसके बाद सूर्य-नासिका या पिङ्गला द्वारा सोलह मात्रा पूरन कर चौंसठ मात्रा कुम्भक और बत्तीस मात्रा रेचन करना चाहिए। पुनः इडा द्वारा पूरनकर कुम्भकके अन्तमें पिङ्गला द्वारा पूर्व मात्रा-क्रमसे रेचन करना चाहिए। इस प्रकार तीन बार करनेसे मात्र एक प्राणायाम होता है। नासिकाके बाएँ छेदको इडा या चन्द्र कहते हैं तथा दाएँ छेदको पिङ्गला या सूर्य कहते हैं। कुम्भक रन्ध्रका नाम सुषुम्ना है। मतान्तरमें सर्वप्रथम रेचक ही आरम्भ होता है, किन्तु सर्वत्र ही फल एकसमान है। एक-एक बार कर बारह मात्रा प्राणायाम अभ्यास करनेसे अधम-मात्रा साधित होती है। सोलह मात्रा अभ्यास करनेसे मध्यम-मात्रा और बीस-मात्रा होनेसे उत्तम-मात्रा साधित होती है। सभी मात्राएँ प्रातः, मध्याह, अपराह, सन्ध्याके बाद और मध्य रात्रिमें—ये पाँच बार करनी पड़ती हैं।

तीन महीनोंतक इस प्रकार करनेसे नाड़ी शुद्ध होती है। नाड़ी शुद्ध होनेपर केवल कुम्भक नामक प्राणायामका चतुर्थ अङ्ग साधित होता है। यथा पतञ्जलिने कहा है—बाह्याभ्यान्तर-विषयाक्षेपी चतुर्थः ॥७॥ (पा.द. २/५१)

'केवल' नामक चतुर्थ कुम्भकमें रेचक-पूरकरहित प्राणायाम होता है।

कुम्भकके उत्तमरूपसे साधित होनेपर दो महान् फल होते हैं। प्रथमतः मनका प्रकाशावरण क्षय होता है। द्वितीयतः धारणकार्यमें मनकी योग्यताका उदय होता है।

(५) प्रत्याहार

**स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां
प्रत्याहारः ॥८॥** (पा.द. २/५४)

इन्द्रियका जो विषय है, उसमें इन्द्रियका 'सम्प्रयोग' नहीं कर चित्तस्थ इन्द्रिय-'मात्रा' स्वरूपमें इन्द्रियोंको अवस्थित करनेका नाम है—प्रत्याहार। क्रमशः दर्शन-वृत्तिको तत्-वृत्तिरूपमें चित्तस्थ रखनेका अभ्यास करनेसे नेत्र-इन्द्रियका प्रत्याहार होता है। इसी प्रकार सभी इन्द्रियोंका प्रत्याहार कर सकनेपर क्रमशः चित्तवृत्तिका निरोध और विषय-लालसाका अभाव होता है। एकमात्र साधक ही इस प्रक्रियाका अनुभव कर सकते हैं। इसका अभ्यास करनेसे मुद्दो विशेष फल प्राप्त हुआ था।

(६) धारणा

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ॥९॥ (पा. द. ३/१)

नाभि, नासिका आदि किसी-किसी देश-विशेषमें चित्तके बन्धनका नाम धारणा है। ध्यानकी सहायता और समाधिका उदय ही धारणाका चरम फल है। किन्तु, धारणा-कालमें अनेकानेक विभूतियोंका उदय होता है, जिसे कहनेका मैं कोई प्रयोजन नहीं समझता हूँ। केवल इतना ही जानना चाहिए कि जो परमार्थका अन्वेषण करते हैं, वे विभूतिके पीछे नहीं भागते हैं। धारणा-कालमें अनेक विभूतियाँ उदित होती हैं, किन्तु वैष्णव लोग उन्हें ग्रहण नहीं करते हैं। हठयोगमें जिसे मुद्रा कहते हैं, उसे ही दार्शनिक योगिगण धारणा कहते हैं।

(७) ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता-ध्यानम् ॥१०॥ (पा. द. ३/२)

जिस देश (अङ्ग) में धारणा साधित हुई है, उस देशमें ज्ञानकी एकतानताका नाम ध्यान है। यथा—जिस समय श्रीकृष्णके चरणमें धारणा साधित होती है, उस धारणामें भगवान्‌के चरणोंमें जो एकतान ज्ञान या प्रत्यय है, वही चरण-ध्यान नाम प्राप्त करता है। धारणाके स्थिर नहीं होनेसे ध्यानकी स्थिरता सम्भव नहीं है।

(८) समाधि

तदेवार्थमात्र-निर्भासं स्वरूप-शून्यमिव समाधिः ॥११॥

(पा. द. ३/३)

ध्यानमें भी धारणागत अर्थ-मात्रका प्रकाश होता है, किन्तु जिसमें स्वरूप शून्यकी भाँति प्रकाशित होता है, वैसी अवस्थाका नाम समाधि है। जो निर्विशेषवादी हैं, वे समाधि लाभ करनेके बाद और 'विशेष' नामक धर्मको लक्ष्य नहीं करते हैं। हठयोगकी चरम अवस्थामें ऐसी ही समाधि उदित होती है। राजयोगमें समाधिकी अवस्थामें प्रकृतिसे अतीत तत्त्वकी उपलब्धि होती है। उस समाधिकी अवस्थामें विशुद्ध प्रेमका आस्वादन होता है। इस विषयको वाक्यके द्वारा नहीं व्यक्त किया जा सकता है। जिस समय आप ऐसी समाधि प्राप्त करेंगे, उसी समय इस अवस्थाको भी भलीभाँति समझ पाएँगे। जो कुछ मैंने कहा, इसके अतिरिक्त बातोंका उपदेश वाक्यके द्वारा नहीं दे सकता हूँ।"

इतना कहकर योगी बाबाजी शान्त हो गए। वक्तृताके समय मल्लिक-महाशयने सभी बातोंका थोड़ा-थोड़ा संकेत लिख लिया था। जब समाधि तकका उपदेश समाप्त हो गया, तब वे बाबाजीके चरणप्रान्तमें पतित होकर बोले—“प्रभो ! इस दासके प्रति कृपा करते हुए योगाभ्यासकी शिक्षा प्रदान करें। मैंने अपने जीवनको आपके चरणोंमें बेच डाला।”

मल्लिक महाशयको उठाकर आलिङ्गन करते हुए बाबाजीने कहा—“एकान्तमें बैठकर योगाभ्यास करना होगा। आज रातमें आप योगाभ्यास आरम्भ कर सकते हैं।”

नरेन बाबू और आनन्द बाबूने बाबाजीके पाण्डित्य एवं गम्भीरतासे क्रमशः प्रसन्न होकर श्रद्धापूर्वक नम्रतासे अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया।

आनन्द बाबूने कहा—“बाबाजी महाशय ! हमलोग सिंहकी भाँति आए थे, किन्तु अभी कुत्तेके समान हो गए हैं। आनेके समय मनमें सोचा था कि पौत्रलिक पूजा और निरर्थक व्रत आदिमें व्यस्त होकर हिन्दू समाजने सामाजिक जीवनका परित्याग किया है। ब्राह्म-धर्मका प्रचार कर हमलोग

पुनः वह जीवन प्रदान करेंगे। हमलोगोंके मनमें था कि वैष्णवगण तत्त्वज्ञानमें क्षमताहीन होकर केवल पर-वाक्यसे निरर्थक संसार छोड़ देते हैं। वैराग्य-ग्रहण केवल वैष्णवी (वैष्णव पदवी) प्राप्त करनेके उपायस्वरूप है। हमलोग ब्राह्म-धर्मका प्रचारकर वैष्णवोंके चित्तका अहङ्कार दूर कर देंगे। अभी बहुत कम दिन हुए हैं, हमलोग आपके श्रीचरणोंमें आए हैं, किन्तु आपके आचार-व्यवहार, पाण्डित्य और पारमार्थिक प्रेमको देखकर हमलोगोंके कुसंस्कार दूर हो गए हैं। क्या कहूँ! अभी हमलोगोंने यह स्थिर किया है कि आपके श्रीचरणोंमें रहकर हम अनेक तत्त्व-विषयकी शिक्षा करेंगे।”

बाबाजीके चरणोंमें दण्डवत् प्रणामकर नरेनबाबूने कहा—“यदि हमारे प्रति कृपा हो, तो हमारे कुछ संशयोंको दूरकर मानसिक क्लेशसे हमलोगोंका उद्धार करें। इस बातको तो मैं निश्चय ही समझ चुका हूँ कि वैष्णव धर्म अत्यन्त दोषरहित है। जिन-जिन विषयोंको दोष कहकर हमारे तार्किक अन्तःकरणमें कुतर्क उठ रहा है, वे सभी वास्तविक दोष अथवा भ्रम नहीं, बल्कि किसी प्रकारके भङ्गिविशेष हैं। भङ्गिक्रमसे कोई दूरवर्ती तत्त्व लौकिकरूपमें वर्णित हुआ है। आपके जैसे महानुभव पण्डितगण किसी भ्रमकी पूजा करेंगे, ऐसा बोध नहीं होता।”

बाबाजीने हँसते हुए कहा—“बाबूजी! आप सत्यके निकटस्थ हुए हैं। वैष्णव-तत्त्व वास्तविक ‘अपरोक्षवाद’ है। यह वैसा नहीं है, जो हठात् सुना जाय या देखा जाय। वैष्णव-तत्त्व सम्पूर्ण अप्राकृत-विषयक है अर्थात् वैष्णव धर्मके समस्त इतिहास, वर्णना और विवरण प्रकृतिसे अतीत जगत्‌से सम्बन्धित है। साधारण लोगोंके निकट उस जगत्‌को ‘वैकुण्ठ’ कहता हूँ। उस जगत्‌में जो विचित्रता और विशेषत्व है, वह कथाके रूपमें नहीं कहा जा सकता या मनसे ध्यान नहीं किया जा सकता, क्योंकि कथा और मन सर्वदा ही

भौतिक चेष्टाओंमें आबद्ध हैं। भौतिक जगत्‌में उन-उनके ‘सदृश’ जो समस्त तत्त्व हैं, उनका अवलम्बन करते हुए वैकुण्ठ-तत्त्व, वैष्णव-धर्म वर्णित एवं व्याख्यात हुए हैं। इसीलिए इसमें युक्तिवादसे उत्पन्न धर्मोंकी अपेक्षा निर्दोष और गूढ़ सत्यसमूह प्राप्त होते हैं। जो समस्त धर्म युक्ति द्वारा निर्णीत होते हैं, वे सभी धर्म क्षुद्र और असम्पूर्ण होते हैं। किन्तु, समाधियोगमें जिस धर्मका उद्देश पाया गया है, उसे ही जीवनका नित्य-धर्म समझें। प्रेम ही वैष्णव-धर्मका जीवन है, प्रेम कदापि युक्तिके अनुगत धर्मद्वारा साधित नहीं हो सकता है। परम सौभाग्यक्रमसे आपलोग वैष्णव-प्रेमके प्रति आकृष्ट हुए हैं। आज प्रसाद-सेवाके बाद आपके संशयोंको श्रवणकर यथासाध्य उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।”

उसी समय ठाकुरजीके गृहका शंख बज उठा। बाबाजीने कहा—“पूजा समाप्त हो गई है। चलें, हमलाग श्रीमूर्तिका दर्शन करें।” सभी लोग उठकर हाथ जोड़कर भगवान्‌का दर्शन करने लगे। बाबाजीके नत्रोंसे अविरल प्रेमाश्रु बहने लगे। इस पदको बोलते हुए बाबाजी नृत्य करने लगे—

“जय राधे कृष्ण, जय राधे कृष्ण,
जय वृन्दावन-चन्द्र।”

बाबाजीके नृत्य और प्रेमको देखकर मलिलक महाशय भी नृत्य करने लगे। नरेन बाबूने आनन्द बाबूसे कहा—“हमलोग भी नृत्य करते हैं, यहाँ ऐसा कोई नहीं है, जो हमलोगोंका उपहास करेंगे। यदि आज संशय दूर हो जाय, तो ‘राधाकृष्ण’ बोलनेमें और लज्जा नहीं करूँगा।” ऐसा कहकर दोनों लोग ताली बजाते हुए बाबाजीके साथ नृत्य करने लगे। पुजारी महाशय चरणामृत ले आए और सबने उसका पान किया। कुछ देर बाद अन्नका भोग भी हो गया।

बाबाजी और अन्य तीनों बाबुओंने विशेष श्रद्धाके साथ प्रसाद-सेवा की। □

पञ्चम प्रभा समाप्त



अमोघकी कहानी

यह बहुत दिन पुरानी बात है, जिस समय श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रमें श्रीमन्महाप्रभु सन्यास लीलाका अभिनय कर रहे थे, उस समय वैष्णवोंके घरकी स्त्रियाँ भी सच्ची सहधर्मिणी कहलाने लायक थीं। एक दिन सार्वभौम भट्टाचार्य महाशयके आग्रहसे श्रीगौरसुन्दर उनके घर भिक्षा करनेको राजी हुए। भट्टाचार्यने बड़े आनन्दसे श्रीमन्महाप्रभुके लिए गौड़ीय और उत्कल देशकी प्रथाके अनुसार तरह-तरहके व्यञ्जन, खीर, हलुआ आदि तैयार करनेके लिये षाठीकी माताको नियुक्त किया। षाठीकी माता बड़े यत्नसे भोग राँधने लगीं, स्वयं भट्टाचार्य भी रसोइके काममें लगे। श्रीगौरसुन्दरकी भिक्षाके लिये भट्टाचार्यने एकान्तमें एक नया मकान बनवाया था। उस मकानमें दो दरवाजे थे, एक महाप्रभुके प्रवेशके लिये और दूसरा परोसनेके लिये। श्रीचैतन्यचरितामृतमें कविराज गोस्वामी प्रभुके वर्णनसे जान पड़ता है कि षाठीकी माता उत्कल और गौड़ीय प्रथाके अनुसार नाना प्रकारके सुस्वादु व्यञ्जन, हलुआ, खीर आदि बनानेमें बहुत होशियार थी। भट्टाचार्यकी गृहिणी श्रीगौरसुन्दरसे अत्यन्त स्नेह करती थी। आज उन्होंने वात्सल्य रससे अधिषिक्त होकर प्रसन्न चित्तसे शचीनन्दन श्रीगौरसुन्दरके लिए बहुत बड़े अखण्ड कलेके पत्तेपर पीले सुगन्धित घृतसे चावल सिक्तकर तरकारी-चटनी आदिसे सजाया। दस तरहकी तरकारी, नीम मिले तीते स्वादका रसा, मिर्चकी चर्परी, छेनेका बड़ा, दही बड़ा, कद्दूकी खीर, कुम्हड़ेकी खीर, उत्कल देशका प्रसिद्ध व्यञ्जन बेसब लाफरा, मोचाघण्ट (कलेके फूलकी तरकारी) मोचा भाजा साकूरा नामक मीठे स्वादके कई प्रकारके व्यञ्जन कुम्हड़ौरीके तरह-तरहके

व्यञ्जन, फुलौड़ी, तला हुआ बैंगन, परमल, कुम्हड़ा तली हुई मूँग, उरदकी दाल, पाँच-छः प्रकारकी मिठाई आदि बनाई। इसके बाद उन्होंने सब पकवानोंको मिट्टीकी रकाबीमें सजा दिया। दूधमें चम्पा केला और आमका रस निचोड़ दिया। दही सन्देश आदिके बाद श्रीजगन्नाथका प्रसाद मृन्मय गुटिका और मीठा शरबत बनाया। श्रीमन्महाप्रभुने सार्वभौमके मनोभावको समझकर मध्याह्नमें अकेले उनके घर शुभागमन किया। श्रीगौरसुन्दर भट्टाचार्यके घर इतनी तैयारी देखकर कहने लगे, कि इतना अन्न-व्यञ्जन दो पहर भरमें कैसे तैयार हो गया? सौ मनुष्यों द्वारा सौ चुल्हे पर भी इतने थोड़े समयमें इतना अधिक सामान बनाना असम्भव है। भट्टाचार्यकी लड़कीका नाम षाठी और दामादका नाम अमोघ था। अमोघ बड़ा ही निन्दक आदमी था। श्रीगौरसुन्दरको भोजनपर बिठाकर भट्टाचार्य परोस रहे थे, बीचमें अमोघकी निगाह बचानेके लिए हाथमें लाठी लेकर दरवाजेपर बैठ चारों ओर सतर्क दृष्टि रखे हुए थे। श्रीगौरसुन्दरको जगन्नाथजीका प्रसाद देनेके समय भट्टाचार्यका ध्यान कुछ बँट गया, इसी अवसरमें अमोघने भोजन-सामग्री देख ली और निन्दा आरम्भ कर दी। कहा कि इतने सामानसे दस-बारह आदमी तृप्त हो सकते हैं। अकेले सन्यासीके लिये इतना अधिक भोजन क्यों रखखा गया? यह सुनते ही भट्टाचार्य लाठी तानकर उसे मारने चले। अमोघ मारके डरसे भागा। श्रीमन्महाप्रभु अपना यह अपमान सुन हँसने लगे। भट्टाचार्य खूब नाराज हूए, षाठीकी माँ अमोघको शाप देने लगी। षाठीकी माताने हाथोंसे सिर और छाती पीटना आरम्भ किया, साथ ही कहने लगी—“षाठी विधवा हो।”

सपत्नीक सार्वभौमका यह दुःख देख दयालु ठाकुर श्रीगौरसुन्दरने दोनोंको धैर्य देते हुए भोजन समाप्त किया। सार्वभौम दण्डवत् कर बड़े ही दैन्य-वचनोंमें श्रीमन्महाप्रभुके अभयामृत श्रीपदमें बहुत-बहुत क्षमा-प्रार्थना करते हुए श्रीगौराङ्गसुन्दरके साथ-साथ चले। असीम करुणासिन्धु गौरसुन्दरने सार्वभौमको धीरज दे घर लौटा दिया। सार्वभौमने गृहिणीसे कहा कि जिसके मुखसे श्रीचैतन्यदेवकी निन्दा निकले, उस निन्दकका वध करनेसे ही वह दुःख दूर होता है, अथवा अपने ही मर जानेसे। किन्तु हाय! इन दोनोंमें एक काम भी हो नहीं सकता। क्योंकि यह दोनों ही देह ब्राह्मणके हैं। अब मैं इस निन्दकका मुँह नहीं देखूँगा, षाठीसे कहो कि ऐसे पतित पतिको वह भी त्याग दे।

अमोघ उस रात कहीं बाहर ही छिपा रहा, दूसरे दिनका सबेरा होते ही अमोघको शीतला निकल आई। अमोघका कोई भरोसा न सुन भट्टाचार्यने कहा—दैव ही मेरे सहाय हुए। यह ईश्वरके अपराधका बदला मिला है। आयु, यश, धर्म, लोक और आशीर्वाद, ये सभी श्रेय वस्तुएँ मनुष्यके अहङ्कारसे विनष्ट हो जाती हैं, शास्त्रमें ऐसा ही कहा है।

सबेरे श्रीपाद गोपीनाथ आचार्य श्रीमन्महाप्रभुके दर्शनको गये। अन्तर्यामी प्रभुने सार्वभौमका समाचार पूछा। आचार्यने बतलाया कि भट्टाचार्य और षाठीकी माता निन्दक दामाद द्वारा श्रीचरणमें अपराध होनेके भयसे बड़े दुःखके साथ उपवास कर रहे हैं। अमोघ शीतलाके प्रकोपसे मरने-मरने-सा हो रहा है। भक्त-वत्सल श्रीगौरहरि इस समाचारसे स्थिर रह न सके। पहले वे अमोघके पास पहुँचे और उसकी छातीपर श्रीहस्त फेरकर कहा—“अमोघ! ब्राह्मणका हृदय सरलतासे पूर्ण होना चाहिए। सरलता ही ब्राह्मणका लक्षण है। जहाँ सरलता है, वहाँ ही कृष्ण निवास करते हैं। डाह करना चण्डालका स्वरूप है। अतः हृदयमें

चण्डालको बैठाकर पवित्र स्थानको अपवित्र क्यों करते हो? सार्वभौमके सङ्गके प्रभावसे तुम्हारे पापोंका क्षय हो गया है। पापोंके मिटनेपर मनुष्य कृष्णनाम लेता है, अतएव अमोघ! तुम शीघ्र उठो और कृष्णका नाम लो, भगवान् शीघ्र ही तुमपर कृपा करें।”

श्रीमन्महाप्रभुकी इस आश्वास-वाणीको सुन अमोघ प्रेमोन्मादसे मतवाले हो उसी समय उठकर ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहने और नाचने लगे। अमोघने बार-बार श्रीमन्महाप्रभुके चरणमें बहुत दीनताके साथ अपराधकी क्षमा माँग, अपने हाथों ही अपना मुँह पीट कर लाल कर लिया। गोपीनाथ आचार्यने अमोघका हाथ पकड़ लिया। परम दयालु पतित पावन श्रीगौरसुन्दर अमोघके शरीरपर हाथ फेरते हुए हर तरहके वचनोंसे उसको प्रबोध देते हुए कहने लगे—“सार्वभौमके सम्बन्धसे तुम मेरे स्नेहपात्र हो, तुम्हारी तो बात ही और, सार्वभौमके घरके दास-दासी, पशु-पक्षी सभी मुझे प्रिय हैं। तुम्हारा कोई अपराध नहीं, तुम कृष्णका नाम लो।”

इसके बाद श्रीगौरसुन्दर सार्वभौमके पास आए। सार्वभौम प्रभुको देख साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते हुए प्रभुके श्रीचरणोंमें लोट गए। श्रीमन्महाप्रभुने सार्वभौमको उठाकर उनका आलिङ्गन किया और आसन ग्रहण किया। प्रभुने कहा—“भट्टाचार्य! अमोघ बालक है, उसका दोष नहीं, तुम क्यों नाहक क्रोधमें पड़कर उपवास कर रहे हो? उठो, शीघ्र नहा-धोकर श्रीनीलाचलसुन्दरके श्रीमुखका दर्शनकर, शीघ्र लौटके प्रसाद ग्रहण करोगे, तबतक मैं यही बैठा रहूँगा।”

भट्टाचार्यने प्रभुके अभयपदमें प्रणाम कर कहा—“प्रभो! आप श्रीजगन्नाथ दर्शनको चलें, मैं स्नान करके अभी आता हूँ।”

श्रीगौरसुन्दरने गोपीनाथ आचार्यको आज्ञा दी, कि वे यहाँ ही रहें, भट्टाचार्य बहुत शीघ्रतासे स्नान-भोजन कर श्रीमन्महाप्रभुसे जा मिले।

इस कहानीमें सार्वभौमकी सहधर्मणीकी अलौकिक भगवत्-निष्ठा जगत्‌में आदर्शस्थानीय है। हम इस संसारमें मायासे विमोहित जीव हैं, जड़-सम्बन्धको चिरस्थायी समझ बैठे हैं। हमारी समझमें नहीं आता कि स्नेहमयी जननीके कैसे प्राणसे भी बढ़कर प्यारी कन्याको वैधव्यका अभिशाप दिया? इधर चैतन्यदेवकी दयाका विचार करो, विचार करनेसे चित्त गद्गद हो जाता है। श्रीमन्महाप्रभुके भक्तगण भगवत्-सम्बन्धमें गौरेक-सर्वस्व हैं, इसीसे वैष्णवगण मृत्युञ्जयी हो जगत् निवासियोंके स्मरणीय, वन्दनीय, और पूजनीय हैं। मैं नहीं जानता कि वैष्णवकी घरवालियोंकी यह उज्ज्वल सुचरिता वर्तमान समयकी पाश्चात्य शिक्षाभिमानिनी बहनोंकी आँखमें कैसी जचेगी। पौराणिक युगमें नारियाँ ऋग्वेदके मन्त्रकी रचना करती थीं। जैसे विश्ववारा, अत्रि कन्या अपाला, सूर्य कन्या घोसा, सर्पराजी आदि बहुतसी महिलाएँ ऋषि मानी जाती थीं। किन्तु उस समय भी अवतार-शिरोमणि श्रीमन्महाप्रभुके प्रकट होनेके समयकी जैसी भक्तिमती कृष्णकशरण विदुषी नारियाँ जगत्‌में दुर्लभ ही थीं।

इस कहानीमें हमारी शिक्षाके लिये अनेक बातें हैं। श्रीगौरसुन्दरने यह दिखाया कि सरलता ही ब्राह्मणका लक्षण है। मात्सर्य (डाह) चण्डालका लक्षण है। उन्होंने हमें दूसरी शिक्षा दी है—

भगवान् सबका ही करते उद्धार।

एक-न वैष्णव-निन्दा दुराचार॥

भगवान् श्रीगौरसुन्दरने अमोघके ईश्वर अपराधको क्षमा किया। किन्तु, वैष्णव-निन्दकोंके लिए खड़गहस्त हैं। इस प्रसङ्गमें अम्बरीष और दुर्वासाका दृष्टान्त याद आता है। तीसरे भगवान् भक्तोंपर इतनी करुणा करते हैं, कि एकमात्र भक्त सार्वभौमके लिए ही उन्हें अमोघको क्षमा करना पड़ा। चौथे यह कि वास्तविक वैष्णवगृहिणी या वैष्णव ग्रहस्थ विष्णु और वैष्णवकी निन्दा सुननेसे प्राणसे भी प्रिय सम्बन्धियोंका भी अमङ्गल सोचते हैं या उनका साथ छोड़ देनेमें जरा भी नहीं हिचकते।

भक्तके अधीन भगवान्‌की लीला श्रीसाधु और श्रीगुरुकी कृपासे ही समझमें आ सकती है। श्रीशचीनन्दन गौरहरिने जगत्‌में प्रेमका सागर लहरा दिया है। □

अरे भाई! भक्तिसे भोग और त्यागको दूर रखो?

एक गन्दे कीचड़युक्त सरोवरके किनारे कई बगुले बैठे हुए थे। उसी स्थानसे होकर एक राजहंस जा रहा था। एक बगुलेने उस राजहंससे पूछा—तुम्हारी आँखे, मुख एवं पाँव इत्यादि लाल रंगके क्यों हैं? तुम कौन हो?

राजहंस बोला—मैं राजहंस हूँ।

बगुला—कहाँसे आ रहे हो?

हंस—मानस सरोवरसे।

बगुला—वहाँ क्या है?

हंस—वहाँ स्वर्णकमलके वन हैं, जल अमृतके

समान है। चारों ओर रत्नमण्डित वेदियोंपर नानाप्रकारके फल-फूलोंसे लदे वृक्ष शोभा पा रहे हैं।

बगुला—वहाँ क्या बड़े-बड़े शंख हैं।
हंस—नहीं।

यह सुनते ही सभी बगुले 'ही' 'ही' कर हँसने लगे और बोले—अरे! रहने दो, जब वहाँ शंख ही नहीं है, तब उस जलाशयकी सरोवरके रूपमें गिनती नहीं की जा सकती। उस दिशामें जाना ही नहीं चाहिए।

कई बार जगत्‌के अन्याभिलाषी व्यक्ति शुद्धभक्ति या शुद्धभक्तिके स्थान इत्यादिके विषयमें जिज्ञासा करते हैं। जब वे यह सुनते हैं कि वहाँ हरिकथा श्रवण, कीर्तनके अनुशीलन एवं हरिकथा प्रचारके द्वारा जीवके नित्य कल्याणका विधान किया जाता है, तब वे पूछते हैं—क्या वहाँ सेवाधर्म है? सेवाधर्मका तात्पर्य वे लोग समझते हैं—प्लेग, बाढ़, सूखा, भूकम्पग्रस्त एवं पीड़ित लोगोंको अन्न-दान एवं वस्त्र इत्यादि प्रदान करना। अब यदि भगवद्भक्त ये कहते हैं कि शुद्धभक्तिके अनुशीलनमें ये सब कर्म नहीं होते, तब वे 'हीं' हीं कर हँसने लगते हैं अर्थात् मुँह विचकाकर कहने लगते हैं—जहाँ प्लेग, वसन्त, कॉलरा रोगीकी परिचर्या या भूखेको अन्नदान, प्यासेको जल-दान इत्यादि धर्म—कर्म नहीं है, वह तो केवल आलसी और अकर्मी पेटूओंका अड़ाखाना ही है—उस धारामें किसी विचारकका जाना उचित नहीं।

यदि उन लोगोंको यह समझाया जाय कि जीवोंके क्लेशोंको जड़से नहीं उखाड़कर केवल उनके सामयिक निस्तारकी चेष्टाद्वारा कभी भी अनन्त क्लेशोंसे नित्य मुक्ति लाभ नहीं की जा सकती, तब वे इन सारी बातोंपर कान ही नहीं देते।

जीव नित्यकाल ही कृष्णका दास है। कृष्णको भूलनेके कारण ही उसको असंख्य प्रकारके दुःख-क्लेशोंको भोगना पड़ता है। कृष्णकथाका श्रवण करते-करते जब उसका स्वरूपधर्म जागरित

होगा, तब अनायास एवं आनुसङ्गिकरूपसे ही समस्त क्लेशोंका मूलसे ही उन्मूलन हो जाएगा। एसीलिए पृथकरूपसे अनित्य दैहिक क्लेशादिको दूर करनेकी चेष्टा अनावश्यक है। भगवान्‌के श्रीनामका वितरण एवं भगवान्‌की कृपासे लोगोंकी आत्माको जगानेका कार्य ही सर्वश्रेष्ठ उपहार है। इसके आभास मात्रसे दुःखी और आर्त लोगोंके क्लेशोंकी जड़ें अनायासरूपसे नष्ट हो जाएँगी। तथाकथित धनी, निर्धन—सभीका वास्तविक नित्यमङ्गल इसीके द्वारा होगा। इसीके द्वारा सार्वजनीन्^१ और असाम्प्रदायिक^२ परोपकार एवं परार्थपरता^३, निस्वार्थपरता^४ और स्वार्थपरता^५ का अपूर्व सम्मेलन साधित होगा। निखिल चेतन एवं अचेतन विश्वसमूहके एकमात्र पति और पालक कृष्णकी सेवामें तथाकथित विश्वप्रेमका अभाव नहीं है—जैसे एक करोड़ रूपयेमें एक रूपया सम्मिलित है, वैसे ही कृष्णप्रेममें यथार्थ विश्वप्रेम, यथार्थ देशप्रेम इत्यादि पूर्ण मात्रामें विद्यमान हैं। अतएव जो भगवान्‌की भक्ति करते हैं, वे ही यथार्थ जीव कल्याण और परोपकार कर सकते हैं। यथार्थ भक्त आलसी और अपस्वार्थपर नहीं हैं। वे सर्वत्र ही दिन-रात अविश्रान्त भावसे श्रद्धावान् जीवोंके निकट शब्दब्रह्म^६ प्रचारके आनुकूल्य^७ समस्त चेष्टा करते हैं।

भक्तिमें कृष्णके ही स्वार्थ वा कामको पूर्ण करनेकी चेष्टा होती है। उसमें जीवके भोग वा त्यागका कोई अंश नहीं। जिसमें कृष्णभक्ति है, उसीमें समस्त सद्गुण विद्यमान हैं। □



१. सार्वजनीन—सर्व साधारणक लिये हितकर।
२. असाम्प्रदायिक—जो किसी जाति, देश, समाज, व्यक्ति वा सङ्गीर्ण मतमें आबद्ध नहीं।
३. परार्थपरता—दूसरोंके अर्थ वा प्रयोजनके निमित्त चेष्टा या धर्म।
४. निस्वार्थपरता—जो चेष्टा स्वयंके भोगके निमित्त न हो।
५. स्वार्थपरता—‘स्व’ अर्थात् ‘आत्माका’ चेतनका अर्थ—जो प्रयोजन है, उसी विषयमें रत व्यक्तिका धर्म।
६. शब्दब्रह्म—शब्दरूपी ब्रह्म, हरिकथा, हरिनाम।
७. आनुकूल्य—जहाँ अनुकूल कृत हो, सहायता, सेवा।

आचार्य केशरी श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी —गौड़ीय सम्प्रदायके प्रति उनका अवदान

आजसे प्रायः सौ वर्ष पूर्व गौड़ीय गगनके पूर्व क्षितिजपर ज्योत्सनाकी स्नाधतासे अपने श्रीअङ्गोंको आवृत्तकर एक अर्कका उदय हुआ, जिनकी प्रचण्ड किणें भौतिकतावाद, मायावाद, बौद्धवाद, सहजियावाद आदिके आश्रयकारी वादियोंको समूल भस्मीभूत करनेका सङ्कल्प लेकर प्रायः सत्तर सुदीर्घ वर्षोंतक अपनी आभा बिखरती रहीं। आज उन्हीं महापुरुषके २८ वें विरहपूर्तिके अवसरपर अपनेको कृत-कृत्य करनेके लिए ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायके प्रति उनके अवदानोंकी कुछ समालोचना करनेकी चेष्टा कर रहा हूँ।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके समयसे श्रीरूप, सनातन आदि षड्गोस्वामियोंने तथा कविकर्णपूर आदि महाप्रभुके अनुगत लोगोंने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको श्रीमध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त बताया। परवर्ती कालमें जयपुरके गलता गादीमें श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके आदेशपर श्रीलबलदेव विद्याभूषण प्रभुने डंकेकी चोटपर यह सिद्ध किया कि श्रीगौड़ीय सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदायके ही अन्तर्भुक्त है।

गौड़ीय वेदान्त आचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके अप्रकट लीलाविष्कार करनेके उपरान्त श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें एक अन्धकारका युग उपस्थित हुआ। उस समय कुछ लोगोंने श्रीगौड़ीय सम्प्रदायको माध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त नहीं कहकर स्वतन्त्र सम्प्रदायके रूपमें प्रतिष्ठित किया, जिसका उद्गम स्थल श्रीचैतन्य महाप्रभुको माना गया। परन्तु उन्नीसवी शताब्दीके मध्यमें उस घोर रजनीको पराभूत करते हुए भक्ति-भागीरथीको पुनः प्रवाहित करनेवाले गदाधराभिन्न तनु श्रीभक्तिविनोद ठाकुरने श्रीब्रह्म-माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायकी विजय-पताकाको

पुनः उड़ायमान किया। परवर्ती कालमें उनके ही सुयोग्य शिष्य जगदगुरु श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती 'प्रभुपाद' ने उसे और भी ऊँचाईपर पहुँचाया। परन्तु, उनके लीला-सङ्गोपनके पश्चात् गुरु-सेवाका मुखौटा पहननेवाले उनके कुछ शिष्योंने गौड़ीय-सम्प्रदायको एक स्वतन्त्र सम्प्रदायकी संज्ञा देकर ऐतिह्यको कलङ्कित करनेकी कुचेष्टा की। कुत्सित विचारोंके लोगोंका दल कुछ अधिक शीघ्र ही वर्द्धित होता है, उसी प्रकार तात्कालीन अनेक सममनोभाववालोंने उनके सुरमें सुर मिलाकर एक ही राग आलापना आरम्भ किया। परिस्थितिकी गम्भीरताका आकलन करते हुए इन्होंने अपने हाथोंमें लेखनी ली और लेखनीरूपी खड्गसे एक-एक कर उनके तर्कोंका छेदनकर ब्रह्म-माध्व-गौड़ीय-सम्प्रदायकी अस्मिताको अक्षुण्ण रखा। मैं विपक्षियोंके कुसिद्धान्तके विरुद्ध दिए गए प्रतिवादकी एक झाँकी आपके सम्मुख उपस्थित करनेका प्रयास कर रहा हूँ। गौड़ीय सम्प्रदायको स्वतन्त्र सम्प्रदायके रूपमें प्रतिष्ठित करनेके पक्षमें जो मुख्य तर्क दिए गए थे, वे निम्नाङ्कित हैं—

(क) माध्व-सम्प्रदाय और श्रीगौड़ीय सम्प्रदायमें परस्पर (१) साधन (२) साध्य (३) शास्त्र (४) ईच्छ (५) भाष्य और (६) वाद—ये छः भेद वर्तमान हैं। (?)

(ख) चारों सम्प्रदायोंके प्रवर्तकगण जिनके सेवक हैं, वे चैतन्यदेव इनमेंसे किसी एककी परम्परामें कैसे हो सकते हैं।

(ग) श्रीमन्महाप्रभुने माध्वमतका खण्डन किया है, अतः वे माध्व सम्प्रदायके नहीं हो सकते। अतः गौड़ीय सम्प्रदायको श्रीमाध्व-गौड़ीय सम्प्रदाय

नहीं कहा जा सकता, बल्कि गौड़ीय-वैष्णव सम्प्रदाय एक पृथक् और स्वतन्त्र सम्प्रदाय है, जिसका श्रीगौरचन्द्रने स्वयं प्रवर्त्तन किया है।

(घ) बलदेव विद्याभूषणने अपनी स्वार्थीसिद्धिके लिए बलपूर्वक गौड़ीय सम्प्रदायको माध्व सम्प्रदायके अनुगत किया, क्योंकि वे पहले तत्त्ववादियोंके मठमें रहते थे।

किन्तु कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि बलदेव विद्याभूषण एक प्रमुख गौड़ीय वैष्णवाचार्य हैं। वे पहले माध्व सम्प्रदायके लोगोंके साथ रहते थे। वे उद्घट विद्वान् थे। उनके जैसे विद्वानके हाथसे निकल जानेके कारण ईर्ष्यावश उस सम्प्रदायके लोगोंने कुछ श्लोकोंकी रचना की तथा उन श्लोकोंको पद्मपुराणका कह दिया। उन श्लोकोंके द्वारा उनलोगोंने यह सिद्ध करनेकी चेष्टा की कि मूलतः चार ही वैष्णव सम्प्रदाय हैं, यथा—श्री, ब्रह्म, रुद्र तथा सनक। और जितने भी सम्प्रदाय हैं, यदि वे इन चारों सम्प्रदायोंसे सम्बन्धित नहीं हैं, तो वे वैष्णव सम्प्रदाय नहीं हैं तथा वहाँका मन्त्र भी निष्फल होता है। बादमें उन श्लोकोंको बलदेव विद्याभूषणकी रचनाओंमें सम्मिलित कर दिया गया। इन श्लोकोंकी दुहाई देकर आज भी कुछ लोग अपनेको मध्व सम्प्रदायसे सम्बन्धित मानते हैं। परन्तु वास्तविकता यह है कि वे श्लोक प्रक्षिप्त हैं तथा गौड़ीय सम्प्रदायको मध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त सिद्ध करनेके लिए ही लिखे गए हैं।

इस अन्तिम निराधार तर्कका निरस्तीकरण तो इसी बातपर हो जाता है कि यदि हम श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण प्रभुको एक गौड़ीय वैष्णवाचार्य मानें, तो हमें किसी अन्य लोगोंकी कटाक्षपूर्ण उक्तियोंपर दृष्टिपात करनेकी आवश्यकता ही क्या है, हमें देखना होगा कि स्वयं बलदेव विद्याभूषण प्रभुने गौड़ीय-सम्प्रदायकी जयपताकाको सर्वोपरि रखते हुए क्या कहा है। यद्यपि यह विषय मूल विषयसे अलग प्रतीत हो रहा है, तथापि उससे ही

सम्बन्धित है। सर्वप्रथम मैं सुधी पाठकोंको सम्प्रदायके विषयमें श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुके विचारोंको प्रस्तुत कर रहा हूँ—

प्रमेय रत्नावली ग्रन्थके मङ्गलाचरणमें पहले श्लोकमें श्रीकृष्णकी वन्दना करनेके पश्चात् दूसरे श्लोकमें उन्होंने श्रीमन्महाप्रभु तथा उनके परिकरोंको वन्दना की है। पुनः तीसरे श्लोकमें उन्होंने लिखा है—

**आनन्दतीर्थनामा सुखमयथामा यतिर्जीवात्।
संसारार्थवितरणिं यमिह जनाः कीर्तयन्ति ब्रुधाः॥**

(प्र. र. ३)

अर्थात् आनन्दतीर्थ नामक सुखमय धामस्वरूप यतिराज श्रीमन्मध्वाचार्यकी जय हो, जिन्हें बुद्धिमान् लोग संसारसागरकी तरणि (नौका) के रूपमें जानते हैं। इसके बाद चौथे श्लोकमें उन्होंने लिखा है—
**भवति विचिन्त्या विदुषा निरवकरा गुरुपरम्परा नित्यम्।
एकान्तित्वं सिद्ध्यन्ति यदोद्यति यन हरिताषः॥**

(प्र. र. ४)

अर्थात् जिन गुरु परम्परासे भाष्यमें निर्णीत प्रमेयसमूहकी प्राप्ति हुई है, उन गुरु परम्पराका नित्य स्मरण करना अवश्य अनुष्ठेय है, इसे प्रतिपादित करते हुए कहते हैं—पण्डितगण नित्य ही गुरुपरम्पराका ध्यान करते हैं, जिससे कि श्रीकृष्णके चरणोंमें एकान्तिकी भक्ति प्राप्त होती है, और इससे ही भगवान् श्रीहरि तुष्ट होते हैं। इसके बाद पाँचवे श्लोकमें उन्होंने पद्मपुराणोक्त दो श्लोकोंको उद्घृत किया है, जिसे वर्तमान कुछ लोग प्रक्षिप्त अंश कहते हैं। यदि इन दो श्लोकोंको प्रक्षिप्त मान भी लिया जाय, तो वे धर्मध्वजी लोग श्रीमन्महाप्रभुके माध्व-आनुगत्यताकी तनिक भी हिंसा नहीं कर पाएँगे। क्योंकि छठें श्लोकमें श्रीविद्याभूषण प्रभुने चार सम्प्रदायोंके आचार्योंका नाम दिया है तथा उसके अगले श्लोक (७ वें) में अपनी गुरु-परम्पराका स्पष्ट उल्लेख करते हुए श्रीमन्महाप्रभुको माध्व सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त

बताया है। यदि कोई पूर्वपक्ष करे कि स्वयं भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन (श्रीचैतन्यमहाप्रभु) को किसी सम्प्रदायके अन्तर्भुक्त माननेसे उनकी भगवत्तापर आघात लगता है, जैसा कि कुछ लोग करते भी हैं, तो इसका उत्तर स्वयं श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुने सततें श्लोकके अन्तमें इस प्रकार दिया है—

देवमीश्वरशिष्यं श्रीचैतन्यञ्च भजामहे।
श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्॥

(प्र. र. ७)

अर्थात् श्रीइश्वरपुरीके शिष्य हैं—श्रीचैतन्यदेव, जिन्होंने प्रेमभक्ति प्रदानकर इस जगत्का उद्धार किया।

इस श्लोकमें उन्होंने स्पष्टरूपसे यह विघोषित किया है कि स्वयं महाप्रभुने कृष्णप्रेम प्रदानकर निखिल जगत्के लोगोंका उद्धार किया है। अतः किसी सम्प्रदायभागमें भुक्त होनेसे उनकी श्रेष्ठता, भगवत्ताकी हानि नहीं होती।

प्रमेय रत्नावलीके तृतीय तथा सप्तम श्लोकमें क्रमशः उल्लिखित ‘संसारार्णव-तरणि’ तथा ‘कृष्णप्रेमप्रदानेन’ अंशकी व्याख्या करते हुए आचार्यकेशरी श्रील केशव गोस्वामी महाराजजीने लिखा है—“मध्वाचार्यको संसार-सागरसे पार होनेके लिए ‘नौकास्वरूप’ माना गया है, किन्तु दूसरी ओर श्रीमन्महाप्रभुको ‘कृष्णप्रेमप्रदाता’ कहा गया है। इन दोनोंमेंसे किन्हें श्रेष्ठ माना जाएगा? ‘संसार-मोचनकी अपेक्षा कृष्णप्रेम दानका कार्य कोटिगुणा श्रेष्ठ है’—इसे प्रत्येक गौड़ीय वैष्णव स्वीकार करेंगे। श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने भी मन्त्र और महामन्त्रके पार्थक्यका विवेचन करते हुए लिखा है—

कृष्ण-मन्त्र हैते हय संसार-मोचन।

कृष्ण-नाम हैते पाय कृष्णोर चरण॥

कृष्णनामको ही महामन्त्र कहते हैं, जिससे कृष्णप्रेम प्राप्त होता है। श्रील बलदेव विद्याभूषण

प्रभुने ‘श्रीकृष्णप्रेमदानेन येन निस्तारितं जगत्’ द्वारा श्रीमन्महाप्रभुको मध्वाचार्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ बताया है। मध्वाचार्यके उपर मन्त्र द्वारा संसार-मोचनका कार्यभार सौंपा गया है। यद्यपि इसके द्वारा महाप्रभुकी अपेक्षा मध्वाचार्यकी श्रेष्ठता नहीं दिखाई गई है। तथापि इसे मान लेनेमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि श्रीचैतन्य महाप्रभु स्वयं ब्रजेन्द्रनन्दन कृष्ण हैं और मध्वाचार्य उनके भक्त हैं। ऐसी दशामें अपने भक्तकी श्रेष्ठता प्रदर्शित करना तो भगवान्‌को भी अभीष्ट है। ‘मद्भक्तपूजाभ्यधिका’ आदि वाणियोंके द्वारा भगवान्‌ने स्वयं अपनी पूजाकी अपेक्षा भक्तकी पूजाका श्रेष्ठत्व स्थापित किया है। इससे भगवत्ताकी हानि नहीं होती, वरं भगवत्ताका माधुर्य और भी अनन्त गुण अधिक उज्ज्वल होता है। श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

ये मे भक्तजनाः पार्थं न मे भक्ताश्च ते जनाः।

मद्भक्तानाञ्च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥

(आदिपुराण)

अर्थात् भक्तोंके सेवक ही हमारे प्रिय भक्त हैं। हमारे (भगवान्‌के) सेवक भक्तकी कोटिमें नहीं आते। हमारे भक्तोंके सेवक ही मुझे अधिक प्रिय हैं।

भगवान् भक्तोंके अधीन होते हैं—यह गौड़ीय वैष्णवोंका सर्वोत्तम विचार है। इसके द्वारा भगवान्‌की महिमा ही सूचित होती है।”

प्रमेय रत्नावलीके आठवें श्लोकमें श्रीपाद बलदेव विद्याभूषण प्रभुने अपने विषय वस्तु अर्थात् नौ प्रमेयोंको सूत्ररूपमें लिखा है—

अथ प्रमेयाणि—

श्रीमध्वः प्राह विष्णुं परतममखिलाम्नायवेद्यञ्च विश्वम्।

यहाँ जब वे श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रचारित सिद्धान्तोंका वर्णन कर रहे हैं, तो ‘श्रीमध्वः प्राह विष्णुं’ लिखनेका क्या औचित्य है, इसके द्वारा वे यह सुस्पष्टरूपमें बताना चाहते हैं कि चैतन्य

महाप्रभुने जिस अचिन्त्यभेदभेद सिद्धान्तका उपदेश दिया, उसका सूत्र श्रीमध्वाचार्यकी शिक्षाओंमें ही वर्तमान है। 'विष्णु' शब्दसे भी यही प्रतिपादित होता है कि महाप्रभुका सम्प्रदाय कोई स्वतन्त्र सम्प्रदायके नहीं है, बल्कि यह माध्व सम्प्रदायके ही अनुगत है।

अतः जो लोग यह कहना चाहते हैं कि पद्मपुराणोक्त दोनों श्लोक प्रक्षिप्त हैं, जो कि मत्सरतावश किसी अन्य माध्व सम्प्रदायीके द्वारा सम्मिलित कर दिए गए हैं, किन्तु श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु स्वयं प्रमुख गौड़ीय वैष्णवाचार्य हैं—उनका तर्क स्वयं श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभु ही निरस्त करते हैं। यदि उन श्लोकोंको प्रक्षिप्त मान भी लिया जाय, तो प्रमेय रत्नावलीके तृतीय श्लोकमें 'आनन्दतीर्थ' नामक यतिराजका उल्लेख किया गया है, क्या वह भी प्रक्षिप्त अंश है? चतुर्थ श्लोकमें जिस गुरु-परम्पराके नित्यस्मरणका विधान दिया गया, क्या वह भी प्रक्षिप्त है? कोई यह नहीं कह सकता कि चतुर्थ श्लोकमें जिस गुरु-परम्पराके नित्य स्मरणकी बात कही गई है, वह श्रीचैतन्य महाप्रभुनसे ही आरम्भ होता है, क्योंकि चतुर्थ श्लोकका अन्वय तीसरे श्लोकसे ही है।

इन्हीं बातोंका स्पष्टीकरण उन्होंने स्वयं प्रमेय रत्नावलीके सप्तम श्लोकमें किया है। जहाँ उन्होंने माध्व-गौड़ीय सम्प्रदायकी परम्पराका उल्लेख किया है, जिसका विधान चतुर्थ श्लोकमें दिया गया था। यदि इन श्लोकोंको भी प्रक्षिप्त मान लिया जाय, तो भी उनलोगोंकी युक्ति गलेसे नीचे नहीं उतरती, क्योंकि प्रमेयका आरम्भ ही 'श्रीमाध्वः प्राह' से किया गया है। यदि इसे भी प्रक्षिप्त कह दिया जाय, तो प्रमेय रत्नावली ग्रन्थ ही अप्रामाणिक हो गया। लेकिन इससे अधिक इन विपक्षियोंकी दलील नहीं चलेगी, क्योंकि श्रीविद्याभूषण प्रभुने तृतीय और चतुर्थ श्लोकोंको गोविन्दभाष्यके मङ्गलाचरणमें भी उद्धृतकर अपने तथा महाप्रभुके माध्व आनुगत्यको प्रकटित किया है।

लेखके विस्तृत होनेपर ग्रन्थाकार रूप लेनेके भयसे मैं अन्य युक्तियोंकी ओर ध्यान दे रहा हूँ। आचार्य केशरी श्रील केशव गोस्वामीने अनेक प्रमाणों तथा युक्तियोंके आधारपर विशेषतः श्रीविद्याभूषण प्रभु विरचित षट्सन्दर्भकीकी टीकाके आधारपर यह प्रमाणित किया है कि श्रीमन्महाप्रभुका सम्प्रदाय माध्व सम्प्रदायके ही अनुगत है। □

(क्रमशः)
—श्रीहरिप्रिय ब्रह्मचारी 'विद्याभूषण'

ALL DONATIONS IN FAVOUR OF

"SHRI GOUDIYA VEDANT SAMITI TRUST"

ARE EXEMPTED FROM INCOME TAX.

दो नशाखोर

किसी विशाल नदीके एक ओर एक नावमें बैठकर दो नशाखोर नशा करनेके उद्देश्यसे तीलि जलाने का प्रयास कर रहे थे; किन्तु, उनके पास माचिस और मोमबत्ती कुछ भी नहीं था, केवल कुछ तीलियाँ थीं। उन्होंने देखा कि नदीके दूसरी ओर एक नावमें एक प्रदीप जल रहा था। नशेमें धुत दोनों नशाखोरोंमेंसे एकने इस पार बैठे हुए ही उसपार नावमें जल रहे प्रदीपकी आगसे तीली जलानेकी चेष्टासे हाथ उस तरफ बढ़ाया। तीलीमें आग न पकड़ते देखकर दूसरे नशाखोरने पहले नशाखोरको धमकाते हुए कहा,—“तू क्या कर रहा है? अभी तक तीलि नहीं जल पाई। इधर नशेके आनन्दका मुहूर्त निकला जा रहा है।” ऐसा कहकर दूसरे नशाखोरने पहले नशाखोरके हाथसे बलपूर्वक तीलीको छीन लिया और पहले नशाखोरकी अपेक्षा और अधिक हाथ बढ़ाकर तीलि पकड़ते हुए बोला—“देख! इस प्रकार तीली पकड़ते हैं, अभी देखना कितनी सुन्दर तीली जलाऊँगा? तू केवल हवामें बड़ा हुआ है?”

दुःखकी बात है, दूसरा नशाखोर तीली जलाते-जलाते स्वप्न ही देखने लगा, किन्तु तीलीमें

आग नहीं जली। बीचमें लगभग एक मील लम्बी नदी। एक हाथके आगे एक और हाथ लगाकर कई ईंच बढ़ानेसे क्या दूसरे पारमें जल रही आगको स्पर्श किया जा सकता है?

पहला नशाखोर फलभोगी^(१) कर्मीके समान है एवं दूसरा नशाखोर फलत्यागी^(२) निर्विशेष ज्ञानीके समान है। ये जहाँ बैठे हैं, वह यह विचित्र जड़-जगत् है। और जहाँ आग जल रही है, वह परव्योम^(३) है, इन दोनोंके बीचमें विशाल कारण-समुद्र^(४) या ‘विरजा’ का व्यवधान है। कर्मियोंका नशा वेदोंके मधुपुष्पित वाक्य हैं; ज्ञानियोंका नशा असुरोंको वर्चित करनेके लिए मायावाद आदि हैं, कर्मियोंके लिए अग्नि याग-यज्ञादि है, ज्ञानियोंके लिए अग्नि ब्रह्मलोककी कल्पनामय ज्योति है एवं भक्तोंके लिए अग्नि सप्तजिह्वायुक्त श्रीनाम-सङ्कीर्तन है। कर्मी और ज्ञानी, मायिक जगत्के विचार द्वारा ही मायातीत तत्त्ववस्तु लाभ करने अर्थात् सिद्धिका मुक्ति वा स्वप्न देखते हैं। एकमात्र भगवत्-सेवोन्मुखी होनेपर ही मायातीत, नित्यशुद्ध, पूर्ण सच्चिदानन्द श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनरूप अग्निका स्पर्श पाकर ही मायातीत नित्यतत्त्वकी उपलब्धि संभव है। □



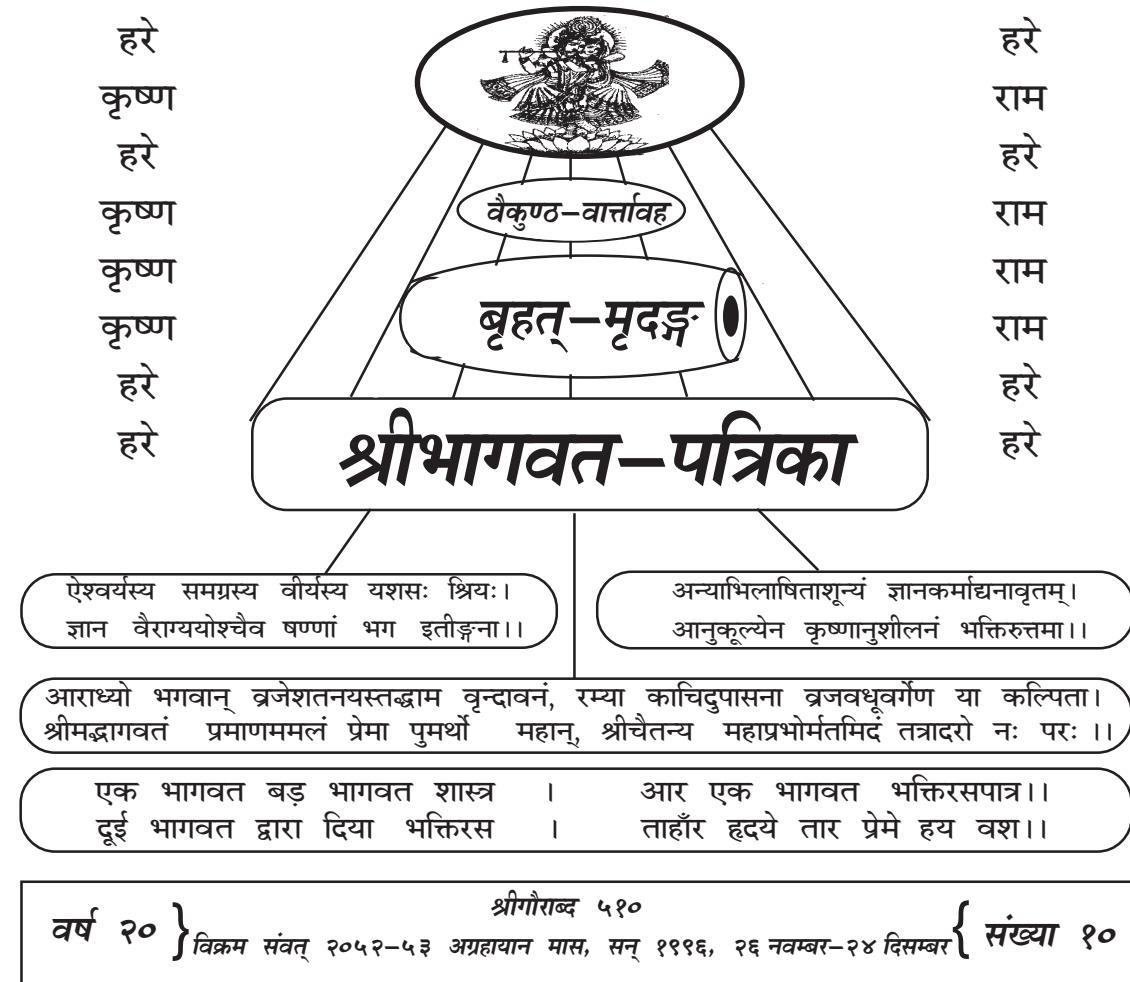
(१) फलभोगी—कर्मका फल भोग करने की इच्छासे जो कर्म करते हैं।

(२) फलत्यागी—ज्ञानी लोग न तो स्वयं कर्मफलको भोगना चाहते हैं और न ही फल कृष्णभोगके लिए अर्पण करते हैं। वे परमेश्वरको इन्द्रियहीन क्लीव-जातीय वस्तु मानते हैं।

(३) परव्योम—वैकुण्ठ और गोलोकधाम।

(४) कारण-समुद्र—वैकुण्ठ और गोलोकके बाहर ज्योर्तिमय ब्रह्मलोकके बाहर कारण-समुद्र अवस्थित है।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः



[श्रीवृन्दावनदास-ठाकुर-विरचितम्]

शरच्चन्द्र भ्रातिं स्फुरदमल-कान्तिं गजगतिं हरि-प्रेमोन्मत्तं धृत-परम-सत्त्वं स्मितमुखम्।
सदा धूर्णन्तेत्रं कर-कलित-वेत्रं कलिभिदं भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥१॥

जिनके मनोहर मुखमण्डलकी शोभा शरदकालीन पूर्णचन्द्रका पराभव करती है, जो मदमत्त गजकी तरह मृदु-मन्थर गतिसे गमन करते हैं, जो सदा-सर्वदा कृष्ण-प्रेममें उन्मत्त रहते हैं, जिनका कलेवर विशुद्ध सत्त्वमय है, जिनके मुख मण्डलपर मन्द-मन्द मुस्कान खेलती रहती है, जिनके नेत्रयुगल सदा चंचल रहते हैं, जिनके हाथमें वेत्र सुशोभित है और जो कलिके समस्त पापोंका ध्वंस करते हैं, उन श्रीकृष्ण-भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं सदा भजन करता हूँ ॥१॥

रसानामागारं स्वजनगण—सर्वस्वमतुलं
तदीयैक—प्राणप्रतिम—वसुधा—जाहवा—पतिम्।
सदा प्रेमोन्मादं परमविदितं मन्द मनसां
भजे नित्यानन्दं भजन—तरु—कन्दं निरवधि॥२॥

शचीसून—प्रेष्ठं निखिल जगदिष्टं सुखमयं
कलौ मज्जज्जीवोद्धरण—करणोदाम—करुणम्।
हरराख्यानद्वा भव—जलधि—गर्वत्रिति हरं
भजे नित्यानन्दं भजन—तरु—कन्दं—निरवधि॥३॥

अये भ्रातर्नृणां कलि—कलुषिणां किन्तु भविता
तथा प्रायश्चितं रचय यदनायासत इमे।
व्रजन्ति त्वामित्थं सह भगवता मंत्रयति यो
भजे नित्यानन्दं—भजन—तरु—कन्दं—निरवधि॥४॥

यथेष्टं रे भ्रातः! कुरु हरि—हरि ध्वानमनिशं
ततो वः संसाराम्बुधि—तरण—दायो मयि लगेत्।
इदं बाहु—स्फोटैरटति रटयन् यः प्रतिगृहं
भजे नित्यानन्दं भजन—तरु—कन्दं निरवधि॥५॥

बलात् संसाराम्बोनिधि—हरण कुम्भोद्भवमहो
सतां श्रेयः—सिन्धून्नति—कुमुद—बन्धुं समुदितम्।
खलश्रेणी—स्फुर्जत्तिमिर—हर—सूर्य—प्रभमहं
भजे नित्यानन्दं भजन—तरु—कन्दं निरवधि॥६॥

जो निखिल रसके आधार हैं, जो भक्तोंके प्राणधन हैं, जिनकी तीनों लोकोंमें कहीं भी उपमा नहीं है, अपने प्रणोंसे भी अधिक प्रियतमा श्रीवसुधा और जाहनवाके पति हैं, जो श्रीकृष्ण—प्रेममें सदा उन्मत्त रहते हैं और उद्धारकके रूपमें दुष्टोंका दलन करते हैं, उन श्रीकृष्ण—भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं सदा भजन करता हूँ॥२॥

जो गौरचन्द्रके अतिशय प्रिय हैं, जो सम्पूर्ण जगत्का कल्याण करते हैं, जो परम सुखमयस्वरूप हैं, पापके भारसे दबे हुए कलियुगी जीवोंका उद्धार करनेमें जिनकी करुणाकी कोई सीमा नहीं है, जिन्होंने हरिनामका प्रचारकर दुस्तर भव—सागरका गर्व चूर्ण—विचूर्ण कर दिया है अर्थात् संसार—समुद्रसे अनायास ही पार उत्तरनेके लिये अत्यन्त सहज उपाय निकाला है, उन श्रीकृष्ण—भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ॥३॥

हे भ्रातः! कलियुगके पापी जीवोंकी क्या गति होगी? तुम कृपा करके कोई ऐसा उपाय करो कि वे लोग तुम्हारे श्रीचरणोंको सरलतासे प्राप्त कर सकें—इस प्रकार जो श्रीगौर भगवान्के साथ कथनोपकथन और युक्ति परामर्श किया करते थे उन श्रीकृष्ण—भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ॥४॥

“भाइयो! तुम लोग निरन्तर प्रचुर मात्रामें भगवन्नाम करो, ऐसा करनेसे तुमलोगोंके भवसागर पार होनेका सारा भार मेरे ऊपर है”—ऐसा कहते—कहते जो अपनी भुजाओंको उठाकर घर—घरमें धूमते थे, उन श्रीकृष्ण—भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ॥५॥

अहो! जो संतोंके संसार—समुद्रको सुखा डालनेमें कुंभ या घड़के समान हैं अर्थात् जो भगवद्भक्तोंका अनायास ही उद्धार कर देते हैं, जो जीवोंके कल्याण समुद्रको उद्भेदित करनेके लिए चन्द्रमाके रूपमें उदित हैं अर्थात् जो सम्पूर्णरूपसे जीवोंका कल्याण करते हैं और जो दुष्टोंके पापरूप अंधकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यस्वरूप हैं, उन श्रीकृष्ण—भक्तिरूप कल्पतरुके मूल श्रीनित्यानन्द प्रभुका मैं नित्य भजन करता हूँ॥६॥

विषय और दृश्य वस्तुको आश्रय, आलम्बन या दर्शनका आधार समझने लगता है। माया वास्तव वस्तुकी एक शक्ति है। वही शक्ति वास्तव वस्तु द्वारा परिचालित होकर वस्तुका अनेकत्व दर्शन कराती है तथा उनमें परस्पर भेदका भी प्रदर्शन करती है। माया शक्ति जब द्रष्टा जीवकी अस्मिताके ऊपर कार्य करनेका अवसर पाती है, तभी उनकी अस्मिताको बुद्धिके रूपमें बदल देती है। फिर बुद्धि बदलकर अहङ्कार और अहङ्कार इन्द्रियाधिपति मनके रूपमें बदल जाता है।

तत्त्ववादी मध्वका शुद्ध विचार

मायावादी लोग मायाके आश्रयमें भेद-ज्ञानसे संलिप्त होकर कहते हैं कि द्रष्टा, दृश्य और दर्शनमें कोई भेद नहीं है। वे वस्तुमें सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद भी स्वीकार नहीं करते हैं, किन्तु तत्त्ववादी (मध्वाचार्य) अद्वयज्ञानके आश्रयमें तत्त्व-वस्तुको भगवान् कहते हैं तथा वे भगवान्‌में सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद स्वीकार करते हैं। इनका कहना है—भगवान्‌में इन भेदोंको उत्पन्न करनेवाली पूर्ण और उपादेय शक्ति नित्य विराजमान है। तत्त्ववादी अद्वयज्ञान द्वारा ब्रह्म और परमात्माको भगवत् तत्त्वसे पृथक दर्शन नहीं करते हैं। वे तत्त्व-वस्तुको सच्चिदानन्द विष्णु-तत्त्वके रूपमें दर्शन करते हैं। विष्णु-तत्त्वमें स्वगत लीलामय नित्य विचित्रता है; चित्-जगत्‌में चित्-शक्तिका बहुविध प्रकाश ही सजातीय भेद है तथा अचित् शक्तिकी परिणतिसे बहिर्जगत्‌में विजातीय भेद दृष्टिगोचर होता है। वास्तव वस्तु और उनकी शक्ति अभिन्न होनेपर भी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे विष्णुमें ही चित् प्रकाशकारणी और अचित् सर्गको उत्पन्न करनेवाली—चित् और अचित् दोनों शक्तियाँ नित्य वर्तमान रहती हैं। केवल मायावादियोंका काल्पनिक मायिक दर्शन ही वेदान्त-दर्शन नहीं है, बल्कि वेदान्त-दर्शनमें विष्णु ही चित्, अचित्

और ईश्वर—भिन्न-भिन्न तीन अवस्थाओंमें स्थित दिखलाई पड़ते हैं।

वैष्णव दर्शनमें विष्णु, वैष्णव और जगत्‌में परम्पर नित्य भेद है

श्रुतिका कथन है—“तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूर्यः” अर्थात् दिव्यसूरिगण—नित्यमुक्त या दिव्यज्ञानी व्यक्ति दृश्य वस्तुको सर्वदा, नित्यकाल विष्णुके परमपदके रूपमें दर्शन करते हैं। वे कभी भी अनुपादेय जड़ीय काल और देशसे विच्छिन्न अचित् दर्शन द्वारा विष्णुतत्त्व या वस्तु-तत्त्वको सीमित या आबद्ध नहीं करते हैं। विष्णुकी शक्तिके द्वारा परिणत चित् या अचित् वस्तुकी प्रतीतिको विष्णु नहीं कहते हैं तथा विष्णुके अतिरिक्त उनकी प्रतिष्ठा भी स्वीकार नहीं करते हैं। विष्णुका सम्बन्ध जहाँ उन्मुख होता है—तद्वस्तुकी उस प्रतीति या वस्तुसत्ताको ‘चित्’ कहते हैं और विष्णु-विमुख तद्वस्तुकी प्रतीति या वस्तुसत्ताको ‘अचित्’ संज्ञा देते हैं। इस प्रकार चित्, अचित् और विष्णु या ईश्वर—इन तीनोंमें नित्य भेद दर्शन करनेके कारण दिव्य सूरिगण अर्थात् वैष्णवजन बहुईश्वरवादी नहीं हैं। वे एकेश्वर विष्णु वस्तुका ही दर्शन करते हैं। विष्णु तद्वस्तु हैं और वैष्णव तदीय वस्तु हैं।

विष्णु और वैष्णवोंका सम्बन्ध नित्य सेव्य और सेवकका भाव है

विष्णु और वैष्णव दोनों नित्य ‘शक्तिमान् और शक्तिपरिणत’ अथवा ‘विषय और आश्रय’ के रूपमें नित्य-रसके उपादान हैं तथा अन्योन्य सम्बन्धयुक्त हैं। दोनोंकी सेव्य-सेवन वृत्ति नित्य है, वृत्ति कालकी सीमासे अतीत होनेके कारण विनाशी नहीं, अविनाशी और अनादि है। जड़ीय काल विष्णु और वैष्णवोंके ऊपर आधिपत्य करनेमें असमर्थ है। नित्यशक्तिमान् विष्णुका दर्शन नहीं करनेके कारण मायावादियोंका अस्तित्व अनित्य और काल

द्वारा क्षुब्ध है। किन्तु वैष्णवोंकी स्थिति नित्य है—उनका दर्शन नित्य है, वह कालके प्रभावसे परिवर्त्तन योग्य नहीं होता।

चित्-जगत्, जड़-जगत् और जीव—सभी वैष्णव तत्त्व हैं

चित्-जगत् और जड़-जगत्की प्रत्येक वस्तुमें विष्णुका अधिष्ठान वर्तमान होनेके कारण उनका अस्तित्व है। अतएव वे सभी वैष्णव हैं। चेतनमय सर्ग—जो जड़-जगत्में बद्धावस्थामें दिखलाई पड़ता है, वह प्रकृतिसे सम्बन्धयुक्त होता है तथा विष्णु सेवासे विमुख होनेके कारण गुणोंके अन्तर्गत होता है। प्रकृतिसे अतीत चित् राज्यमें मुक्तावस्थामें विष्णुका जो चित् सर्ग है—वहाँ मायाका कोई प्रभाव नहीं होता। इस जगत्में जीवमात्र वैष्णव हैं। किन्तु, जड़-वस्तु और जड़-विषय भोगोंमें मत्त होकर हरिविमुखता और जड़-विषयोंके भोक्ताके अभिमानके कारण अपना स्वरूप न्यूनाधिक भूल जाते हैं।

वैष्णवोंके तीन अधिकार—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम

वैष्णव अधिकार तीन प्रकारका होता है—कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम। कनिष्ठ अधिकारमें केवल विष्णु भगवान् ही उनके सेव्य होते हैं। इस अधिकारमें निर्दिष्ट उपकरणोंसे श्रीभगवान्के अचार्विग्रह आदिका अर्चन-बन्दन ही प्रधान लक्ष्य होता है। अधिकारमें उत्रति होनेपर वे भगवद्भक्तोंके कायमनोवाक्य तथा भगवदर्चन—दोनों स्थलोंमें विष्णुका दर्शन करते हैं। ऐसी अवस्थामें (मध्यम अधिकारमें) प्रेमी भक्तोंके प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि तथा विष्णुसे विमुख—विद्वेषियोंका सङ्ग परित्याग करनेमें उनका यत्न देखा जाता है। उत्तम अधिकारमें स्थूल शरीर द्वारा विषय भोग करनेकी स्फूर्ति बिल्कुल नहीं रहती। वे जड़ वस्तुओंको अपने भोगकी सामग्री नहीं समझते—उन्हें भगवत्-सेवा सम्बन्धी वस्तुके रूपमें दर्शन करते

हैं। वे इसे शक्ति-परिणत समस्त दृश्य वस्तुके रूपमें दर्शन करते हैं। शक्ति-परिणत समस्त दृश्यसमूह और वैष्णव विष्णुसे अभिन्न हैं। जगत्की सभी वस्तुएँ विष्णुमें अवस्थित हैं और वे सभी विष्णुकी सेवाके उपकरण हैं।

सामाजिक, असम्प्रदायिक, वैष्णवनामधारी व्यक्ति वैष्णव नहीं है।

आजकल वैष्णव कहनेसे समाजके जिस वर्ग या सम्प्रदायको लक्ष्य किया जाता है, वास्तवमें वैष्णवकी संज्ञा इस तरहके सामाजिक वर्गमें ही आबद्ध नहीं है। जो नीति और पुण्यसे रहित हैं, शिक्षामन्दिरोंसे जिनकी चिर शत्रुता है, जो शौक्र-वर्णका भेद कभी स्वीकार करते हैं और कभी नहीं भी करते, जो मरे हुए लोगोंके शवदाह संस्कारके समय भाड़ेपर कीर्तन आदि द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, वर्णाश्रम धर्मका परित्यागकर उच्छृंखलतासे जीवन व्यतीत करते हैं, वैध सामाजिक व्यक्ति जिनके नैतिक चरित्रपर सदा कटाक्ष करते हैं और जो संयोगी, जाति वैष्णव, जाति गोसाई, जाति वैरागी आदि नामोंसे परिचित हैं—इन्हीं लोगोंके बीच वैष्णव-संज्ञा आबद्ध नहीं है।

वंश-परम्परागत और व्यवसायी गुरु अथवा अधिकारी गुरु वैष्णव नहीं है

अथवा जो इन जाति वैरागी और जाति वैष्णवोंके गुरु और पौरोहित्यका कार्य करते हैं, मन्त्र व्यवसायके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, जो धर्म-उपदेश, शास्त्र-पाठ, प्रवचन, कीर्तन तथा विग्रह-व्यवसाय द्वारा अर्थोपार्जन करते हैं, जो अपनी इन्द्रियोंका संयम न कर विषय-भोगोंकी चेष्टाओंको ही हरि-सेवा समझते हैं अथवा जो गोस्वामी-सन्तान हैं, वैरागी-सन्तान हैं, अधिकारी हैं तथा आचार्य या गुरु-सन्तान हैं, ऐसे व्यक्तियोंमें ही वैष्णव-संज्ञा आबद्ध नहीं है।

निर्विशेष मुक्तिवादी वैष्णव नहीं हैं

हिन्दू समाजके भिन्न-भिन्न वर्णोंमें परिचय देकर विष्णुमन्त्रसे दीक्षित होकर वंश परम्परागत वैष्णव धर्मावलम्बी या पञ्चोपासक लोग जो निर्विशेष मुक्तिके विश्वासी हैं—केवल वे ही वैष्णव संज्ञाके अधिकारी हैं—ऐसी बात नहीं है।

अखाड़ाधारी बाबाजी और संन्यासी भी वैष्णव नहीं हैं

डोर-कोपीन आदि संन्यासी वेषोंसे सज-धजकर वैध संसारकी विधियोंकी निन्दा करनेवाले, अखाड़ा, मठ, देवालय और सत्सङ्घ आदिमें रहनेवाले, शास्त्र-ग्रन्थोंको देखनेमें वितृष्ण, विषय भोगकी फल्लु नदी जिनके हृदयमें धीरे-धीरे प्रवाहित होती रहती है—केवल ऐसे व्यक्ति ही वैष्णव संज्ञा लाभ करनेके अधिकारी नहीं हैं।

वैष्णव-संज्ञाका परिचय

कृष्णसेवाकी उन्मुखता ही वैष्णवताका मुख्य लक्षण है। कृष्णसेवाके लिए ही जिनकी समस्त चेष्टाएँ होती हैं, जो भगवान्‌की सेवामें सर्वात्मा द्वारा सदा-सर्वदा नियुक्त हैं, जो कायमनोवाक्य द्वारा हरि-सम्बन्धी वस्तुओंको तथा हरि-सेवाके उपयोगी मानसिक चेष्टाओं (क्रियाओं) के द्वारा किसी भी अवस्थामें रहकर भगवान्‌का अनुशीलन करनेमें तत्पर रहते हैं, जो हरि-सेवाके बदले धर्म, अर्थ, काम या मोक्षकी कामना नहीं करते, वे उपरोक्त किसी भी नामसे परिचित क्यों न हों, वे ही यथार्थ वैष्णव हैं। समस्त सद्गुणावलियाँ वैष्णवोंमें ही स्थायीरूपसे वास करती हैं। अवैष्णव लोगोंमें सद्गुणोंका स्थायीरूपमें वास करनेका अवकाश नहीं। वैष्णवोंकी महती प्रतिष्ठा देखकर स्वयं उस प्रतिष्ठाके लोभसे अनेक वैष्णव-संज्ञाके योग्य नहीं होनेपर भी स्वयं वैष्णव कहते-कहलवाते हैं। प्रकृत वैष्णवोंके वृत्तिगत सदाचारमें हम दो बातें प्रधानरूपसे लक्ष्य करते हैं—(१) वैष्णव स्वयंको

विष्णुका नित्यदास समझते हैं। (२) वे स्त्री-सङ्गी नहीं होते हैं।

वैष्णवोंके नित्य सद्गुण

वैष्णव कृपालु, क्षमाशील, सत्यप्रिय, समदर्शी, निर्दोष, वदान्य अर्थात् परम उदार, मृदु, शुचि, अकिञ्चन, सर्वोपकारक, शान्त, कृष्णैकशरण, निरोह, स्थिर, षड्गुणजयी (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य अथवा क्षुधा, तृष्णा, भय, दंभ, जरा, मृत्यु—इन दोनों प्रकारके षट्क्रियाओंपर विजय प्राप्त करनेवाला), मिताहारी, अप्रमत्त अर्थात् दंभहीन, मानद (दूसरोंको मान देनेवाला), अमानी (स्वयं मानकी कामनासे रहित) गम्भीर, करुण, मैत्र (बन्धु भावयुक्त), कवि, निपुण एवं मौनी होते हैं। वैष्णवोंमें ये समस्त सद्गुण सर्वदा वास करते हैं, फिर भी अवैष्णव लोग वैष्णवोंको देखकर भी उनके गुणोंको परख नहीं पाते हैं।

सहजिया वैष्णवोंका कपट दैन्य

अक्सर वैष्णवोंका निष्कपट दैन्य नहीं समझनेके कारण सरल व्यक्ति उन्हें कपट दैन्यकी शिक्षा देना चाहते हैं। ये लोग अवैष्णवोंके भावसमूहको ही वैष्णवताके रूपमें विश्वास करते हैं। अतः प्रकृत वैष्णवको भी वैष्णव विरोधी अवैष्णव भावसमूहकी शिक्षा देनेका प्रयास करते हैं। वैष्णव और अवैष्णवोंके क्रिया-कलाप तथा भावोंका पार्थक्य न समझनेके कारण ही ऐसी भूल होती है। जबतक स्वयं वैष्णव न हुआ जाय तबतकप्रकृत वैष्णवोंका स्वरूप समझ लेना साधारण मनुष्योंके लिय सम्भव नहीं है। इनको बिना समझे ही अवैष्णव भावनाओंको हृदयमें भरकर, विश्वप्रेमकी गलत धारणासे परिचालित होकर उदारताके परम आदर्श वैष्णवोंको साम्प्रदायिक मानकर उन्हें शिक्षा देनेके बदले अपनी संकीर्णताका ही परिचय देते हैं। □



सत्संगकी विधि

संगसे ही स्वभावका गठन होता है। जो मनुष्य जिस व्यक्तिका संग करता है, उसका वैसा ही स्वभाव बन जाता है। पूर्वजन्मके संगसे कर्मके द्वारा जिस स्वभावका गठन होता है, वह वर्तमान जन्ममें संग द्वारा बदलता रहता है। अतएव संग ही मानव-स्वभावके गठनकी जड़ है। अतः कहा गया है—स्फटिक मणि जिस रंगकी वस्तुके निकट रहती है, उसी वस्तु जैसा उसका रंग दिखलाई पड़ता है। इसी प्रकार जो जैसे व्यक्तिका संग करता है, उसमें भी उस व्यक्ति जैसे गुण-दोषसमूह दीख पड़ते हैं।

सत्संगको ही असङ्ग कहते हैं

श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

सङ्गो यः संसृतहर्तुरसत्तु विहितोऽधिया।
स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते॥

अज्ञानवश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो संग संसार-बंधनका कारण होता है, वही सत्पुरुषोंके साथ किये जाने पर सत्सङ्ग प्रदान करता है।

असत्संग त्याग करना चाहिए

असत्सङ्गके सम्बन्धमें विशेषकर कहा गया है—

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिर्भिः श्रीर्यशः क्षमा।
शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गदयाति संक्षयम्॥
तेष्वशान्तेषु मूढेषु खण्डितात्मस्वसाधुषु।
सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित् क्रीडा मृगेषु च॥

(श्रीमद्भा. ३/३१/३३-३४)

जिनके सङ्गसे सत्य, शौच, (बाहर-भीतरकी पवित्रता), दया, वाणीका संयम, बुद्धि, धन-सम्पत्ति, लज्जा, यश, क्षमा, मन और इन्द्रियका संयम तथा ऐश्वर्य आदि सभी सद्गुण नष्ट हो जाते हैं; उन अत्यंत सोचनीय, स्त्रियोंके क्रीडामृग (खिलौने)

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर
अशान्त, मूढ़ और देहात्मदर्शी असत्पुरुषोंका संग
कभी नहीं करना चाहिए।

**साधुका लक्षणः साधु—संग करना
ही कर्तव्य है**

केवल असत्संगका परित्याग करनेसे ही हमारा कर्तव्य पूरा नहीं होता। यत्नपूर्वक सत्संग करनेसे ही हम अपने लक्ष्य तक पहुँचनेमें समर्थ हो सकते हैं। अतएव सत्संग करना ही हमारा प्रधान कर्तव्य है। जिन साधु पुरुषोंका संग करनेके लिए कहा गया है, शास्त्रोंमें उनके लक्षण बतलाये गये हैं:—

तितिक्षवः कालणिकाः सुहृदः सर्वदीहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥
मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृणवन्ति कथयन्ति च।
तपन्ति विविधास्तापा नैतान् मदगतचेतसः॥
त एते साधवः साधिव सर्वसङ्गविवर्जिताः।
सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते॥

(श्रीमद्भा. ३/२५/२१, २३, २४)

भगवान् कपिलदेव कहते हैं—हे माता ! सहनशील, दयालु, समस्त देहधारियोंके अकारण हितैषी, किसीके प्रति शत्रुभाव न रखनेवाले, शान्त, सरल-स्वभाववाले साधु ही साधुओंमें भूषण-स्वरूप होते हैं। शुद्ध भक्तोंका ऐसा ही स्वभाव होता है। भक्तजन मेरे परायण रहकर मेरी पवित्र कथाओंका श्रवण और कीर्तन करते हैं। ऐसे भक्त लोग मुझमें ही चित्त लगाये रहते हैं। अतएव वे कर्म, ज्ञान और अष्टांग-योगके अन्तर्गत नाना प्रकारके कष्टोंका अभ्यास नहीं करते हैं। हे साध्वी ! ऐसे-ऐसे सर्वसंगपरित्यागी महापुरुष ही साधु होते हैं। ऐसा साधु संग-आसक्तिसे उत्पन्न सभी दोषोंको हर लेनेवाला है, तुम्हें इन्हींके संगकी प्रार्थना करनी चाहिए।

वेश-भूषासे साधुताका निर्णय नहीं होता—

साधु-सङ्ग अत्यन्त दुर्लभ होता है

हम वेशासे किसी व्यक्तिको साधु या असाधु निर्णय नहीं कर सकते। पर-चर्चा और पर-निन्दा—इनका परित्याग करनेपर भी यदि किसी व्यक्तिमें पूर्वोक्त लक्षणोंको न पाया जाय, तो उसे साधु नहीं कह सकते। कलिकालमें साधु विचार सम्पूर्णरूपसे उठा जा रहा है। अत्यन्त खेदकी बात है कि हमलोग बिना विचारे जिसको-तिसको उसके बाहरी वेशको देखकर ही साधु समझ बैठते हैं और उसका संगकर क्रमशः कपटी होते जा रहे हैं। हमें इस बातका सदा स्मरण रखना चाहिए कि साधु बहुत खोजनेपर भी नहीं मिलते। आजकल साधुओंकी संख्या इतनी कम है, कि दूर-दूरके देशोंमें भ्रमणकर बहुत दिनों तक खोज करनेपर भी एक सच्चा साधु पाना अत्यंत दुर्लभ हो गया है।

मधुर रसमयी कृष्ण-भक्ति बड़ी दुर्लभ है

महादेवने पार्वतीदेवीसे कहा, हे भगवति ! हजारों-हजारों मुमुक्षुओंमें से विरलोंमें ही मुक्त-लक्षण प्राप्त होते हैं। हजार-हजार मुक्त पुरुषोंमें से सिद्धि लाभ तो कोई ही कर पाता है और पुनः करोड़ों सिद्धि एवं मुक्त पुरुषोंमें भी शायद ही कोई सत्संग और सुकृतिके बलसे नारायणका परायण होता है। देखो, नारायणके भक्त प्रशान्तात्मा (शान्त चित्तवाले) होते हैं, अतएव वे बहुत ही दुर्लभ होते हैं। अब देखिए, जब दास्य-रसका आश्रय करनेवाले नारायणके शुद्ध भक्त ही इतने दुर्लभ हैं, तब मधुर-रसका आश्रय करनेवाले कृष्ण भक्त कितने दुर्लभ होंगे—इसमें और अधिक कहना ही क्या है।

कृष्णके भक्त ही परमसाधु हैं और उनके

संगका बहुत बड़ा फल होता है

उपरोक्त लक्षणोंसे युक्त कृष्ण भक्त ही हमारे लिए साधु हैं। कृष्णके भक्तोंका संग हमारे लिए अति प्रयोजनीय है। कृष्ण भक्तोंके संगसे होनेवाले

लाभोंके सम्बन्धमें ब्रह्माजी कहते हैं—

तावद्रागादयः स्तेनास्तावत कारागृहं गृहम्।

तावन्मोहोऽद्विनिगडो यावत कृष्ण नतेजनाः॥

(श्रीमद्भा० १०/१४/३६)

स्वभावतः राग-द्वेष आदि दोष चोरोंके समान हमारा सर्वस्व अपहरण करते रहते हैं। हमारे गृह, कारागृह बन गये हैं। हम लोग मोहरूप पैरकी बेड़ियोंसे सर्वदा जकड़े हुए हैं। हमारी यह कैसी दुर्दशा है ? हे श्याम सुन्दर ! जिस दिन तुम्हारे शुद्ध भक्तके संगसे हम लोगोंके हृदयमें तुम्हारे प्रति ममता उत्पन्न हो जाती है, उसी दिनसे हम लोग तुम्हारे प्रिय-जनोंके बीचमें बैठ सकते हैं। उसी दिनसे हमलोगोंकी राग आदि प्रवृत्तियाँ अब और चोरोंकी तरह आचरण नहीं करतीं, बल्कि परम बन्धुकी तरह आचरण करतीं हुईं तुम्हारी भक्तिके चरणोंमें लीन हो जाती हैं। उसी दीनसे हम लोगोंका गृह अप्राकृत होकर नित्य-आनन्द दान करने लगता है और उसी दिनसे हमारा मोह केवल भक्तोंका सेवक होकर हमलोगोंकी आत्मोन्नति किया करता है। अतएव ब्रह्माजी फिर प्रार्थना करते हैं—

तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो

भवेऽत्र वान्यत्र तु वा तिरश्चाम्।

यनाहमकोऽपि भवज्जनानां

भूत्वा निष्वेत तव पादपल्लवम्।

(श्रीमद्भा० १०/१४/३०)

हे कृष्ण ! मैं इस ब्रह्म-जन्ममें रहूँ या दूसरा कोई जन्म पाऊँ अथवा पशु-पक्षी होऊँ, मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो कि मैं आपके दासोंमें से कोई एक दास हो जाऊँ, और फिर आपके चरणकमलोंकी सेवा करूँ।

सत्संगके सम्बन्धमें भ्रान्त धारणा

क्या करनेसे सत्संग हो सकता है—इसका विचार करना बहुत ही आवश्यक है। अनेक लोग ऐसा सोचते हैं कि जिसे साधु समझा जाय, उनकी पद-सेवा करनेसे, उनको प्रणाम करनेसे, उनका चरणामृत पीनेसे, उनका प्रसाद भोजन करनेसे तथा

उनको कुछ अर्थादि दान करनेसे ही साधु संग हो जाता है। इन समस्त कार्योंके द्वारा साधुका सम्मान करना तो अवश्य होता है और उससे कुछ-न-कुछ लाभ भी होता है—इसमें सन्देह नहीं, किन्तु इसे ही साधुसंग कहते हैं, ऐसी बात नहीं है।

साधु-संग लाभ करनेके लिए क्रमोपाय

साधुसंग किस प्रकार करना चाहिए, उसे बतलाते हैं—

ते वै विदन्त्यतिरक्ति च देवमायां

स्त्री-शूद्र-हूण-शबरा अपि पापजीवाः।

यद्यद्वृतक्रम-परायण-शीलशीक्षा-

स्तिर्यग्जना अपि किम् श्रुतधारणा वे।

(श्रीमद्भा० २/७/४६)

‘अद्वृतक्रम’ शब्दका अर्थ कृष्णसे है। श्रीकृष्णके शुद्ध भक्तजन अद्वृत पराक्रमी होते हैं। जो लोग उन भक्तोंके ‘शील’ अर्थात् स्वभाव और सत् आचरणकी शिक्षा ग्रहण करते हैं, वे निश्चय ही भगवान्‌की मायाशक्तिका रहस्य जान जाते हैं, दूसरे इसे जान नहीं सकते। जिन्हें भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंका—सा स्वभाव बनानेकी शिक्षा मिली है, वे स्त्री, शूद्र, हूण, भील, और पापके कारण पशु-पक्षी आदि योनियोंमें रहनेवाले भी आसानीसे इस संसार-सागरसे सदाके लिए पार हो जाते हैं। फिर जो शास्त्र और पण्डित लोग कृष्णके भक्तोंका चरित्र अनुसरण करते हैं, उनके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। मतलब यह है कि प्रचुर मात्रामें शास्त्र-ज्ञान अर्जन करनेपर भी भगवान्‌की मायाको पार नहीं किया जा सकता। उत्तम जातिमें जन्म होनेपर भी कोई बड़ा नहीं होता। शास्त्रके विचारके द्वारा शुष्क वैराग्यका अवलम्बन करनेपर भी संसार-सागरको पार नहीं किया जा सकता। धन और सौन्दर्य द्वारा भी उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। केवलमात्र शुद्ध भक्त साधुओंके स्वभाव और सच्चरित्रका यत्नपूर्वक अनुसन्धानकर उसे सरलता पूर्वक अनुसरण करनेसे विशुद्ध कृष्ण-भक्ति पाई जाती है।

विषयी लोगोंका दैन्य और कृपाके लिए प्रार्थना करना—कपटता है।

देखा जाता है, विषयी लोग साधुके निकट नम्रतासे कहते हैं—“हे दयामय ! मुझपर दया करें, मैं बहुत ही दीन-हीन और कङ्गाल हूँ, मेरी संसार-बुद्धि कैसे दूर हो ?” विषयी लोगोंकी सभी बातें बनावटी होती हैं। वे मन-ही-मन जानते हैं कि धन-ऐश्वर्यकी प्राप्ति और विषयोंका संग्रह करना ही उनके जीवनका उद्देश्य है। उनके हृदयमें ऐश्वर्यका मद पूर्ण मात्रामें भरा रहता है। केवल प्रतिष्ठा पानेकी आशासे और साधुओंके शापके द्वारा उनके विषय नष्ट न हो जायें, इस डरसे उनके निकट कपट दैन्य और बनावटी भक्ति दिखलाते हैं। अगर साधु लोग उन्हें यह कहकर आशीर्वाद दें कि तुम्हारी विषय-वासनाएँ दूर हो जायें और तुम्हारा धन, जन सभी नष्ट हो जायें।” तभी विषयी लोग बोल उठेंगे—“हे साधु बाबा ! आप मुझे ऐसा आशीर्वाद न दें। ऐसा आशीर्वाद तो मैं चाहता नहीं। यह तो केवल शाप है। आप हमारा सर्वनाश न करें।” अब देखिये, साधुओंके प्रति ऐसा व्यवहार करना कपटता मात्र है या नहीं ?

कपटताके कारण सत्संगका फल लाभ करनेसे वर्चित होना।

जीवनमें अनेक साधु पुरुषोंसे भेंट होती है, किन्तु अपने कपटतापूर्ण व्यवहारके कारण हम सत्संगका लाभ नहीं उठा पाते। अतएव सरल श्रद्धाके साथ (पाये गये) साधु-महात्माओंके स्वभाव और सच्चरित्रका सदा यत्नपूर्वक अनुसरण करनेसे सत्संग द्वारा (साधु-संग द्वारा) आत्मोन्नति लाभ की जा सकती है। इसी बातको सदा याद रखकर सच्चे साधुके निकट जाकर उनका स्वभाव और चरित्र जानना चाहिए और उनके स्वभाव तथा चरित्रकी तरह हम लोग भी वैसा अपना स्वभाव और चरित्र गठन कर सकें, इसके लिए भरपूर चेष्टा करनी चाहिए। यही श्रीमद्भागवतकी शिक्षा है। □



मायावादकी जीवनी

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भाक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ९, पृष्ठ १८५ से आगे)

अद्वैतवादी शिवनाथ शिरोमणिका मत

अद्वैतवादी माननीय शिवनाथ शिरोमणि महोदयने आचार्य शंकरके मतकी आलोचना करते समय अपना जो मन्त्रव्य प्रकाशित किया है, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

“महात्मा शंकराचार्यने इशोपनिषद् आदि दस उपनिषदोंकी टीका, वेदान्त या ब्रह्मसूत्रका भाष्य और दूसरे-दूसरे बहुतसे ग्रन्थोंकी रचनाएँ की हैं। वेदान्त भाष्य या शारीरक भाष्य ही उनका अक्षय कीर्ति-स्तम्भ है। इस ग्रन्थमें उनकी असाधारण प्रतिभा और गम्भीर ज्ञानका परिचय पाया जाता है। इस ग्रन्थसे यह विदित होता है कि बौद्धमतका खण्डन करते समय उन्होंने बौद्धोंकी युक्तियोंका ही अवलम्बन किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती बौद्ध दर्शनिक नागार्जुनके मतको अनेक स्थलोंपर ग्रहण किया है”।

—(१३०८ बंगला संवत्में प्रकाशित शब्दार्थमंजरी का परिशिष्ट, पृष्ठ ३५)

शिरोमणि महोदय शंकरके प्रधानताकी रक्षा करते हुए यह कहना चाहते हैं कि शंकर बौद्धमतका खण्डन करनेवाले हैं। वास्तवमें वे बौद्धमतके पोषक हैं, न कि खण्डनकर्ता। समसामयिक साधारण लोगोंमें अपने प्रति श्रद्धा अर्जन करनेके लिए ही कायरतापूर्वक ऐसे वचनोंका प्रचार किया गया है। बौद्ध धर्मको खदेड़नेके सम्बन्धमें भी शंकरके विरोधी अन्यान्य आचार्यवर्गकी कीर्ति ही सर्वापेक्षा अधिक प्रशंसनीय और आदरणीय है। हम उपयुक्त प्रसंगपर इसकी आलोचना करेंगे।

अद्वैतवादी राजेन्द्रनाथ घोषका मत

वर्तमान शताब्दीमें माननीय राजेन्द्रनाथ घोष ही गौड़देशमें (बंगालमें) एक प्रधान और कट्टुर अद्वैतवादी हुए हैं। व्यर्थ ही शंकरके प्रेममें मुग्ध होकर उन्होंने दूसरे-दूसरे विशुद्ध धर्मोंके प्रति कटाक्ष किया है। इससे उनके अद्वैतवादके प्रति अन्धविश्वासका पता चलता है। जैसा भी हो प्रसिद्ध राजेन्द्र बाबू भी अपने उपास्य शंकरको बौद्ध तथा बौद्धमतका एक प्रधान पोषक स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए हैं। वे अद्वैतसिद्धिकी भूमिकामें लिखते हैं—

“बृद्धदेवके लगभग ५०० वर्ष बाद तक अर्थात् ईसाके जन्मके पहले तक अर्थात् विक्रमादित्यके (ईसा पूर्व ५७ वर्ष) आविर्भाव तक अद्वैतमत बौद्धमतके माध्यमसे ही प्रबलरूपमें प्रचारित होता रहा।

—(अद्वैतसिद्धि की भूमिका—पृष्ठ १०)

राजेन्द्र बाबू कहना चाहते हैं कि बौद्धमत अवैदिक नहीं है। वह भी एक वैदिक मत है। इसका कारण यह है कि बौद्धमतको अवैदिक स्वीकार करनेसे शंकरके मतको भी बाध्य होकर अवैदिक ही मानना पड़ेगा। किन्तु उन्होंने बौद्धमतके साथ शंकरमतका कुछ पार्थक्य भी बतलानेकी चेष्टा की है। उनका कहना है कि बौद्धमत वैदिक होनेपर भी मूलच्छेदी (जड़को काटनेवाला) है और शंकरका मत मूलरक्षी है। वास्तवमें शंकर भी मूलच्छेदी हैं। राजेन्द्र बाबू कहते हैं—“बौद्धमत वेदमूलक होनेपर भी मूलच्छेदीके रूपमें परिणत हुआ।” आचार्य शंकरकी

बौद्धत्वके हाथसे रक्षा करनेके लिए उन्होंने अनेक प्रकारकी चेष्टाएँ की हैं, पर वह किसी प्रकार भी सम्भव दिखाई नहीं पड़ता।

मायावादके प्रचारके कारण

मायावादके प्रचार होनेके कारणके सम्बन्धमें पहले भी कुछ आलोचना की गई है। फिर भी प्रसंगवश और भी दो-एक वचनोंको उद्धृत कर मायावादके ऐतिहायके सम्बन्धमें आलोचना करनेके लिए प्रवृत हो रहा हूँ—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते।
मयैव विहितं देवि कलौ ब्राह्मण-मूर्तिणा।
माज्च गोपय येन स्यात् सृष्टि रेषोत्तरोत्तरा॥

—(पद्मपुराण)

विमोहनाय शास्त्राणि करिष्यामि वृष्टध्वजं।
चकार मोहशास्त्राणि कंशकोऽपि शिवं स्थितः॥

—(कूर्म पुराण-पूर्व भाग)

उक्त वचनों द्वारा प्रधानतः शंकर ही मायावादके जन्मदाता प्रतीत होते हैं। किन्तु 'प्रच्छन्नं बौद्धमुच्यते' द्वारा बुद्धदेवको ही उक्त मतका आदि जनक समझा जाता है। और 'माज्च गोपय' इस वाणी द्वारा यह भी प्रतिपादित होता है कि 'ईश्वर की इच्छा' मायावादकी सृष्टिका मूल कारण है। भगवान्‌की ऐसी इच्छा प्रकट करनेकी लीलाका कारण है—भक्तवात्सल्य। "कृष्ण भूलि सेर्ई जीव अनादि बहिर्मुख" अर्थात् कृष्णको भूलकर जीव अनादि बहिर्मुख हो जाता है। अतएव, ऐसा देखा जाता है कि जीव कृष्णकी सेवा भूलनेके कारण ही 'सोऽहं' भावसे विभावित होकर भक्तोंके प्रति ईर्ष्या करने लगता है।

यहाँ देखा जाता है कि भगवत्-विस्मृति और उसके द्वारा ईश्वरकी इच्छा ही मायावादकी सृष्टिके उपादान और निमित्त कारण हैं। तथा ब्रह्माकी सृष्टिके प्रारम्भसे ही किसी-न-किसीको उस अद्वयज्ञान-पथका पथिक होते हुए देखा जाता है।

सत्य, द्वापर, त्रेता—इन तीनों युगोंके प्रत्येक

युगमें साधारण-साधारण दो-एक ज्ञानवादी दीख पड़ते हैं। इनके ज्ञानके प्रभावसे या मायावादके प्रखर तेजसे भक्ति-लताको सूखते देखकर भगवान् धर्मरूप भक्तिशास्त्रकी स्थापना करनेके लिए एवं मायावादरूप दुष्कृतिके विनाशके लिये प्रत्येक युगमें जन्म ग्रहण करते हैं। देवताओंकी रक्षा तथा असुरोंका विनाश—ये भगवान् श्रीबलदेवकी लीलाएँ हैं। इसीलिए वे इन तीनों युगोंमें आविर्भूत होकर मायावादियोंकी दुर्बुद्धिका विनाशकर उन्हें भक्तिधर्ममें स्थापित कर देते हैं। मायावादी अपने मतकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेमें असमर्थ होकर भक्तिके सौरभसे आकृष्ट होकर नीरस ज्ञानपथको मलके समान परित्याग करते हुए भगवान्‌के नित्य-सेवा-धर्ममें अपना मस्तक नत कर देते हैं (आशर्चयका विषय है आजतक एक भी विशुद्ध भक्ति धर्मावलम्बी व्यक्तिने अपना मत परित्याग कर मायावादियोंके निकट अपना मस्तक नहीं झुकाया है।) मैं ऐतिहासिक रूपमें ही सत्ययुगसे आरम्भ कर आजतकके इतिहासकी छान-बीनकर संक्षेपमें उसका परिचय प्रदान कर रहा हूँ। प्रत्येक स्थलपर प्रमाण उद्धृतकर इस विषयका वर्णन करनेसे लेखका कलेवर अधिक बढ़ जायेगा। अतएव इतिहास प्रसिद्ध, सर्ववादी-सम्मत सत्य घटनाओंका ही अवलम्बनकर अपने निर्दिष्ट विषयकी ओर अग्रसर हो रहा हूँ।

सत्ययुगमें ज्ञानवाद और उसकी परिणामि

‘चतुःसन’

सत्ययुगमें सनक, सनातन, सनन्दन और सनत्कुमार—इन चारों कुमारोंकी कथा शास्त्रोंसे विदित होती है। ये चतुःसनके नामसे परिचित हैं। प्रकृति और पुरुषके सहयोगसे जिस सृष्टि-प्रक्रियाका लोकसमाजमें प्रचलन है अर्थात् जीवोंका जैसे इस जगत्‌में जन्म होता है, उस नियमके अपवाद हैं—ये चारों कुमार। ब्रह्माके कल्पना-प्रसूत सनकादि चारों

कुमार मानस-पुत्रके रूपमें ब्रह्माके प्रथम सृष्टि-कौशलके भव्य निर्दर्शनस्वरूप विख्यात हैं। वे बाल्यकालसे ही ज्ञानयोग द्वारा ब्रह्मचर्यका पालन करते थे। चारों कुमारोंका यह ज्ञानयोग कुछ-कुछ निर्विशेषमूलक होनेके कारण शुद्धभक्तिके प्रतिकूल पड़ता था। इससे पिता ब्रह्मा बड़े दुःखी हुए। इन्होंने भगवान्‌के निकट जाकर चारों कुमारोंका कल्याण करनेके लिए प्रार्थना की। सृष्टिके प्रथम संतानोंकी ऐसी अवस्था देखकर भगवान्‌ने हंसरूपमें अवतीर्ण होकर चारों कुमारों और नारदको भक्तियोगकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवतमें इस प्रसंगमें ब्रह्मा नारद और चारों कुमारोंको सम्बोधन करते हुए कह रहे हैं—

तुभ्यज्व नारद! भृशं भगवान् विवृद्ध
भावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम्।
ज्ञानज्व भागवतमात्मसत्त्वदीपं
यद्वासुदेव—शरणा विदुरज्जसैव॥

(श्रीमद्भा. २/७/१९)

अर्थात् तुम्हारे अत्यन्त प्रेमसे परम प्रसन्न होकर हंसावतारमें भगवान्‌ने तुम्हें भक्तियोग और उसके अनुकूल भगवद्विषयक ज्ञानका उपदेश दिया था।

उक्त श्लोकमें ‘तुभ्यज्व नारद’ इस वाक्यमें ‘च’ शब्दका तात्पर्य—अचिन्त्यभेदाभेदतत्त्वके आचार्य गोविन्द भाष्यके रचयिता आचार्य श्रीपाद बलदेवने सनकादि चारों कुमारोंसे बतलाया है। लघुभागवतामृतके हंसावतार प्रसंगमें ७२ वें श्लोककी ‘सारङ्गरङ्गदा’ टीकामें उन्होंने लिखा है—

तुभ्यज्वति चात् सनकादिभ्यः।

श्रील कविराज गोस्वामीकी लेखनी द्वारा विदित

होता है कि भगवान् शेषावतारने सनकादि ऋषियोंको श्रीमद्भागवतकी शिक्षा दी थी। यथा—
“सेई त अनन्त शेष भक्त अवतार।”
इश्वररे सेवा बिना नाहि जाने आर॥
सहस्रवदने करे कृष्ण-गुणगान।
निरवधि गुणगान अन्त नाहि पान॥
सनकादि भागवत सुने यार मुखे।
भगवानेर गुण कहे भासे प्रेमसुखे॥

(चै. च. अ. ५/१२०-१२२)

चैतन्यचरितामृत ग्रन्थसे प्रमाणित होता है कि केवल हंसावतारने ही सनकादि चारों कुमारोंको भक्तिसिद्धान्तका उपदेश नहीं दिया था, अपितु शेषावतारने भी उन्हें भागवतधर्मकी शिक्षा दी थी। श्रीमद्भागवत भक्ति-सम्बन्धी अचिन्त्य-भेदाभेद-तत्त्वका चरम सिद्धान्त-शास्त्र है। सनकादि चारों कुमारोंने भक्तावतार श्रीअनन्तदेवके निकट भागवतके उन सिद्धान्तोंको श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था, इसीलिए सनक सम्प्रदायके आचार्य श्रीपाद निम्बादित्य स्वामीने वेदान्तके द्वैताद्वैत-सिद्धान्तका प्रचार करनेके लिए चतुःसनको ही अपना पूर्वाचार्य स्वीकारकर वेदान्तके ‘पारिजात सौरभ’ नामक भाष्यकी रचना की है।

सनकादि चारों कुमारोंके नामपर ही इस सम्प्रदायका नाम सनक सम्प्रदाय हुआ है। इस सम्प्रदायके इतिहासकी आलोचना करनेसे विदित होता है कि हंसावतार ही इन चारों कुमारोंके गुरु थे। हंसावतारके निकट भक्तिकी कथा सुनकर वे अपने शुष्क ज्ञानका परित्यागकर भक्तिका प्रचार करने लगे। अब उनकी गणना भक्ति-धर्मके आचार्योंमें होने लगी। □

चित्रकेतुका मोह

प्राचीन कालमें शूरसेन प्रदेशमें चित्रकेतु नामक अत्यन्त प्रतापी राजा थे। वे पृथ्वीके एकछत्र सम्प्राट थे। उनकी अनेक सुन्दर रानियाँ थीं। अतुल धन-सम्पत्ति, विराट ऐश्वर्य, पृथ्वीका राज्य, अप्सरातुल्य रानियाँ, कुलीनता, विद्या और युवावस्था—ये सभी उस राजाको प्राप्त था, परन्तु वे सब वस्तुएँ उन्हें सुखी न कर सकीं, क्योंकि उनको कोई सन्तान न थी।

वे पुत्रके लिए बड़े दुःखी थे। एक दिन महर्षि अङ्गिरा घूमते-घूमते चित्रकेतुके राजभवनमें पथारे। उन्होंने राजाको अत्यन्त चिन्तित देखकर उसका कारण पूछा। महाराज चित्रकेतुने विनयसे झूककर निवेदन किया—भगवन् आप तो प्राणियोंके बाहर भीतर सब कुछ जानते हैं। आपसे छिपा ही क्या हैं? पृथ्वीका विशाल साम्राज्य, ऐश्वर्य और सम्पत्तियाँ जिनके लिए लोकपाल भी लालायित रहते हैं, मुझे प्राप्त हैं। परन्तु सन्तान न होनेके कारण मैं किसी प्रकार भी शान्ति नहीं पा रहा हूँ।

पुत्रके अभावमें मृत्यु होनेपर श्राद्ध और पिण्डदान देकर परलोकमें प्राप्त होनेवाले घोर नरकसे कौन मेरी रक्षा करेगा, यही चिन्ता मुझे दिन-रात परेशान किये रहती है। ऋषिवर आप सब कुछ करनेमें समर्थ हैं, एक पुत्र देकर मेरी रक्षा कीजिए।

सम्प्राटकी प्रार्थना सुनकर महर्षि अङ्गिराने एक यज्ञ कराया और यज्ञका अवशेष प्रसाद राजाकी बड़ी रानी कृतद्युतिको दिया। जाते-जाते कहते गए—“महाराज! आपकी इस रानीके गर्भसे एक पुत्र तो होगा, किन्तु वह आपके हर्ष और शोक दोनोंका कारण बनेगा।”

महारानी कृतद्युति गर्भवती हुई। समय आने पर उन्हें एक अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ। इस समाचारसे देशकी प्रजा अत्यन्त प्रसन्न हुई। महाराजके तो आनन्दकी सीमा न थी। पूरे राज्यमें उत्सव मनाया गया। महाराजने समयके अनुसार पुत्रका जातकर्म-संस्कार करवाया तथा ब्राह्मणोंको सोना, चाँदी, वस्त्र, गाय, घोड़े, हाथी आदि मुँह-माँगी वस्तुएँ दान की। बहुत दिनोंतक निःसन्तान रहनेपर महाराजको एक सन्तान मिली थी, फलतः उस पुत्रमें उनका स्नेह-बन्धन अधिकतर दृढ़ होता गया। रानी कृतद्युतिकी अपने पुत्रपर अत्यन्त आसक्ति बढ़ती जा रही थी। महाराज अब पुत्र-स्नेहके वश अधिकतर बड़ी रानीके महलमें ही रहा करते। इसका फल यह हुआ कि महाराजकी दूसरी रानियाँ जलने लगीं। एक तो बाँझ होनेका दुःख, तिस पर भी पतिकी उपेक्षाने कटे हुए घावपर नमकका काम किया। वे बड़ी दुःखित हुईं। इस दुःखने धीरे-धीरे प्रचण्ड द्वेषका रूप धारणकर लिया। इस द्वेषके कारण उनकी बुद्धि मारी गयी। उन्हें सौतकी भरी गोद न सुहायी। अन्तमें सबने मिलकर षडयन्त्र रचा और उस अबोध नन्हेसे शिशुको दूधमें विष मिलाकर पिला दिया। बालक पलनेमें झूल रहा था। वह सदाके लिये उसी पलनेमें सो गया।

रानीने बच्चेको देरतक सोया देखकर धायसे बच्चेको अपने पास लानेके लिए कहा। धाय वहाँ जाकर बच्चेकी पुतलियोंको उलटी हुई देखकर हाय! हाय! करती हुई पृथ्वीपर गिर पड़ी। रानी धायका आर्तनाद सुनकर दौड़ी हुई शयनागारमें आयी और अचानक बालकको मरा हुआ देखकर कटे हुए वृक्षकी तरह मूर्छित होकर गिर पड़ी, तदनन्तर कुररी पक्षीकी तरह उच्च स्वरसे

विविध प्रकारसे विलाप करने लगीं। अब तो सारे राजनिवासमें जोरोंका कुहराम मच गया। विष देनेवाली रानियाँ भी वहाँ आकर झूठ-मूठ रोनेका ढोंग करने लगीं। महाराज चित्रकेतुको जब यह खबर मिली तो वे शोकके प्रबल आवेगमें पागल जैसे होकर ब्राह्मण और मंत्रियोंके साथ गिरते-पड़ते मृत बालकके पास पहुँचे और वे भी मूर्छित होकर उसके पैरोंके पास गिर पड़े। अब तो कृतद्युति प्राणप्रिय पतिको चेतनाहीन देखकर और भी बिलख-बिलखकर रोने लगी। राजा भी कुछ देरके बाद मूर्छा छूटनेपर शोकसे सन्तप्त होकर फूट-फूटकर रोने लगे। इस प्रकार सारे नगरमें शोकका समुद्र उमड़ पड़ा।

सर्वज्ञ अंगिरा ऋषि और नारदजी इस मर्मान्तक घटनाका हाल जानकर ठीक समयपर राजभवनमें पधारे। उन्होंने राजासे कहा—“राजन्! आप तो इस बालकके लिए अत्यन्त शोक कर रहे हैं। परन्तु क्या बतला सकते हैं कि वह बालक पूर्व जन्ममें कौन था और अगले जन्ममें उसके साथ आपका क्या सम्बन्ध रहेगा। सच बात तो यह है कि पिता, माता, पुत्र, भाई, बहन, आदि सम्बन्ध सत्य नहीं हैं, क्योंकि ये सम्बन्ध पहले नहीं थे और पीछे भी नहीं रहेंगे। वर्तमान अवस्थामें कालके वशमें होनेके कारण इस प्रकारके कल्पित सम्बन्ध स्थापित हुए हैं। इसलिए अनित्य वस्तुओंके लिए शोक करना उचित नहीं। इस चराचर विश्वकी सृष्टि करनेवाले भगवान् ही सबके मूल कारण है, तब भी जीवोंका माता, पिता, पुत्र, आदिके रूपमें मिथ्याभिमान होता है।”

महाराज चित्रकेतु उन दिव्य पुरुषोंके द्वारा शोक दूर करनेवाले उपदेशोंको सुनकर कुछ शांत हुए और नम्रतापूर्वक उनका परिचय पूछा। महर्षि अङ्गिराने कहा—“राजन्! जिस समय आप पुत्रके लिए अत्यन्त लालायित थे, मैंने ही आपको पुत्र दिया था। मैं अङ्गिरा हूँ और जो मेरे साथ हैं,

ये स्वयं ब्रह्माजीके पुत्र देवर्षि नारद हैं। हमने आपको पुत्र शोकसे अत्यन्त कातर देखकर सोचा कि आप भगवान्‌के परम भक्त हैं शोकके योग्य नहीं हैं। इसीलिए हमलोग आप पर अनुग्रह करनेके लिए यहाँ आए हैं। सच्ची बात तो यह है कि मैं आपपर प्रसन्न होकर आपके पास पहले ही आया था किन्तु उस समय मैंने देखा कि आप पुत्रकी कामनासे अन्धे हो रहे हैं। इसलिए समयानुकूल शिक्षा देनेके लिए हर्ष और शोक प्रदान करनेवाला एक पुत्र दिया था। अब आप स्वयं अनुभव कर रहे हैं कि पुत्रवानोंकी दशा कैसी होती है। यही बात स्त्री, पति, घर, ऐश्वर्य, शत्रु, मित्र आदि सभीके लिए लागू होती है। क्योंकि ये सबके-सब अनित्य हैं। यह सारा संसार इसी प्रकार दुःखमय है।”

महाराज चित्रकेतुका शोक अब भी पूर्णरूपसे दूर न हो सका था। वे अङ्गिरा ऋषिके उपदेशोंके मर्मको ठीक-ठीक हृदयझम नहीं कर सके। नारदजीने इसे मन-ही-मन ताड़ लिया। उन्होंने अपने योगबलसे मरे हुए बालककी आत्माको शोकात्त स्वजनोंके सामने प्रत्यक्ष बुलाकर कहा—“हे जीवात्मा! देखो तुम्हारे पिता-माता, बन्धु, बान्धव सभी तुम्हारे वियोगसे अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं। तुम इस विशाल राज्यका सुख भोगो।”

सब लोगोंके सामने ही बालकके आत्माने उत्तर दिया—“देवर्षि! ये मेरे किस जन्मके माता-पिता हैं? बात यह है कि जीवात्मा नित्य है, उसका जन्म और मृत्यु नहीं है। अपने कर्मोंके अनुसार वह देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि योनियोंमें भटकता फिरता है और अनित्य कालके लिए परस्पर पिता, माता, भाई, बहन, पति, पत्नी, पुत्र, शत्रु, मित्र आदि सम्बन्धोंको जोड़कर अपनेको कभी दुःखी और कभी सुखी मानता है। वस्तुतः जीवके स्वरूपमें ये सम्बन्ध नित्य नहीं हैं। इसलिए उनको शोक करना उचित नहीं। मैं अपने कर्मोंके अनुसार

अनेक बार इनका माता-पिता रहा हूँ और अनेक बार ये मेरे माता-पिता रहे हैं। ये सब सम्बन्ध तो शरीरके हैं न कि जीवात्माके। जीवात्माका इस शरीरसे सम्बन्ध छूट जानेपर ये सब सम्बन्ध भी यहीं छूट जाते हैं। फिर तो सबको अपने ही कर्मोंके अनुसार फल भोगना पड़ता है। जीवात्मा इस प्रकार कहकर चली गयी। उसके सगे-सम्बन्धी उसकी बातोंको सुनकर विस्मित हुए। चित्रकेतु और उनकी पत्नियोंका मोह अब दूर हो चुका था। बालककी हत्या करनेवाली रानियाँ अत्यन्त लज्जित हुईं। उन्होंने अङ्गिराके उपदेशोंको स्मरणकर यमुनाके तटपर ब्राह्मणोंके आदेशसे बाल हत्याका प्रायशिच्त

किया। महाराज चित्रकेतुने भी पुत्रके शवका अन्तिम संस्कार किया। तदनन्तर स्नान और तर्पण आदि धार्मिक क्रियाओंको पूराकर अङ्गिरा और नारदजीके पैरोंपर गिर पड़े। देवर्षि नारदने कहा—“मैंने आपको परम भगवत् जितेन्द्रिय और शरणागत जानकर भगवत् तत्त्वका और उसकी प्राप्तिके लिये भगवद् आराधना अर्थात् भगवद्भक्तिका उपदेश दिया।” महाराज चित्रकेतुको उसी आराधनाके प्रभावसे कुछ ही समयमें भगवान् श्रीअनन्तदेवके दर्शन हुए। वे विषम संसार-सागरको पारकर मायिक सुख-दुःख, जन्म-मृत्युको उत्तीर्णकर भगवत् सेवा-सुखमें मग्न हो गये। □



सच हरि भजन विनु जगत सब सपना

—डॉ. सत्यपाल गोयल

भाव प्रणवता हृदयका विषय होनेपर भी व्यक्तिको सदैव भावुक ही नहीं बने रहना चाहिए। उसे कुछ सीमातक विवेकका आश्रय लेकर सत् और असत्का भी विचारकर सदैव सत् मार्गका ही अनुसरण करना चाहिए। व्यक्तिको तात्कालिक उपलब्धियोंपर ही अपना ध्यान कोंद्रित न करके यह भी विचार करना चाहिए कि जिन तात्कालिक सुखोंका मैं संग्रह परिग्रह कर रहा हूँ, क्या वे मुझे चिर शांति सुख दे सकेंगे?

कहीं ऐसा तो नहीं है कि सारा जीवन उनके संग्रहमें ही चला जाए तथा अंतमें स्थिति वर्ही रहे, जो प्रारंभ में थी। कहनेका तात्पर्य यह है कि जीव इस जगत्‌में माताके गर्भसे वस्त्रहीन ही पैदा होता है और अंतमें निर्वस्त्र ही चितामें धर दिया जाता है फिर इस संग्रहका अर्थ ही क्या हुआ? जिनके लिए आपने सारे जीवनको स्वाहा कर दिया।

दुनिया भरके द्वन्द्व करके लूट, खसोट, धोखा आदि जघन्य कर्म करके उपार्जन किया और अंतमें सब छोड़कर चल दिये।

स्वप्नमें जिस प्रकार बड़े-बड़े महलों, नौकर-चाकर, कारों, उद्योगोंका स्वामी बना और आँख खुलनेपर सब तिरेहित हो गया। संसारकी उपलब्धियाँ भी स्वप्नके समान ही हैं, तभी तो श्रीमहादेवजीने पार्वतीजीसे कहा—

उमा कहें मैं अनुभव अपना।

सच विन हरि भजन जगत सब सपना॥

(रामचरितमानस)

श्रीमहादेवजी परम वैष्णव हैं। निरंतर श्रीरामनामका जप करते हैं तथा संसारकी वास्तविकताका अनुभवकर परमवैराग्यस्वरूप श्मशानमें भस्म लगाकर रहते हैं। एक रामनामरूपी परम धनको संग्रह करनेके अतिरिक्त कुछ नहीं करते

हैं। वे स्वयं श्रीपार्वतीजीसे कह रहे हैं कि हे पार्वती! तुमसे मैं अपना अनुभव कह रहा हूँ कि एक रामनामके जपके अलावा संसारके समस्त क्रियाकलाप स्वप्नके समान हैं।

यहाँ जगत्को स्वप्नके रूपमें एकांशमें ही लिया गया है, क्योंकि सपनेकी उपलब्धियाँ जिस प्रकार जागने पर मूर्तरूपमें नहीं रहती हैं, उसी प्रकार संसारमें व्यक्ति जो कुछ भी पाता है वह शरीर छोड़नेपर यहीं रह जाता है। अद्वैतवादियोंकी धारणा भी जगत्को स्वप्नवत् मिथ्या मानती है, परन्तु यह धारणा भ्रांतचित्त लोगोंकी कल्पना प्रसूत है। यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मसे प्रकट हुआ है। जब ब्रह्म भी सत्य है तो जगत् भी सत्य है। यदि जगत् असत्य हो गया तो उसमें व्याप्त ब्रह्म भी असत्य हो जायेगा। अतएव जगत् ब्रह्मके समान ही सत्य तो है, परन्तु उसकी स्थिति नित्य नहीं है। यहाँ इस अर्थमें ही जगत्को स्वप्नके समान कहा गया है।

मायाके वशीभूत होकर जीव ईश्वरको भूल गया है। इसलिए वह संसारमें करोड़ों जन्मोंसे भटक रहा है। जीवका नित्य स्वरूप (धर्म) नित्यकृष्ण दास है यथा—

जीवे स्वरूप हय नित्य कृष्ण दास।
कृष्णेर तटस्था शक्ति भेदाभेदप्रकाश॥
(श्रीचैतन्यचरितामृत)

प्रत्येक व्यक्तिको अपने नित्य स्वरूपको जानकर निरंतर हरि भजन करना चाहिए। भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे किसी संचित सुकृतिके फलस्वरूप जीवको मनुष्य जन्म मिला है, उसे कृष्ण भजनको छोड़कर अन्य-अन्य लौकिक स्वार्थोंमें लगाना जीवित ही विष खानेके समान है। जीव भजन करे या न करे, उसे भजन करनेके लिए कोई बाध्य नहीं कर सकता, यह जीवकी सार्वभौमिक स्वतंत्रता है। लौकिक जगत्‌में किसी राष्ट्रविशेषमें स्वतंत्रता भले ही संवैधानिक

अधिकार हो तथा व्यवहारमें अनेक नियमोंसे बंधा हो, परन्तु आध्यात्मिक जगत्‌में उसे कर्म करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता है। उसकी स्वतंत्रतामें तिलमात्र भी नियमोंका प्रतिरोध नहीं है, यथा—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात् जीवको कर्म करनेकी पूर्ण स्वतंत्रता है, परन्तु उसका फल उसके अधिकारमें नहीं है। अतएव जीवको कर्मके फलमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

भगवान् श्रीकृष्णका वचन कभी असत्य नहीं होता है। उन्होंने सभी जीवोंको कर्म करनेका पूर्ण अधिकार प्रदान किया है परन्तु जीव उसी स्वतंत्रताका दुरुपयोग कर मायाके बंधनमें पड़ जाता है। किसी साधु-गुरु-वैष्णव या भगवान्‌की कृपा होनेपर उसके हृदयमें हरिभजनकी प्रेरणा होती है।

इस लोककी बात ही क्या ब्रह्मलोक पर्यन्त भी अस्थायी है। वहाँसे ब्रह्माको भी इस अनित्य संसारमें लौटना पड़ता है यथा—

आब्रह्मभुवनात्त्वाकाः पुनरावतिनोऽजुनः।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥
(गीता ८/१६)

अर्थात् ब्रह्माके लोकसे भी जीवोंको लौटना पड़ता है, परन्तु जो जीव मेरा भजन करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता है।

कहनेका तात्पर्य यह है कि एक हरि भजन ही इस लोककी स्थायी उपलब्धि है, जिसका अंत नहीं होता है। जो ऐसा नहीं करते हैं, वे किसी-न-किसी अवधिके पश्चात् अपने पुण्य कर्मोंका फल भोगकर इसी लोकमें लौट आते हैं। क्योंकि कर्म वासनाजनित होता है और उस वासनाजनित कर्मका फल भोगनेके उपरांत कर्मफल क्षय होनेपर फिर नारकीय योनियोंमें जीवोंको जाना पड़ता है। इसी प्रकार ज्ञान भी अहंकारका हेतु बनकर पुनः बंधनमें डालता है। परन्तु हरि भजन केवल

श्रीभगवान्‌के लिए ही होता है। चूँकि भगवान् नित्य और सत्य हैं। अतएव उनके लिए किया हुआ भजन भी नित्य और सत्य होता है। यथा—

**अन्तवतु फलं तेषां तद्वत्यत्प्रमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्वक्ता यान्ति मामपि॥**

(गीता ७/२३)

अर्थात् उन अल्पबुद्धिवालोंके कर्मोंका फल नाशवान है तथा वे जो जो कर्म करते हैं, उसके अनुसार वे उस उस देवता या फलको प्राप्त करते हैं एवं अंतमें उसका फल नाश हो जाता है, परन्तु मेरा भक्त मुझको चाहे जिस प्रकार भजे अंतमें मुझको ही प्राप्त होता है।

भगवान्‌ने जीवोंको कितना सहज मार्ग स्वयं तक पहुँचनेका बना दिया है। वह किसी भी प्रकारसे उनका होकर उनके नाम-रूप-गुण-लीला और धामका चिन्तन करें, उसका फल नित्य होकर जीवको प्राप्त होगा; यथा—

**सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते॥**

(श्रीगीता ९/१४)

अर्थात् जो भक्त दृढ़ निश्चयके साथ निरंतर मेरे नाम और गुणोंका कीर्तन करते हैं, मुझे प्रणाम करते हैं, अनन्य प्रेमसे मेरी उपासना करते हैं, वे मुझे ही प्राप्त करते हैं। यहाँपर अनन्य भावसे तात्पर्य केवल उनका होकर ही है, अन्य किसी लौकिक कामवासनाको लेकर भजन नहीं है।

अतएव मनुष्योंको भगवान् श्रीकृष्णका इतना बड़ा आश्वासन मिलनेके पश्चात् इस वचनपर विश्वासकर निरंतर उनके नामोंका जप, स्मरण, चिन्तन करते हुए शेष जीवन व्यतीत करना चाहिए।

यह विचार नहीं करना चाहिए कि अब समय (जीवन) ही कितना रहा है, अब भजन करनेसे क्या होगा? मैं तो बड़ा पापी हूँ न जाने वे मुझे स्वीकार करेंगे कि नहीं? इस प्रकारके संशय या

विचारको एक ओर रखकर दृढ़ निश्चयके साथ जहाँ जहाँ ममता, मोह और लोभमें मन फँसा है वहाँ वहाँसे निकालकर श्रीकृष्ण चरणोंमें समर्पित हो जाना चाहिए।

भगवान् जीवका इतिहास नहीं देखते हैं अर्थात् वह कितना पापी है, इसने मेरी शरणमें आनेसे पहले क्या दुष्कर्म किए हैं—इस प्रकारके किसी जीवनवृत्त पर भगवान् ध्यान नहीं देते हैं। उन्होंने तो डंकेकी छोट पर कहा है कि—

**सर्वधर्मान्यरित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मांक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

(श्रीगीता १८/६६)

अर्थात् सभी प्रकारके धर्मों (विचारों) को छोड़कर एकमात्र मेरी शरणमें आ जा, मैं तुझे सभी पापोंसे मुक्त कर दूँगा। तूने करोड़ों जन्मोंमें कितने भी पाप कर्म क्यों न किए हो, परन्तु मेरी शरणमें आनेपर मैं तुझे सभी प्रकारके पाप कर्मोंके फलसे मुक्तकर शुद्ध कर दूँगा। भगवान्‌ने अपनी छूट देकर जीवोंको उनकी ओर आनेका सहज मार्ग बता दिया है। परन्तु हमें उनके इस वचनपर विश्वास नहीं हैं। जिस दिन विश्वास हो जाएगा, उसी दिनसे पापोंका अंत होना आरम्भ हो जाएगा श्रीश्यामसुन्दरके मिलनमें विलम्ब नहीं होगा।

भगवान् पूर्ण समर्पण चाहते हैं। ऐसा नहीं कि एक हाथ भगवान्‌के श्रीचरणोंमें तथा दूसरा मायाके चरणोंमें रखा हो। इस प्रकारका समर्पण कपटमय होता है। यथार्थमें यह समर्पणकी संज्ञामें नहीं आता है। एक बार किसीके होकर तो देखो फिर पता चलेगा कि जिसके लिए समर्पण किया है, वह कितना सच्चा प्रेमी है। वे तो सभी प्रकारका उत्तरदायित्व भी स्वीकार कर रहे हैं। वे कहते हैं कि मेरे भक्तको समर्पणके पश्चात् किसी और पर निर्भर नहीं रहना पड़ेगा। उनके योगक्षेमका सम्पूर्ण भार भी अंगीकार करता हूँ; यथा—

अनन्याश्चिन्तयन्ते मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमवहाय्यहम्
(श्रीगीता ९/२२)

अर्थात् जो व्यक्ति अनन्य भावसे मुझे श्रीकृष्णाका निरंतर चिन्तन करते हुए भजन करते हैं, उन निरंतर चिन्तन करनेवाले भक्तोंका योग-क्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ अर्थात् भक्तजन किसी औरके ऊपर निर्भर नहीं करते। इतना दृढ़ आश्रय मिलनेपर भी जो मनुष्य मायाकी ही कपट

चादर ओढ़कर श्रीकृष्ण भजनके प्रति उदासीन हैं, उन्हें स्वप्नसे जागनेपर जिस प्रकार स्वप्नमें प्राप्त किया राजमहल खो देना पड़ता है, उसी प्रकार करोड़ों जन्मोंतक भटकते रहना पड़ेगा।

अतएव सभी मनुष्योंको २४ घंटेमें से ६ घंटेका समय भगवान् कृष्णके नाम-जप, कीर्तन, स्मरण, चिंतनके लिए निकालना चाहिए। सद्ग्रन्थोंका पाठ, साधुसंग, ब्रजबास, श्रीविग्रहकी सेवा, एकादशी व्रत आदिके द्वारा भगवान्‌का प्रेम लाभ करना ही श्रेयः है। □



प्रेम-प्रदीप

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ९, पृष्ठ २१५ से आगे]

षष्ठ प्रभा

बहुत समयसे वर्षा नहीं होनेके कारण अंशुमालीकी किरणें बहुत तेज हो गयी हैं। प्रसाद सेवा करनेके उपरान्त योगी बाबाजी उनलोगोंको लेकर पञ्चवटीकी छायामें बैठे। मन्द-मन्द वायु प्रवाहित हो रही है। अनेक प्रकारकी बातें होने लगी। उसी समय डाकिया दो पत्र लेकर उपस्थित हुआ। एक पत्र नरेनबाबूने ग्रहण किया एवं एक पत्र मल्लिक महाशय लेकर पढ़ने लगे।

उन्होंने नरेनबाबूका पत्र सभामें पाठ करते हुए कहा कि कलकत्ताके ब्राह्माचार्यने लिखा है—

नरेनबाबू लगभग (करीब) दस दिन हुए तुम्हारा कोई पत्र प्राप्त नहीं हुआ। पवित्र ब्राह्म-धर्म तुमसे अनेक आशाएँ करता है। वृन्दावन प्रदेशके निवासी युवकोंके मनको पौत्रलिक-धर्मके गर्तसे उद्धार करनेकी चेष्टा करना। वैष्णवोंमें केवल कीर्तनका सुर ही अच्छा है और कुछ भी नहीं। यदि सम्भव

हो तो कुछ समयमें ही किसी नये स्वरकी शिक्षा ग्रहण करके आना, यहाँ हरेन्द्रबाबू उसी स्वरमें ब्राह्म सङ्गीत प्रस्तुत करेंगे। ब्राह्मधर्मके प्रचारके सम्बन्धमें तुम जो करते हो, उसका साप्ताहिक रिपोर्ट भेजना। तुम्हारा आनुकूल्य पिछले महीनेसे बाकी पड़ा हुआ है। यह मैं तुम्हें अवगत करा रहा हूँ।

तुम्हारा हार्दिक बन्धु

नरेनबाबू पत्र पाठ करके मुस्कराते हुए धीरे-धीरे कहने लगे—“क्या होगा वह देखेंगे। ऐसा लगता है कि ब्राह्म समाजके आनुकूल्यको मेरी आशा नहीं करनी पड़ेगी।”

नरेनबाबूके पत्रका पाठ होनेके उपरान्त मल्लिक महाशय खुशीसे अपना पत्र पढ़ने लगे। आहिरीटौलासे नित्यानन्ददास बाबाजीने लिखा है—सभीके लिए मंगल कामना,

आपका पारमार्थिक कुशल-संवाद प्राप्त करनेके लिये मैं विशेष चिन्तित हूँ। गत रात्रि मैंने स्वप्नमें देखा कि आप वैष्णव-वेश धारण करके कीर्तन-समाजमें नृत्य कर रहें हैं। यद्यपि यह सत्य हो, तथापि मेरे लिए यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है, क्योंकि आपने योगी-बाबाजीके साथ साधुसंग प्राप्त किया है। इस कारण आपने अवश्य ही हरिभक्ति-लताका बीज प्राप्त किया है। इसमें सन्देह नहीं है। जैसा कि कृष्णदास कविराज गोस्वामीने कहा है—

ब्रह्मण्ड भ्रमिते कोनो भाग्यवान् जीव।
गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लताबीज ॥

(चै. च. म. १९/१५१)

जैसा भी हो, मैं जानता हूँ कि आप योगाभ्यास करनेके विशेष इच्छुक हैं, परन्तु केवल शुष्क योगका अभ्यास नहीं करें। बाबाजी योगी होनेपर भी परम रसिक हैं। उनके निकट कुछ रसतत्त्व शिक्षा ग्रहण करेंगे। यदि सम्भव हो, तो बाबाजीकी अनुमति ग्रहणकर परमाराध्य पण्डित बाबाजीसे साक्षात् करेंगे। किन्तु दुःखका विषय है कि आप वैष्णवोंके अतिरिक्त जिन लोगोंसे सङ्ग करते हैं, वह सङ्ग अच्छा नहीं है। ब्राह्म, क्रिश्चयन और मुस्लिम धर्मके अनुयायी अत्यन्त युक्तिप्रिय और तर्कपरायण होते हैं। उनका सङ्ग करनेसे सरस चित्तके रसका भण्डार शुष्क हो जाता है। एकमात्र परमेश्वर ही सर्वकर्ता हैं एवं उनकी उपासना करना सभीका कर्तव्य है—यह जानना ही यथेष्ट नहीं है। उपासना दो प्रकारकी होती है—बहिरङ्ग और अन्तरङ्ग। बहिरङ्ग उपासना युक्तिके अधीन है। वह प्रार्थना, वन्दनादि कृतज्ञता और कर्तव्यता-बुद्धिसे उत्पन्न होती है। अन्तरङ्ग उपासनामें ये समस्त भाव नहीं होते हैं, अपितु उपासनाके समस्त कार्य किसी अनिवार्यनीय गूढ़ आत्मरतिसे स्वभाविक रूपमें होते हैं।

आशा करता हूँ कि कङ्गाल वैष्णवका इङ्गित समझकर कार्य करेंगे। आज यहीं तक रहे।
अकिञ्चन
श्रीनित्यानन्द दास।

नरेनबाबूने बड़े ध्यानसे पत्रको सुना और निःश्वास परित्याग करते हुए कहा—“शुष्क युक्तिवादको धिक्कार है। बाबाजीने जो लिखा है, वह नितान्त सत्य है। आनन्दबाबू, हाय! हमने इतने दिनोंतक निन्यानन्द बाबाजीसे क्यों नहीं कोई आलाप किया? बाबाजी मल्लिक-महाशयके निकट आते थे। हमलोग कुसङ्ग समझकर उनको देखनेमात्रसे ही चले जाते थे। परमेश्वर हरि यदि हमको दुबारा कलकत्ता ले जायें, तभी अपने अपराधके लिए हम क्षमा याचना करेंगे।

नरेन बाबूकी बातें समाप्त भी नहीं हुई थीं कि उसी समय दो बाउल-बाबाजी उपस्थित हुए। उनके हाथोंमें करङ्गा और गोपीयन्त्र चेहरे पर दाढ़ी-मूँछें, चूड़ा बनाकर बौंधे हुए केश, परिधानमें कौपीन और बहिर्वास पहने हुए थे। दोनों बाबाजी ये गान गाते-गाते उपस्थित हुए—

आर! गुरु-तत्त्व जेने कृष्ण-धन चिनले ना।
ध्रुव-प्रहादेर मत एमन भक्त आर हबे ना॥
देख चातक-नामे एक पक्षी, तारा कृष्ण नामे हय दक्ष॥
केवल मात्र उपलक्ष, बने, अन्य वारि पान करे ना।
तारा नवघन वारि-विने, अन्य वारि पान करे ना।
देख सर्वअङ्ग, भस्म माखा, आर सर्वदा श्मशाने थाका।
गाँजा भांग धतूरा फौंका, भाव-रसे हय मगना।
से ये त्रिपुरारि, प्रेम-भिखारी, कृष्णपद वै जाने ना।
जाते अति अपकृष्ट, मुचिरामदास प्रेमीर श्रेष्ठ।
महा-भावेते निष्ठ, करे इष्ट-साधना।
तार मन ये चाङ्गा, काटुयाय गङ्गा, गङ्गाते गङ्गा थाके ना॥

वे गीत समाप्त होनेके उपरान्त और थोड़ा विश्राम करके योगी बाबाजीसे आज्ञा लेकर पश्चिम दिशाकी ओर चले गये।

आनन्दबाबू ने पूछा—“ये लोग कौन हैं?”

बाबाजीने कहा—“ये लोग बाउल-सम्प्रदायके बाबाजी हैं। इनके मत और हमारे मतमें पार्थक्य है। ये लोग श्रीचैतन्य महाप्रभुका नाम लेकर धूमते हैं, तथापि हमलोग इनको वैष्णव नहीं कहेंगे। क्योंकि ये लोग अनेक स्वकपोलकल्पित मतका अवलम्बन करते हैं। ये वस्तुतः अद्वैतवादी हैं।”

नरेन बाबुने विनीत भावसे पूछा—“बाबाजी महाशय! वैष्णव धर्मकी कितनी प्रधान शाखाएँ हैं एवं किन किन विषयोंमें उनका मतैक्य है?”

बाबाजीने कहा—“वैष्णवधर्ममें चार प्रधान सम्प्रदाय हैं। उनके नाम हैं—श्री सम्प्रदाय, माध्व सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय एवं निम्बादित्य सम्प्रदाय। श्रीरामानुजस्वामी, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी एवं निम्बादित्यस्वामी—ये चारों ही क्रमशः इन मतोंके आदि प्रचारक हैं। इन सभीने दक्षिणात्य प्रदेशमें जन्म ग्रहण किया। निम्नलिखित विषयोंमें सभी वैष्णव सम्प्रदायोंके मत एक हैं—

१. परमेश्वर एक एवं अद्वितीय हैं। वे सर्वशक्तिमान् एवं सभीके नियन्ता हैं।

२. परमेश्वरका एक परमसुन्दर सर्वमङ्गलमय अप्राकृत स्वरूप है। वह स्वरूप भौतिक जगत्के समस्त विधियोंसे अतीत है। उनमें समस्त विपरीत

धर्म अपूर्वरूपमें सामञ्जस्यके सहित व्याप्त हैं। उनका श्रीविग्रह होनेपर भी वे सर्वव्यापी हैं। वे सुन्दर होनेपर भी भौतिक इन्द्रियगम्य नहीं है। एक स्थानपर अवस्थान करनेपर भी एक ही समय सम्पूर्णरूपसे सर्वत्र अवस्थित करते हैं।

३. जड़ और जैव जगत् उनकी शक्तिसे प्रकट होते हैं। वे देश-काल और सभी विधि-विधानोंके कर्ता, धर्ता और संहारक हैं।

४. जीव स्वरूपतः अप्राकृत हैं। किन्तु भगवत्-इच्छासे जड़में अनुयन्त्रित होकर जड़ धर्मानुगत सुख-दुःख भोग करते हैं। भगवद्भक्तिके द्वारा जड़से छुटकारा मिलता है।

५. ज्ञान एवं कर्मका पथ अत्यन्त दुर्गम है। भक्तिके अनुगत ज्ञान और कर्ममें कोई दोष नहीं है। किन्तु भक्ति, ज्ञान और कर्मसे एक स्वाधीन तत्त्व है।

६. साधुसङ्ग और भक्तिकी आलोचना करना ही जीवोंका एकमात्र कर्तव्य है।

विवेचना करके देखनेपर यह स्पष्ट होता है कि सभी वैष्णव सम्प्रदायोंमें एकमत है। केवल क्षुद्र-क्षुद्र विषयोंमें कुछ-कुछ मतभेद है। सभी वैष्णव जीवको तत्त्वतः ईश्वरसे भिन्न तत्त्व समझते हैं। सभीने भक्तिमार्गका अवलम्बन किया है।



- ◆ जो लोग भगवान्‌का कोई आकाश नहीं मानते वे नास्तिक हैं, उनका मङ्ग कभी नहीं करना चाहिए।
- ◆ ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं, वे सर्वशक्तिमान् एवं सर्वावतारी हैं। उनकी स्वेच्छा करना ही प्राणिमात्रका प्रधान कर्तव्य है; अन्य सभी कार्य आनुभविक्यू या गौण हैं।

—ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

रात्रिमें सूर्य दर्शन

एक शौकीन एवं स्वेच्छाचारी जर्मीदार था। एकबार वह रातमें सूर्य देखनेके लिए बहुत आतुर हो गया। जर्मीदारके लोगोंने कहा—जब तुम्हारी ऐसी इच्छा हुई है, तो अवश्य ही वह पूर्ण होगी। इसके द्वारा पृथ्वीपर हम एक ऐसा आदर्श स्थापित कर जाएँगे कि भाविष्यमें सभी लोग उसका अनुसरणकर तुम्हारा यशोगान किया करेंगे। ऐसा कहकर उनमें से एकने प्रचण्डरूपसे ज्वलित मशाल धारणकर आकाशकी ओर देखते हुए कहा—हूजूर, क्या आप सूर्य देख रहे हैं? तब और दो लोगोंने कहा—मशालके साधारण प्रकाशसे सूर्य नहीं देखा जा सकता। दस करोड़ मोमबत्तीकी शक्तिसे युक्त विद्युत प्रकाशको संग्रह करनेकी व्यवस्था करनी होगी।

जर्मीदार बाबूकी इच्छानुसार वही हुआ। इस प्रकार शक्तिशाली विद्युत प्रकाशके द्वारा जर्मीदार बाबूके कर्तिपय श्रेष्ठ वैज्ञानिक बन्धु जर्मीदार बाबूको रातमें सूर्य दिखानेकी चेष्टा करेने लगे, किन्तु ऐसा करनेपर भी उपस्थित वैज्ञानिकोंकी समस्त चेष्टाएँ विफल हो गयी।

उसी समय एक बुद्धिमान् व्यक्तिने जर्मीदार बाबूसे कहा—पृथ्वीके समस्त विद्युत प्रकाशको

एकत्र करके भी आप रातमें सूर्य नहीं देख सकते। ऐसा करनेपर केवल शक्ति, अर्थ और समय नष्ट ही होगा। अतएव यदि आप सूर्यका दर्शन करना चाहते हैं, तो आपको अरुणोदय कालकी प्रतीक्षा करनी होगी। सूर्यकी किरणोंसे ही सूर्यका दर्शन सम्भव है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी कृत्रिम उपायसे सूर्यका दर्शन नहीं किया जा सकता।

इस व्यक्तिके समान जड़-जगत्‌के वैज्ञानिक, प्रत्नतात्त्विक, मायावादी इत्यादि प्रमुख व्यक्ति इन्द्रिय ज्ञानके द्वारा इन्द्रियातीत भगवान्‌के नित्य सच्चिदानन्द विग्रहका दर्शन और उपलब्धि करनेकी जो चेष्टा करते हैं, उससे वे स्वयं ही वंचित हो जाते हैं। जिस प्रकार कृत्रिम प्रकाशके द्वारा रातमें सूर्य दर्शन सम्भव नहीं है, उसी प्रकार जीवोंकी कोटि-कोटि इन्दियाँ ज्ञान एवं चेष्टाके द्वारा श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंका दर्शन कदापि नहीं कर सकती है। जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे ही सूर्यका दर्शन संभव है उसी प्रकार श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी कृपासे उनके यथार्थ स्वरूपका दर्शन संभव है। लघु होते हुए कभी भी मायाधीश कृष्ण और कृष्णतत्त्ववेत्ता साधु-वैष्णवोंको मापा नहीं जा सकता है। □

प्रत्नतात्त्विक—प्रत्न अर्थात् तथ्य, प्रमाणादि लेकर जो आलोचना करते हैं।

मायावादी—माया द्वारा आच्छादित ब्रह्म ही जीवस्वरूपमें प्रतीत होता है—जो ऐसा कहते हैं। वास्तवमें ब्रह्म चिरकाल ही मायासे अतीत है। माया भगवान्‌की छाया-शक्ति है। भगवान् मायाके ईश्वर हैं।

इन्द्रियातीत—इन्द्रियोंसे परे।

सच्चिदानन्द—विग्रह—भगवान् जीवके सदृश रक्त मांससे बने शरीर-विशिष्ट और जन्म-मरणशील वस्तु नहीं है। वे सत् अर्थात् नित्य, चित् अर्थात् पूर्णचेतन और आनन्दमय वस्तु हैं।

मायाधीश—मायाके ईश्वर या प्रभु, माया जिनके अधीन है।

कृष्णतत्त्ववेत्ता—कृष्ण-तत्त्व अर्थात् कृष्ण, कृष्णभक्ति, कृष्णभक्त और माया क्या वस्तु है, जो यह जानते हैं।

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भवितप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरहोत्सव

दिनांक २६/३०/१९६ को श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भवितप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजका विश्वलोक्य सनात्या गया। पूर्वीहूँ द्वस्त्र बजेक्षे कार्यक्रम कार्यक्रममें प्रायः पाँच सौ लोग उपस्थित थे। कार्यक्रमके आवश्यकमें परम पूज्यपाद श्रीमद्भवितप्रेदानन्द त्रिविक्रम गोस्वामी महाराजने अपने गुरुपादपद्मके प्रति श्रद्धास्फुनन अर्पण किए। तत्पश्चात् श्रीमद्भवितप्रेदानन्द एवं श्रीमद्भवितप्रेदानन्द श्रीमद्भवितप्रेदानन्द नाशयण गोस्वामी महाराजने उनके जीवन चरित्रपद प्रकाश डाला। तत्पश्चात् आश्ती हुई एवं उपस्थित सभी वैष्णवोंने महाप्रसादकी सेवा की।

सन्ध्या स्मर्य श्रीश्रीमद्भवितप्रेदानन्द नाशयण महाराजजीने परम गुरुदेवके सम्बन्धमें जो वक्तृता दी, उसका कुछ अंश यहाँ ऊँटत किया जा रहा है—

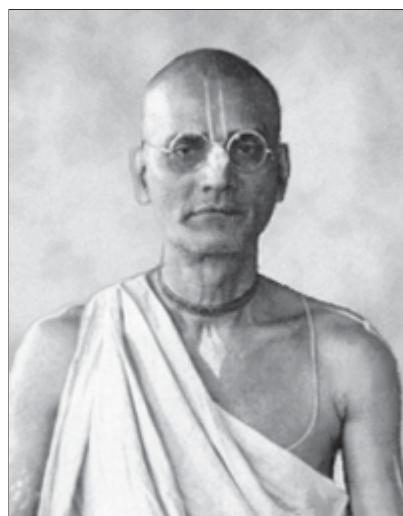
हमारे गुरुजी श्रील प्रभुपादजीके बहुतसे शिष्योंमें प्रधान थे। इन्होंने शारीरिक, मानसिक समस्त प्रकारसे अपने गुरुजीके मनोभीष्टको पूर्ण किया, यह कैसे किया गया, इस पर मैं थोड़ासा प्रकाश डाल रहा हूँ।

जब किसीने भी हमारे परमाराध्य परमगुरुदेव श्रील भवितप्रेदानन्द सरस्वती ठाकुर और रूपानुग वैष्णवोंके ऊपर कोई भी कटाक्ष किया तो इन्होंने उसकी जीभ काटकर अलग कर दी अर्थात् उनकी बोलती बन्द कर दी। वे बहुत ही वाग्मी और कुशल वक्ता थे। थोड़े ही शब्दोंमें अपने सारे विचारोंको प्रकाश कर सकते थे। वे उच्च दार्शनिक भी थे। प्रभुपादजीने हमारे गुरुजीको अपनी सारी वेदान्तकी पुस्तकें दे दी थी।

उन्होंने कहा था कि तुम वेदान्तविद् हो, तुम्हारे अतिरिक्त इसको और कौन अध्ययन करेगा, इसलिए तुमको मैं ये पुस्तकें दे रहा हूँ।

हमलोग नहीं कह सकते कि वे कब पढ़ते थे और कब क्या करते थे, हमलोग तो उनको केवल कृष्ण-चिन्तामें मग्न देखा करते थे। सुनते हैं कि रेलगाड़ीमें या कहीं जब जाते थे, तो वहीं पता नहीं कैसे पढ़ते थे। हमारे यहाँ सारी पुस्तकें हैं और मैं देखता हूँ कि उन सबमें Imp, V. Imp आदि लाल स्याहीसे उन्होंने लिख रखा है।

वे बड़े अच्छे लेखक भी थे। जैसे उनकी कलम चलती थी, वैसे ही उनका मुख भी चलता था। कोई भी व्यक्ति उनसे जब तर्क-वितर्क करने आता



तो, अपनी पैनी बोलीसे, अपनी पैनी कलमसे उसे ऐसा निरुत्तर कर देते थे कि वह एकदम चुपचाप हो जाता था।

एक समयकी बात है, मैं उनके साथ प्रचारमें मेदिनीपुर गया था। हमारे साथ पूज्यपाद वामन महाराजजी और परम पूज्यपाद दीनबन्धु बाबाजी थे। वहाँके एक रिटायर्ड जज आये और उनके साथ कुछ तर्क विचार हुआ। वे ब्रह्म-तत्त्वपर विचार करने लगे। जजने कहा कि ब्रह्म आनन्दमय है, गुरुजीने उत्तर दिया हमारा वैदिक ब्रह्मवाद और आधुनिक शंकरके द्वारा प्रचारित ब्रह्मवाद (अद्वैतवाद) या मायावाद एक नहीं है। हमारे वेदादि शास्त्रोंमें जिस ब्रह्मकी स्थापना की गयी है, वह तो भगवान्की अंगकान्तिमात्र है अथवा ज्ञान है। But Shankar's Brahma is a Perverted reflection of knowledge, यथार्थमें ज्ञान नहीं है, शंकाराचार्यजीने जो कुछ अद्वैतवाद और मायावादके बारेमें कहा वह सरासर झूठ है, वह वैदिक ब्रह्मवाद नहीं है, गुरुजीने कहा कि ब्रह्म-आनन्दवाद तुम क्यों कह रहे हो? यदि ब्रह्म निर्विशेष है, ब्रह्मका कुछ रूप नहीं हैं, ब्रह्म कोई ज्ञान नहीं है, वह निर्विशेष, अरूप, निर्गुण, अनादि, निरंजन, निःशक्तिक आदि है, तो वह आनन्दमय कैसे हुआ? हम कहते हैं कि वह पैखानामय और दुर्गन्धमय है। गुरुजीने कहा—“तुम आनन्द किसलिए कह रहे हो, यदि कोई चींटी मधु चखनेके लिए गयी और उसीमें लटपट होकर मरकर मधु ही बन गयी, तो फिर वह मधुका आस्वादन नहीं कर सकती और वह चींटी फिर आकर यह नहीं कहेगी कि मधु बहुत ही मीठा है। वेसे ही यदि कोई पैखाना बन जाय, तो पैखाना बननेके बादमें उसे दुर्गन्ध भी नहीं मिलेगा। इसलिए मैं कहता हूँ कि वह पैखानामय और तुम्हारा आनन्दमय दोनों एक ही है। उसने यह सिद्ध करनेकी हजार चेष्टा की कि ब्रह्म आनन्दमय है, पर किसी प्रकारसे वह यह साबित

नहीं कर सका। वह जिस विषयको उठाए, गुरुजी उसका खण्डनकर उसे काट देते। गुरुजीने कहा कि तुम कहते हो ‘सर्व खविल्दं ब्रह्म’ तुम्हारा यह कहना गलत है, क्योंकि एक ओर तो तुम कहते हो ‘सर्व खविल्दं ब्रह्म’ अर्थात् सब कुछ ब्रह्म है, फिर यह क्यों कहते हो जगत् मिथ्या है, क्यों कहते हो। वह एक भी उत्तर नहीं दे सका और लौटकर चला गया।

हम देखते हैं कि एक बार कैसे इन्होंने सम्प्रदायकी रक्षा की। निम्बानित्य सम्प्रदायके एक व्यक्तिने एक बार लिखा कि चैतन्य महाप्रभु केशव काश्मीरीके शिष्य थे, गुरु महाराजजी यह सुनकर बड़े क्रोधित हो गए और साथ-ही-साथ उन्होंने मुझको कहा—कलम उठाओ और उन्होंने मुझे Dictation आरम्भ कर दिया। उन्होंने कहा कि जगत् में निम्बार्क नामका कोई व्यक्ति नहीं था। यह झूठा, कल्पित निम्बार्क है। बल्कि चैतन्य चरितामृत आदि ग्रन्थोंमें यह लिखा गया है कि केशव काश्मीरी श्रीचैतन्य महाप्रभुसे पराजित होकर उनके द्वारा कृष्ण-मन्त्र ग्रहण करके वहाँसे मथुरामें आकर अपना भजन साधन किया था। महाप्रभुजीने कहा था कि विद्याका कार्य है भगवान्की भक्ति इससे ही जीवन सफल होता है; इसलिए भगवान्का भजन करना ही विद्याका चरम सार है, उन्होंने कहा कि निम्बार्क नामका कोई सम्प्रदाय नहीं और किसी व्यक्तिने अपने भाष्यमें या कहीं भी निम्बार्क शब्दका प्रयोग नहीं किया है, उनका कोई वेदान्तका ग्रन्थ नहीं है। एक जाली भाष्य उन्होंने लिखा वह भी ठीक नहीं है। विपक्षी लोगोंने साथ-ही-साथ दो लाख रूपयेका मानहानिका केस मथुरा कोटमें किया, किन्तु जिस वकीलके पास वे गए, उस वकीलने कहा—“देखो, गड़बड़ नहीं करना, कहीं केंचुआको खोदने जाकर खतरनाक सर्पसे पाला न पड़ जाय। तुम लोग भक्तिप्रज्ञान केशवजी महाराजको नहीं जानते, वे बड़े तेजस्वी पुरुष हैं,

तुम्हारी बोलती बन्द कर देंगे। उलटा तुम्हें लेनेके देने पड़ जाएँगे।” इसलिए उन्होंने केस नहीं किया।

एक समयकी बात है, सहजिया लोगोंने प्रभुपादजीके विरुद्ध लिखा कि गौड़ीय मठवाले यह नहीं जानते हैं कि रस किसको कहते हैं और वे नीरस हैं। वे रासलीला आदिका अध्ययन और अध्यापन इत्यादि नहीं करते हैं। यह सुनकर गुरु महाराजजी बड़े बिगड़े और पत्रिकामें पाँच प्रबन्ध दिए। इसीसे उनके होश उड़ गये। उनलोगोंने केस किया और अन्तमें केसमें भी हार माननी पड़ी और गुरुजीके चरणोंमें शरणागत होना पड़ा। फिर उनलागोंने सङ्कल्प किया कि आजसे इनके विरुद्ध कहीं कुछ भी नहीं लिखेंगे।

इस प्रकार जब-जब हमारे सम्प्रदायके ऊपर ऐसी कुछ बाते हुई गुरुजी उसी समय उठ खड़े हुए और हजारों कलमके मुखसे उन्होंने उसका खण्डन किया। उन्होंने बहुतसे ग्रन्थ लिखे हैं, जिसमें मायावादकी जीवनी सर्वप्रमुख है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादजीने कहा था कि जबतक जगत्‌में मायावाद रहेगा, अद्वैतवाद रहेगा, निर्विशेष ब्रह्मवाद रहेगा, भक्तिके लिए विघ्न बाधाएँ रहेंगी। हमारे गुरुजी भी ऐसा ही कहते थे। और उन्होंने सर्वदा मायावादके विचारोंका खण्डन किया, उन्होंने जीव गोस्वामीके युक्तियोंकी अवतारणाकर मायावादका हजारों रूपोंमें खण्डन किया, उनकी लेखनीसे जहाँ कोई प्रबन्ध निकलेगा उसमें मायावादका जरूर उल्लेख एवं खण्डन होगा।

उन्होंने लिखा रावण पक्का मायावादी था, क्योंकि वह भगवान्‌की शक्तिका हरण करना चाहता था। कंस महाअद्वैतवादी था, वह शक्तिको कुछ न करके कृष्णको मारना चाहता था। हिरण्यकशिष्य मायावादी था। ये लोग वेदोंके बहुत बड़े विद्वान्‌थे। रावण वेदोंका आचार्य भी था, वह दस मुखोंसे

वेदोंका उच्चारण करता था। किन्तु सीताजीको चुरा लाया। भगवान्‌की शक्तिका अपहरण किया, वह निर्विशेषवादी था। उसका रामचन्द्रजीने ध्वंस किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शंकर सम्प्रदायके जितने लोग हैं, उन लोगोंमें से बड़े-बड़े पण्डित लोग या तो विष्णुके हाथों मारे गए या वैष्णव धर्ममें पुनः दीक्षित हुए। आजतक कोई भी वैष्णव मायावाद सम्प्रदायमें दीक्षित नहीं हुआ। इस प्रकारसे इन्होंने सतयुगसे लेकर कलियुगतकके दार्शनिक इतिहासकी अवतारणाकर इस चौजको सत्य प्रमाणित किया है।

दर्शन ही नहीं बल्कि रस साहित्यमें भी इनकी पैठ देखते हैं। इन्होंने अपने गुरुजीके लिए एक आरती लिखी है, जिसकी भाषा और सौन्दर्यसे मुग्ध होकर प्रभुपादके सभी शिष्योंने उसे आरतीके रूपमें चालू कर दिया। इसमें बहुत ही सुन्दर ढंगसे गम्भीर भावका समावेश हुआ है। भक्तिविनोद धारा क्या है, पाँच प्रदीप क्या हैं—इन सबकी अत्यन्त सुन्दर व्याख्या उसमें की गई है। उसमें दर्शन और रस दोनों मिले हुए हैं। ऐसा विचित्र मिलन बहुत कम देखा जाता है। इन्होंने राधाकृष्ण युगलकी आरती लिखी, इतनी सुन्दर जो आज तक किसी मंगल आरतीको नहीं देखा गया। उसमें कृष्णदास कविराज गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके द्वारा लिखित गोविन्द लीलामृत और कृष्णभावनामृतका सारा रहस्य उन्होंने बड़े रहस्यमय ढंगसे परिवेशन किया है। जो कोई भी रसिक व्यक्ति इसे देखेगा वह मुग्ध हुए बिना रह नहीं सकता है। इसके एक-एक शब्दोंमें न जाने कौन-कौनसे भाव छिपे हुए हैं।

अतः आजकी पावन तिथिमें हम उनके कृपाकी भिक्षा करते हैं। □



श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गै जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं रम्या कच्चिदुपासना ब्रजवधूवर्णेण या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दूई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष २०}

श्रीगौराङ्ग ५१०
विक्रम संवत् २०५२-५३ पौष मास, सन् १९९६, २५ दिसम्बर—२३ जनवरी

{ संख्या ११

श्रीशचीतनयाष्टकम्

उज्ज्वल वरण गौरवर देहं
विलसित निरवधि भावविदेहम् ।
त्रिभुवन पावन कृपयाः लेशं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम् ॥१॥

उज्ज्वल गौरवर्ण देहधारी, सदा-सर्वदा वृषभानुनन्दनी श्रीमती राधिकाके भावसे विभावित होकर विचित्र विलासकारी एवं अपनी कृपाके लेशमात्रसे ही त्रिभुवनको पवित्र करनेवाले शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ ॥१॥

गद्गद् अन्तर भावविकारं
दुर्जन तर्जन नाद विशालम्।
भवभयभञ्जन कारण करुणं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१२॥

अरुणाम्बरधर चारूकपोलं
इन्दु विनिन्दित नखचय रुचिरम्।
जल्पित निजगुणनाम विनोदं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१३॥

विगलित नयन कमल जलधारं
भूषण नवरस भावविकारम्।
गति अतिमन्थर नृत्यविलासं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१४॥

चञ्चल चारु चरण गति रुचिरं
मञ्जीर रञ्जित पदयुग मधुरम्।
चन्द्र विनिन्दित शीतलवदनं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१५॥

धृत कटि डोर कमण्डलु दण्डं
दिव्य कलेवर मुण्डित मुण्डम्।
दुर्जन कल्पष खण्डन दण्डं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१६॥

भूषण भूज अलका वलितं
कम्पित बिम्बाधरवर रुचिरम्।
मलयज विरचित उज्ज्वल तिलकं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१७॥

निन्दित अरुण कमल दल नयनं
आजानुलम्बित श्रीभुज युगलम्।
कलेवर कैशोर नर्तन वेशं
तं प्रणमामि च श्रीशचीतनयम्॥१८॥

जिनका हृदय नाना प्रकारके भाव विकारोंसे सर्वदा गद्गद् रहता है और जिनकी विशाल हँकार (गर्जन ध्वनि) भक्ति-विमुख पाखण्डियोंके लिए भय उत्पादनकारी है, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१२॥

जो अरुण (गैरिक) वर्णके वस्त्र धारण किए हैं, जिनके चारू कपोल बड़े ही मनोहर हैं, जिनके नखसमूहकी कान्ति-छटा पूर्णचन्द्रकी शोभाको भी मात करती है तथा जो अपने नाम-गुणके कीर्तनमें अतिशय आनन्द प्राप्त करते हैं, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१३॥

जिनके नयन-कमलोंसे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती है, नवरस भाव-विकार जिनके श्रीअङ्गोंके भूषण-स्वरूप हैं और नृत्य-विलास हेतु जिनकी गति अति मन्थर है, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१४॥

जिनके नुपुर-शोभित श्रीचरण-युगलकी गति अतिशय मनोहर है, उन चन्द्र-विनिन्दित सुशीतल वदनविशिष्ट शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१५॥

जिन्होंने कटिटटमें (कमरमें) डोर-बर्हिवास तथा हाथोंमें दण्ड एवं कमण्डलु धारणकर रखा है, मुण्डन किया हुआ अति भव्य जिनका मस्तक है, जो अतिशय दिव्य कलेवर विशिष्ट हैं, जिनका दण्ड दुर्जनोंके पापसमूहका खण्डनकारी है, उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१६॥

जिनकी अलकावलि (नृत्यहेतु उठी) धूलिरूप भूषणविशिष्ट है, जिनका (हरिनाम कीर्तन हेतु) कांपता हुआ बिम्ब सदृश अरुण-अधर बड़ा ही मनोहर लगता है, मलयज चन्दन द्वारा विरचित उज्ज्वल तिलकसे सुशोभित उन शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१७॥

जिनके अरुण नयन कमलदलकी शोभाको तिरस्कार करनेवाले हैं, जो आजानुलम्बित भुजाओंवाले हैं, उन नृत्य-वेशयुक्त कलेवरवाले शचीनन्दन श्रीगौरहरिको प्रणाम करता हूँ॥१८॥

वैष्णव दर्शन

—श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ‘प्रभुपाद’

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या १० पृष्ठ २३० से आगे)

**तत्त्ववस्तुको ही भगवान् कहते हैं,
वे अद्वयज्ञानमय हैं**

तत्त्ववस्तुको भगवान् कहते हैं। भगवान् कहनेसे अवैष्णव लोग जैसे मायाके अन्तर्गत एक नश्वर वस्तुकी संज्ञा समझते हैं, भगवान् उस तरहकी कोई वस्तु नहीं हैं। मायाके अन्तर्गत समस्त वस्तुओंके नाम, आकार, गुण और लीलामें परस्पर भेद होता है। किन्तु, मायातीत भगवान्के नाम, आकार, गुण और लीलामें परस्पर वैसा भेद नहीं होता है, वे अद्वयज्ञानमय वस्तु हैं, मायिक ज्ञान द्वारा भगवान्के साथ ब्रह्म और परमात्माका भेद कल्पित होता है, किन्तु अप्राकृत दर्शनमें मायाकी वैसी कोई भी क्रिया दिखलाई नहीं पड़ती। अतएव उस समय द्रष्टा भगवान्के साथ ब्रह्म और परमात्माका कोई भेद नहीं देख पाता वरन् वह उन्हें अद्वयज्ञान-तत्त्ववस्तुके रूपमें दर्शन करता है।

वैष्णव-दर्शनोंका वैशिष्ट्य

वैष्णव-दर्शनमें भगवान्को सत् और असत् दोनों प्रकाशोंसे श्रेष्ठ और परम स्वतन्त्र कहा गया है। वे कालकी सृष्टि होनेके पहले कालके जनक रूपमें वर्तमान थे। सत् और असत् उन्होंसे प्रकाशित हुए हैं। इन दोनों सर्गोंके अप्रकट कालमें भी वे वर्तमान रहेंगे। जहाँ भगवत्-सत्ताका अधिष्ठान नहीं है, और भगवत्-सत्तामें जिसका अधिष्ठान नहीं है, उसे भगवान्की माया कहते हैं। वही माया प्रकाशित होकर आलोक और अन्धकारकी तरह बद्ध जीव और त्रिगुणात्मक जड़ कही जाती है। विशिष्टाद्वैत दर्शनके अनुसार तत्त्ववस्तु अपनी शक्तिके द्वारा ईश्वर, चित् और अचित्—इन तीन विभागोंमें नित्य प्रकाशित रहते हैं। वस्तुके अद्वयत्वकी हानि पहुँचाए बिना ही अपनी शक्तिके वैचित्र्य द्वारा भगवान् तीन प्रकारसे

लीला करते हैं। भगवान् चित् और अचित्के ईश्वर हैं। वे अनन्त, नित्यस्कृतमान् और सविशेष वस्तु हैं। स्वगत, सजातीय और विजातीय—इन तीन विशेषोंसे वे नित्य विराजमान रहते हैं। शुद्धाद्वैत दर्शनमें भगवान्को सर्वशक्तिमान् और परम रसमय विग्रह माना गया है। भगवान् और आश्रयरूप भक्तमें सेव्य और सेवकका भाव नित्य वर्तमान रहता है। आश्रयरूप जड़ पदार्थमें सेव्य और सेवकका सम्बन्ध नहीं रहता। अतएव वह भगवान् और जीवसे पृथक् तृतीय तत्त्व है। विषय एक होनेपर भी आश्रयोंका बहुत्व होनेके कारण भक्त और जड़ पदार्थ असंख्य हैं। इस तरह भगवान्में पाँच प्रकारकी नित्य भेद-सत्ता वर्तमान रहती है—(१) ईश्वरका जीवसे भेद, (२) ईश्वरका जड़से भेद, (३) जीवका जड़से भेद, (४) जीवका दूसरे जीवसे भेद और (५) एक जड़ पदार्थका दूसरे जड़ पदार्थसे भेद। द्वैताद्वैत दर्शनमें चिन्मय रसमय विग्रह भगवान् विषय और आश्रयगत सामग्रीके रूपमें नित्य प्रतिष्ठित हैं। जहाँ आश्रयगत चित्सत्ता निर्मल होती है, उस नित्यसत्तापर भगवान् घनानन्दके सम्वेतारूपमें (ज्ञाताके रूपमें) नित्य लीलामय अनुभूत होते हैं और जहाँ नश्वर तथा मलयुक्त आश्रयरूप जड़सत्ता होती हैं, वहाँ भगवान्की लीला मायिक दर्शन द्वारा बाधित होती हैं। भगवान्की लीला सर्वदा वैकुण्ठीय होनेपर भी प्रापञ्चिक बुद्धि द्वारा मायिक और अनित्य मात्र दीख पड़ती है। शुद्धाद्वैत दर्शनके अनुसार भगवत्तामें जड़की हेयता और भेदका आरोप नहीं होता। भगवत् उन्मुख होकर जब दर्शक चित्तवस्तुका दर्शन करता है, तब जड़ जगत्की भेदगत सत्ता उसके सत्यदर्शनमें बाधा प्रदान नहीं करती। साथ-ही-साथ दूसरी तरफ वह वस्तुके चिद् वैचित्र्यके नित्य अस्तित्वकी भी बाधक नहीं होती।

किन्तु विभुचिद् भगवान्‌के साथ अणुचैतन्य जीवकी सेव्य और सेवकरूपमें जो लीला होती है, वह अद्वयज्ञानकी बाधक नहीं होती है। अद्वैतदर्शनके नित्यसत्ताज्ञानकी भूमिकामें नश्वर जड़-सत्ता दिखलाई नहीं पड़ती। किन्तु इससे यह प्रमाणित नहीं होता कि वस्तुकी चिद् विचित्रताको भी अस्वीकार किया गया है।

निर्विशेषवादमें भगवत्ताकी कल्पना होती है, वस्तुः भगवान्‌का सविशेषत्व नित्य है

भगवान्‌की व्यक्तिगत सत्ताके विरोधियोंको अवैष्णव कहा गया है। निर्विशेषवादमें चिन्मय विशेष या पदार्थको भी बलपूर्वक मायिक कहा गया है। भगवान्‌के नाम, आकार, गुण और लीलाकी रचना माया द्वारा हुई है—ऐसा विश्वास करनेसे भगवत्ताकी कल्पना हो जाती है। भगवान्‌का नित्य विशेष माया उत्पन्न होनेसे पहले भी वर्तमान था, मायाकी क्रिया समाप्त होनेपर भी रहेगा तथा मायाके इस वर्तमान अवस्थामें भी उसी नित्य विशेषका केवल थोड़ासा प्रतिफल धर्ममात्र दिया गया है। जो लोग ऐसा समझनेके बदले भगवत्ताको मायिक मानते हैं, उनमें सूक्ष्म बुद्धिका अभाव जानना चाहिए। मायाके राज्यमें ही वैकुण्ठ-वस्तुको रहना होगा, भगवान्‌में नित्यशक्तिका अभाव है, जिसे जीव अपनी इन्द्रियोंके द्वारा नाप-तौल करनेमें, समझने-बुझनेमें असमर्थ हैं, वैसे भगवान्‌की सत्ताकी कोई नित्य स्थिति नहीं है—ऐसे अहंकारके रहते परमार्थ तत्त्वका दर्शन करना असम्भव है।

विभु चैतन्य भगवान् एक होकर भी अनन्त और नित्य मूर्तियोंमें अनन्त अणुचैतन्य जीवोंके सेव्य हैं

विभुचैतन्य भगवान् विष्णु मायाके अधीश्वर हैं। अणुचैतन्य विष्णुदास—वैष्णव मायाके वश्य हैं। विभु चैतन्य एक होकर भी अनन्त नित्यमूर्तिसे नित्यकाल प्रकाशित रहते हैं। अणु चैतन्यजीव परस्पर भिन्न-भिन्न हैं तथा संख्यामें असंख्य हैं। वे सभी नित्यकाल अपने सेव्य भगवान्‌की सेवामें

मन रहते हैं। किन्तु, जब वे मायाको अपना ईश्वर मानकर उसकी अनित्य सेवामें तत्पर होते हैं, तब अपना स्वरूप भूलकर स्वयं विभुब्रह्म या भगवान्‌होना चाहते हैं। ऐसी अवस्थामें वे मायाके अधीन हो जाते हैं। अणु चैतन्य जीवके स्वरूपमें नित्य बृहत्वका अभाव होता है। अतः उसमें सेव्यभावका भी अभाव होता है। उसके चिन्मय स्वरूपमें भगवत् दास्य ही नित्यकाल विराजमान रहता है। जब वह हरिसेवासे विमुख हो जाता है, तभी वह मायिक ब्रह्माण्डमें आकर मायाकी सेवा करता है तथा अनित्य विषयसुखोंमें मत्त हो जाता है। जब जीव मायिक ब्रह्माण्डमें देवता या मनुष्यके रूपमें आता है, तो समझना चाहिए कि वह अपनी हरिविमुखताके फलस्वरूप दण्ड भोगनेके लिए मायाके कारागारमें उपस्थित हुआ है। स्वर्ग या नरक—दोनों ही हरिविमुख जीवोंके नित्य सुख प्राप्तिके मार्गमें बाधक हैं। यही नहीं, मायिक जगत्के अनित्य सुखोंकी सभी कामनाएँ नित्य-सुखकी प्राप्तिमें रोड़ास्वरूप हैं।

भगवत्-शक्ति मायाकी परिणतिको अपना भोग्य माननेवाले जीव अभक्त हैं

भगवान्‌की आवरणात्मिका शक्तिका नाम माया है। यह जीवोंको आवरण करनेमें समर्थ होती हैं। भोगबुद्धिका प्राबल्य होनेसे जीवोंमें कृष्णसेवाकी भावनाका अभाव हो जाता है। जिससे वे जड़ विषयोंको अपना भोग्य समझने लगते हैं। उनका यही भोक्ता अभिमान उनको अभक्त बना देता है। फिर किसी सौभाग्यसे भगवत् सेवाको ही अपना एकमात्र धर्म अनुभव करनेसे उनकी सारी मायिक वासनाएँ क्रमशः दूर हो जाती हैं।

तत्त्ववस्तु निःशक्तिक नहीं, उसीकी उपादान-शक्ति लाभकर माया सृष्टि करती है

मायाको इस ब्रह्माण्डका उपादान कारण माना जाता है। उसके उपादान कारण कहे जानेपर भी भगवान्‌की उपादान-शक्ति ही मायाके भीतरसे कार्य करती है। जिस प्रकार लोहा अग्निसे दाहिकाशक्ति

प्राप्त कर अन्यान्य वस्तुओंको जलानेमें समर्थ होता है। उसी प्रकार माया भगवान्‌के निकट उपादान-शक्ति प्राप्त कर जगत्‌की सृष्टि करती है। इसीलिए मायाको जगत्‌का उपादान कारण कहा जाता है। मायावादियोंका कहना है कि वस्तु (ब्रह्म) निःशक्तिक है तथा जितने प्रकारकी विचित्रताएँ देखी जाती हैं—सभी मायासे उत्पन्न होती हैं। किन्तु यह उनकी भूल है। वैष्णवलोग वैसे विश्वासको प्राकृत या सहजिया विश्वास कहते हैं।

**भगवान् रसमय वस्तु हैं, जड़ रसको
अतिक्रमकर भगवान्‌की लीलामें प्रवेश करनेसे
ही नित्य कल्याण होता है**

जो मनुष्य वात, पित्त और कफ—इन तीन धातुओंसे बने हुए शब्दतुल्य शरीरको ही आत्मा—‘मैं’, स्त्री-पुत्र आदिको ही अपना अर्थात् ‘मम’ और मिठ्ठी, काठ, पत्थर आदि पार्थिव विकारोंको ही इष्ट देव मानता है तथा केवल जलको ही तीर्थ समझता है, वह प्राकृत या अवैष्णव है। फिर भी यदि वह आसक्ति परित्यागकर विषयोंको कृष्ण-सम्बन्धी जानकर उनमेंसे यथायोग्य अर्थात् उपयुक्त विषयोंको ग्रहण करें तो उसका प्राकृत विश्वास दूर हो जाता है और वह अप्राकृत हरिसेवाके उन्मुख हो जाता है। तब वह श्रीहरिके साथ सम्बन्धयुक्त वस्तुओंको कृष्ण-सेवाका उपकरण जानकर मायावादी मुमुक्षुकी तरह उन्हें अपने भोगमय मायिक विषयोंके समान जानकर त्याग करनेके लिए परामर्श नहीं देता। इस संसारमें जीव कृष्णविमुख होकर अर्थात् कृष्ण-सेवा भूलकर प्राकृत अभिमानमें मत्त होकर अन्यान्य वस्तुओंके साथ शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, और मधुर रस स्थापनकर जड़ रसका रसिक हो पड़ा है। किन्तु, जब वह ऐसा अनुभव करता है कि जड़रसके सभी आश्रय क्षणभंगुर और अनुपादेय हैं, तभी वह जान पाता है कि कृष्णके अतिरिक्त अन्यान्य विषयोंके साथ सम्बन्ध स्थापनकर वह अत्यन्त भ्रान्तिमें पड़ा हुआ है।

विकृत रस और मायिक आश्रय ही जीव और भगवानके बीच दीवार बनकर जीवकी अभीष्टसिद्धिके मार्गमें बाधक बने हुए हैं। ऐसी अवस्थामें कोई-कोई मायिक वस्तुओंको विषय-भोग जानकर उनका संग परित्याग करनेकी उपलब्धी करने जाकर निर्विशेषवादी होकर भगवान्‌से विमुख हो पड़ते हैं। धर्म, अर्थ और कामके बदले अब मुक्ति ही उनका आराध्य विषय हो पड़ता है। वे चिन्मय रस-साहित्यको ही श्रेयस्कर मानते हैं तथा भगवान्‌को रसमय कहनेमें भी शंकित हो पड़ते हैं। वे परलोकमें तमिस्मय एवं विचित्रताहीन अवस्थाका नित्य अस्तित्व स्वीकार करते हैं यही विश्वास उन्हें कंस, शिशुपाल आदिके आराध्य लोकमें ले जाकर उनका आत्मविनाश साधन करता है। प्राकृत विश्वासके अधीन होकर कृष्ण-सेवासे विमुख विचारक पूतना आदि कपटाचारियोंकी तरह कृष्णसेवा दिखलाकर मायावादी हो पड़ते हैं। और फिर मरनेके बाद चिद्-विशेषसे रहित होकर निर्विशेषत्वमें लीन हो जाते हैं। जड़ रसमें ढूबे रहनेके कारण वैकुण्ठ रसको ग्रहण न कर पानेसे बद्धजीव नीरस मायावादी अवतारणाकर शुद्ध और नित्य रससे बज्ज्वित हो जाते हैं, इस तरह वे अपना अमङ्गल स्वयं वरण करते हैं। किन्तु, वैष्णव दार्शनिक इस विचारको भ्रान्त समझते हैं। वे देखते हैं कि नित्य रसमय वस्तुका विकृत प्रतिफलन इस भोगमय अनित्य अनुपादेय जगत्‌में जड़ रसके रूपमें प्रकाशित होकर नाना प्रकारकी विशृंखलता उत्पन्न किए हुए हैं। इन अनर्थोंको अतिक्रमकर श्रद्धाके साथ अप्राकृत नित्य रसमय हरिलीलामें प्रवेश करनेसे उनका नित्य कल्याण हो सकता है। तभी मायाके जालसे मुक्त होनेपर वैष्णव दार्शनिकोंका यह निरपेक्ष गान उनके मनमें सर्वदा नृत्य करने लगेगा—

विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदित्वं विष्णाः
श्रद्धान्विताऽनुशृणुयादथ वर्णयदेयः।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
ह्वागमाश्वपहिनोत्यचिरणं धीरः॥



प्रवृत्ति और निवृत्ति

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्रवृत्ति और निवृत्ति मानव जातिका एक प्रधान आलोच्य तत्त्व है

जिस समयसे मानव जातिकी सृष्टि हुई है, प्रवृत्ति और निवृत्तिका विचार उसी समयसे चलता आ रहा है। सभी देशोंमें सभी कालोंमें इन दोनों विषयोंकी आलोचनाएँ होती रहीं हैं। स्वदेश और विदेशमें जितने प्रकारके लिखित शास्त्र देखनेमें आते हैं, वे सभी प्रवृत्ति और निवृत्तिकी आलोचनाओंसे परिपूर्ण हैं। आर्य जातिके वैदिक शास्त्र, मुसलमानोंका कुरान, ईसाईयोंका बाइबिल तथा बौद्धोंका वेद-विरुद्ध व्याख्यानसमूह इसके प्रमाण हैं। प्रवृत्ति और निवृत्तिका विषय मानव जातिका एक प्रधान तत्त्व है—यह पूर्वोक्त विशद आलोचनाओंसे ही प्रतीत होता है। जब सभी समयोंमें तथा सभी देशोंमें किसी विषयकी आलोचना दृष्टिगोचर होती है, तो उस विषयके सत्यमूलक होनेमें सन्देह ही क्या है?

आत्माके अमरत्वमें विश्वास होना स्वाभाविक है

'मृत्यु होनेके बाद कोई लौटकर नहीं आया। अतएव शरीर ही आत्मा है। कुछ लोगोंका ऐसा विचार है कि मरणेके बाद इसका कोई अस्तित्व नहीं है।' ऐसी अवस्थामें जीवके शरीर त्याग करनेपर भी अस्तित्वका अभाव नहीं होता—इसका प्रमाण क्या है? सर्वत्र जनसाधारणमें इस विश्वासकी व्याप्ति ही इसका प्रमाण है। उत्तरी ध्रुवके किसी व्यक्तिका उस विषयमें दक्षिणीध्रुवके किसी व्यक्तिसे मतभेद नहीं है। आत्माका अमरत्व सभी देशोंमें, सभी कालोंमें समानरूपसे स्वीकार किया गया है। यद्यपि बहुतसे शुष्क तार्किक अपनी असत् आलोचना द्वारा स्वतः सिद्ध आत्माकी अमरताका

विश्वास परित्यागकर स्वेच्छाचारी हो जाते हैं तथापि इनकी संख्या इतनी कम है कि उनके द्वारा विश्वके इस साधारण विश्वासमें कोई अन्तर नहीं आता। इस आर्य प्रदेशमें चार्वाक आदि तथा दूसरे-दूसरे देशोंमें सारडनेप्लस आदि बहुतसे अनित्यवादी पाषण्डी उत्पन्न हुए हैं तथापि आत्माके अमरत्वके प्रति साधारण लोगोंका जो स्वाभाविक विश्वास है उसका उच्छेद न हो सका।

प्रवृत्ति और निवृत्तिकी आलोचनाकी प्रस्तावना

परमेश्वरके अस्तित्व और जीवोंकी नित्यतामें दृढ़ विश्वास आदि जो साधारणतः स्वतः सिद्ध विषय हैं, उनमें प्रवृत्ति और निवृत्ति विषयक तत्त्व भी एक प्रधान विषय हैं। बहुत दिनोंसे इस विषयके विचार लिपिबद्ध होकर परम्परासे हमलोगोंको प्राप्त हुए हैं। अखिल वेद भी दो भागोंमें विभक्त होकर कर्मकाण्ड तथा ज्ञानकाण्डको प्रकाश कर रहा हैं। इन विषयोंकी आलोचना नीचे की जाएगी। इस विषयकी आलोचना करना विशेषरूपसे आज क्यों आवश्यक है—इसके सम्बन्धमें कुछ लिखा जा रहा है।

आठ-दस शताब्दी पूर्व भारतकी अवस्था

अभी एक हजार वर्ष भी नहीं बीते कि आर्य विरोधियोंने हमारी पवित्र आर्यभूमिपर अपना आधिपत्य कर लिया था। इनकी भाषा, स्वभाव, चरित्र तथा धर्म—इस देशके लिए अत्यन्त विरुद्ध होनेके कारण हमारे पूर्वजोंको बहुत ही कष्ट झेलने पड़े थे। विदेशियोंके स्वभावतः तथा धर्मतः निष्ठुर होनेके कारण इस देशकी सभी संस्कृतियोंका हास होने लगा। जिस देशमें आदि कवि वाल्मीकि तथा ज्ञानीश्रोष्ट वेदव्यासजीने सहज संस्कृत भाषामें भिन्न-भिन्न मधुर छन्दोंमें अनेक उत्तम ग्रन्थोंकी

रचनाकर मनुष्योंका ऐहिक और पारलौकिक मङ्गल साधन किया था, जिस देशमें हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर जैसे धार्मिक राजा हुए, जिन्होंने प्रजाके हितके लिए अपना सब कुछ लुटा दिया था, जिस देशने सावित्री, अरुन्धती, वृन्दा आदि महान् सतियोंको जन्म दिया था, वही भुवन विजयी भारत खड़गधारी म्लेछोंके पैरोंतले जिस तरह रौंदा गया—उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

प्राचीन भारतकी दुर्दशाके कारण नाना प्रकारके अधर्मोंकी उत्पत्ति

वेदशास्त्र लुप्त हो गए, ज्ञान गुप्त हो गया और आर्य चेतनता शीतकालके सर्पके समान निद्रीतसी हो गई थी। ब्राह्मणोंका तर्क बड़ी-बड़ी पुस्तकोंकी गुहाओंमें छिप गया। क्षत्रियोंका शौर्य-वीर्य केवल शयनागारमें विश्राम करने लगा। दूसरी-दूसरी जातियोंके लोग अपने धर्मोंके आचरण द्वारा जीविका निर्वाह करनेमें असमर्थ होकर वेद-विधियोंका परित्याग करने लगे। यद्यपि ऐसे आपत्तिकालमें बहुतोंके लिए निवृत्ति धर्म ही अवलम्बनीय होता है, तथापि कर्मफलके अनुसार बहुतसे आर्य-वंशधर वैदिक धर्मका परित्यागकर नाना प्रकारके स्वकपोलकलिप्त उपधर्मोंकी सृष्टिकर उसीके अनुसार समय बिताने लगे।

अँग्रेजी शासनमें भारतीय नवयुवकोंका अथःपतन

इस देशमें अँग्रेजोंके आगमनसे हम कुछ बातोंमें सुखी जान पड़े। परन्तु कोई घटना अमिश्र सुख नहीं दे सकती। अँग्रेजी शासनसे जहाँ हमें कुछ सुख लाभ हुआ, वहाँ अनेक विषयोंमें हमारा पतन भी हुआ। अँग्रेजोंने अपनी भाषाके माध्यमसे नाना प्रकारके वैज्ञानिक आविष्कारोंसे बहुत ही ख्याति प्राप्त की। यहाँके नवीन सम्प्रदायोंने उनकी भाषा सीखकर, उनके द्वारा आविष्कृत वायुयान, रेलगाड़ी, रेडियो जैसे यन्त्रोंसे प्रभावित होकर उन्हें अपना गुरु मान लिया। इनसे बहुतसे भयङ्कर दोष उत्पन्न

हो गए। आर्य भाषा एवं उसमें लिपिबद्ध विशाल तथा निर्मल ज्ञान-विज्ञान प्रायः लुप्त होने लगे। इसे सहज ही प्रमाणित किया जा सकता है। किसी अँग्रेजी साहित्यके अध्यापकसे परम पूजनीय वेदोंके सार स्वरूप साक्षात् सामवेदरूपी श्रीमद्भागवतकी बातें पूछनेपर वह या तो हँसकर उड़ा देगा अथवा पुरानी पोथी कहकर ताखपर रख देनेके लिए कहेगा। श्रीमद्भागवतके आध्यात्मिक परम रमणीय अप्राकृत वर्णनोंके मूल तत्त्वोंको समझनेमें असमर्थ होकर वह उसकी गणना कामुकता बढ़ानेवाली अश्लील पुस्तकोंमें करता है। हाय ! कैसी मूर्खता है ! इन सब छोकड़ोंने अपनी संख्या बढ़ाकर दलबदलके साथ कई उपधर्मोंको स्थापन भी कर लिया है। जैसा भी हो पाश्चात्य भौतिकविज्ञान ही मनुष्य जातिका प्रकृत उद्देश्य है—पाश्चात्योंके मानस पुत्र हमारे अधिकांश नवीन शिक्षा-मणिडत पण्डित आज भी इसी धारणाको अपनी छातीमें चिपकाये हुए हैं। वे अब भी अप्राकृत तत्त्वोंको स्वप्नवत मानकर इनकी अवहेलना करते हैं। इसमें अँग्रेजोंका दोष ही क्या है ?

बाइबिलका निवृत्ति मार्ग तथा आधुनिक विज्ञानके प्रभावसे प्रवृत्ति मार्गकी प्रधानता

इस ऐतिहासिक परिस्थितिका उल्लेख करनेका तात्पर्य यही है कि पाठक इस बातको अनुभव कर सकें कि पाश्चात्योंके संसारसे हम आर्य वंशधर भी आज निवृत्ति तत्त्वोंको अग्राह्य समझने लगें हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति—इन दोनोंमें प्रवृत्ति मार्गको ग्रहण करनेयोग्य बतलाकर निवृत्ति मार्गको पूर्वकालका भ्रम समझकर परित्यागकर दिया है। जैसा सङ्ग होता है तदुनुरूप जीवोंके विचार, सिद्धान्त और स्वभाव हो जाते हैं। शास्त्रोंमें इसके अनेक प्रमाण हैं। आज पाश्चात्योंने भौतिक विज्ञान तथा मनोविज्ञानकी उन्नति कर प्रवृत्ति-मार्गको ही भगद्वामका एक मात्र पथ स्वीकार किया है। ‘आज’ शब्दका उल्लेख करनेका तात्पर्य यह है कि उनलोगोंके अवतार पुरुष या धर्मगुरु यीशुने अपने

प्रकाशित धर्ममें प्रवृत्ति मार्गोंको स्वीकार करते हुए भी निवृत्ति मार्गका श्रेष्ठत्व स्थापन किया है।

महात्मा यीशु द्वारा निवृत्ति मार्गका उपदेश

एक बार किसी व्यक्तिने महात्मा यीशुपैरे पूछा—‘गुरो ! बहुत दिनोंकी आयु पानेके लिए मुझे क्या करना चाहिए ?’ यीशुने कहा—‘यदि सांसारिक धर्मोंका पालन करते हुए भी ऐसा प्रश्न करते हो, तो तुम अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर उसे दरिद्रोंको दानकर दो और मेरे अनुगामी बन जाओ।’ उस व्यक्तिके ऐसा करनेपर यीशुने अपने शिष्योंसे कहा—‘देखो, विषयी लोगोंके लिए वैकुण्ठकी प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। जिसने मेरा अनुगामी होनेके लिए अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र, भाई-बहन तथा बन्धु-बान्धवोंका परित्याग किया है, उसीको अधिक लाभ होगा। और वही अत्यन्त आयुका अधिकारी होगा।

वर्तमान ईसाइलोग यीशुके मतके विरोधी हैं

महात्मा यीशुके ऐसे ही अनेक उपदेश हैं। वे एक त्यागी पुरुष थे, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। आजकल जो ईसाई धर्मकी शिक्षा दी जाती है, वह वास्तवमें यीशुकी शिक्षा नहीं है। यदि ऐसा न होता तो अपनेको ईसाई कहनेवाली पाश्चात्य जातियाँ राज्यके लोभमें असंख्य प्राणियोंका वध करना स्वीकार नहीं करती। युद्ध करना एक पशुवृत्ति है। अतएव वह वैराग्यधर्मकी विरोधिनी है—इसमें सन्देह नहीं।

प्रोटेस्टैट लूथरका प्रवृत्ति मार्ग यीशुका विशुद्ध मौलिक विचार नहीं है

क्या यीशुके इन उपदेशोंसे निवृत्तिमार्गकी श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं होती ? इस तरह अँग्रेज लोग क्या ईसाई धर्मसे च्युत नहीं हुए ? केवल प्रवृत्ति मार्ग ही श्रेष्ठ है—ऐसा सभी नहीं कहते—यह बात ठीक है, किन्तु लूथर नामक किसी धर्म संस्कारकके अनुयायी ही निवृत्तिमार्गके विरोधी हैं। लूथरके

समयसे उन्होंने प्रवृत्ति-मार्गको ही उपासनाके लिए स्वीकार किया है। वर्तमान समयके प्रोटेस्टैट लोग संन्यासी और त्यागियोंको भ्रान्त कहते हैं। किन्तु रूस, फ्रान्स आदि देशोंमें लूथरके मतका विशेषरूपसे आदर न होनेके कारण वहाँके पादरी लोग हमारे संन्यासियों तथा त्यागियोंके समान स्त्री-सम्भोगका परित्यागकर निःसङ्ग भावसे उपासना करते पाये जाते हैं। इस मतको कैथोलिक अर्थात् यीशुका यथार्थ मत कहा जा सकता है। लूथरने यीशुकी वाणियोंका लक्षण द्वारा मनोकल्पित स्वतन्त्र अर्थ करके अपना नया मत चलाया है।

लूथर-पन्थी भारतीय युवकोंके धृणित विचार

हमारे देशमें जैसे शङ्कराचार्यने वेदान्त सूत्र तथा उपनिषदोंका लक्षण द्वारा गौण अर्थ लेकर मायावाद नामक एक असत् मत चलाया है, लूथरने भी वैसे ही बाइबिलका गौणार्थ करके निवृत्ति-मार्गको भ्रान्त विचार या पथ बतलाकर प्रवृत्ति-मार्गकी ही श्रेष्ठता स्थापन की है। पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त हमारे नवीन विद्यार्थी लोग आज भी प्रवृत्ति मार्गकी अधिक पूजा करते हैं। संन्यासियों अथवा त्यागियोंको देखते ही उन्हें बड़ा कष्ट होता है। वे कहते हैं—‘हाय ! ऐसे शक्तिशाली व्यक्ति भी कितने अकर्मण्य हो गए हैं। यदि वे विवाहादि करके हल चलाते या मजदूरी करते तो उससे हमारी बेकारी समस्या हल हो जाती और पृथ्वीका दुःख बहुत कुछ कम हो जाता।

प्रवृत्ति और निवृत्तिका तारतम्यमूलक निर्भाक विचार तथा उनके चार प्रमाण

ऐसे विचारवाले व्यक्तियोंको हम मूर्ख कहते हैं, ऐसी बात नहीं है। बल्कि उनमें बहुतसे बड़े-बड़े पण्डित तथा वैज्ञानिक हैं हम स्वीकार करते हैं। किन्तु रक्त-मांससे बना हुआ मानव भ्रमरहित नहीं हो सकता। अतएव उनमें भी भ्रम है—इसमें सन्देह ही क्या है ? प्रवृत्ति मार्गके पक्षपातियोंमें वस्तुतः

बहुतसे पण्डित व्यक्ति हैं। अतएव इस विषयकी विवेचना करनेके लिए श्रीमद्भागवतमें कहे गये चार प्रमाणोंका अवलम्बन करना उचित है। चार प्रमाण इस प्रकार हैं—

'श्रुतिः प्रत्यक्षमौतिह्यमनुमानं चतुष्टयम्'

अखिल शास्त्र, प्रत्यक्ष, इतिहास तथा युक्ति—इन चार प्रमाणोंका अवलम्बन करनेसे विचार निर्दोष होता है। हम किसी विचारका निर्णय करनेके समय किसी मनुष्यके पाण्डित्यसे भयभीत अथवा भ्रान्त न होंगे। हम स्वाधीनतापूर्वक विचार करेंगे। परमाराध्य श्रीचैतन्यदेवने हमलोगोंको उपदेश दिया है—

'स्वाधीनता रत्न हय ईश्वरे दान।'

'ताहारे त्यजिते कभु नारे बुद्धिमान्॥'

—भगवान्‌ने हमें स्वाधीनता नामक एक रत्न

दान दिया है। बुद्धिमान मनुष्य कभी भी उसको परित्याग नहीं करते, सर्वदा ही उसका उपभोग करते हैं।

सद्युक्ति, शास्त्र, ऐतिह्य तथा प्रत्यक्ष प्रमाणोंके आधारपर जो विचार प्रतिष्ठित होगा, वही हमारे लिए परम आदरणीय होगा। श्रीशङ्कराचार्य जैसे प्रतिभाशाली पण्डित भी यदि इस सिद्धान्तका विरोध करें, तो भी हम उससे विचलित न होंगे। पाश्चात्य पण्डितोंका भी ऐसा ही विश्वास है, अतः प्रवृत्ति-मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है—ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि पाश्चात्य दार्शनिक भी मनुष्य ही है। हमारे नवीन शिक्षित आर्य-प्रकाशित निवृत्ति मार्गसे घृणा करते हैं, यह भी उन लोगोंके बहुतसे भ्रमोंमें एक प्रधान भ्रम है। अब मूल विषयका विचार किया जाय। □ (क्रमशः)



प्रेम

जीवनमें सफलता 'प्रेम' द्वारा मिलती है। इसके अभावमें जीवन नीरस और अहंकारपूर्ण हो जाता है।

प्रेम एक व्यक्तिके हृदयमें विकसित होकर उसके जीवनको मधुर अर्थात् मधुमय बना देता है। प्रेमके बिना जीवन नरक तुल्य हो जाता है। थोड़ा सा और विचार करो, तो आप वास्तवमें प्रेमकी परिभाषाको समझ सकोगे, तो सुनो—

जब भगवान् श्रीकृष्ण कंसके निमन्त्रणपर मथुरा जाते हैं तो वहाँ वह हीरे-मोतियोंसे जड़ित महल पाते हैं अर्थात् देखते हैं। कंस द्वारा उनके लिए एक अलग महलकी व्यवस्था होती है। जब कृष्णको गोकुल अर्थात् ब्रजकी याद आती है तो वह फूट-फूटकर रोते हैं, तब उनका एक सखा 'उद्धव' उनसे रोनेका कारण पूछते हैं।

तब कृष्ण रोते हए कहते हैं—मुझे ब्रजकी बहुत याद आती है। यमुनाका वह सुन्दर किनारा, कुञ्जोंकी वह सघन छाया, वहाँकी वे मनोरम गायें,

श्रीदाम, सुबल, मधुमङ्गल आदि सखा, नन्द बाबा, यशोदा मैया और अन्य गोपियाँ।

उद्धव पूछते हैं, “क्या वास्तवमें तुम्हें वहाँकी याद आती है, और आती है तो क्यों?”

तब ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दर कहते हैं—मुझे वहाँकी याद आती है और क्यों तो इसका कारण है—प्रेम। मुझे उन सभीसे प्रेम है जो मुझसे प्रेम करते हैं।

तो यहाँ हमारा कहनेका तात्पर्य यह है कि आज समाजमें जो कुछ भी आदान-प्रदान हो रहा है, वह प्रेमके कारण हो रहा है। परन्तु वास्तविक प्रेम तो सच्चे साधु जानते हैं। वे ही तुम्हारे गुरु बनकर तुम्हें कृष्णसे प्रेम करा सकते हैं। जब तुम भी कृष्णसे प्रेम करने लग जाओगे, तो कृष्ण भी तुमसे प्रेम करने लग जाएँगे। प्रेम करनेका एकमात्र साधन है—हरिकीर्तन। □

इति।



मायावादकी जीवनी

—३५ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या १०, पृष्ठ २३६ से आगे)

वास्कलि या वास्कल

वास्कल-उपाख्यानके अनुसार वास्कलि या वास्कलने अद्वैतवादी वाध्वरूपिके निकट अद्वैतवादकी शिक्षा पाई थी। कोई-कोई उन्हें बाध भी कहते हैं। जनश्रुतिके अनुसार वाध्वरूपिके बाद वास्कल एक प्रधान अद्वैतवादी हुए थे। आचार्य शङ्करने भी ब्रह्मसूत्र(३/२/१७)के भाष्यमें वाध्व-वास्कलिके कथोपकथनको श्रुतिसे प्रमाणस्वरूप ग्रहण किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिए उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

‘वास्कलिना च वाहः (धः) पृष्ठः सन्त्वचननैव ब्रह्म प्रोवाचोति श्रुयते स होवाचाधाहि भगवो ब्रहोति स तुष्णीं वभूव, तं ह द्वितीये वा तृतीये वा वचन उवाच—ब्रह्मः खलु, त्वन्तु न विजनानास्तुपशान्तोऽयमात्मा।’

अर्थात् मायावादके ब्रह्मका ज्ञान लाभ करनेके लिए चुपचाप मूक होकर बैठनेसे ही ब्रह्मज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। युक्ति विचार या शास्त्रज्ञानके द्वारा इस मायावादके ब्रह्मके विषयमें कुछ भी जाननेका कोई उपाय नहीं है। मैंने पहले शंकराचार्य द्वारा रचित दक्षिणामूर्ति-स्तवके जिस बारहवें श्लोकको उद्धृत किया है, वह वाध्व-वास्कलि उपाख्यानकी ही प्रतिध्वनि स्वरूप है। शंकराचार्य द्वारा उद्धृत उक्त श्रुति-वचनका वेदान्त वागीशकृत मन्तव्यके साथ अनुवाद आप लोगोंके सामने उपस्थित कर रहा हूँ। यथा—

“श्रुतिमें और भी सुना जाता है कि वास्कलि द्वारा जिज्ञासा किए जानेपर वाध्वने निरुत्तर द्वारा ब्रह्म-तत्त्वका निर्देश दिया था। ‘भगवन्! आप मुझे ब्रह्मका अध्ययन करावें।’—वास्कलिने जिज्ञासा की।

किन्तु, वाध्व चुपचाप मूक जैसे बैठे रहे। ‘भगवन्! मुझे ब्रह्मका उपदेश करें।’—वास्कलिने दूसरी बार फिर पूछा और फिर तीसरी बार भी। ‘मैं तो निश्चय पूर्वक कह रहा हूँ कि यह आत्मा उपशान्त अर्थात् अखण्डकरस अद्वैत है।’—वाध्वने अपना अभिप्राय प्रकट किया। (अभिप्राय यह कि ब्रह्म निर्विशेष होनेके कारण वाक्यपथके अतीत और बोलनेके अयोग्य है, अतः निरुत्तरता ही तुम्हारे प्रश्नका प्रकृत उत्तर है।)

उक्त प्रामाणिक ऐतिह्यपर दृष्टिपात करनेसे यह पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है कि वास्कलि मायावादी थे, इसमें तनिक भी सन्देह की गुँजाइश नहीं। इसी वास्कलिका परिचय श्रीमद्भागवतमें भी पाया जाता है—

हिरण्यकशिपुर्भार्या क्याधुनार्म दानवी।

जम्भस्य तनया सा तु सुषुवे चतुरः सुतान्॥

सहादं प्राग्नुहादं हादं प्रहादमेव च।

तत्त्वसा सिंहिकानाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत्॥

* * * * *

अनुहादस्य सूर्यायां वास्कलो महिषस्तथा॥

(श्रीमद्भा० ६/१८/१२-१३, १६)

अर्थात् हिरण्यकशिपुकी पत्नी क्याधु नामक एक दानवी थी। उसके पिता जम्भने उसका विवाह हिरण्यकशिपुके साथ कर दिया था। क्याधुने चार पुत्रोंको प्रसव किया था—संहाद, अनुहाद, हाद, और प्रहाद। इनकी सिंहिका नामक एक बहन भी थी। उसका विवाह विप्रचित् नामक एक दानवके साथ हुआ और इनसे राहु नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। १२-१३॥

अनुहादकी सूर्या नामक पत्नीसे दो पुत्र हुए—वास्कल और महिष। ॥१६॥

हिरण्यकशिपुके औरससे कथाधुके गर्भमें अनुहादका जन्म हुआ था। माता-पिताके असुर होनेके कारण अनुहाद भी उनकी अपेक्षा कुछ अन्य प्रकारके न हुए। इन्हीं अनुहादके पुत्र ही वास्कल हैं। अतएव वास्कल भी उस युगमें एक असुरके रूपमें ही प्रसिद्ध थे। मायावादके इतिहासमें ऐसे ही अनेक उदाहरण युग—युगमें ही दीख पड़ते हैं। यदि ऐतिह्यकी तनिक भी प्रामाणिकता सिद्ध है, तो उसके आधारपर यह स्पष्ट ही प्रमाणित होता है कि मायावादके चिन्ताश्रोतका आदर असुर और राक्षस कुलमें ही विशेषरूपेण होता आया है। निरपेक्ष सरल-हृदय वाले मुनि-ऋषियोंके बीच जिन्होंने अद्वैतवादको स्वीकार किया, पीछेसे वे भगवदवतारों द्वारा शोधित किये जानेपर मायावादका परित्यागकर श्रीभगवान्‌के चरण-कमलोंका पुनः आश्रय करनेमें समर्थ हुए थे। किन्तु मायावादका आश्रय ग्रहण करने वाले कठिन हृदययुक्त असुर लोग अत्यन्त कट्टर अन्धविश्वासी होनेके कारण भक्ति-तत्त्वके अधिकारी न हो सके। भक्ति-तत्त्वके रक्षक भगवान् एवं भगवत्-अवतारोंने उक्त असुरोंका पूर्णरूपेण विनाशकर भक्ति-तत्त्वकी श्रेष्ठता स्थापनपूर्वक उनका कल्याण किया है। भगवदवतार वामनदेवने इस वास्कलिका उद्धार किया था। गौडीय वैष्णवाचार्य मुकुटमणि श्रीरूप गोस्वामीने अपने लघुभागवतामृत ग्रन्थमें वामनदेवके वास्कलि-उद्धारके अतिरिक्त और भी दो बार आविर्भूत होनेका उल्लेख किया है। यथा—बलि और धुन्थीके यज्ञमें वामनदेवका और भी दो बार आविर्भाव हुआ था। उक्त ग्रन्थके अष्टादशावतार श्रीवामनदेवके प्रसंगका ८० संख्यक श्लोक नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

वामनस्त्रिरभिव्यक्तिं कल्येऽस्मिन् प्रतिपेदिवान्।
तत्रादौ दानवेन्द्रस्य वास्कलोरध्वरं ययौ॥

अर्थात् इस कल्पमें वामनदेवका तीन बार आविर्भाव हुआ है। इनमें सर्वप्रथम वे वास्कलिके यज्ञमें पधारे थे।

भगवान् वामनदेवने वास्कलि असुरके यज्ञमें आविर्भूत होकर उसका उद्धार किया था। इस प्रकार सत्ययुगमें चतुःसनके द्वारा ज्ञानवादका परित्यागकर भक्ति-पथका आश्रय ग्रहण करनेसे तथा वास्कलि दानवके उद्धारसे अद्वैतवादका विनाश और भक्ति धर्मकी प्रतिष्ठा हुई थी।

त्रेतायुगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति वशिष्ठ

त्रेतायुगमें वशिष्ठमुनि अद्वैतवादके प्रधान आचार्य थे। ये सूर्यवंशी राजाओंके कुल-गुरु थे। रामचरित मानसमें उनके ज्ञानी मुनि होनेकी एक झलक पायी जाती है। श्रीरामचन्द्रके बन-गमन और पिताकी मृत्युसे शोकातुर भरतको सान्त्वना देते समय श्रीरामचन्द्रके प्रति लक्ष्मणजी और सीताजीकी निर्मल प्रीतिका वर्णन करते-करते गुरु वशिष्ठ जैसे ज्ञानी-मुनि भी प्रेममें मग्न हो जाते हैं—

भरत वशिष्ठ निकट बैठारे।
नीति धर्ममय बचन उचारे॥
साक सनहे मग्न मुनिज्ञानी।

(रामचरितमानस)

और जब महाराज दशरथने पुत्रकी कामनासे यज्ञका अनुष्ठान किया था, तब उनके बुलाये जानेपर वशिष्ठ ऋषि भी उस यज्ञस्थलीमें उपस्थित हुए थे। इस प्रसंगमें कीर्तिवासी रामायणमें (बंगला) भी वशिष्ठ मुनिको ज्ञानी मुनि कहा गया है—वशिष्ठादि आईलेन यत ज्ञानीमुनि।

अतः वशिष्ठजी एक ब्रह्मज्ञानी ऋषि थे—इस विषयमें कहीं भी कोई मतभेद नहीं दिखलाइ पड़ता है। योगवाशिष्ठ रामायण इसका अकाट्य प्रमाण है। श्रीमद्भागवतमें उनके सम्बन्धमें जो परिचय मिलता है, यहाँ उसे उद्धृत किया जा रहा है—

“वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवत् किल।
अगस्त्यश्च वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोन्नर्षी॥
रेतः सिषिचतुः कृष्णे उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम्।
रेत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात्॥”
(श्रीमद्भा० ६/१८/५-६)

उक्त दोनों श्लोकोंमें प्रथम अर्थात् पाँचवे श्लोककी टीकामें श्रीधरस्वामीने (श्रीधर स्वामी वैष्णव थे। परन्तु अद्वैतवादी उनको अपने सम्प्रदायका एक प्रधान आचार्य कहते हैं) लिखा है—

वल्मीकात् वल्मीकिर्वरुणस्यैव पुत्रोऽभवत्।
एतौ वरुणस्यासाधारणौ पुत्रौ। तथोत्सर्गादयो
मित्रस्यासाधारणाः। तयोरेव साधारणौ द्वौ पुत्रौ चाह,
अगस्त्यश्च वशिष्ठश्च ऋषौ मित्रावरुणयोरभवताम्।”

अर्थात् स्वामीचरणने भृगु और वाल्मीकि मुनिकी वैष्णवता और पाण्डित्य देखकर इन्हें ‘असाधारण’ पुत्र कहा है। किन्तु वशिष्ठ और

अगस्त मुनिको ब्रह्मज्ञानी और मायावादी जानकर इन दोनोंकी गणना ‘साधारण’ पुत्रोंमें की है। द्वितीय अर्थात् छठे श्लोकमें वशिष्ठका जन्मवृत्तान्त वर्णन किया गया है। उर्वशीको देखकर उसके निकट ही वरुणका वीर्य स्खलित हो गया। वरुणने उस वीर्यको उठाकर घड़ेमें रख दिया। उसीसे वशिष्ठका जन्म हुआ था। इस तरह वशिष्ठ उर्वशीके सन्तानके रूपमें प्रसिद्ध हुए। हो सकता है, श्रीधरस्वामीने इसीलिए वशिष्ठमुनिज्ञानपथमें विचरण करते हुए अपने आश्रममें अपने शिष्योंको निर्भेद-ब्रह्मकी शिक्षा दिया करते थे। श्रीरामचन्द्रजी अपने कुल-गुरुको ब्रह्म-ज्ञानमें भटकते देखकर बड़े दुःखी हुए और कृपाकर उन्होंने उनका उद्धार किया। रामचन्द्रने उन्हें भक्ति प्रदान की। उस भक्तिके अगाध स्रोतमें उनकी अद्वैत चिन्ता, उनका ब्रह्मज्ञान न जाने किधर बह गया। अब उन्होंने भगवान् श्रीरामचन्द्रकी सेवामें आत्म-नियोग कर दिया। □

तेलीका बैल

जो लोग एकदम बिलकुल मूर्ख होते हैं, उन्हें ‘बैल’ कहकर बुद्धिमान् लोग उनका उपहास करते हैं। किन्तु “तेलीका बैल” कहनेसे उससे भी अधिक निकृष्ट कोटिके मूर्खका बोध होता है। जिनकी आँखे खुली रहती हैं, वे बैल तो कभी कभी मौका देखकर एक आध ग्रास खा भी लेते हैं, लेकिन तेलीके बैलकी तो दोनों आँखोंपर टोप चढ़ा रहता है, वह कुछ भी नहीं देख पाता। तेलकी घानीके चारों ओर वह दिन-रात घूमता है, किन्तु यह देख नहीं पाता कि किसके चारों ओर घूम रहा है। साथ ही उसके घूमनेके फलस्वरूप जो तेल निकलता है, उसका एक बूँद भी उसे नसीब नहीं होता। अगर तेलीकी विशेष कृपा हुई तो

कभी- कभी खलीका एक आध टुकड़ा नसीब हो जाता है।

तेल खरीदनेके समय कालीदास तेलीकी दूकानपर बैठा हुआ अपने मनमें इसी तरह सोच रहा था। सोचते-सोचते एकाएक उसे जान पड़ा कि वह भी तो एक तेलीका बैल ही है। वह सोचने लगा—इस संसाररूप कोल्हूके चारों ओर मैं दिन-रात चक्कर लगा रहा हूँ। उसके फलस्वरूप एक दिव्यगृह, तीन पुत्र, दो सुन्दरी कन्याएँ, गाय-बैल इत्यादि बहुतसा तेल मैंने पाया है, और भी कुछ तेल पानेकी आशामें हूँ। ये तेल भोग करनेके लिए कितनी ही चेष्टा करता हूँ, किन्तु, एक बूँद भी भोग नहीं कर पाता। बल्कि

ये पुत्र, स्त्री आदि ही मुझे भोग करते हैं, मेरी पीठपर लदे हुए घूमते हैं। अनेक चेष्टाके फलसे गृहणीकी झिड़की, पुत्रकी अकृतज्ञता और गऊका बाँझपन आदि खलीके टुकड़ोंके सिवा और कुछ भी नसीब नहीं होता।

इसी समय हवा के झाँकेसे उड़कर एक टुकड़ा कागज कालीदासके सामने आ पड़ा। उसमें बड़े अक्षरोंमें लिखा था—“श्रीश्रीनवद्वीप-परिक्रमा”

परिक्रमा शब्द पढ़ते ही कालीदासको अपनी संसार-परिक्रमा खूब अच्छी तरह याद आ गई। तेलीकी दूकानमें तो वह बैठा ही था। सामने आँखोंमें टोप चढ़ाए एक बैलको लगातार घूमते देखकर उसके हृदयमें उठे हुए भावोंकी रशिने एक आकार धारण कर लिया। वह परिक्रमाका कागज पढ़कर अपनी व्यर्थ परिक्रमाकी असारता समझकर चटपट तेलकी हाँड़ी हाथमें लिए चिन्ताकुल मुखसे घरको लौटा।

गृहणीने कालीदासका चेहरा देखकर पूछा—तुम्हारा चेहरा ऐसा क्यों हो रहा है? कुछ खो आए हो क्या? उत्तरमें कालीदासने एक लंबी साँस लेकर कहा—हूँ, एक बहुत बड़ी चीज खो आया हूँ। ओह! अब वह कहाँ मिल सकती है?

इतना कहकर गालमें हाथ रखकर विषण्ण मुखसे वह बैठा रहा। गृहणीसे और कुछ न कह सका।

उधर हाँड़ी गरम हो उठी थी। गृहणी चटपट तेल उँडेलकर प्राणेश्वरकी विपत्तिका हाल पीछे पूछनेका निश्चय करके रसोईघरमें चली गई।

कालीदास दिनभर दफ्तरके कोल्हूके आस-पास घूमता रहता था और शामसे पहले कुछ धनरूप तेल लेकर नित्य लौट आता था। किन्तु आज कालीदास क्यों नहीं अब-तक लौटा? देखते-देखते घर-घर सायंकालके दीपक जल गए। मंदिरोंमें घंटा, घड़ियाल और शंख बजने लगे। धीरे-धीरे एक एक तारा आकाशमण्डलमें उदय होने लगा और थोड़ी देरमें सारे आकाशको तारागणने छा लिया।

तब भी कालीदास नहीं लौटा। गृहणी बहुत ही चिन्तित हो उठी। वह बहुत कुछ सोचने लगी। उसकी प्रधान चिन्ता यही थी कि “अच्छा, अगर किसी कारणसे कालीदास मर ही गया है, तो मुझे अब तेलीके यहाँसे खालिस सरसोंका तेल कौन ला देगा? हाय! कल मैं मछलियाँ काहेमें भूँगी? इत्यादि अनेक चिन्ताएँ उस परम आत्मीयाके प्रेमपूर्ण हृदयमें चक्कर काटने लगीं।

जब बहुत रात बीत गई और कालीदास नहीं आया, तब गृहणीने कालीदासके लिए थाली भर अन्न-व्यञ्जन परोसकर रखकर आप खूब पेट भरकर खाया, उसके बाद धीरे-धीरे जाकर वह सो रही। दो-एक लंबी साँसे भी बीच-बीचमें वह छोड़ती जाती थी।

आज चैत्र वदी सप्तमी थी। दोपहरकी तेज धूपसे सारा जगत् तप रहा था। श्रीमायापुरमें श्रीगौराङ्कके जन्मस्थानके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें एक बड़ासा कटहलका पेड़ था। कालीदास उसकी छायामें वृक्षकी जड़का सहारा लिए हुए बैठा था। उसका शरीर शिथिल हो रहा था। वह सोच रहा था—देखते देखते नव दिन बीत गए। श्रीधामकी परिक्रमारूप कार्यका अन्त नहीं हैं। यह जीव नित्य ही आत्मनिवेदन, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दना, दास्य, सख्य—इन नवद्वीपोंकी परिक्रमा करता रहता है। आत्मनिवेदनरूप द्वीपको केन्द्र करके जीव नित्य श्रवण, कीर्तन आदि द्वीपोंमें परिभ्रमण करता है। इस परिक्रमाका भी अन्त या अवधि नहीं है। जीव नित्य है। जो लोग श्रीधामको जगत् के अन्तर्गत एक स्थान मानकर देशभ्रमणकी तरह कुछ दिन वहाँ परिभ्रमण करके यह सोचते हैं कि यहाँका भ्रमण समाप्त हो गया, वे गलती करते हैं। यह धामकी परिक्रमा वैसा कार्य नहीं है। यह भवित है—जीवका नित्य, सहज, स्वाभाविक धर्म है। ओह! मैं खूब बच गया। अब तेलीकी बैलकी तरह संसारकी परिक्रमा नहीं करूँगा, संसारके चक्कर नहीं काटूँगा। □

J J

पूतना

बातचीतके सिलसिलेमें पूतनाकी चर्चा उठते ही हम लोगोंकी क्या धारणा होती है? हम सोचते हैं कि उस द्वापरयुगके कृष्णावतारमें भोजराज कंसने जिस मायाविनी राक्षसीको कृष्णवध करनेके लिए भेजा था, वही राक्षसी पूतना है। उस मायाविनी राक्षसीने सुन्दर रमणीका वेश बनाकर नन्दके भवनमें जाकर स्तनोंमें विषका लेपकर दूध पिलानेके बहाने कृष्णको गोदमें उठा लिया था। किन्तु, बादमें शिशुरूपी भगवानके हाथसे ही उसकी सारी माया भरभंड हो गई। श्रीभगवानके चरणोंमें अपराध करनेके कारण उसे अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ा।

यद्यपि हमने उस द्वापरयुगके पूतना वधकी लीला अपनी आँखोंसे नहीं देखी, तथापि श्रीमद्भागवत पढ़कर और लोकमुखसे पूतना कथा सुनकर हम मायाविनीके कपट या छलनाका आदर नहीं करते, बल्कि उसके उस व्यवहारको हम अपने लिए भी सर्वनाश ही का कारण जानते हैं। यहाँतक कि हम अपने बन्धु-बान्धवोंमेंसे किसीके कपट व्यवहारको देखकर कह उठते हैं—यह आदमी बन्धु नहीं, जैसे पूतना हैं। उसी पूतनाकी कथापर आज हम संक्षेपमें विचार करते हैं।

पहले तो हम यह देख पाते हैं कि पूतनाने अपना असल रूप और वेष छिपाकर बाहर सबको मनको अपनी ओर खींचनेके लिए एक सुन्दरीका रूप धारण कर लिया था।

दूसरे अपने हृदयकी कृष्णको मारनेकी प्रवृत्ति या इच्छाको छिपाकर स्नेहशीला जननीका व्यवहार दिखाकर कृष्णको गोदमें उठा लिया था।

तीसरे अपने अपरिचित होकर भी बाहर सबको आत्मीय भाव दिखाकर बिना किसी बाधाके नन्दके घरमें घुस गई थी।

चौथे ब्रजके सभी लोगोंके प्रीतिपात्र कृष्णको उसने भी प्यार किया था।

इसप्रकार विशेष भावसे आलोचना करनेपर बाहर वेष-भूषा, हाव-भाव और कार्यके द्वारा हम पूतनाको किसी तरह कृष्णद्वेषिणी नहीं समझ पाते। एकान्त अन्तरके भावसे उसे देखनेपर वर्ण-वर्णमें उसके कृष्ण-द्वेषका परिचय हमें मिलता है। आजकल कलिकालमें भी भगवान्‌की कृपासे प्राप्त ज्ञानके द्वारा इस पूतनाके समान लाखों पूतना देखनेका सुयोग हमें प्राप्त होता है। जान पड़ता है, पाठकवर्ग भी इस तरहकी पूतनाके दर्शन पा चुके होंगे और सर्वदा पाते रहते होंगे। अस्तु, हम आज कलियुगकी पूतनाका चरित्र लोक-समाजमें प्रचारित करनेकी चेष्टा करेंगे।

हमारे प्रतिपक्ष अगर कहें कि गले पड़कर इस तरह पराए चरित्रकी आलोचना करना उचित नहीं, तो उसके उत्तरमें हमारा वक्तव्य यही है, हम इस प्रकारके मतके पक्षपाती नहीं हैं, बल्कि शास्त्र और साधुजनोंके आदेशको शिरोधार्य करके समाजके, केवल समाजके ही क्यों, परमार्थ-जगत्‌के मार्गमें कण्टकसदृश मायाविनी छद्यवेशधारण करनेवाली पूतनाका हाल ऊँचे स्वरसे प्रत्येक जीवके सामने द्वार-द्वार घूमकर प्रचार करते हुए इस “जीव-दया” के अनुष्ठानमें कुण्ठित न होंगे। अवश्य ही हम यह जानते हैं कि पूतनाके दुष्ट विचारको पकड़ लेने या जान लेनेसे पूतनाके ही उद्देश्यकी सिद्धिमें विघ्न होगा, किन्तु हम यह भी समझते हैं कि एक पूतनाका चरित्र भी यदि प्रकट कर दिया जाय तो बहुत अनभिज्ञ लोगोंका मङ्गल होगा। इसी कारण द्वापरमें कृष्णचन्द्रने बालघातिनी पूतनाको मारकर ब्रजके बालकोंको विपत्तिसे मुक्त किया था।

आजकल जहाँ देखो वहाँ साधुके वेशमें भण्डश्रेणीके भक्तोंको हम सर्वदा देख पाते हैं। वे बाहर केवल सर्वजनादृत वेश धारण करते हैं, किन्तु उस वेशमें जो आचार-व्यवहार होना चाहिए, वह न करनेके कारण हम उन्हें प्रथम श्रेणीकी पूतना कहेंगे।

दूसरे जो लोग बाहर प्रेम-विभोर भाव दिखाकर रसिक भक्तके नामसे लोगोंको टूटिमें सुख्याति प्राप्त करनेके लिए यत्न करते हैं, किन्तु भीतर कृष्णभक्तके विरोधी भावों-भुक्ति (या जड़ विषय-भोग), मुक्ति (या भगवत्सायुज्य लाभ) और सिद्धिकी स्फूर्तिका पोषण करते हैं, वे भी पूतनाकी श्रेणीके ही जीव हैं।

तीसरे जगतके सभी लोग हमारे आत्मीय

हैं—हृदयमें इस उदार भावको बाहर प्रकट करके जड़ीय स्वार्थसिद्धिके लिए जो लोग लोकसमाजमें घूमते हैं, वे भी पूतना हैं।

चौथे सर्वाराध्य भगवानकी सेवा ही हमारा उद्देश्य है—इस भावको दिखाकर एवं उक्त भजनके कुछ-कुछ आचरण बाहर अनुशीलन करके मूर्ख या बुद्धिहीन लोगोंकी आँखोंमें धूल झाँककर उन लोगोंको जो ठागते हैं, वे भी पूतना हैं।

अब पाठकगण, देखिए आज इस विवादमान कलियुगमें उपर्युक्त लक्षण किसके हैं, सो शायद अधिक स्पष्ट करके कहनेकी आवश्यकता नहीं। इसीसे हम कह रहे थे कि द्वापरयुगकी तरह उपर्युक्त पूतनाओंका त्याग अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो धर्मजगत्में हम जो बालक हैं, उनको ये अवश्य ही भारी हानि पहुँचावेंगे। □



प्रेम-प्रदीप

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या १०, पृष्ठ २४४ से आगे]

महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवने स्वयंको माध्व-सम्प्रदायके अन्तर्भूक्त माना है। इसलिए हम सभी माध्व-सम्प्रदायी हैं। बाउल साँई, नेडा, दरवेश, कर्त्ताभजा, अतिबाड़ी इत्यादि जितने मत हैं, वे सभी अवैष्णव मत हैं। उनके उपदेशों और कार्यमें बहुत अन्तर हैं। अनेक लोग उनके मतकी आलोचना करके वैष्णव-धर्मसे अश्रद्धा करते हैं। किन्तु वास्तविक वैष्णव धर्म इन समस्त धर्मध्वजियोंके दोषके लिए दायी नहीं हैं।

बङ्गदेशमें महाप्रभुके द्वारा प्रचारित वैष्णव धर्म ही अत्यन्त प्रबल है। गोस्वामी महाजनोंने जो मत प्रचार किया है, वही ग्रहणीय है। बाउलोंका मत ग्रहणीय नहीं है।

नरेनबाबूने पूछा कि ‘चैतन्यमहाप्रभुका मत

उन्होंने किसी पुस्तक-विशेषमें लिपिबद्ध किया है?

बाबाजीने कहा कि “नहीं, महाप्रभुजीने कोई पुस्तक नहीं लिखी है। उनके पार्षदोंने जिन पुस्तकोंको लिखा है, उन्हींमें उनका मत लिपिबद्ध है। श्रीसनातन गोस्वामी, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी—इन चारों चैतन्य पार्षद महाजनोंने जो पुस्तके लिखी हैं, वे ही सर्वमान्य हैं।

नरेनबाबू—बाबाजी! उन्होंने किन-किन पुस्तकोंको लिखा है? वे सभी कहाँ प्राप्त होंगी?

बाबाजी—उन्होंने अनेक पुस्तके लिखीं हैं, उन सभी पुस्तकोंका नाम लेनेपर बहुत समय हो जाएगा। दो-एक ग्रन्थोंके नाम वर्णन करता हूँ। श्रीजीव गोस्वामीने जिस षट्सन्दर्भकी रचना की

है, उसमें समुदाय भक्तितत्त्वका वर्णन है। भक्तिके सम्बन्धमें जो कुछ भी कहा जाय, वह सभी इस ग्रन्थमें वर्णन है।

जागतिक विषयोंका अपना अलग-अलग विज्ञान है। विद्युततत्त्व, जलतत्त्व, धूमतत्त्व, प्राणीतत्त्व, सङ्गीततत्त्व—इन सभीका अलग-अलग विज्ञान है। यह विज्ञान ठीकरूपसे आलोचित नहीं होनेपर इन सभीका तत्त्वज्ञान नहीं होता है। जगत्में जितने भी विषय हैं उन सभीकी अपेक्षा भक्ति-तत्त्व सबसे कठिन तत्त्व है। इस प्रकारके विषयका यदि कोई विज्ञान नहीं हो, तब भक्ति-तत्त्व किस प्रकार आलोचित होगा? आधुनिक धर्मसमूहोंमें भक्तिका विज्ञान नहीं दिखाई देता है। आर्य पुरुषोंके मस्तिष्कसे सनातन धर्मका उदय हुआ है। उसमें भी वैष्णव-तत्त्व सर्वोपरि है। इसलिए एकमात्र वैष्णव-तत्त्वमें भक्ति-विज्ञानकी सम्भावना है। श्रीजीव गोस्वामीके सन्दर्भ एवं श्रीरूप गोस्वामीके भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें भक्ति विज्ञान विशेषरूपमें विवेचित है। ये दोनों ग्रन्थ कहीं-कहीं प्रकाशित हो रहे हैं। मेरा विशेष अनुरोध है कि आप ये दोनों ग्रन्थ पाठ करें।

नरेनबाबु—“अब मेरी समझमें आया कि भक्ति विज्ञान शास्त्रको जो लोग नहीं जानते हैं, उनकी भक्ति अतिशय संकीर्ण है।”

बाबाजी—नरेन बाबु! मेरा यह कहना नहीं है। भक्ति ही जीवोंका स्वधर्म हैं, अतएव सहज है। भक्ति किसी पुस्तकसे प्रकटित नहीं हुई है। भक्ति-शास्त्र भक्तिसे प्रकटित हुए हैं। भक्ति-शास्त्र पाठ करनेसे ही भक्ति होती है, ऐसा नहीं देखा जाता है। परन्तु मूर्ख-विश्वाससे जितनी भक्तिका उदय होता है, अनेक तर्कके द्वारा इस प्रकारकी भक्तिका उदय नहीं होता है। सभी आत्माओंमें भक्तिका बीज है। उस बीजको अंकुरित और धीरे-धीरे वृक्षरूपमें परिणत करनेके लिए मालीगरकी आवश्यकता है। भक्तिशास्त्रोंकी

आलोचना, परमेश्वरकी उपासना, साधुसङ्ग और भक्त सेवित स्थानमें वास इन कुछ कार्योंकी आवश्यकता है। भक्ति-बीज अंकुरित होते समय भूमि साफ, कण्टक और कठोर कंकड आदि दूरीकरणरूपी कार्योंकी नितान्त आवश्यकता है। भक्ति-विज्ञानकी जानकारी होनेपर ये समस्त कार्य सुचारुरूपमें हो सकते हैं।

नरेनबाबु—“बाबाजी महाशय! मेरा एक बहुत बड़ा संशय है, उसे दूर करनेकी कृपा कीजिए। जीवोंकी भक्ति परमेश्वरको अर्पित होनेपर वह उत्तम होती है। कृष्णको अर्पित होनेपर भक्ति किस प्रकार उत्तम हो सकती है? कृष्ण क्या परमेश्वर है? हमने श्रवण किया है कि कृष्णने किसी समय जन्म ग्रहण करके कुछ दिन अनेकों कार्य किए अवशेषमें एक व्याधके हाथसे प्राणत्याग किए। यदि ऐसा है, तो कृष्णको भक्ति अर्पित करनेपर किस प्रकार ईश्वर भक्ति हो सकती है?

जिस किसी मनुष्यकी भक्ति करनेसे क्या परमेश्वर भक्ति हो सकती है? मेरे विचारसे कृष्णको परित्याग करके चैतन्यकी भक्ति करनेसे अधिक मङ्गल होगा, क्योंकि साधुचरित्रमें ईश्वरके अनेको गुण रहते हैं।

बाबाजी—“नरेनबाबु! यदि कृष्ण ही परित्यक्त हुए, तब वैष्णव धर्मका क्या गौरव रहेगा। ‘एकेश्वरवाद’ धर्म अनेकों हैं, किन्तु इन सभी धर्मोंमें रस नहीं हैं, क्योंकि उनमें परात्पर श्रीकृष्ण नहीं हैं। साधन-कार्यमें तीन विषय है—अर्थात् साधक, साधन और साध्यवस्तु। भक्तिके साधन कार्यमें भक्तिके साधक, साधन और साध्य इन तीनोंकी योग्यताका प्रयोजन है। परमार्थ चेष्टामें साधन कार्यके तीन विभाग हैं। कर्म-साधन, ज्ञान-साधन और भक्ति-साधन। कर्म-साधनमें साधक अत्यन्त फलकामी या कर्तव्यनिष्ठ होते हैं। इससे केवल कर्म-साधन ही होता है। निष्काम या सकाम होकर कर्म करना पड़ता है। इससे साध्य परमेश्वर

सर्वफलदाता पुरुष होते हैं। ज्ञान-साधनमें साधक अत्यन्त चिन्तित होता है, साधनाकी चिन्ता और साध्य ब्रह्म अर्थात् कठिन चिन्ताकी लक्ष्य वस्तु है। भक्ति-साधनामें साधक प्रीतिमय होता है और साध्य वस्तु भगवान् होते हैं। जिस साधककी जिस पथमें रुचि होती है, वहीं उसका अधिकार है। हमलोग भक्तिके साधक हैं, इसलिए परमात्मा या ब्रह्मके साथ हमारा कोई कार्य नहीं है। भगवानसे ही एकमात्र हमारा कार्य है। इससे यह मत समझना कि परमात्मा, ब्रह्म और भगवान् ये अलग-अलग तत्त्व हैं। साध्य वस्तु एक ही तत्त्व है। केवल साधनाके भेदसे भिन्न-भिन्न रूपमें प्रकाशित होते हैं। इससे ये मत समझना कि भगवान्की अनेक अवस्थाएँ हैं। भगवत्-तत्त्व एक ही वस्तु हैं और स्वतः अवस्थाशून्य है। किन्तु साधकके अधिकार-भेदसे भिन्न प्रकाश-विशिष्ट हैं। आप विशेषरूपसे चिन्ता करनेपर ये तत्त्व समझ सकते हैं।

नरेनबाबु—“बाबाजी महाशय, ये कथा कुछ स्पष्ट करके कहिए। मैं कुछ-कुछ समझ तो रहा हूँ, किन्तु अन्तमें सभी गडबड हो जाती है।”

बाबाजी—“परमात्मा, ब्रह्म और भगवान्—ये एक ही वस्तुके तीन भावमात्र हैं। जगत्की स्थिति, संहारकर्ता, समस्त जीवोंके नियन्ता, शक्तिरूपा परात्पर भावको परमात्मा कहते हैं। परमात्मा और परमेश्वरमें एक ही भाव है। जीवोंकी उच्च दृष्टि होनेसे ही परमात्माका आविर्भाव होता

है। समस्त जगत्‌से अतीत अनिर्वचनीय भावको ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्म विकार एवं अवस्थाहीन है। इसलिए सभी ब्रह्मके अन्तर्गत हैं। ये ही जीवोंके द्वितीय अधिकारका भाव है। जीव और जड़से पृथक् स्वरूपविशिष्ट सर्व-शक्तिमान् अचिन्त्य कार्योंके सम्पादक किसी ऐश्वर्य और माधुर्यकी पराकाष्ठारूपी पुरुषको भगवान् कहते हैं। उन्हींकी शक्ति परमात्मरूपसे जगत्‌में प्रविष्ट हैं और ब्रह्मरूपसे सर्वातीत होकर भी सर्वदा विग्रहवान् और लीलाविशिष्ट हैं।”

नरेनबाबुने गहन चिन्तन करते हुए कहा—मैंने आपके मतको अब उत्तमरूपसे अनुभव किया है। मैं देखता हूँ कि ये एक सत्य मत है इसमें किसी तर्ककी सम्भावना नहीं है। मैंने आज परमानन्द लाभ किया है। वैष्णव तत्त्व बहुत उदार है। सभी सम्प्रदायोंके मतको क्रोडीभूत करके स्वयं अधिकतर ज्ञानालोकसे शोभित है।

आनन्दबाबुने कहा—“नरेनबाबु! बाबाजीके मुखारविन्दसे अमृत वर्षण होने दीजिए। मैं उसे कानोंके माध्यमसे जितना पान करता हूँ, उतना ही एक अर्निर्वचनीय आनन्द आकर मुझे उन्मत्त कर रहा है।

नरेनबाबु—“आजसे परमात्मा और ब्रह्मके निकटसे विदाई ली। भगवान् ही एकमात्र हमारे हृदयसर्वस्व हुए। अच्छा हुआ, भगवान् लेकर ही सन्तुष्ट रहें।” □

**हम इस जगत्‌में कोई काठ- पत्थरके काढ़ीगल बनने नहीं आये हैं;
हम तो श्रीचैतन्यदेवकी वाणीके वाढ़क मात्र हैं।**

—श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ‘प्रभुपाद’

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा १९९६

कार्तिक मासमें प्रति वर्षकी भाँति इस वर्ष भी एक मासिक श्रीव्रजमण्डल परिक्रमाका आयोजन किया गया। देश-विदेशसे आए अनेक भक्तोंने इस परिक्रमामें पूर्ण उत्साहके साथ भाग लिया। २६ अक्टूबरको मथुरास्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठसे ब्रह्मचारी भक्तोंकी टोलीके साथ कीर्तन एवं नृत्य करते हुए देश-विदेशसे आए हुए भक्त होली गेटके रास्तेसे होते हुए विश्राम घाटपर उपस्थित हुए। विदेशी पुरुष भक्तोंको धोती, तिलक एवं चोटी तथा विदेशी महिला भक्तोंको साढ़ी पहनकर वैष्णव-वेश धारण किए देख समस्त मथुरावासी चकित रह गए। विश्राम घाटपर पहुँचकर सभी भक्तोंने श्रद्धा एवं भक्तिसहित श्रीयमुनादेवीको प्रणामकर उनकी स्तव-स्तुति की तथा एक माह तक चलनेवाली कार्तिक परिक्रमा और ऊर्जा व्रतके शुभारम्भका सङ्कल्प लिया। इसके पश्चात् सभी लोग पुनः कीर्तन एवं नृत्य करते हुए मठमें लौट आए।

इस पावन अवसरपर परम पूज्यपाद त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज एवं परम पूज्यपाद त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने सुसिद्धान्त एवं भावपूर्ण प्रवचन द्वारा समस्त भक्तोंको उत्साहित किया। कार्तिक मास एवं ऊर्जा व्रतकी महिमाका वर्णन करते हुए पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीने बतलाया कि हमें समझना चाहिए कि वास्तवमें यह व्रत उन्नत भक्तोंके द्वारा पालनीय हैं। साधारण भक्त इस व्रतको पालन करनेमें अयोग्य हैं। तथापि गुरु पादपद्मकी प्रसन्नता एवं उनके आशीर्वादसे इसका पालन करना ही कर्तव्य है। सभीको अधिकार अनुसार यथेष्ट चेष्टा करनी चाहिए।

इसी अवसर पर पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीने व्रत महिमा वर्णन करते हुए कहा कि इस व्रतका उद्देश्य केवलमात्र संसारसे मुक्ति अथवा सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिके लिए नहीं है। यह व्रत तो श्रीकृष्ण एवं उनके सर्वश्रेष्ठ भक्तोंकी कृपा प्राप्तिके लिए है। सफलतापूर्वक पालन करनेसे वे प्रसन्न होकर समस्त मनोकामनाएँ पूर्ण कर सकते हैं। दामोदर व्रत, ऊर्जा व्रत, कार्तिक नियम सेवा व्रत इत्यादि सभी शब्द समान तात्पर्यपर हैं। विजया दशमीके पश्चात् आनेवाली एकादशी, द्वादशी अथवा पूर्णिमाको इस व्रतका आरम्भ होता है। तथा उत्थान एकादशी अथवा उसके पश्चात् द्वादशी एवं पूर्णिमाको इसकी समाप्ति होती है। ऐसा होनेपर भी सभीके लिए व्रतकी समाप्ति पूर्णिमाको ही होती है। इस व्रतके अन्तिम पाँच दिन भीष्म पंचकके नामसे जाने जाते हैं। अस्मदीय गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्रशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज इस व्रतका पालन वृन्दावन, नवद्वीप, पुरी, द्वारका, अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार इत्यादि धार्मों, तीर्थ स्थलियोंमें रहकर अनुष्ठान करते थे। ब्रह्मचर्यपूर्वक इस मासमें निर्दिष्ट नियमोंका पालन करना चाहिए। सत्य बोलना, निन्दा रहित होकर संख्यापूर्वक हरिनाम इत्यादिका चेष्टापूर्वक अनुशीलन करना चाहिए। अस्मदीय गुरुपादपद्म कहते थे कि हालांकि चौसठ प्रकारके भक्त्यांगोंमें चातुर्मास्यका वर्णन नहीं किया गया है। ऊर्जा व्रतका ही वर्णन मिलता है तथापि हमें चातुर्मास्यके चारों महिने व्रतका पालन करना चाहिए। जो इस व्रतका पालन नहीं करते हैं वे श्रीमन्महाप्रभुके अनुयायी नहीं कहे जा सकते क्योंकि, श्रीमन् महाप्रभुने अपने जीवनमें स्वयं इस व्रतका पालन किया।

इस मासमें श्रीकृष्णने गोवर्धन धारण किया, मैया यशोदाने कृष्णको उदूखलसे बाँध दिया। पौगण्ड अवस्थामें पाँच वर्षकी आयुमें नन्दगाँवमें कृष्णने गोचारण आरम्भ किया। पहले वे बछडे चराते थे। अक्रुरके द्वारा मथुरामें लानेपर कृष्णने कंसका वध किया। रासलीला भी इसी शरद पूर्णिमाको आरम्भ हुई, श्रीकृष्णकी समस्त लीलाओंमें यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण लीला है, उद्घव भी ब्रजवासियोंको सात्वना देनके लिए इसी मासमें ब्रजमें आए थे। इस प्रकार श्रीकृष्णकी सभी प्रमुख लीलाएँ इसी मासमें हुई। राधा-दामोदर तथा यशोदा-दामोदर ये लीलाएँ भी इस मासमें हुईं।

श्रीमती राधिका इस मासकी अधिष्ठात्री देवी हैं, जैसे पुरुषोत्तम मासके अधिष्ठात्री देव कृष्ण हैं। श्रीकृष्ण इस मासमें भक्तों द्वारा वशीभूत कर लिए गए। यह नारद, ब्रह्मा एवं शिव आदिको ब्रजवासियोंकी महिमा दिखानेके लिए किया गया।

ऊर्जा अर्थात् विद्युत, शक्ति। श्रीमती राधिका समस्त शक्तियोंकी यहाँतक कि कृष्णकी भी मूल शक्ति हैं। अखिल चित् एवं अचित् जगत् शक्तिसे प्रकट हुआ है। कृष्ण केवल इच्छा करते हैं। उनकी समस्त इच्छाओंको श्रीमती राधिका ही पूर्ण करती हैं। इनके अलावा और कोई भी कृष्णकी इच्छाओंको पूर्ण नहीं कर सकता। इसलिए श्रीमती राधिकासे कृपा प्रार्थना करते हुए उन्नत वैष्णवोंका सङ्ग करना चाहिए तथा सावधानीसे अन्याभिलाषितासे रहित होना चाहिए। हमें पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीका सङ्ग प्राप्त हुआ है, इनके आनुगत्यमें हम यह व्रत पालन करेंगे।

२१ अक्टूबरसे ३० अक्टूबर तक समस्त यात्रीयोंको श्रीमथुराधाम स्थित विभिन्न प्राचीन एवं ऐतिहासिक मंदिरों एवं श्रीकृष्ण लीलासे सम्बन्धित स्थलियोंका दर्शन एवं महिमा श्रवण कराया गया।

३१ अक्टूबरसे ५ नवम्बर तक मथुरासे ही बसों द्वारा यात्राकर मधुवन, तालवन, कुमुदवन,

बहुलावन, भद्रवन, भाण्डरवन, माटवन, गोकुल महावन, खेलनवन इत्यादि श्रीब्रजमण्डलके प्रमुख वनों एवं श्रीकृष्णकी विभिन्न लीलास्थलियोंके दर्शन कराए गए। ९ नवम्बरसे १२ नवम्बरतक परिक्रमाके यात्रीयोंने गोवर्धनमें निवास किया। यहाँ भक्तोंने बहुत ही उत्साहके साथ गोवर्धन परिक्रमा, अन्नकूट महोत्सव एवं गोवर्धन पूजा इत्यादि कार्यक्रमोंमें भाग लिया। इस वर्ष अन्नकूट महोत्सवकी शोभा भी अपूर्व थी। सभीने गिरिराजजीके लिए कुछ-न-कुछ पकवान, व्यंजन आदि बनाया। सन्ध्याके समय सभी भक्त लोग भोग-सामग्रीको अपने सिरोंपर उठा-उठाकर गिरिराजजीकी तलहटीमें ले गए तथा स्तव इत्यादि कर श्रील महाराजजीकी अध्यक्षतामें समस्त भोग गिरिराजजीको अर्पण किया गया। इस अवसरपर सभीने गिरिराजजीकी आरती एवं प्रदीप भी अर्पण किए।

इस प्रकार चार दिनतक गोवर्धनमें वास कर सभीने गिरिराजजीकी विशेष कृपासे अभिषिक्त हो तथा नवीन उत्साहके साथ परिक्रमाके अगले चरणमें बरसानाकी ओर प्रस्थान किया। बरसानेमें भी यात्रीयोंने चार दिन निवास कर गहवरवनकी परिक्रमा तथा निकट स्थित ऊँचा गाँव, पीली पोखर इत्यादि लीला स्थलियोंका दर्शन किया। इसके पश्चात् परिक्रमा नन्दगाँवकी ओर अग्रसर हुई। नन्दगाँवमें भक्तोंने उद्घव क्यारी, पावन सरोवर इत्यादि लीला स्थलियोंका दर्शन एवं महिमा श्रवण किया। १९ नवम्बरको परिक्रमा वृन्दावन स्थित श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठमें पहुँची। कार्तिक मासके अन्तिम दिनोंमें भक्तोंने वृन्दावनमें ही भीष्म पञ्चक तथा पूर्णिमाके दिन व्रत समाप्ति उत्सवमें भाग लिया।

कार्तिक मासमें कई प्रमुख गौड़ीय वैष्णव आचार्योंके तिरोभाव एवं आविर्भाव उत्सवोंका भी अनुष्ठान किया गया। □

नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीका आविर्भाव महोत्सव

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

आज हमारा परम सौभाग्य है कि हम लोग ॐ विष्णुपाद नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिरक्षक श्रीधर गोस्वामी महाराजजीका आविर्भाव दिवस मना रहे हैं। यह बात ठीक है कि 'वैष्णवेर चिनिते नारे देवेर शक्ति।' वैष्णवोंको देवता लोग भी नहीं समझ पाते हैं, मनुष्योंकी तो, बात ही क्या? किन्तु हम लोगोंने अपने गुरुजी और अन्य वैष्णवोंके मुखारविन्दसे उनके सम्बन्धमें श्रवण किया है। श्रीलश्रीधर महाराज अपनी युवावस्थामें जिस समय कानूनके छात्र थे, उस समय वे नवद्वीप धाममें दर्शन करनेके लिए आए। वहाँ उनकी श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरसे भेंट हुई और उनके उपदेशोंसे इतने प्रभावित हुए कि अपना घर-परिवार सब छोड़कर प्रभुपादकी सेवामें लग गए। गुरुजी उनके सम्बन्धमें कहते थे कि ये गौड़ीय विचारोंमें निपुण, विद्वान् और तत्त्वज्ञ थे। वे लिखना, पढ़ना सभी कुछ संस्कृत भाषामें करते थे। एक समय प्रभुपादजीके अन्त समयमें सभी संन्यासी, ब्रह्मचारियोंने प्रचार कार्य छोड़ दिया, वे लोग आश्रममें बैठ गए। भिक्षाकी सेवा भी रुक गई। इन लोगोंके मनमें ऐसी भावना हुई कि जिनके पास हम भिक्षा जमा देते हैं, उसे वह अपने घरमें भेज देते हैं और अपने कुटुम्बियोंकी सेवा करते हैं। इसलिए सभी ब्रह्मचारी एवं संन्यासियोंने



निश्चित किया कि इन्हें हम कुछ भी नहीं देंगे। जो कुछ भी है वह प्रभुपादके चरणोंमें अर्पित करेंगे। प्रभुपाद एक दिन कलकत्ता स्थित बाग बाजार गौड़ीय मठके वरामदेमें गम्भीरतापूर्वक टहलते हुए हरिनाम कर रहे थे। उसी समय सब लोगोंने अपनी भावनाओंको व्यक्त करनेके लिए श्रील श्रीधर महाराजको प्रभुपादके पास भेजा। श्रीधर महाराजने जब प्रभुपादसे कहा तब प्रभुपाद बड़े गम्भीर होकर खड़े हो गए और बोले इन सब लोगोंकी विचार बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। इन लोगोंमें परमार्थ चिन्तनकी कोई बुद्धि नहीं रही, और आप भी क्यों नहीं विचार करते। आप लोग रूपये-पैसे देखनेके लिए आये हैं या हरिभजन करनेके लिए आये हैं। यदि मैं एकाउंट आदिकी व्यवस्थाको देखनेके लिए किसीको रखूँ, तो वह भी तो कुछ वेतन लेगा ही। आप लोग भजन क्यों नहीं करते हो। आप लोगोंको भी पैसे चाहिए तब मैं व्यवस्था करता कर देता हूँ। यह सुनकर श्रीधर महाराजका मस्तक झुक गया। श्रील श्रीधर महाराजने कहा मेरा और इन लोगोंका विचार गलत है। ये विचार श्रीधर महाराजने अपने मुखसे कहा था। उन्होंने कहा हम लोग भजन करने आए हैं। रूपये-पैसे और प्रतिष्ठाके लिए नहीं आए हैं। दूसरे लोग यदि ये सब चीजें लेकर मर रहे

हैं, तब हमें उन्हें नहीं देखना हैं, हमें अपना भजन करना है। श्रील प्रभुपादने हमारे गुरुजीको वेदान्तकी पुस्तकें दी थीं। हमारे गुरुजी और श्रील श्रीधर महाराज घण्टों बैठकर तत्त्व सिद्धान्त और दार्शनिक विचारोंपर चर्चा करते थे और सभी लोग बड़ी प्रसन्नतासे श्रवण करते थे। ५, सितम्बर १९४१ में कटवामें हमारे गुरुजीने उनसे संन्यास ग्रहण किया। गुरुजी नवद्वीप परिक्रमाके बाद उनसे मिलने जाते थे। उस समय वे एक दूसरेको बहुत सम्मान करते थे।

मैं गुरु महाराज अप्रकट होनेके बाद एकबार उनके पास गया और उनसे वैधी-भक्ति और रागानुगा-भक्तिके सम्बन्धमें कोई प्रश्न पूछा तब उन्होंने उत्तर दिया—

‘मातिल गौर जन कीर्तन रङ्गे,
कूजल रागपथ गौरव भङ्गे॥’

गौरव भङ्गेका अर्थ यह है कि महाप्रभुके जितने भी भक्त हैं, वे गौर कीर्तनमें प्रमत्त हो गए किन्तु

इसमें एक विशेषता थी। बहिरङ्ग सङ्गे करे नाम सङ्गीर्तन, आर अन्तरङ्ग लइया करे रसास्वादन। चैतन्य महाप्रभु बहिरङ्ग भक्तोंके साथ कीर्तन करते थे और अन्तरङ्ग विषेशकर साडेतीन जन स्वरूपदामोदर, रायरामानन्द, शिखीमाहिती और उनकी बहन माधवी देवी इत्यादिके साथ रसास्वादन करते थे। कोई जरुरी नहीं कि हजारों वर्ष तक वैधी भक्ति करनेसे रागानुगा भक्ति आ जायेगी। यदि शुद्ध, रसिक और भावुक भक्तोंके मुखसे श्रीमद्भागवत आदिकी रसिक व्याख्या श्रवण करें, तो उनके मुखसे श्रवण करके हो सकता है करोड़ों व्यक्तियोंमेंसे किसी एकको व्रजकी सेवाके लिए लोभ उत्पन्न होता है। जिस समय ये लोभ होगा उस समय क्या होगा ‘कूजल रागपथ गौरव भङ्गे’ गौरव भाव उसका छूट जाएगा। भगवानका ऐश्वर्य आदि भाव दूर हो जाएगा। उस समय वह रागपथमें प्रवेश कर सकेगा। उन्होंने और भी बहुत कुछ बतलाया। किन्तु इतना ही व्यक्त करके वक्तव्य समाप्त करता हूँ। □

वैष्णव व्रत तालिका

२८ दिसम्बर शनिवार

३ जनवरी शुक्रवार

५ जनवरी रविवार

९ जनवरी बृहस्पतिवार

१२ जनवरी रविवार

१४ जनवरी मंगलवार

१९ जनवरी रविवार

२३ जनवरी बृहस्पतिवार

श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर ‘प्रभुपाद’ जीका तिरोभाव।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति परिवाजकाचार्य

त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी

महाराजजीकी ७६ तम आविर्भाव तिथिपूजा।

सफला एकादशी व्रत, अगले दिन ९-५६ से भीतर पारण।

अमावस्या।

श्रील जीव गोस्वामी एवं श्रीजगदीश पण्डितजीका तिरोभाव।

पौषपार्वण, मकरसंक्रान्ति, गंगासागर स्नान।

पुत्रदा एकादशी, अगले दिन १०-००से पहले पारण।

पूर्णिमा

श्रील नरोत्तम ठाकुर

श्रील नरोत्तम दास ठाकुर बङ्गालके खेतुरी नामक स्थानपर आविर्भूत हुए। वे अपने पिताके इकलौते पुत्र थे। उनके पिता उस समयके प्रभावशाली राजा थे। बचपनसे ही उनकी भक्तिके प्रति रुची देखी जाती थी। वे विवाह करनेके इच्छुक नहीं थे, उन्होंने सोलह वर्षकी अवस्थामें घर छोड़ दिया और वृन्दावन आ गये। वे महाप्रभुके दर्शन करना चाहते थे। उस समय महाप्रभु जगन्नाथ पुरीमें थे। जब श्रील नरोत्तम ठाकुर घर छोड़कर पुरीकी ओर जा रहे थे तब उन्होंने सुना कि महाप्रभु एवं उनके परिकर श्रील रायरामानन्द, श्रील स्वरूप दामोदर, श्रील गदाधर पण्डित आदि सभी अन्तर्धान हो गए हैं। उनका हृदय विदीर्ण हो गया। वे इसके उपरान्त वृन्दावनकी ओर चलने लगे। जब वे वृन्दावनके रास्तेपर चल रहे थे, उन्होंने सुना कि श्रीलरूप-सनातन भी अप्रकट हो गए हैं। उस समय श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीनिवास आचार्य भी वृन्दावनकी तरफ आ रहे थे। वे तीनों एक साथ श्रील जीव गोस्वामीके निकट पहुँचे।

जीव गोस्वामी प्रभु इन तीनोंको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। श्रीजीव गोस्वामी प्रभुने इन तीनोंको समस्त ग्रन्थ एवं अपने द्वारा रचित षट्सन्दर्भ, गोपालचम्पू इत्यादि ग्रन्थोंका अध्ययन कराया। बहुत जल्दी ये तीनों भक्ति-शास्त्रोंमें निपुण हो गए। श्रीजीव गोस्वामीने इन तीनों लोगोंको किसी वैष्णवसे दीक्षा लेनेको कहा। श्रीश्यामानन्द प्रभुने श्रीहृदय चैतन्य प्रभुसे दीक्षा ग्रहण की परन्तु श्रीनरोत्तम ठाकुर और श्रीनिवासाचार्य प्रभुने दीक्षा ग्रहण नहीं की। उन्होंने कहा आप परम निष्कञ्चन, तत्त्वज्ञ वैष्णव हैं, इसलिए आपसे ही दीक्षा ग्रहण करेंगे। श्रीजीव गोस्वामीने कहा कि

मैं इसके योग्य नहीं हूँ। उन्होंने श्रीनरोत्तम ठाकुरको महाप्रभुके परिकर श्रीलोकनाथ प्रभुसे दीक्षा लेनेको कहा। श्रीनरोत्तम दास ठाकुर उनके पास दीक्षा लेने गए किन्तु उन्होंने मना कर दिया। उन्होंने कहा तुम एक राजपुत्र, बहुत सुन्दर, विद्वान व्यक्ति हो। तुमने श्रीजीव गोस्वामीसे शिक्षा ग्रहण की हैं इसलिए मैं दीक्षा नहीं दूँगा। मेरा कोई शिष्य नहीं है और न मैं दीक्षा देना चाहता हूँ। श्रीनरोत्तम दास ठाकुरने कहा मैं केवल आपसे ही दीक्षा ग्रहण करूँगा। श्रीलोकनाथ गोस्वामी प्रभु जिस मार्गसे शौच करनके लिए जाते थे और जिस स्थानपर शौच करते थे। श्रीनरोत्तम ठाकुर उस स्थान एवं उस मार्गको प्रतिदिन उनके शौच जानेसे पूर्व साफ-सुथरा कर देते। बहुत दिनों बाद श्रीलोकनाथ गोस्वामीने सोचा कि कौन प्रतिदिन इस स्थानको साफ करता है। उन्होंने उस व्यक्तिको खोजना प्रारम्भ कर दिया। वे रात्रिको बिना सोये केवल भजन करते थे इसलिए रात भर देखते रहे कि कौन आता है इसे साफ करने। मध्यरात्रिके समय ये राजकुमार श्रीनरोत्तम ठाकुर आये और जैसे ही इन्होंने साफ करना आरम्भ किया, उन्होंने उनका हाथ पकड़ लिया और पूछा तुम कौन हो। श्रीनरोत्तम ठाकुरने कहा मैं दुःखी नरोत्तम हूँ। मैं कृष्ण भजन करना चाहता हूँ। इसलिए मैं आपकी कृपा चाहता हूँ। उन्होंने कहा मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ। मैंने किसी व्यक्तिको दीक्षा नहीं देनेका निश्चय किया था, किन्तु तुम एक योग्य व्यक्ति हो इसलिए मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। उन्होंने यमुनामें स्नान करके दीक्षा ग्रहण की और श्रीलोकनाथ गोस्वामीकी सेवामें लग गए।

एक दिन श्रीनरोत्तम ठाकुर कुटियामें बैठकर

भजन कर रहे थे, उस समय गर्मीका मौसम था। उसी समय एक व्यक्ति आकर बोला कि मैं बहुत प्यास हूँ, थोड़ा पानी दे दो। उसने पहले लोकनाथ गोस्वामीसे कहा। किन्तु, वे हरिनाममें इतने तल्लीन थे कि उन्हें बाहरी सुध-बुध नहीं थी। इसलिए वह व्यक्ति श्रीनरोत्तम ठाकुरके पास आया और बोला मेरे पास रस्सी और बाल्टी नहीं हैं, मैं बहुत प्यासा हूँ इसलिए थोड़ा पानी दे दो। वे भजन कर रहे थे, भजन छोड़कर उस व्यक्तिको पानी देने चले गए और वह व्यक्ति सन्तुष्ट होकर चला गया। कुछ समय बाद श्रीलोकनाथ गोस्वामीजीको पता लगा तब उन्होंने नरोत्तम ठाकुरको बुलाया और कहा तुम अभी अपने घर चले जाओ। मैं तुम्हेरे जैसा शिष्य नहीं चाहता हूँ। तुमने ऐसा क्यों किया। श्रीनरोत्तम ठाकुरने कहा वह बहुत प्यासा था। श्रीलोकनाथ गोस्वामी बोले कि तुम्हें मालुम नहीं कि नाम और राधाकृष्ण अभिन्न है।

जब तुम हरिनाम कर रहे थे तब तुम्हें सोचना चाहिए था कि मैं राधाकृष्णकी सेवा कर रहा हूँ। किन्तु, तुम राधाकृष्णकी सेवा छोड़कर उस व्यक्तिकी प्यास बुझाने गए। इसलिए तुम वापस चले जाओ। वे खेतुरी ग्राम चले आए और यहाँ आकर उन्होंने सम्पूर्ण बङ्ग प्रदेशमें महाप्रभुकी वाणी प्रचार की। इन्होंने यहाँ सात मन्दिरोंका निर्माण कराया, उसमें राधा-कृष्णके विग्रहकी स्थापना की। इन्होंने मन्दिर स्थापनाके समय ब्रजधाम, नवद्वीपधाम और पुरुषोत्तम क्षेत्रके सभी वैष्णवोंको निमन्त्रण दिया। जिस समय वे कीर्तन करते थे उस समय महाप्रभु अपने परिकरोंसहित प्रकटित होकर कीर्तन करते थे। अन्तमें उन्होंने कीर्तन करते-करते इस जगत्से प्रस्थान किया। उन्होंने बंगला भाषामें अनेक सुन्दर एवं सुसिद्धान्तपूर्ण पदोंकी रचना की है। उनमेंसे दो कीर्तन नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं—

जे आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुरा।
हेन प्रभु कोथा गेला आचार्य ठाकुर॥।
काँहा मार स्वरूप-रूप काँहा सनातन।।
काँहा दास रघुनाथ पतित पावन॥।
काँहा मार भट्टयुग काँहा कविराज।।
एककाले कोथा गेला गोरा नटराज॥।
पाषाणे कुटिब माथा अनले पशिब।।
गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेला पाब।।
जे सब सङ्गीर सङ्गे जे कैला विलास।।
से सङ्ग ना पाइया काँदे नरोत्तम दास॥।

जिन्होंने जीवोंपर अहैतुकी करुणा करके प्रेम-धनको इस जगतमें प्रकटित किया वे श्रीआचार्य ठाकुर कहाँ गए। मेरे स्वरूप दामोदर प्रभु, रूप गोस्वामी प्रभु, सनातन गोस्वामी कहाँ हैं। सम्पूर्ण पतित जगत्को पावन करनेवाले श्रीरघुनाथ दास गोस्वामी कहाँ हैं। मेरे रघुनाथभट्ट गोस्वामी, गोपालभट्ट गोस्वामी, कृष्णदास कविराज गोस्वामी कहाँ हैं। इस समय नटराज शिरोमणि श्रीगौरसुन्दर कहाँ हैं। मैं अपने मस्तकको पाषाणपर मारूँ या अग्निमें प्रवेश करूँ, गुणोंकी निधि श्रीगौरचन्द्रको कहाँ जानेसे प्राप्त करूँगा। जिन समस्त पार्षदोंके साथ श्रीगौरचन्द्रने विलास किया वे सब कहाँ हैं। इस सङ्गको नहीं पानेसे नरोत्तम दास निरन्तर क्रन्दन करते हैं।

गौराङ्गेर दूटीपद, जार धन सम्पद,
से जाने भक्ति रस सार।
गौराङ्गेर मधुर लीला, जार कर्ण प्रवेशिला,
हृदय निर्मल भेल तार॥
जे गौराङ्गेर नाम लय, तार हय प्रेमोदय,
तारे मुझ जाइ बलिहारी।
गौराङ्ग गुणते झुरे, नित्यलीला तार स्फुरे,
से जन भक्ति अधिकारी॥
गौराङ्गेर सङ्गी गणे, नित्यसिद्ध करि माने,
से जाय ब्रजेन्द्र सुत पाश।
श्रीगौडमण्डल भूमि, जेवा जाने चिन्तामणि,
तार हय ब्रज भूमे वास॥
गौर प्रेम रसार्णवे, से तरङ्गे जेवा डूबे,
से राधामाधव अन्तरङ्ग।
गृहे वा वनेते थाके, हा गौराङ्ग बले डाके,
नरोत्तम माँगे तार सङ्ग॥

जिस व्यक्तिने गौरचन्द्रके श्रीचरणोंको अपना धन-सम्पत्ति बना लिया है, वह भक्तिरसके सारको समझता है। श्रीगौराङ्गकी मधुर लीलाएँ जिसके कर्णोंमें प्रवेश करती हैं, उसका हृदय निर्मल हो जाता है। गौराङ्गका नाम लेनेपर जिनको प्रेमोदय होता है, उनको मैं बलिहारी जाता हूँ। जो गौराङ्गके गुणोंसे विभावित है, उनको नित्यलीलाकी स्फूर्ति होती हैं एवं वे भक्तिके अधिकारी होते हैं। जो गौर पार्षदोंको नित्यसिद्ध समझता है, वह ब्रजेन्द्रसुतको प्राप्त होता है। जो गौडमण्डलको चिन्तामणि समझता है, उसका वास ब्रजभूमिमें होता है। जो गौरप्रेमके रस समुद्रकी तरंगोमें गोता लगाता है, वह राधामाधवका अन्तरङ्ग हो जाता है। गृहमें रहें या वनमें जो निरन्तर हा गौराङ्ग! कहकर पुकारते हैं, नरोत्तम दास ठाकुर उनके सङ्गकी कामना करते हैं। □

कामिनीका स्वप्न

(“तेलीका बैल” लेखके साथ संयुक्त)

ओर के बरामदेमें आज कामिनी (कालिदासकी स्त्री) लेट रही। कालिदासकी नाकमें रस्सी और आँखोंमें टोप चढ़ाकर कामिनीने उसे इतने दिन जिस तरह से घुमाया और उससे जो तेल प्राप्त किया था, उसके अब न पाने की चिन्ता ने आकर कामिनीके दिमाग को गरम और चित्तको चंचल बना दिया था। इसीसे कामिनी बिछौने पर पड़ी इधर-उधर बेचैनीसे करवट बदल रही थी। किन्तु फगुनहटे की हवा जैसे जिद करके जबरदस्ती उसके हृदयमें प्रवेश करके उसके अनजान में ही उसके दिमाग की गर्मी और मन ही चंचलताको दूर करने लगी। देखते ही देखते कामिनीकी आँख लग गई।

बैलोंको कोल्हूमें जोत देने पर वे उसे खींचनेमें अनिच्छा अवश्य प्रकट करते हैं, लेकिन एक दम कोल्हूका खींचना बंद कर देने पर वे अस्वस्थ और अस्थिर प्रतीत होते हैं। गुलामीमें जिन्होंने बहुत सा समय बिताया है, उन्हें इस विषयकी यथेष्ट अभिज्ञता है। वे पेंशन-पेंशन चिल्लाते हैं किन्तु पेंशन देने की इच्छा प्रकट करने पर एकस्टेन्सन चाहते हैं या पेंशन दे देने पर उनका वक कटना मुश्किल हो जाता है। तब वे विना वेतन लिए ही कोल्हू खींचना और घूमना चाहते हैं। कालिदासने उस दिन तेली के बैल को देखकर अपने को भी वही का बैल ठहराया और “अरे ना रे बाप!” कहकर किसी तरह दो कौर मुँहमें ठूँसकर—पेटमें भरकर—आफिस चला गया और आफिस के कोल्हूमें जुतकर घूमता हुआ तरह-तरह की बातें सोचने लगा। इसी समय एक संन्यासीने उसके कमरेमें प्रवेश कर श्रीधाम-परिक्रमाका एक निमन्नण-पत्र उसके हाथमें देकर यह गाना शुरू कर दिया—

संसार संसार करके वृथा गया काल।
लाभ न हुआ कुछ, हो गया जंजाल॥
कहे का संसार यह, स्वप्न ही है हाय।
इस पर करके ममता वृथा दिन जाय॥
गिरने पर देह यह रहे मेरा कौन।
सुख देगा कोई नहीं पुत्र, परिवार, भौन॥
गधे के समान मैं तो करूँ परिश्रम।
किसके लिए इतना करूँ, मिटा नहीं भ्रम॥

संन्यासी ठाकुरका गान समाप्त होने के पहले ही सूखी लकड़ी के ढेर में आग लग गई। कालिदासकी सेवोन्मुखी वृत्ति उमड़ पड़ी। वह रोता हुआ संन्यासीके पैरोंपर गिरकर पृथ्वी पर लोटने लगा। संन्यासीने सुयोग समझकर फिर गाना शुरू किया—

बुढ़ापा आगया दिन-दिन बढ़ा बोझा गृहस्थी का।
हुई अस्थिर, अचल मति, गति, लगे जीवन, जगत फीका॥

नहीं है थाह जिसकी, वह नदी संसार की भारी।
मरण सिर पर खड़ा है, कुच की मेरी है तैयारी॥
यहाँ का काम पूरा कर बजे जब कूच की भेरी।
भजँगा तब तुम्हें स्वामी, विफल आशा है यह मेरी॥

संन्यासीका गान सुनकर कालिदास रोता हुआ उनके दोनों पैरोंपर सिर रखकर कहने लगा—
निराशा सब सदा प्रभु की, मुझे चरणों में आश्रय दो।

करूँ सेवा सदा प्रभु की, हृदय की वासना क्षय हो॥

[2]

“मा ! मा ! रोती क्यों हो ? क्या हुआ ?” कहती हुई कामिनी की बड़ी लड़की मा को ठेलकर जगाने लगी ! धीरे-धीरे स्थिर होकर बिछौने पर उठ

बैठकर कामिनी चकित की तरह आकाशकी ओर ताकने लगी। माताके इस भावको लक्ष्य करके कन्याने फिर पूछा—“मा, इस तरह किसे ताक रही हो? यह क्सा कर रही हो?” कामिनी घुमकर, जैसे कुछ लज्जित होकर कन्यासे कहने लगी—बेटी मन मोहनी, मुझे कुछ नहीं हुआ। कभी कभी मैं एक अद्भुत स्वप्न देख रही थी। सुन, तेरे बप्पा तेलीके यहाँ बैठे तेल खरीद रहे हैं। इसी समय एक आदमीने तेलीके बैलको, जिसकी आँशोंपर टोप चढ़ा था, एक लंबी मोटी लाठीसे, जिसमें एक लाल कपड़ा लिपट हुआ था, खेदा और उसकी आँखोंमें चढ़े हुए दोनों टोप या टप्पे तोड़ डाले। मौका पाते ही वह बैल पूँछ उठाकर, तेली की पीठमें एक लात मारकर, वहाँ से भाग खड़ा हुआ। तेली उस आदमीकी तरफ आँखें फाड़फाड़कर ताकने लगा। इस आदमीका वेश अद्भुत था। एक गेरुआ रँगा हुआ कपड़ा पहने था और एक दूसरा गेरुआ कपड़ेसे शरीर ढके था। मस्तकपर तिलक था। हाथमें वही लाठी थी, जिसमें गेरुआ कपड़ा लिपटा हुआ था। मेरी चालीस वर्ष की अवस्था हुई, ऐसा वेश और ऐसा दण्ड (लाठी) तो मैंने कभी नहीं देखा, खैर तेरे बप्पा हाँड़ीमें तेल लेकर जब घरका लौटने लगे, तब उसी गेरुआधारी आदमीने राह रोककर वही लाठी उनके सामने रखकर कहना शुरू किया—

कहाँ जा रहे हो कालिदास? कालीका दासत्व और कितने दिन करोगे? तुम्हीं न अभी इस लेती की दूकानपर बैठे गा रहे थे—

“मा, मुझे घमाओगी कितना तेलीके बैल समान अहो। भवके कोल्हूमें जाते दिया देती यों चक्कर अविरत हो॥”

भैया कालिदास, संसारके कोल्हूमें जुतकर अब न चक्कर लगाओ। देखा नहीं, तुम्हारे सामने ही तेलीका बैल दौड़ता हुआ भाग गया है! उस आदमीके इस व्यवहारसे तेरे बप्पाठिठक-कर खड़े हो गए। उसके बाद उस आदमीसे बोले यह क्या कहते हो महाराज! देखते नहीं, मेरे हाथमें तेलकी हाँड़ी है! घरमें मेरी स्त्री राह देख रही होगी। मैं जब तेल लेकर घर जाऊँगा, तब वह मछली बगैरह भूनेगी। आप रान्ता छोड़ दीजिए, अभी मुझे घर जाने दीजिये, फिर किसी समय मैं आपकी बात सुनूँगा।

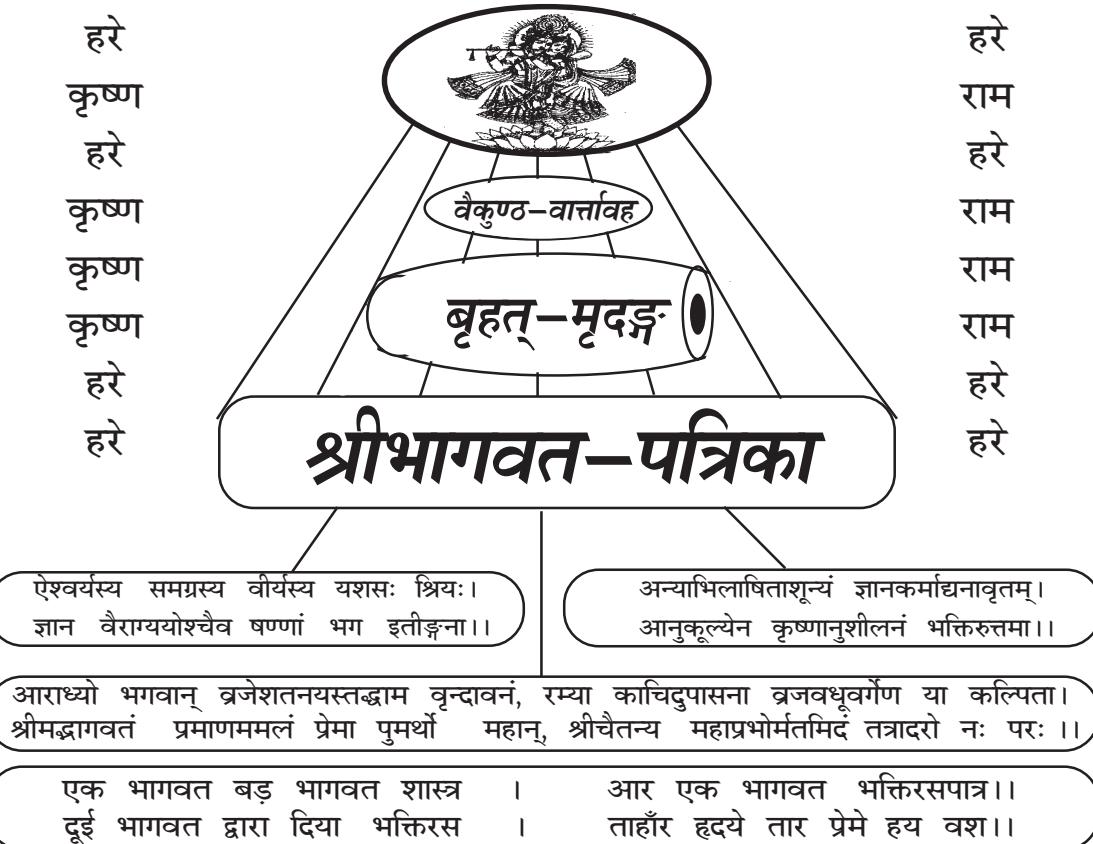
इसके जवाबमें वह आदमी कहने लगा—कालिदाय, तुम्हीं तो कालीके निकट दुःख प्रकट करके कह रहे थे कि संसारके कोल्हूमें जुतकर तेलीके बैलकी तरह और कितने दिन धूमँगा? अब यह बात क्यों कहते हो? कालाने तुम को संसारके कोल्हूमें जोत जरूर दिया है; लेकिन धूमते तो तुम अपनी खुशी से हो। काली जैसे जोत देती हैं, वैसे ही खोल भी देती हैं। वह बन्धनकारिणी अवश्य हैं, लेकिन साथ ही साथ मुक्रि देनेवाली भी हैं। उनके निकट छुट्टी चाहो—वह तुम्हें छुट्टी देंगी।

इतना कहकर तेरे बप्पाके सिरमें उस आदमीने अपना वह दण्ड हुआ दिया। बस, तेरे बप्पा तेलकी हाँड़ी रास्तेमें फेंक उसी आदमीके साथ दौड़ते हुए चले गए।

लड़कीने पूछा—उसके बाद क्या हुआ मा?

□

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः



वर्ष २०}

श्रीगौराङ्ग ५१०

विक्रम संवत् २०५२-५३ माघ-फाल्गुन मास, सन् १९९७, २४ जनवरी-२४ मार्च { संख्या १२

श्रीकृष्णनामाष्टकम्

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला—द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त ।

अयि मुक्तकुलैरुपास्यमानं परितस्त्वां हरिनाम! संश्रयामि॥१॥

हे हरिनाम! मैं, आपका सर्वतोभावसे आश्रय ग्रहण करता हूँ क्योंकि आपका महत्त्व विचित्र है। देखो, समस्त श्रुतियोंकी मुकुटमणिरूप उपनिषदस्वरूप रत्नोंकी मालाकी चमचमाती हुई कान्तिके द्वारा, आपके चरणकमलोंके अन्तभागकी अर्थात् नखोंकी आरती उतारी जाती है और मुक्तमुनिगण भी आपकी उपासना करते रहते हैं॥१॥

जय नामधेय! मुनिवृन्दगेय! जनरञ्जनाय परमक्षराकृते॥

त्वमनादरादपि मनागुदीरितं, निखिलोग्रतापपटलं विलुप्यसि॥२॥

हे मुनिगणोंके द्वारा गायन करने योग्य एवं भक्तोंके अनुरञ्जनके लिए ही अक्षरोंकी आकृति धारण करनेवाले हरिनाम! आपकी जय हो, अर्थात् आपका उत्कर्ष सदैव विद्यमान रहे अथवा अपने उत्कर्षको प्रकट करें॥२॥

यदाभासोऽप्युद्यन्कवलितभवध्वान्तविभवो दृशं तत्त्वान्थानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम्।

जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नामतरणे! कृती ते निर्वकुं क इह महिमानं प्रभवति?॥३॥

हे भगवन्नामरूप सूर्य! इस संसारमें कौन प्रवीण पण्डितजन आपकी असमोर्ध्व महिमाको यथार्थरूपेण कहनेमें समर्थ हैं? अर्थात् कोई भी नहीं। क्योंकि आपका आभासमात्र भी प्रकट होकर संसारमें अज्ञानरूप अन्धकारके वैभवको कवलित (ग्रास) कर लेता है और तत्त्वदृष्टिसे विहीन जनोंके लिए श्रीहरिभक्ति देनेवाली दृष्टि प्रदान करता है॥३॥

यद्ब्रह्मसाक्षात्कृतिनिष्ठयापि विनाशमायाति विना न भोगैः।

अपैति नाम! स्फुरणेन तत्ते, प्रारब्धकर्मैति विरौति वेदः॥४॥

हे नाम भगवन्! जो प्रारब्धकर्म भोगोंके बिना ब्रह्मकी अविच्छिन्न तैलधारावत् की गई साक्षात्कारकी निष्ठाके द्वारा भी विनष्ट नहीं हो पाता; वह प्रारब्धकर्म आपके स्फूर्तिमात्रसे अर्थात् भक्तोंकी जिह्वापर स्फुरण होनेमात्रसे दूर भाग जाता है, इस बातको वेद उच्चस्वरसे कहते हैं, अर्थात् ब्रह्मविद्याके साक्षात्कारसे, सञ्चित एवं क्रियमाण कर्मोंका नाश तो हो जाता है; किन्तु फल देनेके लिए प्रवृत्त पुण्य-पापरूप प्रारब्धकर्मका नाश तो भोगसे ही होता है, ब्रह्मविद्यासे नहीं। परन्तु वह प्रारब्धकर्म भी नामोच्चारणमात्रसे विनष्ट हो जाता है॥४॥

अघदमनयशोदानन्दनौ! नन्दसूनो! कमलनयन - गोपीचन्द्र - वृन्दावनेन्द्रः॥

प्रणतकरुण - कृष्णावित्यनेकस्वरूपे त्वयि मम रतिरुचैर्वर्धतां नामधेय॥५॥

हे नाम भगवन्! पूर्वोक्तरूपसे अतर्क्य महिमावाले; आपमें मेरी प्रीति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे। आपके अनेक स्वरूप इस प्रकारके हैं—“हे गोपीचन्द्र! हे वृन्दावनेन्द्र! हे प्रणतकरुण! हे कृष्ण! इत्यादि”॥५॥

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम! स्वरूपद्वयं पूर्वमात् परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे।

यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्वये-दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति॥६॥

हे नाम! आपके वाच्य एवं वाचकरूपसे दो स्वरूप, संसारमें प्रकट होते हैं, अर्थात् ‘वाच्य’ शब्दसे सच्चिदानन्द-विग्रहवाले परमात्मा लिए जाते हैं और ‘वाचक’ शब्दसे श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि वर्णसमूहरूप नाम कहलाते हैं। इन दोनोंके मध्यमें पहले वाच्यकी अपेक्षा दूसरे वाचक श्रीकृष्ण आदि नाम-स्वरूपवाले आपको हम अधिक दयालु जानते हैं; क्योंकि जो प्राणी आपके वाच्य-स्वरूपके प्रति अनेक अपराध कर चुका है, वह भी वाचक-स्वरूप आपकी जिह्वाके स्पर्शमात्रसे, उपासना करके सदैव आनन्दसमुद्रमें गोता लगाता रहता है॥६॥

सूदिताश्रितजनार्तिराशये रम्यचिद्घन - सुखस्वरूपिणे।

नाम! गोकुलमहोत्स्वाय ते कृष्ण! पूर्णवपुषे नमो नमः॥७॥

हे आश्रितजनोंके पीड़ासमूहको नष्ट करनेवाले, रमणीय सच्चिदानन्द स्वरूपवाले, गोकुलके महोत्सवस्वरूप एवं व्यापक स्वरूपवाले हे कृष्णनाम! पूर्वोक्त गुणविशिष्ट आपके प्रति मेरा बारंबार नमस्कार है॥७॥

नारदवीणोज्जीवन! सुधोर्मि - निर्यास-माधुरीपूर!॥

त्वं कृष्णनाम! कामं स्फुर मे रसेन रसने सदा॥८॥

हे नारदकी वीणाको सचेत करनेवाले, हे अमृतमय तरङ्गोंके सारके समान मधुरताके समूह! हे कृष्णनाम! आप मेरी जिह्वापर स्वेच्छापूर्वक रसयुक्त होकर सदैव स्फूर्ति पाते रहें॥८॥

वैष्णव दर्शन

—श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ‘प्रभुपाद’

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ११ पृष्ठ २५३ से आगे)

पंचोपासना

औपनिषद् ब्रह्म

जिससे यह जड़ जगत् उत्पन्न हुआ है, जिससे जीव जगत् प्रकाशित हुआ है, जिसमें जड़ और जीव जगत् प्रतिष्ठित और प्रतिपालित हैं, जो जड़ जगत् के नित्य आश्रयरूपमें अधिष्ठित हैं, और जो जिज्ञासुओंके परम जिज्ञास्य तथा ज्ञानियोंके परम ज्ञेय हैं—उन्हें औपनिषद् ब्रह्मकी संज्ञा दी गई है। उपरोक्त श्रुतिने जिस ब्रह्म-वस्तुका निर्देश किया है—वे सविशेष हैं अथवा निर्विशेष, इसकी विवेचना करनेके लिए हम दो सम्प्रदायोंको लक्ष्य करते हैं। इनमें एक का नाम विशिष्टाद्वैतवादी अर्थात् सविशेषवादी है और दूसरेका नाम केवलाद्वैतवादी या निर्विशेषवादी।

ब्रह्म, जीव और जगत् के सम्बन्धमें

निर्विशेषवादियोंकी कल्यना

निर्विशेषवादियोंका कथन है—‘जड़ जगत् और जीव जगत् के भीतर जो विशेषताएँ दिखलाई पड़ती हैं, वे अनित्य और मिथ्या हैं। क्योंकि ब्रह्म निर्विशेष है। ऐसी विशेषताएँ अज्ञान और भ्रान्तिसे प्रतीतमात्र होती हैं। उनका वस्तुतः कोई अधिष्ठान नहीं। खण्ड दृष्टिकोणसे दर्शन करनेसे द्रष्टा ऐसी मिथ्या धारणाओंके वशीभूत हो पड़ता है। सच तो यह है कि ब्रह्म चिद्वस्तु है, इसलिए उसकी सत्तामें विशेषत्व रहनेकी कोई संभावना नहीं। विशेषत्व अथवा भेद जड़माया द्वारा (अज्ञानके द्वारा) कल्पित होता है। माया दूर हो जानेपर स्वगत, सजातीय और विजातीय भेदशून्य केवल चिन्मात्र ब्रह्म वर्तमान रहता है।’

सविशेषवादीका ब्रह्म नित्य सविशेष होता है

सविशेषवादियोंका कहना है—‘जड़ीय विशेष युक्त पदार्थ नश्वर हैं। अतः जड़-जगत् नश्वर

है। नश्वर होनेपर भी जगत् की प्रतीति मिथ्या नहीं, प्रत्युत् सत्य है। जड़ जगत् ब्रह्मकी बहिरङ्गा-शक्तिका परिणाम है और तदुप-वैभव अर्थात् चित्-जगत्—ब्रह्मकी अन्तरङ्गा शक्तियोंके बीचमें—तट प्रदेशपर इन दोनों जगतोंसे अतिरिक्त एक ऐसे अणुचित् जीव-जगत् की स्थिति होती है, जो चित् और अचित् दोनों जगतमें विचरण करता है। ब्रह्ममें विशेष-धर्म नित्य वर्तमान होता है अर्थात् ब्रह्म नित्य सविशेष वस्तु है। बहिरङ्गा शक्ति परिणत अचित् जगत् को या जीव जगत् को मिथ्या माननेकी कोई आवश्यकता नहीं।’

जीव अणुचित् पदार्थ है; तटस्थ धर्मके कारण चिद् जगतसे उसके पतनकी संभावना होती है

चेतन-पदार्थ जड़-पदार्थके ठीक विपरीत होता है। किन्तु भगवान् की अचिन्त्य-शक्ति जीव नामक एक ऐसे अणुपदार्थका निर्माण करती है, जिसका स्वरूप अणुचित् होनेपर भी उसमें जड़ पदार्थोंको ग्रहण करनेकी प्रवृत्ति होती है। यह प्रवृत्ति उसके स्वरूपके गठनके साथ उसमें नित्य वर्तमान होती है। ब्रह्मकी अन्तरङ्गा शक्तिके परिणामस्वरूप चिद्जगत्—वैकुण्ठमें नित्यकाल अवस्थित रहनेपर भी आगे उसमें स्वरूप-भ्रान्तिकी संभावना होती है। ब्रह्मकी बहिरङ्गा-शक्तिके परिणामस्वरूप जड़-जगत् का दर्शन करते-करते जीव, अन्तरङ्गा-शक्ति द्वारा प्रकाशित चित्-जगत् के दर्शनसे विमुख हो जाता है। उसी समय वह आत्म-विस्मृत होकर शरीर और मनरूप जड़ पदार्थोंमें ही आत्मबुद्धि करता है। देह और मन जड़ पदार्थ हैं और बद्धजीवमें जड़ पदार्थोंके भोक्तृत्वकी भावना होती है।

अधोक्षज कृष्णकी अनुकूल सेवा ही

मुक्तिका कारण है

स्वरूपमें प्रतिष्ठित होकर आत्माके नेत्रोंसे जीव

जब भगवान् और तद्वृप-वैभवका (चित् जगत् का) दर्शन करता है, तभी उसका जड़ीय परिचय कुछ कम होता है। अनुकूल भावसे अधोक्षज अर्थात् इन्द्रियातीत भगवान् की सेवा करनेसे जीवोंकी भोगमय प्रवृत्ति दूर हो जाती है। भगवान् की सेवाके अभावमें ही जीव विषय-भोगोंमें आसक्त हो पड़ता है। जिस समय जीव आत्मेन्द्रियोंसे विष्णुकी सेवासे विमुख होकर जड़ेन्द्रियों द्वारा विषय-सुखोंको भोग करनेकी लालसासे इत्स्ततः भटकता है, उस समय वह कृष्णको माया-शक्तिके रूपमें ही उपलब्ध करता है।

**अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी कामना
करनेवाला अद्वैतवादी विष्णुमें पंचदेवताका
आरोप करता है, किन्तु निष्काम विष्णु-सेवा
ही आत्माका नित्यधर्म है**

जिस समय बद्धजीव अर्थात्सिद्धिकी लालसासे विष्णुकी नित्य सेवाका परित्याग कर देता है, उस समय वह विष्णुको ही गणेशके रूपमें देखता है। जिस समय प्रापञ्चिक अनुभूतिविशिष्ट होकर धर्मकी कामना करनेवाले देह और मन विष्णुकी पूजा करते हैं—वे विष्णुको ही सूर्यके रूपमें दर्शन करते हैं। धर्म और अर्थकी इच्छा करनेवाले अपने भोगमय दृष्टिकोणसे सूर्य, गणेश, और शक्तिकी सेवाको ही विष्णुकी सेवा मानते हैं। फिर वे ही जब मोक्षकी कामना करते हैं तब अपने उपास्यको रुद्ररूपमें दर्शन करते हैं। जड़ विषयोंकी भोग-पिपासा ही जीवको बद्ध अनुभूति प्रदानकर उसे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षका दास बना देती है। विष्णुकी उपासनामें किसी तरहकी जड़ कामना नहीं होती। वहाँ तो केवल विशुद्ध सत्त्व ही प्रबल होता है तथा आत्मेन्द्रियोंसे सर्वदा विष्णुकी सेवा होती है। यही आत्मतत्त्वदर्शी जीवोंका नित्य धर्म है।

**विष्णुको मायिक गुणोंसे युक्त और
पंचदेवताओंके समान मानना अपराध है
विष्णुकी मायासे मोहित होकर जीव तरह-तरह
की कामनाओंके अधीन हो जाता है तथा अर्थ,**

धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्तिके लिए निर्विशेष ब्रह्मके किसी एक रूपकी कल्पना कर लेता है। परन्तु मुक्त पुरुष निष्काम होकर विशुद्ध सत्त्व-स्वरूप भगवान् को ही परब्रह्म जानता है। भगवान् को मायिक गुणोंसे युक्त—सगुण उपास्य मानना अपराधका परिचय है। जीव अनित्य धारणाओंके वशीभूत होकर बद्ध अभिमानके कारण विशुद्ध सत्त्वस्वरूप विष्णुके निकट भी किसी—किसी समय जड़ कामनाओंकी पूर्तिके लिए प्रार्थना करता है। ऐसी विष्णु-उपासना पंचोपासनाके अन्तर्गत होती है। निर्गुण ब्रह्मको प्रकृतिके अन्तर्भुक्त मानकर जो कामनामूलक उपासना जगत्में प्रचलित हैं, उसके भोक्ता—स्वरूप शरीर और मनको ही विवर्त बुद्धिके कारण आत्मा माना जाता है। भगवान् का शरीर विशुद्ध सत्त्वका होता है। उनके शरीर, मन और आत्मामें परस्पर कोई भेद नहीं होता। आत्मज्ञानके अभावमें कामनाओंका दास होकर विष्णुको सगुण और काल्पनिक-ब्रह्मके समान मानना अपराध सूचक है।

**सगुण अथवा पंचोपासनाका उद्देश्य
निर्विशेष ब्रह्म है और निर्गुण उपासनामें
विष्णु ही पर-ब्रह्म हैं**

विशुद्ध सत्त्व स्वभाववाले जीव—विष्णुकी, सत्त्व और रजःमिश्रित गुणवाले सूर्यकी, सत्त्व और तम गुणोंसे युक्त जीव—गणेशकी, रजः और तम मिश्रगुणवाले शक्तिकी तथा तामसिक स्वभावापन्न जीव रुद्रकी उपासना करते हैं। इन सभी सगुण उपासनाओंमें उपासकका लक्ष्य—निर्विशेष ब्रह्म होता है। जब शुद्ध जीवकी आत्मा माया द्वारा आच्छादित हो जाती है, तब वह अपनेको मायिक गुणोंका दास समझने लगता है, ऐसी अवस्थामें जीवोंमें जड़ीय चेष्टा प्रकाश पाने लगती है, इन्हीं जड़ीय चेष्टाओंके प्रभावसे उनमें विशुद्ध सत्त्वके आश्रयरूप श्रीविष्णुको भी गुणावतार समझकर उपासना करनेकी प्रवृत्ति जाग्रत होती है। फिर किसी सौभाग्यसे अगर उसे अपने स्वरूप-निर्गुणता उपलब्ध होती है, तो वह सविशेष विष्णुको—

परब्रह्म और अपनेको वैष्णव होनेका विश्वास करता है। दूसरी तरफ साधकोंके हितके लिए अनित्य गुणोंसे युक्त ब्रह्मकी काल्पनिक मूर्तियोंकी उपासनाका अन्तिम और निश्चित परिणाम होता है—निर्विशेष ब्रह्म। ऐसे साधक कल्पना करते हैं कि उपासक, उपास्य और उपासनाका वस्तुतः कोई अस्तित्व नहीं है। अभी जो दीख पड़ता है अथवा जबतक उपासक और उपास्यका अस्तित्व रहता है, तबतक यह अस्तित्व भ्रमके कारण आरोप होता है। जब उपास्य और उपासककी भ्रान्ति दूर हो जायेगी, वे निर्विशेष ब्रह्म हो जायेंगे। आजकल पञ्चोपासनामें और भी दो उपासनाओंको मिलाकर सप्तोपासनाकी सृष्टि हुई है। ये दो उपासनाएँ हैं—चन्द्रधिष्ठय और क्रौंस। इन सबका अन्तिम उद्देश्य मुक्तिसे ही है।

बुद्धदेवका बोधराहित्य मतवाद भी निर्विशेषवादमें परिणत हुआ है

शाक्यसिंह मुक्तिमें बोधराहित्य स्वीकार करते हैं। केवलाद्वैत निर्विशेषवादी मुक्त अवस्थामें बोद्धा, बोधव्य और बुद्धिसे रहित अखण्ड बोध स्वीकार करते हैं। जीव बद्धावस्थामें नाना प्रकारके क्लेशोंसे पीसा जाता है, वह उस समय अपने अस्तित्वपर असुविधाएँ बोध करता है, ऐसी अवस्थामें अगर वह प्रतीतिकी सत्यता और आत्माके अस्तित्वकी नित्यतापर दृढ़ विश्वास करता है, तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह उन असुविधाओंसे मुक्त हो जाय, जिससे उसके अस्तित्वकी रक्षा हो सके, न कि अपने अस्तित्वको सदाके लिए मिटा दे। किन्तु निर्विशेषवादियोंके चक्करमें पड़कर अस्तित्व मिटाकर निर्विशेष ब्रह्म होनेकी बातपर विश्वास कर अब तो दूसरी वस्तुके रूपमें परिणत हो गये अर्थात् वे पहली चीज न रहे।

ब्रह्ममें निर्विशेष लय प्राप्त होनेसे जीव अनित्य हो जाता है

अगर जीव अपनी निर्मल सत्ता, चिन्मयता और

अपने आनन्दका परित्यागकर विभुवस्तुकी (भगवान्की) सत्ता, चिन्मयता और आनन्दकी निर्विशेष अवस्थामें—जिसे ब्रह्म कहते हैं, लीन हो जाय तो उसका नित्य अणुचिद् स्वरूप लोप हो जायेगा, बद्ध दशाके कारण जीवके धर्ममें दोष आ जाते हैं और ऐसे दोषोंसे मुक्त होनेकी आवश्यकता है—यह बात ठीक है। किन्तु, हमारा अणुचित् धर्म ध्वंस हो जाय, आत्माकी सत्ता नष्ट हो जाय—ऐसी युक्ति मानना अपने नित्यत्वके लिए हानिकारक है। मुक्त अवस्थामें नित्य अणुधर्म दूर हो जानेसे अब वे पहली वस्तु न रहे।

जड़ीय अणुत्व दोषपूर्ण होता है, किन्तु चेतनका अणुत्व उपादेय और दोषरहित है

हम मानते हैं कि जड़ीय अणुत्व दोषपूर्ण होता है। किन्तु, चिन्मय अणु-स्वरूपमें वैसे दोषोंकी तनिक भी संभावना नहीं है। भगवान्की नित्य सेवा विराजित होनेसे वहाँ अनुपादेयता और क्लेश आदि नहीं होते। इसलिए नश्वरता, हेयता और दुःख आदिका वहाँ पूर्णरूपसे अभाव होनेके कारण मुक्तिमें पाया जानेवाला विषय-समूह भी ज्यों-का त्यों वर्तमान रहा।

पञ्चोपासकोंकी अपेक्षा वैष्णवोंकी श्रेष्ठता

पञ्चोपासक लोग नश्वर फलोंकी कामना करते हैं। किन्तु ऐकान्तिक वैष्णव फलोंकी कामना नहीं करते। वे भगवान्का नित्यदास होना स्वीकार करते हैं। पञ्चोपासक लोग—कर्मफलके अधीन होते हैं, परन्तु वैष्णवोंके विचारसे भगवत्-स्वरूप नित्य होता है, उसका कभी गठन नहीं होता, जड़ चिन्ताधारा चालू होनेके पहलेसे ही अर्थात् जड़ जगत् सृष्टि होनेके पूर्व भी नित्यरूप भगवान् नित्यकाल वर्तमान थे और उनके साथ उनके नित्य उपासक—वैष्णव लोग भी वर्तमान थे। दूसरी तरफ, साधकोंके हितके लिए उनकी कामनाओंके अनुसार ब्रह्मका सगुण 'रूप'—कल्पित पञ्चोपासना—क्षणभंगुर है, परिवर्त्तनशील है तथा बद्ध जीवोंकी कल्पनाकी चीज है।

(क्रमशः)

प्रवृत्ति और निवृत्ति

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ११ पृष्ठ २५७ से आगे)

वेदोंमें प्रकाशित निवृत्ति मार्ग

दूसरे लोगोंके भ्रमपूर्ण विचारोंका परित्याग कर उनके सत्य वचनोंको ग्रहण करना ही हमारे लिए बांछनीय और आदरणीय है। उदाहरणके लिए आचार्य शंकरका मायावाद आदरणीय न होनेपर भी उनका निम्नलिखित वचन सत्य होनेके कारण ग्रहण किया जाता है। उन्होंने श्रीगीता-भाष्यके प्रारम्भमें लिखा है—

द्विविधो हि वेदोक्तो धर्मः प्रवृत्ति लक्षणो निवृत्तिलक्षणश्च।

धर्म वास्तवमें दो प्रकारका होता है—प्रवृत्तिमूलक और निवृत्तिमूलक। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी आलोचना करनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्रवृत्ति धर्मका फल—भोग होता है और निवृत्तिधर्मका—मुक्ति।

प्रवृत्तिधर्म और लौकिक क्रिया

प्रवृत्तिधर्मका अवलम्बन करनेसे संसारमें अधिकतर उन्नति होती है। जैसे—दुर्गोत्सव, अश्वमेध और अग्निहोत्र आदि क्रियाओंके द्वारा प्रतिष्ठा पाई जा सकती है तथा लोगोंका कृपापात्र हुआ जा सकता है। प्रवृत्ति-मार्गसे संसारकी बहुत कुछ उन्नति होती है। पण्डित लोग प्रवृत्ति-मार्गका अवलम्बनकर अनेक ग्रन्थोंकी रचना करते हैं, वैज्ञानिक तत्त्वोंका आविष्कार करते हैं तथा भौतिक पदार्थोंको नाना भागोंमें विभक्तकर उसे जगत्के सामने नये रूपमें प्रकाशित करते हैं। तरल पदार्थोंके गुणोंकी खोजकर उनके द्वारा मानव जातिको क्या लाभ हो सकता है—उसे स्थिर करते हैं। विद्युत शक्तिका आविष्कारकर तार और रेडियो द्वारा समाचार भेजने आदि शिल्पोंकी भित्ति स्थापन करते हैं। वाष्पतत्त्व (Steam) द्वारा जहाज, वायुयान तथा मोटर गाड़ियोंको चलाते हैं।

वृक्षों, गुल्मों तथा लताओंका गुण अनुसंधान कर विचित्र-विचित्र औषधियोंका निर्माण करते हैं। इसके अतिरिक्त सांसारिक विषयोंके सम्बन्धमें भी वे बहुत-सा काम करते हैं। सरकार और जनताका सम्बन्ध, अर्थके द्वारा जीवन-यापन करनेका उपाय, ऋण-ग्रहण तथा ऋण-दानके विचारों द्वारा व्यावहारिक अभावोंको दूर करना इत्यादि विषयोंको नियमित और नियंत्रित करते हैं। विवाह आदि संस्कारों द्वारा प्रजावृद्धि और न्यायपूर्वक स्त्रीसंग द्वारा देह तथा बलकी रक्षा करते हैं। शिल्पी प्रवृत्तिके अधीन होकर तरह-तरहके अलंकार, वस्त्र, आसन, दीपालोक, द्रव्याधार, चारपाई, गृह, पलङ्ग आदिका निर्माणकर प्रवृत्तिशाली लोगोंका सुख बढ़ाते हैं। इन द्रव्योंके प्रति विशेषकर गृह-परिवारादि और यशके प्रति उन लोगोंकी इतनी आसक्ति होती है कि वे अपने प्रतिद्वन्द्वियोंके साथ युद्धमें रक्तपात आदि करते ही रहते हैं। ये सभी न्यायसंगत प्रवृत्तियाँ हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त बहुतसी अन्याय प्रवृत्तियाँ भी हैं।

प्रवृत्तिधर्म और पारलौकिक क्रियाएँ

इन्द्रियोंके वशमें होकर प्रवृत्तिशाली पुरुष स्त्रियोंमें अवैध आसक्ति और भोजन-पान आदिमें अतिशय प्रेम आदि क्रियाओंके द्वारा जीवन-यापन करते हैं। ये लोग केवल इस दृश्यमान संसारमें ही आबद्ध नहीं रहते, अपितु वे स्वर्ग आदि नाना तरहके पारलौकिक सुखोंकी आशाकर उन सुखोंको देनेवाले देवताओंकी भी उपासना करते हैं। अश्वमेध आदि यज्ञोंका अनुष्ठानकर वे स्वर्गकी अप्सराओंके साथ रमणकर सुखी होनेकी कामना करते हैं। वास्तवमें प्रवृत्तिशील लोगोंकी आशाओंका अन्त नहीं है। पृथ्वीका राजत्व,

स्वर्गका राज्य, ब्रह्मपद तथा शिवत्व आदि बहुतसे पदोंकी वासना करते हैं। इनके बहुतसे उदाहरण शास्त्रोंमें तथा इस प्रत्यक्ष विश्वमें पाये जाते हैं। किन्तु हमने उनका एक भी उदाहरण यहाँ नहीं रखा, क्योंकि पाठक उनसे अवश्य अवगत हैं—यह हमारा विश्वास है।

प्रवृत्तिमार्गका फल प्रत्यक्ष होता है—वह पशुओंमें भी लक्षित होता है

प्रवृत्ति-पथ इन्द्रियगोचर है। उस पथका अवलम्बन करनेवालोंको प्रत्यक्ष फल मिलता है—इसमें सन्देह नहीं। मनुष्य जातिमें विचार-शक्ति है, अतएव ये लोग प्रवृत्ति मार्गके फलको आसानीसे समझ लेते हैं। किन्तु पशुओंकी बुद्धि आबद्ध रहनेपर भी वे प्रवृत्तिके फलको जानते हैं। साही (विभर) नामक पशुका गृह निर्माण और बया नामक पक्षीका घोंसला बनाना केवल प्रवृत्तिका ही फल है।

प्रवृत्तिमार्गमें इन्द्रियसुख

प्रवृत्तिमार्गमें मनुष्यको बहुत ही सुख मिलता है—इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। तोतली बोली बोलनेवाले बालक और बालिकाओंको गोदमें लेना, घृतसे बने पकवानोंका रसास्वादन, नृत्यके समय रमणियोंका पद-चालन और दूधके फेन जैसी सफेद शाय्यापर शयन, वायुयान, मोटर आदि द्वारा दूर देशोंमें भ्रमण—ये अतिशय आनन्दकर हैं, इसमें सन्देह ही क्या है? परमेश्वरने कृपाकर जीवोंके लिए इस जगत्‌रूपी पान्थशालाको खूब सजाकर रखा है—अवश्य ऐसा ही विश्वास होता है। क्योंकि जिनके गठनके साथ उद्धिद् पदार्थका जो कोमल सम्बन्ध है, कर्णचिद्रोंके साथ गीत और वाद्यका जैसा प्रणय है, आँखोंका दृश्य पदार्थ प्रकाश आदिसे जो सौहार्द है, वह परमेश्वरकी अचिन्त्यशक्तिकी क्रियाशक्तिका फल है, इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा?

पार्थिव-सुख मात्र ही प्रवृत्ति-सुख है संसारमें जितने प्रकारके सुख हैं, वे सभी

प्रवृत्ति-सुख हैं। प्रवृत्ति-सुखके वशमें होकर मनुष्य दैहिक, मानसिक तथा सामाजिक उन्नतिके लिए सर्वदा व्यस्त रहते हैं। यदि यह प्रवृत्ति-सुख नहीं होता तो सांसारिक अवस्थामें मनुष्यकी बहुत ही दुर्दशा होती। ये वैभवशाली नगर, जाल-सा बिछा हुआ रेल पथ, सड़क, नौका, टुकान, मन्दिर आदि देखनेको नहीं मिलते। मानव-जाति पशुओंके समान बन-बनमें भ्रमण करते-करते नष्ट हो जाती। पृथ्वीका सौन्दर्य पृथ्वीमें ही अदृष्ट भावसे लुप्त रहता।

निवृत्ति-सुखका अस्तित्व और जीव-तत्त्व

उपरोक्त पार्थिव सुखके अतिरिक्त जीवके लिए और एक प्रकारका सुख है। कुछ गहरा विचार करनेपर निवृत्ति-सुखके अस्तित्वकी उपलब्धि की जा सकती है। निवृत्ति-सुख किसे कहते हैं, इसकी व्याख्या होनी चाहिए। उससे पहले यह विचार करना अत्यन्त आवश्यक है कि जीव क्या है? इस मनुष्य शरीरमें ये त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा और अस्थि—ये सात पदार्थ देखे जाते हैं, इनसे जीवका सम्बन्ध क्या है? त्वचा, हड्डी आदि पदार्थ भौतिक या प्राकृत हैं। किन्तु किसके अभावमें ये सभी शून्य मालूम पड़ते हैं—यह विचारणीय प्रश्न है। आँखें पथरा जाती हैं, हाथ-पैर स्पन्दहीन हो जाते हैं, बन्धु-बान्धव हाय-हायकर रोने-पीटने लगते हैं, किन्तु बिछुड़ी हुई देह किसीको भी उत्तर नहीं देती। हाय, कितना गम्भीर विषय है। जो शरीर अपने सौन्दर्यसे कितनी रमणियोंका मन हरण करता था; जो आँखें अनुवीक्षण यन्त्रद्वारा अभी कल तक ध्वनतारा तथा अरुचतीकी दूरियोंको नापती थीं, जो कान अभी कल ही मदमाती गजल और ठुमरियोंपर न्यौछावर हो रहे थे, जो भुजाएँ कल ही बन्दूक आदि अस्त्रोंसे सुसज्जित होकर स्वदेशकी रक्षा और शत्रुओंका दलन करती थीं, जो पैर कुछ ही दिन हुए काशीधाम कर आये थे। आज वही शरीर—वे ही इन्द्रियाँ कुत्ते और शृगालोंके महोत्सवके उपकरण बने हुए हैं। इसे

देख-सुनकर कौन बुद्धिमान् आत्मतत्त्वकी चिन्तान करेगा? अत्यन्त विषयासक्त मनुष्य भी कुछ समयके लिए वैराग्यसूचक वचनोंको कहते हैं, परन्तु उनका चित्त अत्यन्त विक्षिप्त रहनेके कारण वे शीघ्र ही उन बातोंको भूल जाते हैं।

शरीर या प्राकृत पदार्थ जीवात्मा नहीं है

इन त्वचा आदि सात आवरणोंसे युक्त यह देह आत्मा नहीं है। जीव स्वयं आत्मतत्त्व और जीवात्माके नामसे विख्यात है। प्राकृत पदार्थोंके साथ जीवात्माका यह वर्तमान सम्बन्ध कभी भी नित्य नहीं हो सकता। प्राकृत पदार्थोंमें जो रस देखा जाता है वह बिल्कुल तुच्छ तथा अपूर्ण है। किसी भी प्राकृत पदार्थसे जीव नित्यानन्द लाभ नहीं कर सकता। प्राकृत पदार्थ स्वयं जड़ है तथा शरीरको उत्पन्न करनेवाला है। किन्तु जीवात्मा देहसे अलग एक विलक्षण वस्तु है।

नित्य-सुख ही जीवात्माका काम्य है; भौतिक देहमें बद्ध होना ही उसकी बद्धावस्था है

जीवात्मा सर्वदा स्वभावतः किसी अनिर्वचनीय अखण्ड आनन्दकी कामना किया करता है। प्राकृत पदार्थोंसे उस आनन्दका आभास भी नहीं पाया जा सकता है। बल्कि भौतिक देहमें आबद्ध होनेसे जीवका कई प्रकारसे अकल्याण होता आया है। जीव प्रकृतिके अधीन होकर अपने स्वाधीनता-सुखको अनुभव करनेमें असमर्थ होता है। भूख, प्यास आदि छः प्रकारकी विपत्तियाँ जीवको क्लेश देती रहती हैं। भौतिक पदार्थोंके बीच जीवके प्रवेश करानेको बद्धभाव कहा जाता है। सभी वैष्णव सम्प्रदायोंमें ऐसी अवस्थामें पड़े हुए जीवोंको बद्धजीव कहा गया है। अतएव मुक्तजीवोंका अस्तित्व भी स्वीकार करते हैं।

बद्धजीवोंमें ही इन्द्रत्व और शिवत्व लाभ करनेकी वासना होती है। भौतिक पदार्थोंमें आबद्ध होकर जीव सुखकी खोज करता है। उसी समय माया-प्रकृतिका प्रवृत्ति-सुख उसे अपना अतिथि

बनाकर मुआध कर रखता है। ऐसा मुआध जीव भौतिक-सुख, कल्पित ब्रह्मत्व, शिवत्व अथवा इन्द्रत्वकी आशा कर चिरकाल तक दुःख ही दुःख भोग करता है। सोचता है कि ये ऊँची-ऊँची अद्वालिकाएँ, तरह-तरहकी विलासकी सामग्री, सुन्दरी स्त्री और पुत्र-कन्याकी प्राप्ति, राज्यशासनको नियमित और नियन्त्रित करना तथा विज्ञानका आविष्कार ही जीवनके उद्देश्य हैं। अहा! कैसा कठिन भ्रम है। यदि वैज्ञानिक आविष्कारों तथा समस्त राजनियमोंका पालन करनेसे कमसे कम १५० वर्षों तक भी मृत्यु न होती तब अवश्य ही कुछ अंशों तक उनकी जीत स्वीकार की जा सकती थी। नास्तिक वैज्ञानिक तथा भक्तिहीन तार्किक इस संसारकी उन्नति द्वारा जीवकी वृद्धिकी तथा अनन्त उन्नतिकी कल्पना करते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों तथा दाशनिकोंकी मानव कल्याणकी चिन्ता व्यर्थ है

अहा! उन लोगोंका कितना घोरतम भ्रम है। प्राचीनकालसे ही भौतिक विज्ञानकी उत्तरोत्तर उन्नति होती आ रही है। ग्रीस देशके थेलिस नामक पण्डितने जिस समय जलसे सभी पदार्थोंकी उत्पत्तिकी बात बतलायी, उस समय लोगोंने विज्ञानसे अनेक प्रकारकी आशाएँ की थीं। बेकन, न्यूटन, लोमार्क, गोयटी आदि मनीषियोंने नाना प्रकारके तत्त्वोंकी छानबीन करके भी जीवोंका कोई प्रकृत कल्याण न कर सके। चुम्बक, रेल और बन्दूकके अतिरिक्त भी अनेक शिल्पोंके आविष्कार हुए हैं, किन्तु उनके द्वारा मानव जातिका सांसारिक सुख क्या बढ़ सका है? हमारी ऐसी युक्तियोंसे नवीन सम्प्रदायको सन्तोष नहीं होगा क्योंकि वे बाल्यकालसे ही ऐसे कुसंस्कारोंके दास हो गए हैं। रेल और जहाज आदिके द्वारा वाणिज्य आदिकी जो बृहत्तर उन्नति हुई है, उसका असल कारण वैज्ञानिक आविष्कार ही हैं—लोगोंका यह दृढ़ विश्वास है, क्योंकि इसे वे बचपनसे ही सुनते

आ रहे हैं। किन्तु निरपेक्ष होकर विचार करनेसे पता चलता है कि उनके द्वारा जैसे कई बातोंमें सुविधा हुई है, वैसे ही कई बातोंमें असुविधाओंकी सृष्टि भी हुई है।

आशा ही दुःखका कारण है

‘थोड़में ही सन्तोष’ की बात ही आजकल उठ गई है। अब पौराणिक रूपमें ही उसका उल्लेख किया जाता है। सन्तोष ही जीवका अमूल्य रत्न है—इसे कौन नहीं स्वीकार करेगा? आशाका अन्त नहीं। आशा मत्त हथिनीकी तरह इन्द्रलोकको पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होती। आशा जीवका प्रधान सत्रु है। नेपोलियन बोनापार्ट आधुनिक इतिहास तथा रावण और दुर्योधन पौराणिक वृत्तान्तोंपर मनन करनेसे इस संसारमें और किसी आशाकी आशा नहीं रह जाती। इस समय सन्तोषके अभावमें आशाकी जितनी वृद्धि हुई है उसकी थोड़ीसी भी आलोचना करनेसे निस्सन्देह यह पता चल जायेगा कि प्रवृत्ति मार्गावलम्बी व्यक्तियोंकी उन्नतिके सम्बन्धमें जो धारणा है, वह बहुत ही हेय है— इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। आशा ही समस्त अनर्थोंकी जड़ है। श्रीमद्भागवतमें इसकी पुष्टी की गई है—

आशा ही परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा सच्छिद्य कान्ताशां सुखं सुख्वाप पिङ्गला॥

(श्रीमद्भा. ११/८/४४)

[सचमुच आशा ही सबसे बड़ा दुःख है और निराशा ही सबसे बड़ा सुख है, क्योंकि पिङ्गला वेश्याने जब पुरुषकी आशा त्याग दी, तभी वह सुखसे सो सकी।]

यद्यपि पदार्थ विज्ञानकी अनुपयोगिता हम स्वीकार नहीं करते तथापि उसकी उन्नतिसे जीवोंको प्रत्यक्ष लाभ क्या हुआ है—दिखलाई नहीं पड़ता। बड़े-बड़े विचारक इस विषयपर गम्भीर चिन्ता करते आये हैं। एक जर्मन महापुरुषने अनेक तत्त्वविद्याओंका आविष्कार कर अपनेको कई

प्रकारकी योजनाओंका सृष्टिकर्ता मानकर एक दिन संध्या समय अपने पुस्तकालयमें बैठकर कहा था—‘हाय! मैंने समस्त पदार्थ-विद्यामें नये-नये सत्योंका आविष्कार किया है, यह बात तो प्रसिद्ध हो गई है; किन्तु इससे मैंने क्या सीखा? एक साधारण मूर्ख और मुझमें क्या अन्तर है?, फिर बहुत सोच-समझकर कहा—‘आज मुझे विशाल ज्ञान प्राप्त हुआ है जिससे आज यह सत्य बात जान सका हूँ कि किसी भी एक विषयका सत्य-स्वरूप मैं नहीं जानता।’ यह घटना ‘फॉस्ट’ नामक एक ग्रन्थमें दी गई है। सुइडेनबर्ग नामक एक महापुरुष भी इसी सिद्धान्तपर पहुँचे थे। नवीन-सम्प्रदायके लोगोंको विदेशी ग्रन्थ तथा विद्वतापर अधिक विश्वास होता है, इसीलिए मैंने यहाँ दूसरे देशोंके उदाहरण ही पेश किये हैं। हमारे देशके शास्त्रोंमें इस विषयके अनेक प्रमाण हैं। केवल एक प्रमाण यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। श्रीमद्भागवतके द्वितीय अध्यायमें श्रीशुकदेवजी कह रहे हैं—

शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था,
यन्नामभिध्यायति धीरपाथः।

परिभ्रमसंतत्र न विन्दतेर्थन्,

मायामये वासनया शयानः॥

(श्रीमद्भा. २/२/२)

श्रीधरस्वामीने इस श्लोककी टीकामें लिखा है—‘शाब्दं शब्दमयं ब्रह्ममयं ब्रह्म वेदस्तस्य एष पन्थः कर्मफलबोधन प्रकारः। कोऽसौ? अपार्थर्थशून्यैरेव स्वर्गादिनामभिः साधकस्य धीर्ध्यायति तत्तदिच्छां करोतीति यत्। अपार्थत्वमेवाह तत्र मायामये पथि सुखमिति वासनया शयानः स्वप्नान् पश्यन्तीव भरिभ्रमन्नार्थान्त विन्दति, तत्तलोकं प्राप्नोति निरवद्यं सुखं न लभत इत्यर्थः।

—[शाब्द-ब्रह्मरूप वेदोंका पथ अर्थात् उनकी वर्णन शैली ही इस प्रकार की है कि वह स्वर्ग आदि निरर्थक नामोंकी सृष्टिकर लोगोंकी बुद्धिको

उसमें फँसा देती है। किन्तु सोया हुआ पुरुष जिस तरह स्वप्नमें सुखका दर्शन मात्र करता है, वास्तवमें उसका भोग नहीं कर सकता, उसी प्रकार जीव सुखकी वासनासे मायामय लोकोंमें भटकने लगता है, किन्तु कहीं भी उसे सच्चे सुखकी प्राप्ति नहीं होती।]

निवृत्तिमार्ग द्वारा ही मुक्ति मिल सकती है—प्रवृत्तिमार्ग द्वारा नहीं

किन्तु जीवोंके लिए नित्य सुख क्या है?—इस विषयपर विचार करनेसे प्रतीत होता है कि स्वाधीनता ही जीवोंके लिए नित्य-सुख है। मायाके

अधीन होनेसे ही जीवोंका दुःख उदय हुआ है। इस माया प्रकृतिको पारकर जीवके स्व-स्वरूपकी प्राप्तिका नाम मुक्ति है। इसीको निवृत्ति-सुख कहते हैं। प्रवृत्ति-मार्गमें भटकनेवाले पुरुषोंको अपने कर्मोंका फल भोगना ही पड़ता है; अतएव उनकी मायासे मुक्त होनेकी सम्भावना नहीं है। प्रवृत्ति कभी निवृत्ति उत्पन्न नहीं कर सकती। हाँ, यदि सौभाग्यसे किसी प्रवृत्ति-मार्गके पथिकको प्रवृत्तिके प्रति अप्रवृत्ति उत्पन्न हो जाय तो उसे शुभ फलकी प्राप्ति हो भी जाती है। ऐसे बहुतसे लोग मायासे मुक्त हुए हैं।

(क्रमशः)

लकड़हारेकी बुद्धि

एक लकड़हारा लकड़ियाँ एकत्र करनेकी इच्छासे सुन्दरवन जानेका प्रयास करने लगा। सुन्दरवनमें बहुतसे हिंसक पशुओंका निवास है, अतएव वहाँ अस्त्ररहित जानेसे प्राणोंका खतरा रहता है, किसी पौढ़ावस्थाके व्यक्तिने लकड़हारेको यह जानकारी दी। किन्तु लकड़हारा बोला—वनमें जाते समय अस्त्र-शस्त्र लेकर जाना चाहिए, मैं लोगोंकी इस भ्रान्त धारणाको दूर कर दूँगा, कोयलेकी खानपर कोयलेका बोझ ढोकर ले जानेकी मूर्खता नहीं करूँगा। वनमें अनेक बड़े-बड़े वृक्ष हैं, वर्हीसे कोई एक बड़ी-सी शाखा तोड़कर सख्त लाठी लेनेसे शेर, उल्लू कहाँ भागेंगे? जैसे ही किसी हिंसक पशुको आता देखूँगा, उसी समय वृक्षकी एक बड़ी डाल तोड़कर उसको ऐसा भय दिखाऊँगा कि मेरे निकटमें ही नहीं आएगा। बड़े-बड़े वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ते देखकर ही वह भयसे दूर भागेगा।

लकड़हारा स्वयंको बहुत बुद्धिमान समझता था। किन्तु उसे यह साधारण ज्ञान नहीं था कि वृक्षोंकी डाल तोड़ते-तोड़ते यदि बाघ आकर उसकी गर्दन तोड़कर रक्त पान कर लेगा, तब

उसकी समस्त कल्पना धराशायी हो जायेगी और उसको लाठी पकड़नेका भी समय नहीं मिलेगा। बाघको मारनेकी तो बात ही क्या स्वयं ही बाघके हाथोंसे प्राण पखेरू उड़ जायेंगे। घटना भी ऐसी ही हुई। इस लकड़हारेके वनमें प्रवेश करनेके कुछ दिन पश्चात् खबर मिली कि एक छोटे बाघने लकड़हारेकी गर्दन तोड़कर स्वच्छन्दरूपसे उसका रक्त पान किया। बाघको देखकर लकड़हारा एक विशाल वृक्षकी डाल तोड़ रहा था, किन्तु शाखाको पूर्णरूपसे तोड़नेसे पहले ही इस बाघने आकर उसपर आक्रमण कर दिया एवं उसे मार गिराया।

इधर इस घटनाके कुछ दिनों ही बाद एक साधुने स्वच्छन्दरूपसे विचरण करते-करते उसी वनमें प्रवेश किया। साधुको बाह्य ज्ञान बिलकुल नहीं था। सब समय हरिकीर्तनमें रत, भगवान्‌के प्रेममें विभोर। कुछ व्यक्तियोंने कौतुहलवश अस्त्र-शस्त्र लेकर साधुको बताए बिना उसका वनमें पीछा किया। साधुके हृदयमें किसी प्रकारकी हिंसा-वृत्ति न देखकर बाघ-भल्लू आदि हिंसक पशुओंने भी साधुके प्रति कोई हिंसा नहीं की। अपितु साधु जब वीणायंत्रके द्वारा उच्चस्वरसे

हरिकीर्तन करने लगा, तब अनेक हिंसक पशु भी कानसे उसे श्रवण करने लगे एवं आनन्दसे नृत्य करने लगे। साधुका हरिकीर्तन श्रवणकर अत्यन्त क्रूर हिंसक स्वभावके पशुओंका हिंसक भाव भी दूर हो गया। यह देखकर ये सब अस्त्र-शस्त्रधारी सज्जन लोग बहुत ही मुग्ध हुए और सोचने लगे-लकड़हारेके प्रति उन हिंसक पशुओंने वैसा व्यवहार क्यों किया? लकड़हारा अस्त्रके द्वारा उन हिंसक पशुओंकी हिंसाका निवारण क्यों नहीं कर पाया, और साधुने किस प्रकार बिना अस्त्र शस्त्रके हिंसक पशुओंको वशीभूत कर लिया।

यहाँ अष्टांग-योगीके साथ लकड़हारेकी, कर्मी और भोगी जीवके साथ अस्त्र शस्त्रधारी व्यक्तिकी, भक्तिके साथ हरिकीर्तन करनेवाले साधुकी उपमा दी गई है। अष्टांग योगी सोचते हैं कि वे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, ध्यान, धारणा इत्यादिके द्वारा इन्द्रियोंको विजय कर लेंगे, किन्तु इन्द्रियोंको जीतनेसे पूर्व ही, लकड़हारेका उदाहरण स्वरूप वृक्षकी शाखा तोड़नेसे पहले ही यदि अकस्मात् एक छलाँगमें शत्रुस्वरूप (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यस्वरूप) बाघ आकर गर्दन तोड़कर रक्त पान करना आरम्भ कर दे तो इन्द्रियोंकी चंचलतावश उसका पतन होना अवश्यम्भावी है। इन्द्रियोंको वशमें करनेके पश्चात् मंगल लाभ करूँगा—ऐसा विचार भगवद्भक्तोंका नहीं होता। भगवद्भक्त कपट-पथका अवलम्बन नहीं करते। वे कपटता द्वारा स्वयंकी चेष्टासे शत्रुस्वरूप इन्द्रियोंका दमनकर सिद्धि-लाभकी कल्पना एवं अभिमानको स्थान नहीं देते। आगे इन्द्रिय-दमन फिर आत्ममंगल लाभ—ऐसी भ्रान्त चेष्टा वे नहीं करते।

भगवद्भक्तिका अनुशीलन करनेसे अनायास एवं आनुसंगिकरूपसे ही उनका इन्द्रिय-दमन हो जाता है, उसके लिये उन्हें पृथक्रूपसे कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ती। वे शत्रुका विनाश-साधन करनेमें व्यस्त नहीं होते, अपितु शत्रु भगवद्भक्तिके

प्रभावसे उसके भजनमें सहायक सिद्ध होते हैं। शत्रु तब बन्धु हो जाते हैं, जब उनकी गति प्रकृतिके विपरीत हो जाती है; 'काम'—तब अप्राकृत कामदेव श्रीकृष्णकी सेवामें लग जाते हैं; 'क्रोध'—कृष्ण, कृष्णभक्त, कृष्णभक्त द्वेषियोंके प्रति प्रयोग होता है। 'लोभ'—साधुसंगमें हरिकथा-श्रवण। 'मोह'—इष्टदेव भगवान्की सेवा लाभ नहीं हुई इस प्रकारकी कातरता एवं 'मद' या आनन्दजनक सम्मोहन—भगवान्के गुणगानमें नियुक्त करते हैं। निर्मत्सर साधुके निकट मत्सरता कभी-भी स्थान नहीं पाती क्योंकि वे प्रत्येक जीवके प्रति दयालु होते हैं किसीकी उन्नति देख वे असहिष्णु नहीं होते। अतएव एकमात्र भगवद् प्रीतिके द्वारा ही समस्त अनर्थ सहज ही दूर हो जाते हैं एवं शत्रुको भी मित्रके रूपमें परिवर्तित कर अपना एवं दूसरोंका मंगल विधान किया जा सकता है।

इसलिए अप्राकृत वैष्णव-कवि श्रीलनरोत्तम ठाकुर महाशयने गान किया है—

इन्द्रियरूप देहमें वास करनेवाले जितने भी शत्रु हैं, कोई किसीके वशमें नहीं है। कान सुनकर भी नहीं सुनता। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, दम्भ, इत्यादिको विभिन्न स्थानोंमें नियुक्त करूँगा। शत्रुओंकी पराजय कर आनन्दित हृदयसे अनायास ही गोविन्दका भजन करूँगा। कामको कृष्णके प्रति कर्मार्पणमें, क्रोध भक्तोंसे द्वेष करनेवालोंके प्रति तथा लोभ द्वारा साधुओंसे हरिकथाका श्रवण करूँगा। इष्टकी अप्राप्तिमें मोह, कृष्णके गुण—गानमें मद आदि उचितरूपमें नियुक्त करूँगा। अन्यथा अर्थरूप-काम भक्तिपथमें सदा बाधा उत्पन्न करेगा ही। कृष्णका स्मरण कर शत्रुओंको मनके अधीन कर लूँगा। गोविन्दका नाम सुन, सब स्वयं ही भागेंगे जैसे कि सिंह सबको भयभीत कर देता है। जिसका एकान्त भजन होता है उसकी समस्त विपत्तियाँ दूर हो जाती हैं। एवं महानन्दरूपी सुखको वह लाभ करता है।

J J

मायावादकी जीवनी

— ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी

(पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ११, पृष्ठ २६० से आगे)

रावण

मध्य सम्प्रदायमें आज भी एक जनश्रुति चलती आ रही है कि शंकरसम्प्रदायके ज्ञानी लोग लंकाधिपति दशाननको (रावणको) ही वेदान्तके अद्वैत सिद्धान्तका आदि भाष्यकार कहते हैं। अतएव राक्षसकुलपति रावणको अद्वैतवादी कहा जा सकता है। रावणके जन्म वृत्तान्तके सम्बन्धमें श्रीकृष्णसंहिता नामक ग्रन्थमें लिखा है—

“पुलस्त्यवंशीय ऋषि ब्रह्मावर्तका परित्यागकर लंकाद्वीपमें कुछ समय तक रहे। वहाँ उन्होंने एक राक्षस-कन्यासे विवाह किया। उसी कन्यासे रावणवंशकी उत्पत्ति हुई। इसीलिए रावणको अर्द्ध ऋषि और राक्षस कहा जा सकता है।”

उपरोक्त वचनोंसे मध्य सम्प्रदायका यह प्रवाद सत्य प्रतीत होता है कि रावण राक्षस होनेपर भी एक घोर मायावादी ऋषि थे। बौद्ध सम्प्रदायके ‘लंकावतार सूत्र’ से भी पता चलता है कि रावण एक प्रसिद्ध अद्वैतवादी और शून्यवादी ऋषि थे। इसके अतिरिक्त रावणके क्रियाकलापसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वे एक प्रधान अद्वैतवादी थे। ब्रह्मकी शक्तिको अपहरणकर उसे निःशक्तिक ब्रह्मके रूपमें स्थापन करनेकी चेष्टा ही मायावादियोंका मूल-मन्त्र है। रावणके अन्तःकरणमें परब्रह्म श्रीरामचन्द्रकी शक्ति सीतादेवीको हरण करनेकी चेष्टा देखी जाती है। मायावादी रावण अपने शिष्यानुचरवर्गकी सहायतासे सीतादेवीको हरण करना चाहता था। भगवत्-शक्तिको ग्रहण करनेसे उस शक्तिके आनुगत्यमें भगवत्सेवाकी प्रवृत्ति जग पड़ती। मायावाद-मंत्र सोऽहं-तत्त्वरूप रावणका श्रीसीतादेवीके सम्पर्कसे रामचन्द्रकी पदवी

ग्रहण करनेकी वासना नष्ट हो जाती, इसलिये देखा जाता है कि उक्त प्रवाद केवल प्रवाद ही नहीं है, बल्कि प्रकृत सत्य है एवं रावण सचमुच ही अद्वैतवादी था। परम भक्त हनुमानके द्वारा रावणके हृदयमें भक्तिसिद्धान्तरूप एक जोरका धूँसा मारे जानेपर उसका अद्वैत-ज्ञान लुप्त हो गया। वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। फिर श्रीरामचन्द्रके वेद-ध्वनिरूप बाणसे उसका निर्वाण-दशशीर्ष कटकर अलग हो गया। तब रावणने श्रीरामचन्द्रका स्तव कर अपनेको कृतार्थ किया था।

अब देखा जाता है कि त्रेतायुगमें भी भगवान् ने अवतीर्ण होकर मायावादी राक्षसोंका विनाश तथा अद्वैतवादी ऋषियोंका उद्धार किया था। इस प्रकार त्रेतायुगमें भी मायावादका विनाश होनेपर भक्तिसिद्धान्तकी विजय-पताका पुनः लहराने लगी थी।

द्वापर युगमें अद्वैतवाद और उसकी परिणति ‘श्रीशुकदेव’

श्रीव्यासदेवने जावालिकी कन्या वीटिकाको गोद लिया था। (उस समय पुत्र और कन्या दोनोंको गोद लेनेकी प्रथा थी।) उन्होंने उसके साथ बहुत दिनोंतक तपस्या की। पीछे पुत्रकी कामनासे वीटिकामें वीर्य-स्थापन किया। वीटिकाको गर्भ रहा। बारह वर्षतक गर्भमें रहनेके पश्चात् भगवान् की आज्ञा और पिताकी प्रार्थनासे माताका क्लेश दूर करते हुए मायामुक्त अवस्थामें श्रीशुकदेवजी भूमिष्ठ हुए। भूमिष्ठ होनेके साथ-ही-साथ वे शुक पक्षीकी तरह भगवान् का स्तव-पाठ करने लगे। इसीलिए इनका नाम शुकदेव पड़ा। ब्रह्मवैवर्त पुराणमें शुकदेवजीकी जन्म-कहानीका

विस्तृतरूपसे वर्णन किया गया है। इस प्रसंगमें श्रीमद्भागवत (९/११/२५) की श्रील विश्वनाथ चक्रवर्तीकी टीका आलोचनीय है।

“विचिन्त्य मनसा चक्रे भार्या जावालिकन्यकाम्। वीटिकाख्यां ददौ तस्मै सोऽपि वैखानासाश्रमी। ततश्च व्यासस्तया सह बहुकालं तपस्तये, तदन्ते तस्यां वीर्यमाधत्त। सा च गर्भवती एकादशसु वर्षेषु व्यतीतेष्वपि न प्रसूते स्म। अथ द्वादशे वर्षे इत्यादि अतो गभान्निसृत्य प्रणाम्य वहस्तवानं त्वं दृष्ट्वा भगवानाह—“व्यास! त्वदीय तनयः शुकवन्मनोऽन्नं ब्रूते वचो भवतु तच्छुक एव नाम्नेति।”

इन्हें शुकदेवजीने अभिशाप्त परीक्षित महाराजको श्रीमद्भागवतका उपदेश दिया था।

हरिवंशमें एक और शुककी कथा पायी जाती है। किन्तु ये शुक दूसरे थे। ये भी व्यासदेवके पुत्र थे। किन्तु ये अरणीसे पैदा हुए थे तथा छाया शुकके नामसे प्रसिद्ध हैं। महाराज परीक्षितके साथ इस छाया शुकका कोई सम्बन्ध नहीं था। वीटिकाके पुत्र शुकदेव निर्गुण ब्रह्मज्ञानी थे। इनके निर्गुण ब्रह्मज्ञानमें मान होनेपर भी भगवान्‌के शक्त्यावेशावतार श्रीव्यासदेवजीने कौशलसे इनको ब्रह्म-ज्ञानकी तपस्यासे हटाकर शुद्ध-भगवत्-ज्ञानके सहज, सरल तथा मधुर भक्तितत्त्वकी ओर लाया। श्रीशुकदेवजीने श्रीमद्भागवतमें स्वयं जैसा अपना परिचय दिया है, उसे नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म-सम्मितम्।
अधीतवान् द्वापरादौ पितुङ्गैर्यायनादहम्॥

परिनिष्ठितोऽपि निर्गुण्ये उत्तमः-श्लोक-लीलया।
गृहीत-चेता राजर्षे आख्यानां यदधीतवान्॥
(श्रीमद्भा. २/१८-९)

अर्थात्, परीक्षितको सम्बोधनकर श्रीशुकदेव गोस्वामी कह रहे हैं—“राजर्षे! द्वापरके अन्तमें इस भागवतरूप अथवा वेदतुल्य श्रीमद्भागवत नामक महापुराणका मैंने अपने पिता श्रीकृष्णद्वैपायनसे अध्ययन किया था। निर्गुणस्वरूप ब्रह्ममें मेरी निष्ठा पूर्ण होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णकी मधुर लीलाओंने बलात् मेरे हृदयको अपनी ओर आकर्षित कर लिया। यही कारण है कि मैंने इस पुराणका अध्ययन किया।

अतएव शुकदेव निर्गुण ब्रह्म-ज्ञानी होनेपर भी श्रीव्यासदेवकी कृपासे निर्गुण ब्रह्मज्ञानकी अपेक्षा उत्तमःश्लोक भगवान्‌की मधुर लीलाओंकी श्रेष्ठता उपलब्धिकर इसकी ओर आकर्षित हुए थे। और ऐसी लीलाओंसे पूर्ण श्रीमद्भागवतके एकमात्र श्रवण, कीर्तनादि द्वारा ही जीवोंका परम मंगल हो सकता है—ऐसा जानकर इन्होंने श्रद्धालु परीक्षितको श्रीमद्भागवतका ही उपदेश प्रदान किया। उन्होंने परीक्षितको ब्रह्म-ज्ञानका उपदेश न दिया, क्योंकि ब्रह्म-ज्ञानसे न तो परीक्षित महाराजका कोई कल्याण हो सकता था और न दूसरोंका ही। श्रीशुकदेवजी वैष्णव सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य हैं। □

(क्रमशः)

श्रीमद्भगवद्रीता

अन्वय, अनुवाद, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरकृत ‘सारार्थवर्षिणी’ टीका, सारार्थवर्षिणी टीकाका हिन्दी अनुवाद एवं श्रीश्रीमद्भवितवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज द्वारा ‘सारार्थवर्षिणी प्रकाशिका वृत्ति’ सहित शीघ्र प्रकाशित
प्राप्तिक्षण—श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

प्रेम-प्रदीप

[पूर्व प्रकाशित वर्ष २०, संख्या ११, पृष्ठ २६५ से आगे]

बाबाजीने कहा—“और भी विषय हैं। पूर्वमें ही कहा गया है कि भगवान् ऐश्वर्य और माधुर्यमय हैं। इसलिए भगवत्-साधक भी दो प्रकारके हैं। कोई-कोई ऐश्वर्यवान् भगवान्‌का भजन करते हैं, और कोई-कोई माधुर्यमय भगवान्‌को प्रीति करते हैं। नरेन बाबू! आप किस प्रकारके साधक बनना चाहते हैं?” नरेन बाबूने कहा—“मेरा कुछ सन्देह है। भगवान्‌को ऐश्वर्य-च्युत करनेसे उनका ईश्वरत्व कहाँ रहेगा? परन्तु ‘माधुर्य’ शब्द श्रवण करनेसे ही मेरा चित्त पागल हो रहा है, मैं कुछ भी समझ नहीं रहा हूँ।”

बाबाजीने कहा—“ऐश्वर्य और माधुर्य दोनों स्वभावोंमें भगवत्ता वर्तमान है। माधुर्य प्रबल होनेपर समस्त जगत्‌को उन्मत्त कर देता है।”

नरेन बाबू और आनन्द बाबू दोनोंने कहा,—“हमलोग माधुर्यमयको चाहते हैं।”

बाबाजीने कहा—“तब तुमलोग स्वाभाविक कृष्ण भक्त हो। भगवान्‌के माधुर्यकी वृद्धि होनेपर ही श्रीकृष्ण स्वरूपका उदय होता है। ये सभी विशेषरूपसे भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थमें विचारित हुआ है। श्रीकृष्ण सर्वकलाविशिष्ट माधुर्य चन्द्रमा है। वे तुम्हरे हृदयमें सम्यक्रूपसे उदित हों।”

योगी बाबाजीका वाक्य कभी भी निष्फल नहीं हो सकता है। नरेन बाबू और आनन्द बाबू उभय-तत्त्वोंकी कुछ गम्भीरतापूर्वक आलोचना करते हुए बोले—“आजसे हम लोग कृष्णदास हैं, मुरलीधारी नवघन कृष्णचन्द्र हमारे हृदयमें सुखासीन हों।”

बाबाजीने कहा—“देखो, कृष्णभक्ति व्यतीत माधुर्य-भक्तोंकी गति कहाँ है? ऐश्वर्य परायण भक्तगण क्या निर्भय होकर नारायणचन्द्रके प्रति प्रीति-चेष्टा दिखा सकते हैं? यदि भगवान् कृष्ण नहीं होते, तब क्या सख्यरस, वात्सल्यरस और चरम रसरूप मधुररसको हमलोग उनको अर्पण

कर सकते थे?”

नरेन बाबू और आनन्द बाबू बाबाजीकी चरणरेणु मस्तकपर धारण करके कृतकृत्य हो गये।

उन्होंने कहा—“आजसे आप हमें भक्तिरसामृतसिन्धु की शिक्षा दीजिये।”

मल्लिक महाशय दोनोंकी यह अवस्था देखकर बहुत प्रसन्न होते हुये चिन्ता करने लगे—“महानुभव गुरुदेवके लिए यह कुछ भी असम्भव नहीं है।”

बाबाजीने कहा,—“तुम लोगोंने यद्यपि अंग्रेजी भाषामें अनेक विद्याएँ अर्जन की हैं, किन्तु संस्कृत भाषाका अध्ययन नहीं किया है। भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ संस्कृत भाषामें है इसलिए उसे शीघ्र ही नहीं समझ सकते हो। इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थका अध्ययन करो।”

बाबाजीकी आज्ञाके अनुसार उनके एक शिष्यने श्रीचैतन्यचरितामृत लाकर उनको दी। यह ग्रन्थ लेकर आनन्द बाबू और नरेन बाबू एक कुटीमें बैठकर गम्भीरतापूर्वक पाठ करने लगे। जब उनको कोई सन्देह होता, बाबाजीके निकट समझ लेते थे। आनन्द बाबू और नरेन बाबूने प्रतिज्ञा की, कि जब तक यह ग्रन्थ समाप्त नहीं होता तब तक उस कुञ्जसे बाहर नहीं जायेंगे। आनन्द बाबू और नरेन बाबू एक कुटीमें बैठ गये। द्वितीय कुटीमें मल्लिक महाशय कुम्भक अभ्यास कर रहे थे। बहुतसे श्रोता आकर आनन्द बाबू और नरेन बाबूके निकट बैठते थे। बहुतसे श्रोता मिलकर एकस्वरसे श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थ पढ़ते, उसे श्रवण करनेपर सभीको वह बहुत मधुर लगता था।

इस प्रकार लगभग दस दिनोंमें उनका ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। बहुतसे स्थानोंपर पाठ करते समय उनके प्रेमाश्रु गलित हो रहे थे। किसी-किसी समय पुलकित होकर पुस्तक रखकर प्रार्थना गान करते-करते नृत्य करते थे—

‘गोराङ्ग’ बलिते हबे पुलक शरीर।
 ‘हरि हरि’ बलिते नयने बहे नीर॥
 आर कबे निताईचाँदेर करुणा हङ्के।
 संसार-वासना मार कबे तुच्छ हबे॥
 विषय छाड़िया कबे शुद्ध हबे मन।
 कबे हाम हेरब श्रीवृन्दावन॥
 रूप-रघुनाथ पदे हङ्के आकुति।
 कबे हाम बुज्जव से युगल पीरिति॥
 रूप-रघुनाथ पदे रहु मार आश।
 प्रार्थना करये सदा नरोत्तमदास॥

‘गौरचन्द्र’ का नाम उच्चारण करनेपर कब मेरा शरीर पुलकित होगा। ‘हरि हरि’ कहनेसे कब मेरे नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होगी। नित्यान्द प्रभुकी कृपा मेरे ऊपर कब होगी। मेरा विषयोंके प्रति कब वैराग्य होगा? सांसारिक वासनाएँ कब दूर होंगी? मैं श्रीवृन्दावन धामका कब दर्शन करूँगा? रूप-रघुनाथके नामोच्चारणसे मेरा मन कब विहङ्ग होगा। मैं श्रीवृन्दावनके कुञ्जोंमें सम्पन्न होनेवाले उस युगल-विलासको कब समझ सकूँगा। श्रीरूपरघुनाथके चरणोंकी मुझे सदैव आश है। इस प्रकारकी प्रार्थना नरोत्तमदास ठाकुर नित्य करते हैं।

बहुतसे वैष्णव बैठकर नरेन बाबूके मधुर पाठका श्रवण करते थे। सनातन और रूप गोस्वामीकी शिक्षा एवं रायरामानन्दके साथ महाप्रभुका संवाद ये सभी निगूढ तत्त्व कथायें हैं, इनके विषयमें अनेकों आलोचनाएँ होने लगीं। श्रीचैतन्यचरितामृतका दोबार पाठ होनेके बाद श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थका पाठ आरम्भ हुआ। बाबाजी महाराज अनेक स्थलोंपर उपदेश देकर प्रसन्न हुए।

एक दिन नरेन बाबू और आनन्द बाबूने बाबाजीके चरणोंमें दण्डवत्-प्रणाम करके कहने लगे—“प्रभो! यदि कृपा करके श्रीश्रीहरिनाम प्रदान करें, तब हम कृतार्थ होंगे।” बाबाजीने विलम्ब नहीं करते हुये उनको अभिषिक्त और भक्तिके द्वारा आद्र देखकर उनको हरिनाम-महामंत्र प्रदान किया।

वे लोग तुलसीकी मालापर नामभजन करने लगे। एक दिन उन्होंने जिज्ञासा की—“प्रभो! क्या हम लोग तिलक-माला धारण करें? बाबाजीने कहा—“जिस प्रकारकी रुचि हो वैसा ही करो, मेरा इस-विषयमें कोई नियम नहीं है।”

बाबाजीने इस विषयमें अपनी उदासीनता प्रकट की, तथापि वैष्णव-संसर्गसे उनके मनमें वैष्णव-वेश धारण करनेकी स्पृहा जाग्रत हुयी। दूसरे दिन मल्लिक महाशयने नरेन बाबू और आनन्द बाबूको जब माला-तिलकसे विभूषित देखा तब वे मन-ही-मन सोचने लगे कि “कृष्ण क्या नहीं कर सकते हैं।”

उसी दिन आनन्द बाबू और नरेन बाबूकी दाढ़ी-मूँछें दूर हुयी, उनके विदेशी जूते छिप गये। उन्होंने सम्पूर्ण रूपसे गृही वैष्णवोंका वेश धारण किया।

सन्ध्याकालमें नरेन बाबू और आनन्द बाबू अपने द्वारा रचित एक गीत गान कर रहे थे जिसे श्रवणकर बाबाजीका हृदय प्रसन्नतासे पुलकित हो रहा था। वह गीत इस प्रकार है—

कबे वैष्णवेर दया आमा प्रति हबे।
 आमार बान्धववर्ग कृष्णनाम लबे॥
 शुष्क युक्तिवाद ह'ते हङ्के उद्धार।
 ब्रह्म छाडि ‘कृष्ण मति हङ्के सवार॥।
 सकलेर मुखे गुरु-कृष्ण-नाम शुनि’।
 आनन्दे नाचिव आमि करे हरि ध्वनि॥।
 प्रभु गुरुदेव-पदे प्रार्थना आमार।
 मम सङ्गीगने प्रभु करह उद्धार॥।
 मेरे प्रति वैष्णवगण कब दया करेंगे। मेरे बान्धवगण कब कृष्णनाम लेंगे। कब शुष्क युक्तिवाद दूर होगा। ब्रह्मको छोड़कर कब सभीकी बुद्धि कृष्णमें नियुक्त होगी। कब सभीके मुखसे गुरु-कृष्णनाम श्रवण करूँगा। हरि ध्वनि करते हुये आनन्दसे मैं नृत्य करूँगा। श्रीगुरुचरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है। मेरे संग-साथियोंका आप उद्धार कीजिये।

(क्रमशः)

श्रील सभापति एवं आचार्यदेवकी आविर्भाव-तिथि-पूजा

जगदगुरु परमहंसस्वामी नित्यलीलाप्रविष्ट ३५ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके द्वारा प्रतिष्ठित विश्वप्रसिद्ध श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान सभापति-आचार्य त्रिदण्डस्वामी ३० विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीका ७६तम शुभ आविर्भाव-तिथि-पूजा-महासमारोह (पश्चिम बङ्गके) शिलिगुडी शहरस्थित श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठमें गत ३ जनवरी, १९९७ शुक्रवारको अनुष्ठित हुआ। इस अवसरपर देशके विभिन्न स्थानोंसे श्रीसमितिके आश्रित संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थभक्तगण परमोत्साह एवं परमानन्दसे उक्त स्थानपर सम्मिलित हुए। वस्तुतः अनेक वर्षोंके उपरान्त इस प्रकार बहु-आकांक्षित आविर्भाव-तिथि-पूजाका सुयोग प्राप्त कर उनके आनन्दकी सीमा नहीं थी। आविर्भाव-तिथि-पूजाके पूर्व दिन अधिवास तिथिके उपलक्ष्यमें स्वयं-भगवान् श्रीगौरसुन्दरके विजयविग्रह और गुरुवर्गके आलेख-सहित एक विशाल सङ्कीर्तन शोभायात्रा निकाली गई एवं रात्रिकालमें अधिवास-पूजा, अधिवास-कीर्तन एवं धर्मसभाका कार्यक्रम अनुष्ठित हुआ।

अगले दिन शुक्रवारको ब्रह्ममुहूर्तसे ही मङ्गलातिके पश्चात् श्रीसमितिके वैष्णव पुराहितोंके द्वारा श्रीश्रीव्यासपूजा एवं यज्ञका अनुष्ठान हुआ। यज्ञके उपरान्त श्रीलआचार्यदेवने श्रीगुरुवर्ग एवं श्रीश्रीगौर-राधा विनोदविहारीजीको पुष्पाञ्जलि प्रदान की। पुष्पाञ्जलिके बाद वे पुष्पोंसे सुसज्जित सिंहासनपर विराजमान हुए तथा सङ्कीर्तनके साथ भक्तोंने गुरु-पूजा की।

उसके पश्चात् आगन्तुक भक्तोंने अपनी-अपनी

आर्ति ज्ञापन की तथा उनके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि प्रदानकर स्वयंको कृतार्थ किया। मध्याह्नकालमें पुष्पसज्जासे सुसज्जित श्रीगौर-राधा विनोदविहारीकी भोगरतिके बाद उपस्थित लगभग पाँच हजार व्यक्ति महाप्रसाद ग्रहणकर परमानन्दित हुए।

अपराह्नके समय श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें एक धर्मसभाका अनुष्ठान हुआ। उक्त अनुष्ठानमें पूज्यपाद त्रिदण्डस्वामी श्रीभक्तिशरण साधु महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त त्रिदण्ड महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त वैष्णव महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त मधुसूदन महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त यति महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त बोधायन महाराज और श्रीभक्तिवेदान्त गोविन्द महाराजने श्रीगुरु-तत्त्व और व्यासपूजाके सम्बन्धमें सिद्धान्तपूर्ण भाषण प्रदानकर उपस्थित श्रोतृवृन्दके विभिन्न संशयोंको दूर किया। तदुपरान्त श्रीसभापतिर्जीने स्वाभाविक गम्भीर एवं चित्ताकर्षक भाषण प्रदान करते हुए कहा कि भूमा पुरुष श्रीकृष्णचन्द्रमें ही मूलतः व्यास-तत्त्व एवं गुरु-तत्त्व निहित है। इस जगत्में उस गुरुत्व एवं व्यासत्वका प्रकाश वे अपने पार्षदोंके माध्यमसे करते हैं। इसलिए श्रीगुरुदेव कोई भिन्न तत्त्व नहीं हैं, वे अद्वयज्ञानके अन्तर्गत तत्त्वविशेष हैं। इसलिए व्यासपूजा या गुरुपूजा कहनेपर किसी विशेषकी पूजा नहीं समझनी चाहिए बल्कि श्रीचैतन्यचन्द्र एवं उनके प्रकाश विग्रहोंकी पूजा ही समझनी चाहिए—

यद्यपि आमार गुरु चैतन्येर दास।
तथापि जानिये आमि ताहार प्रकाश ॥
श्रीकृष्णचन्द्रकी नरलीलाके द्वारा जिस प्रकार उनका साधारण नरत्व अथवा असाधारण नरत्व प्रशमित नहीं होता है, उसी प्रकार

श्रीगुरुदेवकी नर-लीलाके दर्शनकर उनमें मर्त्य बुद्धि नहीं करनी चाहिए। जिस प्रकार सूर्यके प्रकाशसे ही सूर्यका दर्शन होता है उसी प्रकार भगवत् कृपासे भगवत् और भागवतगणका दर्शन होता है। आरोह-पन्थाके द्वारा यह सम्भव नहीं है। अवरोह-पन्थाका अर्थ है तत्त्ववस्तुके प्रति निष्कपट एवं समान शरणागति। जड़ीय पाण्डित्य या अहम्‌की सामान्यतम सत्ताका भी हास होता है। जागतिक भूमिकामें अवस्थित होकर अप्राकृत दर्शनकी चेष्टा करना रावणके द्वारा स्वर्गके लिए सीढ़ी बनानेके समान व्यर्थ है। जब हमारे नेत्र, कणादि इन्द्रियाँ सम्पूर्णरूपमें भोगोन्मुखताका परित्यागकर सेवोन्मुख होंगी, तभी अप्राकृत दर्शनकी योग्यता प्राप्त होगी। नेत्रहीन होकर चक्षुमानकी भाँति चेष्टा करना केवल स्वयंको वज्जना करनेके समान है।

दूसरे दिन ४ जनवरी, १९९७, शनिवारको विभिन्न नित्य सेवानुष्ठानोंकी समाप्तिके बाद अपराह्नके समय पुनः श्रील आचार्यदेवके सभापतित्वमें धर्मसभाका अनुष्ठान हुआ। सभामें आलोचनाका विषय था—“श्रीगुरुपरम्परा एवं सम्प्रदाय-प्रणाली”। उक्त आलोच्य सभामें त्रिदण्ड स्वामी भक्तिवेदान्त यति महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त बोधायन महाराज, श्रीसदाशिव दास ब्रह्मचारी आदिने वक्तुता प्रदान की। अन्तमें श्रील सभापति महाराजजीने आलोच्य विषयके सम्बन्धमें मनन करनेयोग्य भाषण प्रदान किया। उन्होंने कहा—“सम्प्रदाय प्रणाली एवं साम्प्रदायिकता एक नहीं है। साम्प्रदायिकतामें जिस प्रकारकी भूल धारणा एवं घात-प्रतिघात वर्तमान है। सम्प्रदाय प्रणालीमें उपास्य और उपासनाका वैशिष्ट्य वर्तमान है, वह सम्प्रदाय प्रणालीमें सम्पूर्णरूपसे अनुपस्थित है। श्री, ब्रह्म, रुद्र एवं सनक—ये चारों वैष्णव सम्प्रदाय अपने-अपने विचारका अवलम्बनकर नित्यसेव्यकी सेवामें नित्य-नियुक्त हैं। केवल द्वैतवादिगण सेव्य,

सेवक एवं सेवा—इस त्रिपुटिका विनाशकर वास्तविक रूपमें जड़त्वको ही बहुमानन करते हैं। वस्तुतः यह वेदविरुद्ध मतवादमात्र है—वेदका अवलम्बनकर नास्तिक्य विचारमात्र है। श्रीमन्महाप्रभुने श्रीशंकराचार्यके द्वारा प्रचारित उक्त विचारका सम्पूर्णरूपमें खण्डन करते हुए “अचिन्त्यभेदभेद सिद्धान्त” का प्रकाश किया। वस्तुतः यह श्रीमन्मध्याचार्यके द्वारा प्रचारित “शुद्धादैतवाद” विचारके मूलमें प्रतिष्ठित है। आजकल कुछ गौड़ीयब्रुव लोग श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके नामसे एक पञ्चम सम्प्रदायका प्रवर्त्तन करनेकी कुचेष्टा कर रहे हैं। जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने उनको “कलिका अनुचर” कहा है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद ब्रह्म-मध्य-गौड़ीय सम्प्रदायकी रक्षाके लिए भगवत्-इच्छासे अवतीर्ण हुए। उन्होंने “भागवत्-गुरु-परम्परा” का प्रकाशकर परम्पराके वास्तविक विचारोंका प्रचार किया। प्राकृत सहजियागण भागवत्-गुरु-परम्पराके वास्तविक तात्पर्य को नहीं समझ सकते हैं। वे लोग गुरु-परम्पराको शौक्र वंश-परम्पराके समान समझते हैं। शिष्य परम्पराकी अपेक्षा भागवत्-परम्पराका अधिक माहात्म्य है। वस्तुतः शिष्य परम्पराको क्रोडीभूतकर भागवतकी सम्पूर्ण विचार-धाराके संरक्षणके माध्यमसे भागवत्-गुरु-परम्परा ही नित्य है। स्थूलदर्शनका परित्याग होनेपर भागवत्-गुरु-परम्पराका माहात्म्य प्रकाशित हो सकता है। इस स्थूलपर भूल करनेका कोई अवकाश नहीं है। इस प्रकार श्रील आचार्यदेवके तात्त्विक भाषणको श्रवणकर श्रोताओंने कर्णोंकी सफलताका अनुभव कर स्वयंको कृतकृतार्थ किया।

श्रीव्यासपूजा अपने पूर्ण माहात्म्यके सहित प्रति वर्ष नवनवायमानरूपमें वैयासिकी आनुगत्य-अभिलषित व्यक्तियोंके मध्य इसी प्रकार आविर्भूत होकर उनको धन्य करे—यही सकतार प्रार्थना है।

प्रचार-प्रसङ्ग-

दिल्ली

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके सह-सभापति एवं साधारण सम्पादक श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्तनारायण गोस्वामी महाराजजीने २ से ४ दिसम्बर तक भारतवर्षकी राजधानी दिल्ली महानगरीमें श्रीमन्महाप्रभुके प्रेमधर्मका विपुलरूपमें प्रचार किया। श्रीलमहाराजजीने मनुष्य जीवनको सार्थक बनानेका उपाय, श्रीमन्महाप्रभु किसलिए जगतमें अवतीर्ण हुए थे, उनके अवदान वैशिष्ट्य एवं कलियुगमें भगवन्नाम ही भजनका सर्वश्रेष्ठ अंग है इत्यादि विषयोंमें वक्तृता प्रदान की। दो दिवसीय प्रचार कार्यक्रममें अनेक श्रद्धालु भक्तोंने श्रील महाराजके सङ्ङ्कालाभ उठाया दिल्ली महानगरीमें भक्तोंपर कृपाशीर्वाद कर श्रील महाराजजीने मुम्बईकी ओर प्रस्थान किया।

मुम्बई

मुम्बईमें कॅम्स कॉर्नर, अन्धेरी (पूर्व एवं पश्चिम) एवं मीरा रोडमें श्रील महाराज कीर्तन एवं प्रवचनके माध्यमसे भक्तोंको भगवद्भजन करनेके लिए उत्साहित किया। व्यस्त जीवनके कारण भक्तोंको इतना समय नहीं मिल पाता कि वे मथुरा या वृन्दावनमें आ सकें इसलिए श्रील महाराजजीके स्वयं वहाँ उपस्थित होनेके कारण भक्तोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। श्रील महाराजजीके मुखारविन्दसे श्रीकृष्ण एवं महाप्रभुजीकी करुणामयी लीलाओंको सुनकर भक्तोंको चिन्तापूर्ण जीवनसे कुछ राहत मिली। इस प्रकार ५ से १५ दिसम्बर तक मुम्बई महानगरीमें प्रचार कार्य पूर्ण करके श्रीलमहाराजजीने छत्रपति शिवाजीके देश पूनामें पदार्पण किया।

पूना

श्रील महाराजजीके साथ द्वादश ब्रह्मचारी प्रचार सहायकके रूपमें थे। ब्रह्मचारीवृन्द १२ तारीखको ही पूनामें पहुँच गए थे, १४ से २५ दिसम्बर तक पुना महानगरीमें बिबेवाडीके अन्तर्गत पारिजात हाउसिंग सोसायटीके सुविशाल पाण्डालमें श्रीमद्भागवतका अनुष्ठान हुआ। १४ तारीखको अधिवासके दिन नवघोडोंसे युक्त सुसज्जित रथमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपास्य श्रीश्रीगौर-राधा-विनोद विहारीजी महानगरीमें कृपादृष्टि करते हुए भ्रमण किया। पूनावासियोंने एकवाक्यमें स्वीकार किया कि इससे पहले कभी भी इतना सुन्दर नगर संकीर्तन पूनामें नहीं देखा गया।

महाराजजीसे मिलने आई पूनाकी विख्यात साहित्यिक 'चम्पा विशिकर' हरिकथा सुनकर विस्मित हो गई। श्रील महाराजजीने साहित्य शब्दकी व्याख्या करते हुए बताया कि 'हितेन सह वर्तमान इति साहित्य' जिसमें इहलौकिक विशेषकर पारमार्थिक हित हो वही साहित्य है। मैं कौन हूँ? किसलिए जगत्में आया? मेरा क्या कर्तव्य है? क्यों आध्यात्मिकादि तीन तापोंसे दग्धीभूत हो रहा हूँ? इससे छुटकारा पाकर नित्य कल्याणकी बात जिसमें कही गई हो वही साहित्य है।

२३ तारीखको श्रील महाराजजी पूनाके निकटस्थ अक्रोड़ीस्थित गुरुनानक मान सरोवर आश्रमके वार्षिक उत्सवमें आमन्त्रित होकर सनातन धर्मके सम्बन्धमें वक्तृता प्रदान की। इसी सन्दर्भमें जगतके जीव क्यों दुःखी हैं एवं सुखी कैसे होंगे, इस शृंखलामें भागवत धर्मकी व्याख्या की। आश्रमवासियोंने श्रील महाराजजीके प्रति पुनः पुनः प्रतिवर्ष आग्रह किया।

२४ तारीखको एक स्थानीय आयुर्वेदिक डॉक्टरके निवासस्थानपर कर्म, अकर्म, विकर्म, कर्मयोग एवं भक्तियोगकी व्याख्या प्रदान की। लोगोंने कहा हमलोग पहले समझते थे कि गीतामें कर्मयोगको ही सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। आपने तो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, तीसपर भी गुह्य, गुह्यतर, गुह्यतम, सर्वगुह्यतमके बारेमें बताया।

२५ तारीखको पूना हाईकोर्ट एवं दिल्ली सुप्रीम कोर्टके अधिवक्ता रामचन्द्र रंगनाथ गोडबोलेके साथ उनके निवासपर गीताके ऊपर चर्चा हुई, चर्चाका संक्षिप्त अंश नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

एडवोकेट—‘अहं ब्रह्मास्मि’ इत्यादि वेदवाक्योंके द्वारा सब एक ही तो है।

श्रील महाराजजी—जगत्‌में तो एक नामकी चीज है ही नहीं।

एडवोकेट—क्यों?

श्रील महाराजजी—देखिए आप तो आइनजीवी हैं, आपको अधिक कहनेकी जरूरत नहीं है, फिर भी समझिए ‘एक’ इस शब्दमें भी तो दो अक्षर हैं, अंग्रेजीमें ‘ONE’ इसमें भी तो तीन लेटर्स हैं। १ इसमें भी तो हजारों dots हैं। फिर बताइए एक है कहाँ? आप भी अकेला अधिवक्ता नहीं हैं, भगवान् भी तो अपने परिकरोंके साथ ही रहते हैं।

एडवोकेट—महाराजजी! राष्ट्रपति तो एक है,

श्रीलमहाराजजी—नहीं, राष्ट्रपति एक नहीं है, कोई देश होगा, उसकी जनसंख्या, मंत्रीपरिषद्, देशका कानून सब मिलकर तब राष्ट्रपति है। अब बताइए राष्ट्रपति एक कैसे हुए, Unity in diversity, diversity in unity.

एडवोकेट—महाराजजी! ‘शिवोऽहं’ का तात्पर्य एवं गति क्या है?

श्रील महाराजजी—साधक जीव ‘३० नमः शिवाय’, ‘३० नमः शिवाय’ का जप करते हैं, वे लोग पार्वतीको माताके रूपमें एवं शिवजीको पिताके रूपमें दर्शन करते हैं, पीछेसे वे लोग सोचते हैं कि हम परिपक्व हो गये हैं ऐसा मानकर ‘शिवोऽहं’ करने लगते हैं, यह सुनकर पार्वतीदेवी बिगड़कर कहती हैं—पहले मैं माँ थी अब क्या तेरी वामा (स्त्री) बनूंगी? यह कहकर हाथमें फर्सा लेकर उस साधकका गला काटकर गलमें मुण्डमाला पहनती हैं। अब समझ रहे हैं ‘शिवोऽहं’ की गति।

एडवोकेट—भगवानको तो हमने देखा नहीं, माने कैसे?

श्रील महाराजजी—(पास हीमें बैठे हुए उनके प्रोफेसर पुत्रको पूछा) आप कह सकते हैं कि ये Advocate आपके पिताजी हैं? इस विषयमें केवलमात्र माँके शब्द ही प्रमाण हैं। यदि आप माँकी बातका विश्वास नहीं करेंगे तो आपकी अवस्था क्या होगी, समझ रहे हैं, मुझे कहनेकी जरूरत नहीं है। कोई भी चाहे बहुत बड़ा वैज्ञानिक ही क्यों न हो ‘माँ’ के शब्दोंके अतिरिक्त किसी भी प्रकारसे इस विषयको प्रमाणित नहीं कर सकता है। वैसे ही शास्त्र माताके समान हैं, उनकी बातको मानना ही पड़ेगा।

प्रोफेसर और एडवोकेट—आपने बिल्कुल ठीक कहा पहले हमलोगोंकी इस विषयमें भिन्न धारणा थी, अब आपकी कृपासे सब संशय दूर हो गए। हमलोगोंको आपका संग चाहिए।

श्रील महाराजजी—ठीक है आपलोग मथुरा-वृन्दावन पधारें तब आसानीसे सम्भव होगा।



द्वितीय विदेश यात्राकी पूर्व बेलापर श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीका अभिनन्दन

श्रीगोड़ीय वेदान्त समितिके उपसभापति एवं जनरल सेक्रेटरी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराजकी द्वितीय विदेश यात्राकी पूर्व बेलापर दिनांक १८-१-१९९७ शनिवारको मथुरास्थित श्रीकेशवजी गौड़ीय मठमें, मथुराके गणमान्य नागरिकों द्वारा उनका अभिनन्दन समारोह आयोजित किया गया। कार्यक्रमकी अध्यक्षता सुप्रसिद्ध समाजसेवी एवं उद्योगपति श्रीफतेहलाल गोयलजीने किया। श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदी, श्रीमनोहरलाल शास्त्री, श्रीकेदारदत्त तत्राड़ी, श्रीयमुना प्रसाद (प्रीतम) आदि ब्रजमण्डलके प्रख्यात विद्वान् एवं गणमान्य नागरिक भी इस अवसर पर उपस्थित हुए। इसके अतिरिक्त देश-विदेशसे आए हुए श्रील महाराजजीके शिष्यों, अनुयायी एवं मठवासी ब्रह्मचारियोंने भी इस सभामें भाग लिया।

सभाके आरम्भमें अध्यक्ष महोदयने श्रील महाराजजीको माल्यार्पण किया, तत्पश्चात् श्रील महाराजजीने अध्यक्ष महोदय एवं उपस्थित अन्य सभासदोंको माल्यार्पण किया। सभाके प्रारम्भमें श्यामसुन्दर दास ब्रह्मचारीने मङ्गलाचरण किया। वक्ताओंने श्रील महाराजजीके विदेश गमनकी महत्ता और आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए स्मरण कराया कि गत वर्ष भी पूज्यपाद महाराजजीने अपनी प्रथम विदेश यात्राके दौरान हॉलेण्ड, इंग्लैण्ड, अमेरिका एवं कनाडा इत्यादि देशोंके अनेक प्रमुख नगरोंमें लगभग पिचहत्तर दिन तक भगवन्नाम एवं श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा आचरित एवं प्रचारित प्रेमधर्मका प्रचारकर भारतीय संस्कृतिकी छाप उन लोगोंपर छोड़ी थी। इस वर्ष

श्रील महाराज पूर्व देशोंकी ओर विशेषकर मलेशिया, आस्ट्रेलिया, इण्डोनेशिया, सिंगापुर इत्यादि देशोंमें जायेंगे। इस अवसर पर श्रील महाराजजीकी वक्तृताका सारांश प्रस्तुत किया जा रहा है—

मैं ब्रजसे बाहर नहीं जाना चाहता था विशेषकर इस अवस्थामें। श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा है—

**पृथ्वी ते आछे जत नगरादि ग्राम।
सर्वत्र प्रचार हर्षब्र मार नाम॥**

सर्वत्र प्रचार विश्वमें जितने भी नगर, ग्राम, राष्ट्र है, सबमें भगवानका नाम प्रचार होगा, गीता एवं श्रीभागवतकी कथाएँ सर्वत्र प्रचारित होगी इसीसे जगतका कल्याण है। पाश्चात्य देशोंमें आत्म सम्बन्धीय मार्ग दर्शनके अभावके कारण वे लोग भौतिकतामें डुबे हुए हैं। उनके पास रूपया तो इतना है कि उसको कैसे खर्च करे इसके लिए चिन्तित है और देख रहे हैं कि धनके द्वारा कभी भी सुख नहीं मिल सकता इसकी वे उपलब्धि कर चुके हैं। इसलिए थोड़ासा भी भारतीय संस्कृतिके गीता एवं श्रीभागवतके सन्देशोंको सुनते हैं, तो मुग्ध हो जाते हैं और बड़ी गहराईसे विचार करते हैं। इसलिए पूर्वमें हमारे पूज्यपाद भक्तिहृदय वन महाराज गए, उसके बाद पूज्यपाद भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज गए, इन्होंने तो पूरे विश्वमें राधाकृष्णके मन्दिर बनवाएँ, प्रचारकेन्द्र खोले एवं सर्वत्र गीता भागवतका संदेश प्रचारित किया। जीवात्मा अजर अमर है, उन भगवानको छोड़नेसे ही सब लोग दुःखी हैं, उनकी चित्तवृत्तिको भगवान्की ओर मोड़ दिया—इससे और कल्याणकारी कार्य और विश्वमें नहीं है, कोटि-कोटि अस्पताल कोटि-कोटि शिक्षामन्दिर इत्यादि बनावें तो भी यदि

एक भी जीवकी चित्तवृत्तिको भगवान्‌की तरफ मोड़ दिया जाय तो कोटि-कोटि गुण अधिक कल्याण होगा। इसलिए हमारे पूर्वाचार्य श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर 'प्रभुपाद' ने अपने शिष्योंको पाश्चात्य देशोंमें भेजा। उन लोगोंने वहा इस चीजका प्रचार किया। किन्तु उन लोगोंके इस जगतसे चले जानेके बाद कुछ लोग निराश हो गए, उनका कोई आश्रय नहीं रहा। मैं समझता हूँ कि हमारे चैतन्य महाप्रभुजीने, कृष्णने स्वयं प्रेरणा देकर इन लोगोंके माध्यमसे हमको वहाँ बुलवाया है। हमने देखा बड़े-बड़े विद्वान, डॉक्टर, इंजिनियर खोल, मृदंग, करताल लेकर एअरपोर्ट पर कीर्तन करते हुए हमारा स्वागत करके ले गए। वे लोग सुनना चाहते हैं कि भारतमें कैसे-कैसे संत हुए हैं और क्यों वे लोग सुखी हैं। गरीब होनेपर भी आज भी तो सुखी हैं ये लोग समझ नहीं पाते। वे लोग कभी नहीं सोचते कि आत्मा अजर अमर है, शरीर नष्ट हो जाएगा। हम इस संसारकी कोई भी चीज लेकर नहीं जा सकते। इसलिए भारतीय संतोंका संग मिलनेपर जब ये विचार सुनते हैं, तो वैराग्यका उदय होता है और बड़ी उत्कण्ठासे राधाकृष्णकी व्रजकी लीलाओंको सुनते हैं। चैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाओंको सुनते हैं। बड़ा आदर करते हैं। जब मैं पहले वहाँ गया तो सबसे पहले मैंने ये कहा कि हमारे राजनैतिक नेता लोग आते हैं दरिद्र भारतसे, उनको पैसा चाहिए, पैसेके लिए झोली फैलाकर विदेशोंमें जाते हैं। आधुनिक विज्ञानकी उन्नति पाश्चात्य देशोंमें बहुत है, इसके लिए वे उधर जाते हैं। हवाई जहाजके लिए उधर जाते हैं, चिकित्सा विज्ञानके लिए जाते हैं, अधिकांशतः पैसेके लिए जाते हैं। मैंने कहा मैं इसके लिए नहीं आया, मैं समृद्ध भारतसे आया हूँ, मुझे पैसेकी जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें वो चीज दूँगा जो तुम्हारा कायाकल्प कर देगी। तुम्हारा जीवन धन्य हो जाएगा। हम लोग भगवन्नाम देंगे। भगवान्‌की भक्ति देंगे। आत्मतत्त्वका

ज्ञान हमलोग देंगे। जो विश्वके पास नहीं है। ये हमारे भारत वर्षकी अपनी सम्पत्ति है। इसलिए हम लोग सुखी हैं। इसका एक छिंटा भी मैं आप लोगोंको दूँगा जैसे हमारे आचार्य लोगोंने दिया, आप लोगोंका जीवन कृतार्थ हो जाएगा। सचमुच मैं जब भगवानके संदेशको उनको सुनाता, चैतन्य महाप्रभुकी शिक्षाओंको उनको सुनाता तो बड़े उत्कण्ठित होकर वे इनको सुनते। एक दो नहीं हजारो लोगोंने इस आत्मतत्त्वकी ओर प्रवेश किया। उनकी कितनी लगान हमने देखी। मैं आश्चर्यचकित हो जाता था। हमारी पिछली व्रजमण्डल परिक्रमामें २०० से अधिक समृद्ध एवं शिक्षित परिवारके लोगोंने बिना चप्पलके परिक्रमा की और अभी भी वहाँसे पत्र आते हैं कि हम लोग इसको भूल नहीं सकते। अभी विश्वमें ऐसा कोई राष्ट्र नहीं है जहाँ पर हमे नहीं बुला रहे हैं। हमको समय नहीं और इतना दिन विदेशोंमें रहना भी नहीं चाहता। मैं तो व्रजको एक मिनटके लिए भी छोड़ना नहीं चाहता। किन्तु हमारे गुरुवर्गोंका आदेश है। कृष्णने भी ऐसा आदेश गीतामें दिया है। जो श्रद्धालु है तथा भक्त है, उनको संदेश दो। श्रीमद्भागवतमें भी ऐसा ही कहा गया है। चैतन्य महाप्रभुकी ऐसी ही शिक्षा है, हमारे गुरुजीका भी यही ओदश है, तुमको हमने जो चीज दी वह तुम्हारे लिए ही नहीं दी है। विश्वमें उसका प्रचार होना चाहिए विश्वके अधिकसे अधिक लोग इसका ग्रहण करें अपना जीवन सार्थक कर सकें। मैं तो समझता हूँ कि गुरुजीकी ये दक्षिणा हमको देने जाना है। मुझे ऐसा नहीं लगता कि कहीं अलग जा रहा हूँ, मैं तो ऐसा देखता हूँ कि सारे राष्ट्र एक परिवारके हैं। मैं विश्वसे अपने भारतवर्षको अलग नहीं समझता। उसीके अन्दरमें ही हैं। मैं तो ऐसा समझता हूँ, जैसे पड़ोसमें जाता हूँ। यहाँसे दिल्ली जानेमें तीन घंटे लगते हैं। इंग्लैण्ड जानेमें छः घंटे लगते हैं। एक दिनमें

चले जाना और चाहे तो लौटकर भी आ जाना, तो फिर दूर कहाँ रहा।

ब्रजके विचारोंका, कृष्णके विचारोंका, श्रीचैतन्यमहाप्रभुके विचारोंका विश्वमें प्रचार हो। सभी लोग सुखी हों यही हमारे आचार्य वर्गोंका विचार है। कृष्ण इसीलिए आए, राम इसीलिए आए, समस्त अवतार इसीलिए आए। हमारे चारों सम्प्रदायोंके लोगोंका यही उद्देश्य रहा कि भारतका यह संदेश सारे विश्वमें जाएगा। विश्वके लोग सुखी हो। भारतवर्षमें रहकर भी जो कृष्णका संदेश नहीं पालन करते उनका यह जीवन भी दुःखी रहेगा और आनेवाला जीवन भी। मुझे कष्ट होता है, तो भी मैं जा रहा हूँ, ताकि सबका कल्याण हो।

आज मैं बहुत कृतार्थ हुआ, अपनेको धन्य समझता हूँ कि ब्रजवासी लोग यहाँ आए, भक्त आए, मूर्धन्य विद्वान आए, हमें इतना सुन्दर आशीर्वाद दिया। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। यहाँ जयपुरसे गौड़ीय वैष्णवोंके आराध्य गोविन्ददेवजीने अपनी आदेश माला वहाँके भक्त श्रीकृष्ण कुमार गुप्ताके द्वारा प्रसादके रूपमें भेजी है। मैं समझता हूँ कि ठाकुरजीका आशीर्वाद है, आपलोगोंका आशीर्वाद है। यही हमारे लिए परम सम्पत्ति रहेगी। मैं इसीको लेकर सर्वत्र भारतवर्षके विचारोंको बड़े सरल-सहज तरीकेसे उनको दे सकूँ और मैं समझता हूँ कि जरूर मैं ये देकर आऊँगा। और वे जीवनमें सुखी रहें। यही कहकर मैं अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ। □

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी

द्वितीय विदेश यात्राका कार्यक्रम

| | |
|--------------|------------------------|
| मलेशिया— | २२ जनवरी — २९ जनवरी तक |
| आस्ट्रेलिया— | २९ जनवरी — २० फरवरी तक |
| इण्डोनेशिया— | २० फरवरी — २७ फरवरी तक |
| सिंगापुर— | २० फरवरी — ३ मार्च तक |

वैष्णव व्रत तालिका

| | |
|----------------------|--|
| १८ फरवरी मंगलवार | भैमी एकादशी एवं वराह द्वादशी व्रत, |
| २० फरवरी बृहस्पतिवार | श्रीनित्यानन्द त्रयोदशी, अगले दिन ९-५७ से पहले पारण। |
| २५ फरवरी मंगलवार | श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीकी ९९ आविर्भाव तिथिपूजा, श्रीव्यासपूजा। |
| २७ फरवरी बृहस्पतिवार | श्रील सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादजीकी आविर्भाव तिथिपूजा। |
| ५ मार्च बुधवार | विजया एकादशी व्रत, अगले दिन ९-५१ से पहले पारण। |
| ८ मार्च शनिवार | श्रीशिवरात्रि व्रत, पूर्ण ग्रास सूर्यग्रहण। |
| १९ मार्च बुधवार | आमलकी एकादशी व्रत, श्रीनवद्वीप धामकी परिक्रमाका प्रथम दिवस। |
| २४ मार्च सोमवार | होली, पूर्णिमा, श्रीश्रीगौर जयन्तीका उपवास, श्रीश्रीराधाकृष्णकी दोलयात्रा। |

श्रीभागवत-पत्रिका-सम्बन्धी नियमावली

- (१) श्रीभागवत पत्रिका एक मासिक पत्रिका है। इसका सत्र चैत्रसे आरम्भ होकर फाल्गुनमें पूर्ण होता है। महीनेके प्रथम सप्ताहमें इसे प्रेषित किया जाता है।
- (२) साधारण डाकसे पत्रिका प्राप्त करनेके लिए सदस्यता शुल्क निम्नलिखित हैं—वार्षिक—१००/-, आजीवन—२५००/-, संरक्षक—५०००/-। किसी भी स्थितिमें भिक्षा अग्रिम देय है। वी. पी. द्वारा मँगवानेपर अतिरिक्त व्यय ग्राहकको वहन करना होगा।
- (३) किसी भी समय पत्रिकाका ग्राहक बना जा सकता है। ग्राहक वर्तमान सत्रके लिए ही बनाया जाता है। पूर्व प्रकाशित अड्डोंको प्राप्त करनेके लिए प्रकाशकके साथ पृथक् पत्राचार करना चाहिए।
- (४) ग्राहक अपना नाम-पता स्पष्टरूपमें लिखेंगे। स्थानके परिवर्तन होनेपर नये पतेके साथ अनतिविलम्ब प्रकाशकको सूचित करेंगे। पत्राचारमें सर्वदा ग्राहक-संख्याका उल्लेख करेंगे। पत्रका उत्तर प्राप्त करनेके लिए जवाबी पत्र वाढ़नीय है।
- (५) श्रीपत्रिकाके किसी अड्डको नहीं प्राप्त करनेपर अगले माहके १५ दिनोंके अन्दर सूचित करेंगे।
- (६) श्रीचैतन्य महाप्रभु द्वारा आचारित और प्रचारित शिक्षा अथवा शुद्धभक्तिके सम्बन्धमें निरपेक्ष लेख आदि आदरपूर्वक ग्रहण किए जाते हैं। ईर्ष्यामूलक तथा आक्रमणसूचक प्रबन्धादि श्रीपत्रिकामें प्रकाशित नहीं होंगे। सत्-समालोचना सर्वदा आदरणीय है। प्रबन्धोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा नहीं छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमनोनीत प्रबन्ध वापस नहीं भेजे जाते हैं। प्रबन्धोंमें प्रकाशित मतके लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। कोई जानकारी अथवा भिक्षा आदि भेजनेके लिए पत्र कार्यालय, श्रीभागवत-पत्रिका, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, जवाहर हाट, मथुरा, उ. प्र. (२८१००१) के नामपर भेजेंगे। ड्राफ्ट / चेक 'श्रीभागवत-पत्रिका' के नामसे बनावें।
- (७) विज्ञापनोंकी जानकारीके लिए कार्याध्यक्षसे पृथक् पत्रव्यवहार करेंगे।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा हिन्दी तथा अँग्रेजीमें प्रकाशित शुद्धभक्ति-ग्रन्थ तालिका—

- (१) श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कृत सारार्थवर्षिणी टीका) (२) श्रीमद्भगवद्गीता (श्रीभक्तिविनोद ठाकुर कृत रसिक-रञ्जन भाष्य) (३) जैव धर्म (जीवका धर्म)
- (४) श्रीभागवतामृतकणा (५) श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु-बिन्दु (६) श्रीउज्ज्वलनीलमणि-किरण (७) श्रीरागवर्त्म-चन्द्रिका (८) श्रीमाधुर्यकादम्बिनी (९) श्रीउपदेशामृत (१०) श्रीमनःशिक्षा (११) श्रीशिक्षाष्टक (१२) श्रीचैतन्य महाप्रभुके शिक्षा (१३) श्रीचैतन्य महाप्रभुके स्वयं-भगवत्ता प्रतिपादक कतिपय शास्त्रीय प्रमाण (१४) अर्चन दीपिका (१५) श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा एवं श्रीगौड़मण्डलके प्रमुख गौड़ीय-वैष्णव-तीर्थसमूह (१६) श्रीभक्तितत्त्व-विवेक (१७) श्रीगौड़ीय गीति गुच्छ (१८) श्रीवैष्णव-सिद्धान्त-माला (१९) श्रीगौड़ीय कण्ठहार (२०) श्रीचैतन्य-शिक्षामृत (२१) मायावादकी जीवनी (२२) महर्षि दुर्वासा और श्रीदुर्वासा आश्रम (२३) श्रीभागवत-पत्रिका (मासिक)

(1) Shri Chaitanya Mah•prabhu (His life & Precepts) (2) The Ved•nta (Its Morphology & Ontology) (3) Vaishnavism (Real & Apparent) (4) Rai R•m•nanda (5) N•m Bhajan (6) The Bh•gavat (Its Philosophy, Theology & Ethics) (7) The Nectar of Govind-L..I.. (8) Going Beyond Vaikun`fa (9) Bhakti-Ras•yan (10) Shri ®ik••taka (11) Venu G..ta (12) Manaf ®ik.. (13) Bhakti Ras•m•ta Sindhu Bindu (14) Life History of Impersonalism (Victory of Vaishnavism) (15) Prabandh•val...

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रतिष्ठित शुद्धभक्ति प्रचार-केन्द्रसमूह

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ — तेघरीपाड़ा, पो० नवद्वीप, जिला-नदिया (प० बं०)
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ — जवाहर हाट, मथुरा (उ० प्र०) दूरभाष- ४०९४५३
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ — चुंचुड़ा, हुगली (प० बं०)
४. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ — दानगली, वृन्दावन (उ० प्र०) दूरभाष- ४४३२७०
५. श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ — राणापत घाट, वृन्दावन, जिला-मथुरा (उ० प्र०)
६. श्रीदुर्वासा ऋषि गौड़ीय आश्रम — ईशापुर, मथुरा (उ० प्र०)
७. श्रीभक्तिवेदान्त गौड़ीय मठ — सन्यास रोड, कनखल, हरिद्वार (उ० प्र०)
८. श्रीनीलाचल गौड़ीय मठ — स्वर्गद्वार, पुरी (उड़ीसा)
९. श्रीविनोदविहारी गौड़ीय मठ — २८, हालदार बागान लेन, कलकत्ता-४ (प० बं०)
१०. श्रीगोलोकगञ्ज गौड़ीय मठ — गोलोकगंज, ग्वालपाड़ा, धूबड़ी (आसाम)
११. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ — अरविन्द लेन, जिला-कूचबिहार (प० बं०)
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार केन्द्र — रान्दियाहाट, जिला-बालेश्वर (उड़ीसा)
१३. श्रीकेशव गोस्वामी गौड़ीय मठ — शक्तिगढ़, शिलिगुड़ी, (प० बं०)
१४. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ — आशुतियाबाड़, मेदिनीपुर (प० बं०)
१५. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ — सिधाबाड़ी, रूपनारायणपुर, जिला-वर्द्धमान (प० बं०)
१६. श्रीवासुदेव गौड़ीय मठ — पो० वासुगाँव, जिला—कोकड़ाझार (आसाम)
१७. श्रीमेघालय गौड़ीय मठ — तुरा, वेस्ट गारो हिल्स (मेघालय)
१८. श्रीश्यामसुन्दर गौड़ीय मठ — मिलनपल्ली, शिलिगुड़ी (दार्जिलङ्क)
१९. श्रीमदनमोहन गौड़ीय मठ — माथाभाङ्ग, कूचबिहार (प० बं०)
२०. श्रीकृतिरत्न गौड़ीय मठ — श्रीचैतन्य एवेन्यू, दुर्गापुर (प० बं०)
२१. श्रीगौड़ीय वेदान्त चतुष्पाठी — मणिपुर, नवद्वीप, जिला-नदीया (प० बं०)
२२. श्रीत्रिगुणातीत समाधि आश्रम — गदखालि, नवद्वीप, जिला-नदीया (प० बं०)
२३. श्रीगौड़ीय दातव्य चिकित्सालय — देयारापाड़ा रोड, नवद्वीप, जिला-नदीया (प० बं०)
२४. श्रीमाधवजी गौड़ीय मठ — १, कालीतला लेन, पो.-वैद्यवाटी, जिला-हुगली (प०बं०)
२५. श्रीगौर-नित्यानन्द गौड़ीय मठ — रंगपुर, शिलचर—२ (काछाड़), (आसाम)